गुरु गोविन्दसिंह
और
उनका काव्य

(लखनऊ विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए
स्वीकृत शोध-प्रबंध)

लेखिका

डॉ. (कु.) प्रसिन्नी सहगल, एम. ए., एल्. टी., पी-एच्. डी.
(प्रिंसिपल, सरस्वती विद्यालय कन्या महाविद्यालय, लखनऊ)

हिन्दी साहित्य भंडार
गंगाप्रसाद रोड, लखनऊ

१९६५

प्रकाशक
हिन्दी साहित्य भंडार
गंगाप्रसाद रोड,
लखनऊ

प्रथम संस्करण—११००

मूल्य—पंद्रह रुपया

मुद्रक
बालकृष्ण शास्त्री
ज्योतिष प्रकाश प्रेस
कालभैरव मार्ग, वाराणसी

स्व० पिता श्री पुन्नुलाल सहगल

एवं

स्व० माता श्रीमती इकबाल देवी

की पुण्य स्मृति में

सादर समर्पित

दो शब्द

भारतीय इतिहास में प्राचीन मध्यदेश (आज का हिन्दी प्रदेश) आर्य भाषा, साहित्य और संस्कृति का मुख्य केन्द्र था। प्राचीन और मध्य-युगीन आर्यभाषाएँ—संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश इसी क्षेत्र मे विकसित होकर अपने पूर्ण उत्कर्ष को प्राप्त हुई थीं। मध्यदेशीय भाषा और सस्कृति ने सम्पूर्ण भारतवर्ष को प्रभावित किया था। इसी मध्यदेशीय भाषा की परम्परा मे शौरसेनी प्राकृत का प्रभाव मध्य-देश के समीपस्थ प्रदेशों—बंगाल, पंजाब, महाराष्ट्र, गुजरात आदि मे भी व्यापक रूप में विद्यमान था। शौरसेनी उस युग की सर्वाधिक प्रचलित लोकभाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो गई थी। कालान्तर में उसी का स्थान ब्रजभाषा ने लिया। ब्रजभाषा का प्रसार वैष्णव-भक्ति के विस्तार के साथ हिन्दी प्रदेश के बाहर भी दूर तक हो गया। उत्तर में पंजाब, पूर्व में बगाल और दक्षिण में महाराष्ट्र और पश्चिम में गुजरात प्रदेश में ब्रज को यथेष्ट सम्मान प्राप्त हुआ। वहाँ उसमें अनेक महत्त्वपूर्ण काव्य-रचनाएँ हुईं जिनकी पूर्ण जानकारी अभी तक हिन्दी जगत को नहीं है। शनैः-शनैः हिन्दी के विद्वानो का ध्यान हिन्दी-इतर क्षेत्र के ब्रजभाषा साहित्य की ओर गया। कतिपय विद्वानों ने महाराष्ट्र, बंगाल, पजाब में उपलब्ध हिन्दी काव्य-कृतियो का संकलन और उन पर शोधकार्य प्रस्तुत किया है। यह कार्य सभी दृष्टियो से अत्यन्त प्रशंसनीय और अभिनंदनीय है। इस प्रकार अधिकाश साहित्य अब भी इन प्रदेशों मे यत्र-तत्र 'बेठनो' में ही बँधा पड़ा है जिसके अनुसंधान की आवश्यकता है।

अहिन्दी प्रदेशो में जो ब्रजभाषा-साहित्य प्रचुर मात्रा में रचा गया उनमे सिक्ख गुरुओ की कृतियों का अपना विशिष्ट स्थान है। निर्गुण सन्त काव्य-स्रष्टा गुरु नानकदेव के अनन्तर गुरुगोविन्दसिह का नाम ऐसी विभूतियों में अग्रगण्य है। उनके कृतित्व का अनुशीलन देश की सास्कृतिक चेतना के अध्याय की एक गौरव-पूर्ण कड़ी है। गुरु गोविन्दसिह ने खालसा पंथ की स्थापना द्वारा न केवल हिन्दू जाति में नवीन शक्ति का संचार किया वरन् उन्होने स्वयं भारतीय आदर्शों का अनु-करण करते हुए देश की दमन-नीति का सक्रिय विरोध भी किया। यह उनके व्यक्तित्व की महान् विशेषता थी। उस युग की सर्वप्रचलित भाषा ब्रज में अपने सारे साहित्य का सृजन करके उन्होने देश में भाषागत एकता का ज्वलंत उदाहरण प्रस्तुत किया था। उनका यह कार्य आज के संघर्षशील युग में सर्वथा अनुकरणीय है। इस दिशा में अग्रसर होबे की आवश्यकता का अनुभव करते हुए हिन्दी-विभाग

के अन्तर्गत (कु०) प्रसिन्नी सहगल को 'गुरु गोविन्दसिह-जीवन और काव्य' विषय पर शोधकार्य करने की अनुमति प्रदान की गयी। (कु०) प्रसिन्नी सहगल को १९६१ ई० में अपने इस महत्त्वपूर्ण शोध प्रबन्ध पर लखनऊ विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि मिली थी। मुझे यह देखकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि यह ग्रंथ अब प्रकाशित हो गया है। डॉ० (कु०) सहगल ने प्रस्तुत ग्रंथ मे गुरु-गोविन्दसिंह के व्यक्तित्व और काव्य का सागोपाग विवेचन तथा धार्मिक विचार-धारा का विशद अध्ययन किया है। हिन्दी मे अभी तक इतने विस्तृत और प्रमाणिक रूप में गुरु गोविन्दसिह की कृतियो का मूल्याकन प्रस्तुत नही किया गया। डॉ० (कु०) सहगल अपने इस महत्त्वपूर्ण शोधकार्य के लिए बधाई की पात्र हैं। मेरा विश्वास है कि हिन्दी-जगत् मे ही नही वरन् सिक्ख समुदाय मे भी इस ग्रंथ का स्वागत होगा। मेरी मंगल कामना है कि डॉ० (कु०) सहगल द्वारा भविष्य में और भी महत्त्वपूर्ण शोध-कृतियो का प्रणयन हो।

बसंत पंचमी, ६ फरवरी १९६५
प्रोफेसर तथा अध्यक्ष,
हिन्दी तथा आधुनिक
आर्यभाषा विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

—दीनदयालु गुप्त

एम० ए०, डी० लिट्०

आमुख

"गुरु गोविन्दसिंह और उनका काव्य" शीर्षक शोध-ग्रंथ में डॉ० (कु०) प्रसिन्नी सहगल के अथक परिश्रम, वैज्ञानिक शोध-पद्धति, विद्वत्ता तथा आलोचनात्मक प्रतिभा से मै अत्यन्त प्रभावित हुआ हूँ। वह इस सर्वांगपूर्ण अध्ययन और विश्लेषण के लिये बधाई की पात्र हैं। यह ग्रंथ न केवल हिन्दी भाषा और साहित्य के क्षेत्र की बहुमूल्य देन है वरन् उसमे सिक्खधर्म के दशम और अन्तिम गुरु की रचनाओ मे उपलब्ध सिक्ख विचारधारा का सुन्दर प्रतिपादन हुआ है। यह केवल उत्कृष्ट साहित्यिक विशेषताओं से परिपूर्ण रचना ही नही है वरन् सूक्ष्म पर्यवेक्षण और प्रौढ चिन्तन की भी परिचायक है।

कुछ स्थलो पर लेखिका की कतिपय धारणाओ से पूर्ण सहमत न होते हुए भी मुझे यह कहने मे किञ्चित् मात्र संकोच नही कि उन्होने महान् गुरु की रचनाओ के सभी अंगो का विशद और विश्लेषणात्मक अध्ययन किया है जो सर्वथा सराहनीय है और उनके अनवरत अध्यवसाय और निष्ठा का परिणाम है।

प्रस्तुत ग्रंथ मे गुरु गोविन्दसिंह की राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक एवं साहित्यिक परिस्थितियो, उनके जीवनवृत्त से संबंधित सभी प्रमुख घटनाओं का शोधपूर्ण विवरण तथा समस्त रचनाओ का सागोपाग विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इसमें काव्य-कला के विविध पक्षो-भाव-व्यंजना, रसाभिव्यक्ति, छंद-योजना, अलंकार-विधान आदि का सम्यक् विश्लेषण हुआ है। गुरु जी की काव्य-रचनाओं की दार्शनिक और धार्मिक पृष्ठभूमि पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। परिशिष्ट मे गुरुमुखी लिपि मे प्राप्त गुरु जी की रचनाओ के प्रमुख अंशो का नागरी लिपि मे संकलन है जिससे ग्रंथ की उपयोगिता और बढ गई है।

उपसंहार में महान् गुरु के व्यक्तित्व के त्रिविध पक्षो—संत, योद्धा और विद्वान् का उचित मूल्याकन किया गया है। वे शान्ति और युद्ध के केवल एक महान् नेता मात्र, एक धर्म-प्रचारक और खालसा पंथ के संस्थापक ही नही थे वरन् एक महान् साहित्य-स्रष्टा भी थे। वे स्वय एक महान् कवि थे और उनकी उदार चेतना ने अन्य व्यक्तियो को भी उत्कृष्ट काव्य-कृतियो के सृजन की प्रेरणा दी थी। उनके दरबार में बावन कवियो को आश्रय प्राप्त था जिनका सम्यक् मार्ग प्रदर्शन उन्होने भारतीय साहित्य की समृद्धि के उद्देश्य से किया था।

दशम ग्रंथ की अधिकाश रचनाओ के सम्बन्ध में दो विचारधाराएँ मिलती हैं। एक विचारधारा के अनुसार दशम ग्रंथ की समस्त रचनाएँ गुरु जी की स्वरचित कृतियाँ हैं और दूसरी विचारधारा के लोग इन रचनाओं को दो खंडो मे विभाजित करते हैं। पहले खंड में गुरु जी के स्वरचित ग्रथो को स्थान दिया जाता है और दूसरे में उनके दरबारी कवियो को। डॉ० (कु०) सहगल पहली विचारधारा की पोषक है। अग्रेजी में प्रकाशित "दशम् ग्रंथ का काव्य" शोध प्रबन्ध के लेखक डॉ० धर्मपाल आश्ता और हिन्दी में प्रस्तुत शोध प्रबन्ध "सत्तरहवीं और अठारहवी शताब्दि में गुरुमुखी लिपि मे उपलब्ध हिन्दी रचना" के लेखक डॉ० हरभजन सिंह भी उसी विचारधारा के कहे जा सकते है। दशम ग्रथ मे संगृहीत पौराणिक कृतियो का विवेचनात्मक अध्ययन "ग्रंथ के प्रणेता डॉ० रत्नसिह जग्गी को दूसरी विचारधारा से सबद्ध किया जा सकता है। डॉ० (कु०) सहगल, डॉ० हरभजन सिंह तथा डॉ० रत्नसिह जग्गी ने हिन्दी भाषा मे उल्लेखनीय और महत्त्वपूर्ण कार्य किया है और इस प्रकार गुरु जी की काव्य-प्रतिभा का उचित मूल्याकन कर उन्हे हिन्दी के एक महान् कवि के रूप मे प्रतिष्ठित करने का श्रेय प्राप्त किया है।

पंजाबी मे गुरु गोविन्दसिंह की देन अत्यल्प है किन्तु हिन्दी साहित्य मे उनकी देन अनुपम है। दशम ग्रंथ की प्रकाशित तथा हस्तलिखित प्रतियाँ गुरुमुखी लिपि मे ही उपलब्ध होती है और यह बडे गौरव का विषय है कि हिन्दी के विद्वान् गुरुमुखी लिपि मे प्राप्त अनेक बहुमूल्य रचनाओ की ओर अब उन्मुख हो रहे है। इस लिपि के अभी ऐसी अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ पडी हुई है जिनके अनुसंधान और साहित्यिक मूल्याकन की अपेक्षा है। मुझे आशा है कि उत्तर-प्रदेश के विश्वविद्यालयो के शोधकर्ता डॉ० (कु०) सहगल के सदृश ही इस कार्य मे प्रवृत्त होगे और पंजाब के पुस्तकालयो एवं शोध-संस्थाओ मे प्राप्त हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थो की खोज मे संलग्न होगे। मेरा विश्वास है कि डॉ० (कु०) सहगल हिन्दी भाषा और साहित्य में शोधकार्य अनवरत रूप से करती रहेंगी और इस रूप मे अपनी मातृभूमि की सेवा में भी तत्पर रहेगी।

प्रोफेसर तथा अध्यक्ष,
पंजाबी विभाग,
पंजाब विश्वविद्यालय,
चंडीगढ़।

सुरेन्द्र सिंह कोहली
२४ जनवरी, १९६५

प्राक्कथन

सिक्खधर्म के संस्थापक गुरुनानक देव की वाणी "श्री गुरुग्रंथ साहब" के नाम से संगृहीत मिलती है। उसकी भाषा पूर्णतया ब्रज न होकर बहुत कुछ राजस्थानी-पंजाबी मिश्रित है। उसी गुरु-परम्परा मे गुरु गोविन्दसिह दसवें और अन्तिम गुरु हुए। उनकी प्रायः सभी रचनाएँ ब्रजभाषा मे हैं, केवल दो-एक स्फुट रचनाएँ ही पंजाबी तथा भाषाओ में है। उनमे कुछ ही रचनाएँ देवनागरी लिपि मे प्रकाशित मिलती है, किन्तु उनका संपूर्ण साहित्य 'दशम ग्रन्थ' के नाम से गुरुमुखी लिपि मे प्रकाशित मिलता है।

गुरु गोविन्दसिंह के जीवन-वृत्त, सिक्खधर्म तथा उनके गुरुओ के संबंध में अनेक पाश्चात्य विद्वानो और भारतीय विद्वानों ने कई महत्त्वपूर्ण ग्रंथ लिखे हैं। इनमे मेका-लिक रचित हिस्ट्री आव् सिक्खिजम, कनिंघम रचित हिस्ट्री आव् सिक्ख, ट्रांसफार्मेशन आव् सिक्खिजम, 'एवोल्युशन आव् खालसा अंग्रेजी के ग्रंथ एवं गुरु-विलास, सूरजप्रकाश श्री दशमेश चमत्कार, गुरुमत फिलासफी आदि पंजाबी के ग्रन्थ विशेष उल्लेखनीय है; किन्तु इनमें उनकी जीवनी तथा रचनाओ का पूर्णरूपेण सम्यक् विवेचन प्राप्त नही होता। गुरुजी की रचनाओ का विश्लेषण अभी हाल मे प्रकाशित, श्री रणधीरसिंह रचित "शब्दमूरत" पंजाबी पुस्तक और डॉ० धर्मपाल आश्ता की अंग्रेजी पुस्तक "दि पोयट्री आव् दशम ग्रंथ" मे प्राप्त होता है। जब मैने प्रस्तुत विषय पर अपना शोधकार्य आरम्भ किया था तो ये पुस्तके भी अप्राप्य थीं।

गुरु गोविन्दसिंह की समस्त रचनाएँ "श्री दशमगुरु ग्रंथ" के नाम से कुछ वर्ष पूर्व ही गुरुमुखी लिपि मे प्रकाशित हुई हैं। इसके पूर्व वह सुविधा भी नही थी। तत्संबंधी अनेक हस्तलिखित संग्रह-ग्रंथ अमृतसर की गुरु रामदास लाइब्रेरी, पटियाला की सेंट्रल लाइब्रेरी, पटना के शिरोमणि गुरुद्वारा के पुस्तकालय तथा कतिपय व्यक्तियों के पास सुरक्षित मिलती हैं। मैने उक्त तीनो स्थान मे जाकर इन विविध संग्रह-ग्रंथो का निरीक्षण और अध्ययन किया जिनका पूर्ण परिचय प्रबन्ध के तीसरे अध्याय में दिया गया है। प्रकाशित दशम ग्रंथ में उपलब्ध समस्त ग्रंथों के पाठ को प्राचीन प्रामाणिक हस्तलिखित प्रतियो के पाठ से जब मैने मिलाया तो पाठ संबधी अनेक विशेषताएँ उपलब्ध हुई जिनका उल्लेख तीसरे अध्याय में यथास्थान किया गया है। पटना शिरोमणि गुरुद्वारा के प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथो का विशेष महत्त्व दिया गया है। उस प्रति का भी मैने पूर्णरूपेण अध्ययन किया और जहाँ कही प्रकाशित ग्रंथ से पाठ भेद मिला उसे उसी अध्याय में यथास्थान इंगित कर दिया गया है।

जैसा कि पहले कहा गया है नागरी लिपि में गुरु गोविन्दसिंह रचित कतिपय पुस्तकें गोविन्द रामायण (रामावतार) विचित्रनाटक, अकाल स्तुति, सवैये, जापु प्रकाशित मिलते हैं किन्तु ये उनकी समस्त काव्य-रचना का शतांश भी नही है। अधिकांश रचनाएँ गुरुमुखी लिपि मे लिपिबद्ध होने के कारण अज्ञात हैं। अध्ययन का आधार प्रकाशित दशम ग्रंथ को ही रखा गया है परन्तु प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथो के आधार पर पाठ-भेद को दृष्टि से ओझल नहीं किया गया। उपर्युक्त तथ्यों से यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि गुरु गोविन्दसिंह के साहित्यिक मूल्यांकन की अत्यंत अपेक्षा है। इसी दृष्टि से उनकी जीवनी और कृतित्व का सम्यक् अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। निस्संदेह गुरु जी की कृतियाँ रीतियुगीन स्वच्छंद हिन्दी काव्य की संवृद्धि कर सकती है।

प्रस्तुत ग्रंथ पॉच अध्यायो मे विभाजित है। प्रथम अध्याय मे गुरु गोविन्दसिंह की समकालीन राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक एवं साहित्यिक परिस्थितियो का संक्षिप्त उल्लेख किया गया है। दशमेश जी की कार्य-दिशा मे निर्धारण मे बहुत कुछ इन्ही परिस्थितियो को मूल माना जा सकता है। उनका व्यक्तित्व राजनीतिक, धार्मिक आदि विविध परिस्थितियो से ओतप्रोत है। उनके पूर्व ब्रजभाषा काव्य की सुनिश्चित परम्परा थी जिसने साहित्यिक दिशा मे उनका मार्ग निर्देशन किया। उक्त परिस्थितियो का उल्लेख गुरुजी के धार्मिक, राजनीतिक, साहित्यिक जीवन के संदर्भ मे ही प्रस्तुत किया गया है।

द्वितीय अध्याय मे गुरु गोविन्दसिंह का जीवन-वृत प्राचीन प्रामाणिक ग्रंथो एव उनके स्वरचित ग्रंथ विचित्र नाटक के आधार पर लिखा गया है। आरम्भ मे दशमेश जी की बाल्यावस्था, शिक्षा-दीक्षा का संक्षिप्त वर्णन है। उनके पारिवारिक जीवन का संक्षेप मे परिचय दिया गया है। वे एक वीतराग, लोकसग्रही महापुरुष थे जिनका सम्बन्ध केवल सिक्ख सम्प्रदाय से ही न होकर समस्त मानवमात्र से था। मानव-कल्याण और सुरक्षा के लिये उन्होने अनेक युद्धो मे भाग लिया जिनका उनके राजनीतिक जीवन से महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध है। इस अध्याय के अन्त में उनकी गुण-ग्राहकता और व्यक्तिगत चारित्रिक विशेषताओं का भी उल्लेख किया गया है। उनके राज्याश्रित कवियो के हृदयोद्गारो को भी संक्षेप मे दे दिया गया है।

तृतीय अध्याय मे उनकी काव्य रचनाओ और वर्ण्य-विषय का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। आरम्भ में दशमेश जी की समस्त प्रामाणिक एवं तथाकथित रचनाओ से संबंधित विविध स्थानो में प्राप्त हस्तलिखित ग्रंथों का विवरण तथा प्रामाणिक ग्रंथो के रचनाकाल का भी निर्देश किया गया है। तदनंतर कालक्रमानुसार प्रत्येक रचना

के वर्ण्य-विषय का विवेचनात्मक परिचय दिया गया है। इसके साथ उनकी पूर्व परम्परा, भाषा, छन्द आदि का सम्यक् उल्लेख संक्षेप में किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में गुरु गोविन्दसिंह की काव्य-कला के अन्तर्गत रचनाओ की प्रतिपाद्यवस्तु, काव्य की परिभाषा, रस का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। शृंगार के अन्तर्गत नायक-नायिकाओ के रूप-सौदर्य, संयोग शृंगार, विप्रलंभ शृंगार, मान, वात्सल्य के संयोग एवं विप्रलंभ पक्षो का समावेश है। इसमें वीर एवं उसके सहकारी रसो, रौद्र, भयानक, वीभत्स, अद्भुत, हास्य आदि तथा नीति-उपदेश के अनन्तर प्रकृति-वर्णन एवं बाह्य दृश्य चित्रण का संक्षेप में विवेचन किया गया है। अध्याय के अन्त में दशमेश जी के काव्य की विविध अंगों की विस्तृत समीक्षा एवं भाषा अलंकार तथा छन्द के सम्यक् प्रयोगो का संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

अंतिम अध्याय में गुरु गोविन्दसिह की दार्शनिक एवं धार्मिक विचारधाराओ का सम्यक् विश्लेषण किया गया है। दार्शनिक प्रकरण मे ईश्वर, उसके विविध स्वरूप, आत्मा, सृष्टि आदि के सम्बन्ध मे दशमेश जी के विचारो का निर्देशन किया गया है। शक्ति-उपासना सम्बन्धी विवेचन में गुरु जी की एतद् विषयक रचनाओ से उदाहरण दिये गये हैं। इसी अध्याय के अन्त मे बाह्याडम्बर के विरोध मे गुरु जी के विचारो का उदाहरण सहित विवेचन है।

प्रस्तुत ग्रंथ पी-एच० डी० शोध-प्रबन्ध के रूप मे लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के प्रोफेसर आदरणीय डॉ० सरयूप्रसाद अग्रवाल के निर्देशन में सन् १९६१ ई० में लिखा गया था। उनके प्रति आभार प्रकट करना धृष्टता और औपचारिकता मात्र है। उनके लिये अपनी श्रद्धा और विनय हेतु मेरे पास शब्द हो ही क्या सकते हैं? यह सब उन्ही की कृपा का परिणाम है। श्रद्धेय डॉ० दीनदयालु गुप्त जी ने दो शब्द और आदरणीय डॉ० सुरेन्द्रसिंह कोहली, अध्यक्ष, पंजाबी-विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय ने 'आमुख' लिखकर पुस्तक को जो महत्त्व प्रदान किया है उसके लिये मै इन दोनों लब्धप्रतिष्ठ विद्वानों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करना अपना पुनीत कर्त्तव्य समझती हूँ। अमृतसर और पटना के शिरोमणि गुरुद्वारों के प्रबन्धकों तथा पटियाला सेंट्रल लाइब्रेरी के पुस्तकाध्यक्ष की मैं कृतज्ञ हूँ जिन्होंने अनेक हस्तलिखित ग्रंथों को मेरे लिये सुलभ कर दिया था। शोध-कार्य सहायता के लिये डॉ० रामसिंह एम० ए०, पी-एच० डी० तथा श्री भैरवदत्त शुक्ल एम० ए० धन्यवाद के पात्र हैं।

पुस्तक का प्रकाशन श्री तेजनारायण टंडन ने जिस लगन और तत्परता से किया उसके लिये मै उन्हें भी धन्यवाद देना नहीं भूल सकती। ग्रंथ में यत्र-तत्र, घ ध,

भ, म, ड ड़, का मुद्रण अस्पष्ट है। पुस्तक में मुद्रण की कुछ अन्य अशुद्धियाँ भी रह गई हैं। निवेदन है कि विद्वद्जन पुस्तक के अन्त में संलग्न शुद्धि-पत्र के अनुसार उसे सुधार लेने की कृपा करें। विश्वास है कि हिन्दी-जगत मेरी इस कृति का समादर करेगा और मेरा श्रम सफल होगा।

पौष सुदी सप्तमी, सं० २०२२ वि०,
जनवरी १०, १९६५ ई०।

(कु०) प्रसिन्नी सहगल

विषय-सूची

तृतीय अध्याय

चतुर्थ अध्याय

पंचम अध्याय

खंड २

प्रथम अध्याय

युग-परिस्थितियाँ

इतिहास एक आलोक स्तम्भ है। कोई भी देश और जाति गौरवमय इतिहास के बिना निष्प्राण समझी जाती है। अतीत के पर्यवेक्षण और भविष्य के आशामय चित्राकन करने में इतिहास ही सहायक होता है। इसी दृष्टि से साहित्य का भी महत्व कम नहीं। वह युग का वाहक होने के साथ ही युग को परिवर्तित करने की सबल क्षमता भी रखता है। विभिन्न परिस्थितियों से प्रभावित होकर अधिकाशतः वह देश और समाज पर व्यापक प्रभाव डालता है। इसीलिये उसे समाज का दर्पण कहा जाता है। समय की मंदगति के साथ थिरकने की शक्ति और क्षमता के प्रभूत बल पर वह अपना रूप, आकार भी बदलता चलता है। यही कारण है कि साहित्य-सर्जक कवि और लेखक के रूप मे एक ओर देश और समाज से अनुप्राणित होता है और दूसरी ओर अपने व्यक्तित्व एवं कृतियों से तत्कालीन देश और समाज को नये साँचे मे ढालने का भी प्रयत्न करता है।

उपर्युक्त दृष्टियो से किसी भी कवि या लेखक के विषय मे जानकारी प्राप्त करने के लिये तद्युगीन परिवेश का पर्यवेक्षण आवश्यक होता है। बाह्य हलचल ही चेतना की प्रसुप्त शक्तियों को जाग्रत एवं उत्तेजित करती है। मानव मस्तिष्क तत्कालीन परिस्थितियो के राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक और साहित्यिक स्वरूपों का समीचीन अध्ययन करके, प्रस्तुत समस्याओ के निदान खोजने के प्रयास करता है। सिक्खो के दसवे गुरु गोविन्द सिंह का व्यक्तित्व और कृतित्व भी तद्‌युगीन परिवेश से न केवल निर्मित एवं प्रभावित है वरन् उसमें नये मोड देने मे भी समर्थ हुआ है। अतएव इन परिस्थितियो का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है।

राजनीतिक परिस्थिति

सोलहवी शताब्दी मे भारतवर्ष अनेक राजनीतिक इकाइयों में विभक्त हो चुका था। बेहरे से बिहार तक अफगान राज्य, पूर्व भारत मे बंगाल और जौनपुर के राज्य, मध्यभारत में मालवा और गुजरात राज्य, पाँचो ही मुसलमानी शासकों के अधीन थे। केवल विजयनगर और चित्तौर ही हिन्दू शासन के नियंत्रण में थे। विजयनगर का राज्य कम शक्तिशाली नही था, और चित्तौर का राणा सांगा शौर्य और वैभव में

अद्वितीय था। उसके राज्य की वार्षिक आय दस करोड़ से अधिक थी।[१] उस युग मे हिन्दू और मुसलमानो के पारस्परिक संघर्ष का ही प्राधान्य था। आरम्भ मे मुसलमान केवल धन-वैभव की चकाचौंध से आकर्षित होकर ही भारत मे आये थे और उनका मुख्य उद्देश्य लूट-मार कर धनी बन जाना भर था। किन्तु धीरे-धीरे हिन्दुओ के आतरिक मनोमालिन्य, कलहजन्य दौर्बल्य और अनैक्य से लाभ उठाकर उन्होने अपने राज्य भी स्थापित किये। हिन्दुओ का धन-वैभव, राज्य-गौरव और आधिपत्य भी मुसलमानो के हाथो मे आ गया। बहुसख्यक होते हुए भी सहिष्णुता के अतिवाद, जाति-पाँति, ऊँच-नीच की अतिशयता, पारस्परिक संघर्ष एव मत विरोध के आधिक्य, राष्ट्रीय नेतृत्व के अभाव आदि अवगुणो के कारण अशक्त एवं पंगु स्थिति मे वे राज-सिहासनो से अपदस्थ हुए और उनका अधिकाश राज्य-क्षेत्र मुसलमानों के झंडे के नीचे आ गया।

सिक्ख धर्म के संस्थापक गुरु नानकदेव का आविर्भाव मुगल शासक बाबर के राज्यकाल मे हुआ था। उनके रचित 'गुरु ग्रंथसाहिब मे' उस काल की स्थिति का यथार्थ वर्णन हुआ है – तत्कालीन राजा सिंह के समान और उनके कर्मचारी श्वानवत् असहाय प्रजा का रक्त शोषण कर रहे थे। कलियुग 'क्षुर' वत् और राजा 'कसाई' सदृश घातक और निर्मम हो गया था। वास्तविक धर्म ऐसा विलुप्त हो गया था मानो पखो के सहारे उड़ गया हो। असत्यरूपी अमा का गहन तिमिर आच्छादित था और सत्य चन्द्रसदृश यदा कदा ही दृष्टिगोचर होता था अर्थात् सत्याचरण प्रायः समाप्त हो चला था।[२] इससे अधिक तद्युगीन परिस्थिति का स्पष्ट चित्रण हो ही क्या सकता है ? स्पष्ट प्रतीत होता है कि वह युग रक्तपात और आतंकपूर्ण साम्राज्य का था।[३] जनता का कोई भी रक्षक न था। कृषको का श्रमसिचित अन्न हिसक लुटेरे सदृश शासको की खत्तियो मे पहुँच जाता था।

---

१. भारतवर्ष का इतिहास, डा० ईश्वरी प्रसाद, पृ० १०. १९

२. कलि काती, राजे कसाई धर्म पंखु करि उडरिया।
कुड़ु अमावस, सचु चन्द्रमा दीसै नाही, कह चड़िया ॥
हड भाल विकुँनी होई, आधैरै राहु न कोई।
विचि हऊमै करि दुख रोई। कहु नानक किनी विधि गति होई ॥

श्री गुरु ग्रंथसाहिब, वार माझ की महला १, पृष्ठ १४५

3. Guru Nanak had political ideals in some of his hymns wherein he deplores the barbarities practised by Baber's soldiers in connection with the capture of Sayyidpirs and the inhumanities perpetrated by the Muhammadan rulers of the day
Evolution of the Khalsa, Indu Bhushan Mukerji, page 9,

गुरु नानक के बाद क्रमशः गुरु अमरदास, गुरु रामदास और गुरु अर्जुनदेव, गुरु हरगोविन्द, गुरु हरिराय और गुरु तेगबहादुर का जीवनकाल और मुगल-साम्राज्य का विस्तार समानान्तर चल रहा था। इनमें से कई गुरुओं ने तो राजनीतिक कलह-कोलाहल से दूर केवल शान्तिपूर्ण उपदेशों का आश्रय लेकर लोगो को सत्य मार्ग की ओर प्रेरित किया। किन्तु बाद मे आनेवाले गुरुओ को अपनी शाति एवं धार्मिक साधना के साथ-साथ परिस्थिति की विवशतावश राजनीतिक हलचल मे भाग लेना पड़ा। सिक्ख मतानुयायियों की संख्या वृद्धि के कारण कुछ नगर बसाने पडे जिनमें करतारपुर, अमृतसर, गोविन्दवाल उल्लेखनीय हैं। प्रारम्भ मे गुरु रामदास ने अमृतसर मे केवल एक कुटिया ही बनाई थी किन्तु बाद में तत्कालीन मुगल शासक अकबर से उन्हे पाँच सौ बीघे भूमि मिली। गुरु रामदास के प्रति सम्राट अकबर का मैत्री भाव देखकर अन्य पहाड़ी राजाओ ने भी धन देकर उन्हे नगर बसाने मे सहायता की।[1] एक बार गुरु रामदास की इच्छा से अकबर ने जमीदारों से कर लेना भी बंद कर दिया था जिसका परिणाम यह हुआ कि कर-मुक्त सभी कृषक परिवार गुरु जी के अनुयायी बन गए।[2] धीरे-धीरे पंजाब में पेशावर से लेकर देहली तक सिक्खो का प्रभाव-विस्तार हो गया। इस बढती शक्ति से पहाडी राजा सिक्खों की ओर कुछ आकृष्ट हुए। परन्तु राजनीति कभी स्थिर नहीं रहती। पहाड़ी राजाओं मे दीवान चंदूशाह अपनी पुत्री का विवाह गुरु अर्जुनदेव के पुत्र हरिराय के साथ करना चाहता था। कारणवश यह संबंध गुरु जी स्वीकार न कर सके। इससे वह गुरु जी का न केवल भयंकर शत्रु बन गया वरन् उसने सम्राट अकबर के कान भरने के अथक प्रयास किये। यह तो अकबर की विवेकशीलता थी कि उस पर किसी प्रकार का भी प्रभाव न पड़ा और सिक्खों एवं मुगलों का मैत्री-भाव बना रहा। किन्तु अकबर की मृत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारी जहाँगीर ने प्रतिहिंसा की भावना से प्रेरित होकर, गुरु अर्जुनदेव पर खुसरो की सहायता करने के बहाने से राजद्रोह का आरोप लगाकर उनपर हृदयविदारक अत्याचार किये और १६०६ ई० में उनका वध करा दिया।[3]

सिक्ख पंथ का अभ्युदय दो रूपों मे माना जा सकता है। गुरु नानक से लेकर गुरु अर्जुनदेव तक यह बिल्कुल निस्पृह धार्मिक सम्प्रदाय के रूप मे था। उसका इस्लाम धर्म अथवा मुगल शासक से कोई सक्रिय विरोध नहीं था। यह स्थिति

1. Transformation of Sikhism, P. 156
   The Sikh religion, Vol V, P. 28.
2. Transformation of sikhism, Page 101.
३. भारतवर्ष का इतिहास, भाग २, डा० ईश्वरी प्रसाद, पृ० ११४
   दि सिक्ख रेलिजन, वाल्यूम ५, पृष्ठ ३०९

१६०४ ई० तक कही जा सकती है। किन्तु १६०५ ई० के अनन्तर जहाँगीर के द्वारा गुरु अर्जुनदेव की हत्या ने परिस्थिति मे परिवर्तन ला दिया।[1] आरम्भ में सिक्खो के छठे गुरु हरगोविन्द के साथ जहाँगीर ने मित्रतापूर्ण व्यवहार किया और उन्हें अपने साथ काश्मीर भी ले गया। परन्तु गुरु हरगोविन्द को जहाँगीर के अधीन रहना अखरता था। वे स्वच्छन्द प्रकृति के थे और उनमे पिता की प्रतिहिसा की भावना उद्वेलित होती रहती थी। परिणामस्वरूप उन्होने एक छोटी सेना तैयार कर ली जिसका कार्य शस्त्र धारण करना और धर्म के विरोधियो से मोर्चा लेना था। स्वयं जहाँगीर ने उन्हे ७०० घोडे और पाँच बन्दूक रखने का अधिकार दे रखा था। उनके पास ८०० घोडे, ३०० घुड़सवार एवं आठ अंगरक्षक थे।[2] उन्होने पंजाब में जहाँगीर की सहायता भी की और सक्रिय रूप से मुगल शासक से उनका कोई विरोध नहीं था।

अकबर और जहाँगीर का शासनकाल सुख और समृद्धि का समय था। सारे देश की प्रजा धर्म, सम्प्रदाय, मत-मतान्तर की दृष्टि से अनेक विभागों मे विभाजित होने पर भी राज्य की दृष्टि मे विशेष पक्षपात की भागी नही समझी जाती थी। आगे चलकर शाहजहाँ का काल अनेक दृष्टियों से वैभवपूर्ण स्वर्णयुग होते हुए भी मुगल साम्राज्य की सुख और शान्ति के लिये पूर्णरूपेण अस्वास्थ्यकर ही सिद्ध हुआ जिसका कारण उसकी धार्मिक नीति थी। मनुष्य के प्रति प्रेम का जो दिव्य सन्देश गुरु नानक ने दिया और जिसका अनुसरण उनके अनुयायी निरन्तर करते आ रहे थे, शाहजहाँ ने उन्हें भी आत्मरक्षा के लिये चिन्तित कर दिया। हिन्दुओ का नेतृत्व जो सिख गुरुओं से मिला उससे मुगल सम्राट उन्हे सन्देहपूर्ण दृष्टि से देखने लगे थे। फलतः अत्याचार और हत्याओ का तॉता लग गया। अकबर ने जिन नीतियो का अनुसरण किया था उसके उत्तराधिकारी कुछ ही वर्षों में उससे दूर जा पडे। मुगलों की राजनीतिक अखडता के स्वप्न टूटने लगे। जहाँगीर की विलासिता और शाहजहाँ की अपव्ययता ने मुगल साम्राज्य की नीव खोखली कर दी।

सिक्खों के सातवे गुरु हरिराय यद्यपि शान्त प्रकृति के थे किन्तु उनके पास भी २००० सैनिक बराबर रहते थे। उन्होंने दारा शिकोह को पंजाब में औरंगजेब के

---

1. In tracing the history of the transformation of sikhism we can discern two distinct stages of development From the days of Guru Nanak down to the year 1604, when the compilation of the Granth Sahib was completed, the moment ran on peaceful lines.
   Evolution of the Khalsa, Vol. I, Page 3.
2. History of the Sikhs, Cunnigham. P. 52

विरुद्ध सहायता दी। गुरु हरिकृष्ण के अनन्तर नवे गुरु तेगबहादुर हुए जिन्हें १६६४ ई० मे बकाला में गुरु गद्दी प्राप्त हुई। वे जयपुर के राजा के साथ आसाम गये और उनकी सहायता से जयपुर के राजा ने आसाम के राजा को पराजित किया। तत्पश्चात पंजाब में आकर गुरु तेगबहादुर ने कोहलूर के राजा से कुछ भूमि खरोद कर मखोवाल नाम का नया नगर बसाया। उनमें देशप्रेम और मानव कल्याण की भावना कूट-कूट कर भरी थी। राजपूत और मराठों के साथ मुगल शासक के संघर्ष के कारण सिक्खों को अपनी शक्ति बढ़ाने का अच्छा अवसर मिल गया। औरंगजेब के शासन-काल मे हिन्दू-विरोधी नीति चरमावस्था को पहुँच गई थी। गुरु तेग-बहादुर को हिन्दुओं की रक्षा अपने प्राणो की आहुति देकर करनी पड़ी। उनके इस बलिदान का सम्यक् उल्लेख मिलता है।[१] हिन्दू धर्म की रक्षा के लिये उनके इस बलिदान का प्रभाव सिक्खो पर अत्यधिक पड़ा और उनके हृदय मे इस्लाम धर्म और मुगल शासन के प्रति घृणा उत्पन्न हो गई। हिन्दू जाति की क्षात्र शक्ति समय-समय पर अपने गौरव का परिचय विभिन्न रूपो में दे चुकी थी। औरंगजेब की संकुचित मनोवृत्ति के कारण वह पुनः देश के पृथक्-पृथक् स्थानों से उमड़ पड़ी। उत्तरी भारत के पश्चिमी भाग की जनता अपने समाज की सबसे अधिक जाग्रत सिक्ख जाति के नेतृत्व की प्रतीक्षा कर रही थी। शासको के अत्याचारो से पीड़ित होकर प्रतिकार के लिये शस्त्र उठाना युग की एक मात्र मॉग थी।

सिख पंथ की रूपरेखा जैसा कि पहले उल्लेख हो चुका है गुरु हरिराय के समय से बदलने लगी थी। उन्होने उसे जो सैनिक आवरण देना आरम्भ किया था उसका पूर्ण विकास गुरु गोविन्द सिंह के समय में हुआ। उन्होने खालसा की स्थापना करके एक नवीन मार्ग का निर्देशन किया। अतएव यह स्पष्ट हो जाता है कि उस भयावह राजनीतिक स्थिति मे जब हिन्दू-मुसलमानो के पारस्परिक प्रेम की जड़ें खोखली हो चुकी थी, मुसलमान शासको के बर्बर अत्याचारो और अनाचारो से सारा भारतवर्ष त्राहि-त्राहि पुकारने लगा था, देश का अधिकाश समुदाय असह्य करो एवं दुखद दमन-चक्रो मे फंसा हुआ था, शासक रक्षक के स्थान पर भक्षक बन गये थे, राजनीतिक जीवन को कट्टर मुल्ला-मौलवियो की शरीअतो के आधार पर संकीर्णता का शिकार बनाया जा रहा था, तर्क और विवेक सर्वथा के लिये लुप्त

---

१. ठीकरि फोरि दिलीस सिरी प्रभु पर किया पयान।
तेगबहादुर सी क्रिया करी न किनहु आन॥
तेगबहादुर के चलत भयो जगत को सोक॥
है है है सभ जग भयो जै जै जै सुर लोक॥

विचित्र नाटक, पृष्ठ ५४

हो चला था और हिन्दुओं की आत्मरक्षा का प्रश्न अनिवार्य बन गया था, गुरु गोविन्द सिंह जी द्वारा खालसा वर्ग का तैयार हो जाना कोई आश्चर्यजनक घटना न थी।

ऐसी परिस्थिति मे दशमेश जी का हिन्दुओ को वीर बनाने का उद्देश्य अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाता है।[1] जैसाकि अगले अध्यायो मे सविस्तार बताने का प्रयत्न किया गया हैं, दशमेश जी के सारे राजनीतिक क्रिया-कलाप उनकी इच्छा के नही, युग-जन्य विवशता के प्रतीक थे। वे चाहे औरंगजेब का विरोध करते हो, चाहे पहाड़ी राजाओ को संघटित करने का प्रयत्न, चाहे खालसा वीरों की सुदृढ़ रक्षा सेना तैयार करते हो, चाहे युद्ध में मुगल सेना के छक्के छुडाते हों, चाहे गौ-ब्राह्मणों, धर्म-मर्यादाओं की रक्षा करके हिन्दुओं में राजनीतिक जागृति का बीज बोते हों, चाहे रूढिवादी इस्लामी बर्बरताओ का प्रबल प्रतिशोध, सर्वत्र उस युग की परिवर्तित राज-नीतिक स्थिति का व्यापक प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है।

साथ ही राजनीतिक परियोजना मे पठानों को अपनी सेना मे भरती करना, पहाडी हिन्दू-राजाओं से भयंकर युद्ध करना, औरंगजेब को अत्याचारों एवं भेदभावजन्य अनाचारो से विरत करने का प्रयत्न करना, कहीं भी इस्लाम मतानुयायियों पर व्यर्थ अत्याचार न होने देना आदि विशेषताओं का परिगणन, हिन्दू-मुसलमान-भेद जन्य मनोमालिन्य कम करके शासक-शासित, अत्याचारी-आर्त, घृणाकर्ता-घृण्य आदि के बिगडे संबंधो को सुस्थापित करना था।

दशमेश जी की राजनीतिक कार्य- प्रणाली एवं संचालिका शक्ति मे अपना सर्वस्व त्याग करने की बलवती दृढता, पुत्रो के बलि हो जाने पर भी सहनशीलता की स्थिरता, अपने आयुधों से मुगलों का संहार करने की प्रबल शक्तिमत्ता, वैरियों के आघात सहन करने की क्षमता सभी मे राजनीतिक दमन के विरोध की ही झलक दिखाई पड़ती है।

जैसा कि इतिहासकारों के कथन से सिद्ध होता है औरंगजेब ने साम्राज्य छल, कपट मिश्रित अनैतिक उपायों से हस्तगत किया था। इससे उसका अतःकरण अविश्वास से परिपूर्ण हो गया था। इसी कारण उसक सेवक और कर्मचारी उससे

---

1. The object was to infuse a new life into the dead bones of the Hindus, to make them to forget their differences and present a united front against the tyranny and persecution to which they were exposed in one world. To make once more a living nation of them and enable them to regain their independence

 Transformation of Sikhism, page 128

निराश होकर एकनिष्ठ रूप से उसकी सेवा न कर सके।'[1] यद्यपि औरंगजेब के साम्राज्य की सीमाएँ अत्यधिक विस्तृत हो चुकी थीं, पर उसकी संकीर्णता एवं संशयग्रस्तता के आधिक्य ने जनमानस को विमुख बना लिया था। साथ ही इतने विशाल साम्राज्य की व्यवस्था करना सरल नही था। अपने अविश्वासी स्वभाव के कारण ही वह अपने शाहजादों को उचित शिक्षा न दे सका। निरंतर युद्धों और संघर्षों के कारण राज्यकोष भी खाली हो गया। असुरक्षा, अशांति, अव्यवस्था एवं अस्तव्यस्तता के कारण राजनीतिक धुरी जीर्ण होती गई और औरंगजेब की आँखे मुँदते ही उसके शाहजादो में राज्य-सिंहासन के लिये इतिहास की पुनरावृत्ति के रूप मे पारस्परिक रक्तपात की स्थिति आ गई।

इन सभी मुगल शासन की दुर्बलताओं ने दशमेश जी के कार्यों को राजनीतिक चरण की ओर भी सुदृढ़ किया। यदि यह राजनीतिक दुर्व्यवस्था न होती तो संभवतः गुरु गोविन्दसिंह की राजनीतिक, सामाजिक और साहित्यिक स्थिति कुछ और ही होती।

इस प्रकार साराश मे यह कहना अनुचित न होगा कि मुगल सम्राटो की अदूरदर्शिता, धर्मान्धतापूर्ण राजनीतिक संकीर्णता और कटुता पर आधारित विभेदपर शासन नीति ने उस वर्ग को जो केवल धार्मिक ईश्वर परलोक की समस्याओ और हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य को ही पल्लवित-पुष्पित कर रहा था, गुरु गोविन्दसिह के नेतृत्व मे एक सुसंघटित राजनीतिक सैनिक समुदाय मे परिवर्तित कर दिया। कालान्तर मे यही समुदाय पंजाब का शासकवर्ग ही नही मुगलो के पतन एवं विनाश का मूल कारण बना।

धार्मिक परिस्थिति

वेदो में एक ही तत्त्व परब्रह्म को विभिन्न नामों से स्मरण किया गया था। सूर्य, अग्नि, इन्द्र आदि सभी नाम केवल उस प्रकाशस्वरूप ईश्वर के लिए प्रयुक्त हुए थे। उनमे ईश्वर, जीव, प्रकृति, विषयक तर्कसम्मत ऊहापोह करके धर्म की व्यापक व्याख्या की गई थी। ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदो के युग तक, आर्यों की धार्मिक स्थिति मे यज्ञों का प्रमुख स्थान रहा किन्तु जब धीरे-धीरे वर्णाश्रम व्यवस्था मे परिवर्तित हुआ,

---

१ Aurangzeb ever feared the influence of his own example, his temper was cold, his policy towards Muhammadans was one of suspicion, while his bigotry and persecutions rendered him hateful to his Hindu subjects In his old age his wearied spirit could find no solace, no tribe of brave and confiding men gathered round him,

History of the Sikhs. Cunningham, page 67.

कर्मकाड के जटिल जाल बढ़े और पौराणिक युग मे मनगढन्त व्यवस्थाएँ करके नये-नये देवो को स्थान दिया जाने लगा, तो धर्म का वास्तविक स्वरूप विकृत होने लगा। यज्ञो मे पशु-बलि प्रारम्भ हुई, स्त्रियो और शूद्रो को वेद-शास्त्र के अध्ययन से अलग रखा गया और धीरे-धीरे तरह-तरह के मत-सिद्धान्त धार्मिक जगत मे उठ खडे हुए।

पुराणो मे विष्णु, शिव और शक्ति को लेकर देवो के महत्ता-विषयक विविध मत स्थिर किये गये। कही विष्णु प्रधान, शिव और शक्ति गौण हो गये, कहीं शिव प्रधान विष्णु और शक्ति का महत्व कम हो गया तो कहीं शक्ति के प्राधान्य के आगे शिव और विष्णु को झुकना पडा अर्थात् आगे प्रचलित होने वाले विविध मतो और संप्रदायो के बीज वैदिक धर्म के ह्रास मे छिपे हुए थे।

वैदिक धर्म के ह्रास होने पर व्याप्त यज्ञ-परक हिंसा के विरोध मे जैन और बौद्ध धर्मों का प्रादुर्भाव हुआ। प्रतिक्रिया की अधिकता के कारण दोनो धर्मों के मानने वाले अपने को वेद-विरोधी कहने मे गौरव का अनुभव करते थे। इन दोनो धर्मों में मूलभूत विशेषता यह थी कि यह जन-जीवन के अत्यधिक निकट थे और तद्‌युगीन जन भाषा का माध्यम लेकर चले थे। जहाँ इन दोनों धर्मों मे अहिंसा पर सर्वाधिक बल दिया गया था जिसके परिणामस्वरूप इनमे राष्ट्र-निर्माणपरक धर्म की सर्वांगीणता का अभाव हो चला था।

कालान्तर में इन धर्मों में भी रूढियो और कर्मकाडों का व्यापक प्रभाव हो चला, इनके विहार और चैत्य व्यभिचार-अनाचार के अड्डे बन गये, उनके श्रमण और भिक्षु लोग राजनीतिक दुरभिसंधियो और अनाचारों के शिकार बन चले। इनमे पारस्परिक द्वेष भी बढा।

मुसलमानो के आक्रमण के पूर्व भारतवर्ष की धार्मिक स्थिति मतभेदो से परिपूर्ण थी। हिन्दुओ के विभिन्न सम्प्रदाय बढते जा रहे थे। सभी सम्प्रदायो के मुख्य दो भेद थे—वेदसम्मत सम्प्रदाय और वेद विरोधी सम्प्रदाय। पहले ही इंगित किया जा चुका है कि वेद विरोधी संप्रदायो मे बौद्ध और जैन प्रमुख थे। जब इनमे भी मतभेद पैदा हुए तो ये कई शाखाओं में बँट गये जिनके धार्मिक विश्वासों और व्यवहारो मे काफी अंतर हो गया। बौद्ध धर्म की दो मुख्य शाखाएँ—हीनयान और महायान हो गई और उनकी उपासना-विधि मे भी अन्तर हो गया। विहारों मे विलासिता, मतभेद, अन्धविश्वास आदि दुर्गुणो के कारण बौद्ध धर्म जनता का धर्म न रहकर केवल एक सम्प्रदाय तक ही सीमित हो गया। महात्मा बुद्ध की अहिंसात्मक शिक्षा क्षत्रियों के लिये अरुचिकर थी। इस कारण बौद्ध धर्म में विकृति आई और हिन्दू धर्म का पुनरुत्थान हुआ।[1]

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ ११

हीनयान और महायान शाखाओ मे से ही पुनः वज्रयान और सहजयान की शाखाएँ फूट निकलीं। वज्रयान के आचार्यों ने हठयोग को अपनाया। उनमे 'महासुख-वाद' की प्रतिष्ठा हुई। उपनिषदो मे ब्रह्मानन्द को विषयानन्द से सौ गुना माना है किन्तु इन्होने इस आनंद को सहवास के आनन्द के समान ही मान लिया था। इस धर्म को मानने वाले चौरासी योगी थे जो सिद्धो के नाम से प्रचलित हुए। इन सिद्धों ने वाममार्ग पर चलने का आदेश दिया और अन्तरसाधना पर बल दिया। तीर्थाटन, पर्व, व्रत, पूजा आदि बाह्य विधानों को निस्सार बताया। मास, मदिरा आदि पंच मकारों का सेवन इनकी धर्म-साधना का आवश्यक अंग था। वे जनता मे क्षणिक चमत्कार दिखाकर व्यभिचार, अनाचार फैलाते और वेदो, ब्राह्मणो की निन्दा करते थे।

इन वाममार्गी सिद्धो मे भी कई प्रकार की कोटियॉ थी। कुछ ने तो तात्रिक प्रक्रियाओ के माध्यम से शिव, भैरव, योगिनी, मुद्रा आदि विविध चमत्कारो से जनता को आतंकित किया, कुछ ने शक्ति को ही आराध्या मान कर उसीको महिष, नर आदि की बलि देकर अपने मारण, उच्चाटन, वशीकरण आदि विभिन्न अभिचारो से प्रभाव को बढ़ाने लगे और कुछ ने शिव और शक्ति दोनो को समान पद दिया और अपनी हिसा-पूर्ण क्रियाएँ संचालित करने मे जुट गये।

इष्ट देवो के अंतर को ध्यान मे रखकर इन वामाचारियो को शाक्त, तात्रिक और कापालिक आदि नामो से अभिहित किया गया। संभवतः इनके सभी धार्मिक अनुष्ठानो मे हिंसा का प्राबल्य बौद्धमत की अहिसा के अतिवाद की प्रतिक्रियास्वरूप था। नीच चाडाली, धोबिन, तेलिन आदि को महामुद्रा का पद देने के मूल मे वर्ण-व्यवस्था की जटिलता का विरोध था और पंच मकारो पर अधिक बल देना संभवतः नैतिक मान्य-ताओ के कठोर रूप की प्रतिक्रियास्वरूप था।

कुछ भी हो, इन वामाचारियो का प्रभाव स्थिर न रहा और धीरे-धीरे नाथ आदि सात्विक संप्रदाय उठ खडे हुए। चौरासी सिद्धो मे गोरक्षपा भी एक सिद्ध हुए जिन्होने व्यभिचार को त्यागने और संयम को अपनाने पर अधिक बल दिया। ये ही नाथ-संप्रदाय के प्रवर्तक थे। नाथ सम्प्रदाय के कनकटे रमते योगी घट के भीतर के चक्रो सहस्रदल, कमल, इला, पिगला नाड़ियो इत्यादि की ओर संकेत करने वाली रहस्यमयी बानियॉ सुनाकर और चमत्कार दिखाकर अपनी सिद्धई की धाक सामान्य जनता पर जमाए हुए थे।[१] सिद्ध नाथों मे निराकार ब्रह्म का ज्योतिदर्शन, अनहदनाद-श्रवण, कुंडलिनी शक्ति-जागरण, एवं योग की समाधि-अवस्था का साधनानन्द प्रमुख महत्त्व रखता हैं। ये पातंजल योगदर्शन के आधार पर विकसित सम्प्रदाय था जो पूर्ववर्ती

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ ५९
ट्रांसफार्मेशन आफ सिखिज्म, पृष्ठ ३२, ३४

परम्परा से पोषित है। इस धर्म का ह्रास भी धीरे-धीरे होने लगा क्योंकि इनकी वाणी का पहेली के रूप मे होने के कारण साधारण जनता के लिये समझना असम्भव था। इन सम्प्रदायों से प्रभावित होकर जनता सत्यमार्ग त्याग कर, जंत्र-मंत्र मे उलझने लगी और कर्मक्षेत्र से दूर हो गई। इसके अतिरिक्त वज्रयानियों और सिद्धो मे पारस्परिक विरोध था क्योकि नाथपंथी व्यभिचार से रहित और संयम पर आश्रित थे। नाथ-पंथियो के प्रभाव से जनता के हृदय में भक्ति की सच्ची भावना दब चुकी थी। उस समय कुछ भक्तकवियो ने दबी हुई ईश्वर-भक्ति मे जनता को लीन करने का प्रयत्न किया।

यह पहले कहा जा चुका है कि मुसलमानों के आगमन के पूर्व भारतवर्ष से सत्य-धर्म का प्रायः लोप हो चुका था। अकबर के पूर्व मुसलमानो के जो आक्रमण हुए थे उनमे मूर्त्तियो के खंडन, अनेक अनाचार तथा अत्याचार, धर्म-विपर्यय आदि के दृश्यो ने जनता का विश्वास मूर्तिपूजा से हटा दिया था और उनके हृदय मे ईश्वरीय अवतारवाद के विरुद्ध भावना उत्पन्न हो गई। उन्हे विश्वास हो गया था कि जो मूर्तियों यवनों से अपनी रक्षा नही कर सकी वे उनकी रक्षा क्या करेगी? इसके अतिरिक्त जाति-भेद पाखंड की अधिकता से भी वह निराश हो चुकी थी। मुगलों के पूर्व यवनो का राज्य इस्लाम धर्म की नीव पर स्थित था। उनका उद्देश्य भारत में राज्यविस्तार के साथ-साथ इस्लाम-धर्म का प्रचार करना भी था। वे एकेश्वरवाद के समर्थक और मूर्तिपूजा के विरोधी थे। हिन्दू धर्म मे प्रचलित अन्धविश्वास, छूआछूत ने अनेक हिन्दुओं को इस्लाम-धर्म स्वीकार करने के लिये बाध्य कर दिया। इसके अतिरिक्त यह विजयिनी सत्ता का धर्म था, इसलिये भी इसका प्रचार अधिक हुआ। यवनो ने प्रलोभन और तलवार की शक्ति द्वारा हिन्दुओ को इस्लाम-धर्म ग्रहण करने के लिये विवश कर दिया। प्रत्येक इस्लाम-धर्मावलम्बी ऐसा करना अपना पुण्य-कर्त्तव्य भी समझता था।[1] ऐसे ही समय मे सन्त मत का उदय हुआ। यह परिस्थिति निराकार ईश्वरोपासना के बिलकुल अनुकूल भी थी। संतमत के प्रवर्तक कबीर, नानक, नामदेव, दादू आदि महात्मा हुए। इन सन्तो के द्वारा हिन्दू और मुसलमान दोनों की सद्भावनाओ का विश्लेषण हुआ। सब सन्तों का एक ही उद्देश्य था अपने उपदेशों द्वारा पददलित और अस्पृश्य जातियों का उद्धार करना और जनता के सम्मुख ज्ञान और प्रेम से उद्भूत निर्गुणोपासना का एक नया दृष्टिकोण रखना।[2]

---

1 Islamic theology tells the true believer that his highest duty is to make exertion in the path of God by waging war against infidel lands till they become a part of the realm of the Islam and their population are converted into true believers.

History of Aurangzeb, J N. Sarkar, Vol. III, P. 249.

2. Theism in Mediaeval India, p. 488

पंद्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में प्रतिक्रिया की भावना बड़े वेग से फैली। सुधारको का एक ऐसा दल सामने आया जिसने धार्मिक, सामाजिक क्षेत्र में सुधार करने का प्रयत्न किया। कनिंघम ने उल्लेख किया है कि सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ में हिन्दू-मस्तिष्क प्रगतिहीन और स्थिर न रह सका। मुसलमानो के संसर्ग से प्रेरित होकर युगानुकूल परिवर्तन के लिये वह उद्वेलित हो उठा।[1] स्वामी रामानन्द और गोरखनाथ ने धार्मिक एकता का उपदेश दिया, चैतन्य महाप्रभू ने ऐसे धर्म का प्रतिपादन किया जिससे जातियाँ सामान्य स्तर पर आई। कबीर ने मूर्तिपूजा का निषेध किया और अपना सन्देश जनसाधारण के हेतु लोकभाषा में सुनाया तथा स्वामी वल्लभाचार्य ने अपनी शिक्षाओं में भक्ति और धर्म का सामंजस्य स्थापित किया। परन्तु उस युग के प्रतिष्ठित आचार्य जीवन की क्षणभंगुरता से इतने अधिक प्रभावित थे कि उनकी दृष्टि मे समाजोद्धार का दृष्टिकोण नगण्य-सा था। उसके प्रचार का लक्ष्य केवल ब्राह्मणवर्ग के प्रभुत्व से मुक्त करना, मूर्तिपूजा और बहुदेव की स्थूलता प्रदर्शित करना मात्र ही था। उन्होने अपने मतो मे तर्क-वितर्क, वाद-विवाद पर तो विशेष बल दिया परन्तु ऐसे उपदेश न दे सके जिनसे सारे राष्ट्र का निर्माण हो सकता। यही कारण है कि उनके सम्प्रदाय विकसित न हो सके और जहाँ के तहाँ ही रह गये।[2]

पहले कहा जा चुका है कि उस समय की परिस्थितियो ने हिन्दुओं को अपना धर्मपरिवर्तन करने के लिये विवश कर दिया था। मुसलमानों के अत्याचारो से जनता इतनी पीड़ित हो चुकी थी कि उसे अपने जीवन की आशा ही नहीं रह गई थी। अतएव महात्मा कबीर और गुरु नानक ने पीड़ित जनता को शान्ति प्रदान करने के लिये पूर्व उल्लिखित सन्तमत की परम्परा मे ज्ञानाश्रित निर्गुणभक्ति का आश्रय लिया क्योंकि यह मत इस्लामधर्म से मिलता-जुलता था। यद्यपि इसमे उन्हे भी पूरी सफलता प्राप्त न हो सकी; तथापि उन्होंने सूर और तुलसी के सगुणपन्थ के लिये मार्ग परिष्कृत कर दिया।

एक ओर कबीर, गुरुनानक आदि का निर्गुणवाद लोगो को प्रभावित कर रहा था, दूसरी ओर सूफी महात्माओ का आविर्भाव हुआ। उन सूफी-सन्तो ने हिन्दू-मुसलमानों के हृदय मे स्नेह का भाव जाग्रत किया। उन्होने भारतीय जीवन से

---

1 Thus in the beginning of the sixteenth century, the Hindu mind was no longer stagnentor retrogressive, it had been learned with Muhamadanism and changed and quickened for a new development.

History of the Sikhs, Cunningham, P 34

2, Ibid, p 34

संबधित, भारतीय पात्रों से युक्त कथानको को चुनकर प्रेमाभक्ति के समन्वय से अपने भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति की। इन सूफी सन्तो का प्रभाव केवल उच्च वर्गों और अधिकारी लोगो पर ही पडा। जनसाधारण का उससे कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। निर्गुणपंथ के प्रवर्तक कबीरदास ने भारतीय अद्वैतवाद की कुछ स्थूल बातों, योगियों एवं सूफी फकीरो के संस्कार और वैष्णवो से अहिसावाद को ग्रहण किया। अतएव उनके वचनो में कही भारतीय अद्वैतवाद की, कही योगियों के नाड़ी-चक्र की, कही सूफियो के प्रेम-तत्त्व की, कही पैगम्बरी कट्टर खुदावाद और कहीं अहिसा-वाद की झलक मिलती है।[1] उन्होने बहुदेवोपासना, अवतारवाद, मूर्तिपूजा, हिसा, नमाज, रोजा, तीर्थ, व्रत की असारता का खडन किया। उनका उद्देश्य शुद्ध ईश्वर-प्रेम और सात्त्विक जीवन का प्रचार करना था। उन्होंने परमात्मा की एकता के आधार पर ही, मनुष्यो की एकता का प्रतिपादन किया। इस धर्म ने साधारण लोगों को अधिक प्रभावित किया। नामदेव दर्जी, रैदास चमार, दादू धुनिया और कबीर स्वयं जुलाहा, सभी निम्न श्रेणी के ही थे।[2] स्वामी रामानन्द ने सार्वजनीन भक्तिमार्ग खोलकर, पददलित शूद्रो को प्रोत्साहित करके, जातिगत भेद-भावना त्यागने का उपदेश दिया था। सन्तो के निवृत्तिपरक आदर्श ने लोगो में किंकर्त्तव्यविमूढ़ता की भावना भर दी। लोकसंग्रह के निमित्त कर्म करने का आदर्श लोग भूल गये और कर्म अथवा भाग्य के सहारे हाथ पर हाथ रख कर बैठ गये।

धर्म का प्रवाह कर्म, ज्ञान और भक्ति इन तीन धाराओं में ही होता है। वह कर्म के बिना लूला, ज्ञान के बिना अन्धा और भक्ति के बिना निष्प्राण रहता है। इन तीनो के सामंजस्य से ही धर्म अपनी पूर्ण सजीव स्थिति में रहता है। किसी एक अभाव से भी वह अपूर्ण ही रहता है।[3] अतः कर्मविहीन होने के कारण सन्तमत का ह्रास होने लगा। कबीर के पश्चात् उनके अनुयायियों में कर्मकाड का पाखंड आ गया।

उत्तरी भारत मे शंकराचार्य अपनी भक्ति-धारा प्रवाहित कर रहे थे। शंकराचार्य ने वेदो और शास्त्रो को अविद्या के भीतर मानकर अपनी स्वच्छन्द प्रतिभा का परिचय दिया। उन्होने भक्ति को भी माया माना जो लोक-जीवन के विरुद्ध था। दक्षिण मे स्वामी रामानुजाचार्य के शिष्य रामानन्द ने राम की भक्ति का प्रचार करके एक बड़ा सम्प्रदाय खड़ा किया। रामानुजाचार्य ने शंकराचार्य के विरोध मे विशिष्टाद्वैत की स्थापना की और ज्ञान को गौण मानकर भक्ति को प्रधान स्थान दिया। दूसरी

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ ६५
२. हिस्ट्री आफ् दि सिक्ख, कनिंघम, पृष्ठ ३२-३३
३. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ ५६

और वल्लभाचार्य ने प्रेममूर्ति कृष्ण को लेकर जनता को प्रभावित किया। रामानुजाचार्य आदि आचार्यों के धार्मिक मतवादो से सबसे बडा लाभ यह हुआ कि रामानंद के शिष्यो में से गो० तुलसीदास और वल्लभाचार्य के शिष्यो मे सूरदास ने अवतारवाद पर अत्यधिक बल दिया। अर्थात् परब्रह्म सज्जनो के परित्राण एवं दुर्जनों का संहार करने के लिए मनुज का शरीर धारण करता है और अपने भक्तजनों के मनोरंजनार्थ विविध लीलाएँ करता है, इस मत का प्रचार किया। इस अवतारवाद का मूल विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत आदि मे ही था किन्तु इसे बल, कृष्ण और रामपरक सगुण-भक्ति आदोलन से मिला जिसे अच्छी प्रकार से परख कर तुलसी ने राम को ईश्वरत्व का प्रतिरूप बना कर, सारी असहाय जनता को एक नया संबल प्रदान करने मे सफलता प्राप्त की। इस प्रकार रामोपासक और कृष्णोपासक भक्तों की परंपराएँ चली। इन भक्तो ने ब्रह्म के सत्य और आनन्दस्वरूप का साक्षात्कार राम और कृष्ण के रूप मे इस बाह्य जगत के व्यक्त क्षेत्र मे किया।[1] किन्तु यह धर्म भी अधिक दिन तक लोगो को प्रभावित न कर सका क्योंकि हिन्दू पुरातन रूढ़ियो और अन्धविश्वास की जंजीरो मे बंध चुके थे और वे अपने धर्म की सार्वभौमिक मान्यताओ को भूलकर, साम्प्रदायिकता के गड्ढे मे पडे हुए थे। प्रत्येक सम्प्रदाय मे गद्दी-प्रथा प्रचलित थी। इसलिये धर्मोपदेशक मोह, माया, ईर्ष्या, द्वेष आदि मे फॅस कर धर्म-विमुख हुए और ऐन्द्रियसुख के साधनो मे लगे रहे। उस समय मूर्तिपूजा, देवपूजा, अवतारपूजा, कर्मकाड, भ्रम और पाखड का पूर्ण राज्य था। धन-लोलुप मठाधीशो मे बाह्याडम्बरो की वृद्धि होने लगी। उनमे तत्वचिंतन और साधना के सूक्ष्म साधनों के प्रति कोई मोह एव आकर्षण न रह गया। इन आचार्यों ने या तो ज्ञान पर एकान्तिक बल दिया या भक्ति को प्रधान बताया और कर्म को दर्शन के साथ-साथ रखकर नही देखा। शंकराचार्य ने ज्ञान और वैष्णवों ने भक्ति को प्रधानता दी। रामानन्द के प्रचार से अहंमन्यता बढी और यह धर्म विकसित होने के बजाय, संकीर्ण होता गया।[2] इस दृष्टि से गुरुनानक का स्थान सर्वोपरि माना जाता है क्योंकि उन्होने धर्म के साथ साथ उस समय की चिन्ताजनक, शोचनीय परिस्थिति से भी जनसाधारण को अवगत कराया और व्यापक दृष्टिकोण का परिचय दिया।

गुरु नानक सिक्खों के प्रथम गुरु, महान देशभक्त, रूढिविरोधी, अपूर्व दूरदर्शी और अद्भुत युग-पुरुष थे। अपने समय की धार्मिक परिस्थितियो का उल्लेख करते हुए उन्होने लिखा हैं कि लज्जा और धर्म संसार से विदा हो चुके थे, चारों ओर झूठ फैला हुआ था, काजियो और ब्राह्मणो ने अपने कर्त्तव्य त्याग दिये थे, स्त्रियाँ अत्याचारों

---

१. कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ १३

२. युगद्रष्टा कबीर, पृष्ठ ८

से पीड़ित होकर अनेको कष्ट सहन कर रहीं थी, केशर के स्थान पर रक्त पड रहा था, बाह्याडम्बरो का बोलबाला था, लोग मुसलमानों के आतंक से भयभीत होकर अपना धर्म छोड़ रहे थे। सारी धार्मिक क्रियाये दिखावा मात्र थी।[1] पाषाणो की पूजा होती थी। पाखंड का पूर्ण वैभव था।[2]

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि मध्ययुग मे अनेक धर्मसस्थापक हुए थे जिन्होने राजनीतिक, सामाजिक आदि विषमपरिस्थितियो के प्रति अपनी चिन्ता व्यक्त नहीं की। परन्तु गुरु नानक ने विषमपरिस्थितियो के बीच ही सिक्ख धर्म की स्थापना की। कनिघम महोदय ने उल्लेख किया है कि यह सुधार गुरु नानक के लिये ही अवशिष्ट था। उन्होने इसी के आधार पर अपने सच्चे सिद्धातो का सूक्ष्मता से आत्मसात किया और ऐसे आवश्यक और व्यापक सुधारो पर अपने धर्म की नीव डाली जिनके आधार पर गुरु गोविन्दसिह ने अपने देशवासियो मे नवीन राष्ट्रीय भावना उत्पन्न की। उन्होने उन सिद्धातो को व्यावहारिक रूप दिया और स्पष्ट किया कि छोटी और बडी जातियो सभी समान धार्मिक अधिकार रखती है।[3] उन्होने लोगो मे भ्रातृ-भावना जाग्रत करके उसका सम्यक् उपदेश गुरु नानक ने परमात्मा के चरम सत्य को जनता के सम्मुख रखा। उनके उपदेश हिन्दुओ के प्रमुख ग्रंथ वेद, उपनिषद् और मुसलमानो के कुरान और ईसाइयो के बाइबिल ग्रन्थ से मिलते है। परमात्मा के सम्बन्ध मे उनके विचार उपनिषदो की विचारधारा से संबंध रखते हैं। उन्होंने अहंकार और द्वैतवाद का विशद चित्रण किया है, अहंकारनाशक विविध उपाय बतलाये हैं, परमात्मा की प्राप्ति ही जीवन का लक्ष्य माना है और उसकी प्राप्ति के लिये कर्ममार्ग, ज्ञानमार्ग तथा भक्तिमार्ग की सार्थकता बतलाई है। उन्होंने केवल भारत मे ही नही वरन् चीन, ब्रह्मा, लंका, अरब, मिश्र, तुर्किस्तान और अफगानिस्तान आदि देशों मे भी घूम-घूम

---

१. सरमु धरमु दुई छपि खलोए कूडु फिरै परधानु वे लालो ॥
कजीआ बाभन की गलि थकी अगदु पढै सैतानु वे लालो ॥
मुसलमानीआ पढहि कतेबा कसट महि करहि खुदाइ वे लालो ॥
जाति सनाती होरि हिंदवाणीआ एहि भी लेख लाइ वे लालो ॥
खून के सोहिले गावहि नानक रतु का कंगु पाइ वे लालो ॥
श्री गुरु ग्रंथसाहिब, तिलंग, महल १, पृष्ठ ७२२, ७२३

२. पढ़ि पुस्तक संधिया बादं।
सिल पुजसि बगुल समाधं ॥
मुखि झूठ बिभुखण सारं ॥
श्री गुरु ग्रंथसाहिब, आसा महला १, पृष्ठ ४७०

३. हिस्ट्री आफ दि सिक्ख, कनिंघम, पृष्ठ ३४

कर मानव प्रेम, सेवा, त्याग और भगवद्भक्ति का सन्देश दिया है। बड़ी-बड़ी शिक्षाएँ वे विनोद मे ही दे दिया करते थे। गुरु नानक की सीधी-सादी भाषा मे कथित भक्ति और विनय के पदो का प्रभाव समाज पर अधिक पड़ा।[१]

अकबर ने तत्कालीन सभी प्रकार की धार्मिक भावनाओं का एकीकरण करना चाहा। उसने शक्ति के स्रोत को समझ लिया था। अधिकाश जनता हिन्दू थी। अतः अकबर ने ऐसे धर्म की स्थापना करनी चाही जिसके सिद्धान्त हिन्दू विचारो से भिन्न न हों, हिन्दुओं के भक्ष्य-अभक्ष्य, प्रिय-अप्रिय का विचार रखा जाये[२]। उसने इसी आधार पर दीने इलाही की स्थापना की। इस नये धर्म का आधार कुरान, वेद, उपनिषद् और ईसाई धर्म-पुस्तकों के संदेशो का मिश्रण हुआ। दीने इलाही अकबर की राजनीतिक चाल थी। धार्मिक क्षेत्र मे पैगम्बरी का दावा करके एक नई शक्ति पाना ही उसका उद्देश्य था। शेख मुबारिक, अबुलफजल और दूसरे मुसलमान अकबर क दीने इलाही को इस्लाम का परिष्कृत रूप ही कहते थे। परन्तु अकबर की धार्मिक आज्ञाओं से यह स्पष्ट है कि उसके धर्म मे इस्लाम का अंश अत्यधिक कम था।[3] अकबर के मृत्यु के साथ ही इस धर्म की भी समाप्ति हो गई।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, अन्य सन्तो की अपेक्षा गुरु नानक का चलाया सिक्ख धर्म निरन्तर दिन-प्रतिदिन उन्नति करता ही रहा। पाँचवे गुरु अर्जुनदेव ने अपने पूर्व के सभी गुरुओं के उपदेश संग्रहीत करके 'आदि ग्रंथ' का संकलन कराया और उसका नाम गुरु ग्रन्थ-साहब रखा।[४] उन्होंने भारतवर्ष के प्रमुख हिन्दू और मुसलमान

---

१. श्री गुरु ग्रंथ दर्शन, पृष्ठ ५९
हिन्दी साहित्य का इतिहास, पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ १५१

२. तुलसी साहित्य की भूमिका, पृष्ठ ५

३. वही, पृष्ठ ६

4. Arjun next arranged the various writings of his predecessors he added to them the best known or the most suitable composition of some other religions reformers of the few preceding centuries and competing the whole with a prayer and some exhortations of own, he declared compilation to be preeminently the Granth or Book and he gave to his followers their fixed rules of religious and moral conduct with an assurance that multitudes even of devine Brahamans had wearied themselves with reading the Vedas and had not found the value of an oil seeds within them.

History of the Sikhs, Cunningham, p. 46-47.

सन्तों के अनुयायियो को आमंत्रित किया ताकि वे इस पवित्र-ग्रन्थ में अपने आचार्यों की पवित्र वाणियों को संग्रहीत करा सके। कुछ भक्तो ने अपने सम्प्रदाय की वाणियो की आवृत्ति की, जो तत्कालीन धार्मिक सुधारभावना के अनुरूप थी, वे इस ग्रन्थ मे संकलित कर ली गई। गुरु हरगोविन्द ने ईश्वर की एकरूपता का ही उपदेश दिया जिसके प्रभावस्वरूप अनेको सिक्ख उनके अनुयायी बन गये। सातवे गुरु हरिराय और आठवे गुरु हरिकृष्ण शान्त प्रकृति के थे। उन्होंने अपने धार्मिक उपदेशों से लोगो को प्रभावित किया और गुरु परम्परा को सुदृढ किया। सिक्खो के नवे गुरु तेगबहादुर को मुगलशासक औरंगजेब द्वारा इस्लाम-धर्म ग्रहण करने के लिये विवश किया गया किन्तु उन्होने स्वधर्म त्यागने की अपेक्षा उस पर बलिदान हो जाना अधिक श्रेयस्कर समझा।

गुरु गोविन्दसिंह ने अपने युग की समस्त धार्मिक परिस्थितियो का गहन अध्ययन किया था। संतमत और अपने पूर्व क गुरुओ की परम्परा के अनुसार तद्युगीन धर्म को उन्होने नया मोड देने का दृढ संकल्प किया। उन्होने अपने पूर्व प्रचलित सभी धर्मों की असारता और स्वार्थपरता का विस्तृत परिचय दिया है।[1] उनका धर्म निवृत्ति-मूलक न होकर प्रवृत्ति-मूलक था।

धार्मिक परिस्थिति के उपर्युक्त विश्लेषण के अनन्तर, यह कहा जा सकता है कि गुरु गोविन्दसिंह जी के धार्मिक विश्वासों, सुधारो और प्रक्रियाओ पर युग का व्यापक

---

१. तब हरि बहुर दत्त उपजायो ॥ तिन भी अपना पन्थु चलायो ॥
कर मो नख सिर जटा सवारी ॥ प्रभु की क्रिया न कछू विचारी ॥
पुनि हरि गोरख कौ उपराजा ॥ सिख करे तिनहूँ बड राजा ॥
स्रवन फारि मुद्रा द्वय डारी ॥ हरि की प्रीति रीति न विचारी ॥
पुनि हरि रामानन्द को करा ॥ मेष वैरागी को विनधरा ॥
कंठी कंठि काठ की डारी ॥ प्रभु की क्रिया न कछू विचारी ॥
जे प्रभु परम पुरुख उपजाए ॥ तिन तिन अपने राह चलाए ॥
महादीन तब प्रभु उपराजा ॥ अरब देस को कीनो राजा ॥
तिन मा एक पन्थ उपराजा ॥ लिङ्ग विना कीने सम राजा ॥
सब ते अपना नाम जपायो ॥ सतिनाम कहूँ न हठायो ॥
सब अपनी अपनी उरझाना ॥ पारब्रह्म काहू न पछाना ॥
तप साधत हरि मोहि बुलायो ॥ हम कहि के इह लोक पठायो ॥

विचित्र नाटक, श्री दशम गुरु ग्रंथ, अध्याय ६, छं० सं० २३–२८

श्री गुरु ग्रंथ दर्शन, पृष्ठ १२

ट्रांसफार्मेशन आफ् सिक्खिज्म, पृष्ठ ५६

प्रभाव पड़ा था। उनकी शक्तिविषयक आस्था शाक्तों के प्रभाव, अवतारों का गुण-गान, अवतारवादी दृष्टिकोण के प्रति सहिष्णुता एवं सभी धर्मों के प्रति प्रेम, सहानुभूति के भावों को स्पष्ट करता है। पर इस प्रभावग्रहण में दशमेश जी की मौलिकता भी अद्वितीय है। वे चंडी के उपासक तो थे पर हिंसा के अतिरेक से दूर थे। उन्होंने अवतारो का स्तवन तो किया है। परन्तु अवतारों से भी ऊपर कालपुरुष को रख कर उन्हें केवल महापुरुषों की कोटि में रख देते हैं और ईश्वर के अवतार लेने की बात करने को इस प्रकार अविवेक पर आश्रित सिद्ध करते हैं। वे सभी धर्मों और मतों के प्रति प्रेम और सद्भावना रखते हुए भी, स्वाभिमान और प्रतिष्ठा पर आघात करने वाले को दंडित करने के पक्षपाती हैं। इसीलिए शान्ति के समर्थक होते हुए भी अस्त्र-शस्त्रों तक को उन्होने ईश्वर का रूप माना।

सामाजिक परिस्थिति

राजनीतिक और धार्मिक क्रिया-कलाप ही सामाजिक परिस्थिति को प्रभावित करते हैं। साथ ही सामाजिक परिस्थिति में ही राजनीतिक और धर्म का वास्तविक विवेचन तथा महत्वाकन संभव होता है। मध्यकालीन वातावरण में अस्तव्यस्तता की अधिकता से सामाजिकजीवन बहुत ही अशान्त था। इस अशान्ति के दो कारण थे—हिन्दू-मुसलमानों का सामाजिक स्थायित्व के लिये लड़ना-झगड़ना और हिन्दू-समाज के आन्तरिक क्षोभ का विविध रूपो में फूट निकलना।

यह आन्तरिक क्षोभ बहुत पहले से ही अपनी जड़ जमा चुका था। वैदिककाल में वर्ण-व्यवस्था का प्रतिष्ठापन, कार्य-विभाजन एवं मानवीय समता को समुचित मर्यादित रखने के लिये हुआ था। उसका मूल स्वरूप कर्मों पर आधारित था। धीरे-धीरे युगीन प्रभाव से, वर्ण-व्यवस्था कर्मानुसार न होकर जन्मानुसार समझी जाने लगी जिसके मूल में ऊँच-नीच की भावना विशेष थी। इस ऊँच-नीच ने सारे भारतीय समाज को, जातियों, उपजातियो में विभक्त कर दिया। परिणाम यह हुआ कि राष्ट्रीयशक्ति खंड-खंड होकर उत्थान से कोसो दूर जा पड़ी। तत्कालीन रूढ़ मान्यताओं ने समाज की स्थिरता समाप्त करके, नारियों और शूद्रों को वेदों और शास्त्रों के अध्ययन से वंचित कर दिया। शद्रो को मन्दिरो, देवालयो के प्रवेश से रोक कर अस्पृश्य घोषित किया गया। स्पर्श मात्र से अपवित्र हो जाने की भावना से उच्चवर्ण के लोग उनकी छाया तक से दूर रहने लगे।[1]

---

१. अछूतों की एक विस्तृत संख्या मौजूद थी जो शूद्रों से भी घटिया दर्जे के गिने जाते थे और चारों प्रामाणिक वर्गों से हर बात में नीचे थे। ......इन आठों जातियों को नगर और गाँव के भीतर रहने की आज्ञा न थी। हर गाँव और शहर के पास झोपड़े बना सकते थे। इसलिये कि ये जातियाँ अपने पेशों के

वेद-शास्त्र के अध्ययनविषयक भेद-भाव और स्पृश्य, अस्पृश्य के विघातक रूप ने सामाजिक कूप-मंडूकता, संकीर्णता, घृणा और अज्ञान को बढ़ावा दिया।[१] फल यह हुआ कि वह समाज जो न जाने कितने बाह्य तत्त्वो को अपने मे पचा गया था, कालान्तर में बाहरी विरोधी शक्तियो का सामना करने से असमर्थ हो गया। इसके अतिरिक्त पीडित और अशिक्षित जनता मे अन्ध-विश्वास, साहसहीनता, कलह, भय आदि कुत्सित भाव और भी अधिक प्रबल हो गये। यह माना जा सकता है कि अन्धविश्वास ने अन्धकार के समय में भारतीय सभ्यता के बचाने में बहुत कार्य किया था; परन्तु यह बात भी माननी पडेगी कि मुसलमान-धर्म के अन्धविश्वास ने उनको संगठित शक्ति का बल दिया और हिन्दू-अन्धविश्वास ने हिन्दुओ की शक्ति को कभी सगठित नही होने दिया।[२]

क्रिया-प्रतिक्रिया के निरन्तर प्रवाह ने जाति-भेदभाव पर आधारित कलह-संघर्ष को बढावा दिया और उच्चवर्णों ब्राह्मणो, क्षत्रियो अथवा राजपूतो आदि मे भी कोरी मान-मर्यादा, एक दूसरे को नीचा दिखाने की भावना और शक्ति-प्रदर्शन के दंभ ने विनाश के बीज बो दिये। इस विशृंखलता के साथ ही धर्म के विकृत रूढ विघातक बाह्याचारो ने सामाजिक वातावरण को पंगु बनाने के हानिप्रद प्रयत्न किये।

ऐसे ही घुटनपूर्ण वातावरण में जब सारी राजनीतिक, धार्मिक और सास्कृतिक स्थिति डाँवाडोल हो चुकी थी, भारत पर मुसलमानो के आक्रमण होने प्रारम्भ हुए। सामाजिक फूट और विषमता से आक्रान्त रहने के कारण तत्कालीन राजनीतिक शक्तियाँ, बाह्य आक्रमणो का एक साथ डटकर सामना करके परस्पर ही लड़ती-झगडती रहीं। फल यह हुआ कि सामाजिक व्यवस्था का लोप-सा हो गया, तद्युगीन सारे सामाजिक विधानों मे, एकता, समता और शक्तिमत्ता के एकत्र करने के स्थान पर, अपनी जीर्ण-जर्जर स्थिति की रक्षा का ही भाव मिलता है। आक्रान्त जनो से नारियो की मर्यादा सुरक्षित रखने के उद्देश्य से बाल-विवाह, नवजात बालिका वध, पर्दा और सती-प्रथा को बढ़ावा दिया गया।

नाम से प्रसिद्ध थीं। इन पेशे वालों से भी नीचे दर्जे पर हाड़ी, डोम, चंडाल और विधात थे। गाँव के गन्दे काम इन्हें सौंपे जाते थे और इन्हें अत्यन्त घृणित जाति का अछूत समझा जाता था।

मध्यकालीन भारत की सामाजिक अवस्था, पृष्ठ ४७,४८

1. Their only care was the preservation of the social system and forgetting totally that system existed for the man and not the man for the system, they fortified the walls of caste and took shelter behind them.

   Evolution of the Khalsa, page 45.

२. **अष्टछाप और वल्लभ-संप्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, पृष्ठ ३३**

धीरे-धीरे सारा भारत, मुसलमानो के आधिपत्य मे आ गया और सामान्य सामाजिकजीवन उन्ही के शोषण, उत्पीड़न और अनाचार मे त्राहि-त्राहि करने लगा। इस समय विभिन्न सम्प्रदायो का आविर्भाव हुआ जिनमे सिद्ध, शैव, शाक्ति, सन्त, सिक्ख आदि प्रमुख थे। ये सभी सम्प्रदाय सामाजिक रूढ़ियो का अन्त करने के लिये प्रयत्नशील थे जैसा कि पहले उल्लेख हो चुका है। सबसे भयंकर कुप्रथा जाति-पाँति के विरोध मे सभी नये वर्गों की आवाज उठने लगी। चौरासी सिद्धो में बहुत से मछुए, चमार, धोबी, डोम, कहार, लकड़हारे, दर्जी तथा बहुत से शूद्र कहे जाने वाले लोग थे।[1] इन लोगों ने हिन्दुओ के उस वर्ग को जो मुसलमानों द्वारा सताया हुआ था और अपने ही भाई-बन्धु उच्च हिन्दुओ द्वारा अस्पृश्य और निरावृत किया गया था, जगाने और उठाने का प्रयत्न किया। कनकटे रमते योगियो, नाथ, सिद्धों, कबीर, दादू आदि सन्तों ने जाति-पाँति, बाह्याचार आदि का खंडन किया, फिर भी इन सिद्धो आदि के उपदेशो मे जिन बातो पर विशेष बल दिया गया था, कालान्तर मे इनके अनुयायियो ने रूढि रूप मे मानकर उनका सामाजिक महत्त्व गौण कर दिया।

केवल गुरु नानक की सामाजिक दोषो पर ध्यान देने की पद्धति, इस अर्थ मे विशेष महत्त्वपूर्ण है कि उन्होंने तत्कालीन सामाजिक परिस्थति के दोषों को मिटाने के व्यावहारिक मार्ग भी उपस्थित किये। गुरु नानक ने प्रत्येक मनुष्य मे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र वर्णगत विशेषताओ के एक साथ होने पर बल देकर वास्तविक मानवता की प्रतिष्ठा स्थापित की।[2] गुरु अंगददेव और रामदास ने तो इसी भेदभाव को मिटाने के लिये ही लंगर की प्रथा चालू की और दिन-प्रतिदिन उसे उन्नत किया।[3] इसके अनुसार प्रत्येक जाति, वर्ग का व्यक्ति एक साथ बैठकर समान भोजन करता था।

अकबर के पूर्व सुलतान बादशाहो के शासन-काल मे हिन्दुओ पर कई प्रतिबन्ध थे। मुसलमानो की अपेक्षा उन्हें सामाजिक अधिकार कम प्राप्त थे। उन्हें सामाजिक

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ १७

२. जोग सबदं गिआन सबदं वेद सबदं ब्राहमणह।
खत्री सबदं सूर सबदं सूद्र सबद पराकृतह॥
सरब सबदं एक सबदं जोको जाणै भेऊ।
नानक ताका दासु है सोई निरजंनु देऊ॥
श्री गुरु ग्रंथ दर्शन, पृष्ठ ४४

3. It served as a great bond of union among the sikhs and also helped to mitigate caste prejudices to some extent as all those who come to have their food in the "Langar" had to take it together, irrespective of caste and creed.
Evolution of the Khalsa, page 159.

रीति-नीति आदि के व्यवहार की पूर्ण स्वतंत्रता नहीं थी। अपने इन संकुचित अधिकारों में रहते हुए भी हिन्दुओ के आत्माभिमान का लोप नहीं हुआ था। वर्ण-व्यवस्था विशृङ्खल रूप मे थी। ब्राह्मण-समाज मानसिक योग्यता, नैतिक तथा धार्मिक गुणो से विभूषित नही था। उनमें स्वार्थपरता, लोभ आदि दुर्गुण प्रविष्ट हो गये थे। राजपूतो में भी वंश-विभाजन हो गया था और वे केवल अपने वंश की प्रतिष्ठा और मान की रक्षा मे संकुचित विचार-धारा के अनुगामी हो गये थे। हिन्दुओं को घोडे की सवारी करने से वर्जित किया गया था।

मुसल्मानो के साम्राज्य की प्रतिष्ठा से हिन्दुओ के हृदय का वीरोल्लास क्षीण होने लगा। आत्मप्रतिष्ठा के साथ-साथ वे अपना आत्म-विश्वास भी खोने लगे। अकबर के शासनकाल में हिन्दू-मुसलिम विषमता में कुछ कमी हुई, क्योकि अकबर ने हिन्दू, मुसल्मान सभी के लिए एक नियम का पालन किया और हिन्दुओ पर लगे सभी अनुचित करों को हटाया। उसने उन्हें सामाजिक पर्व और उत्सवो को मनाने की पूरी स्वच्छन्दता दे दी थी। इस प्रकार हिन्दू और मुसल्मान प्रायः समान स्तर पर आ गये थे।

मुसलमानो के शासन-काल मे स्त्रियों की दशा अत्यन्त शोचनीय थी। उनका सम्मान उनके परिवार मे ही नहीं होता था। अमरत्व की साधना के सभी अधिकारों से वे वंचित कर दी गई थी। उनका कोई निजी कर्म नहीं रह गया था। वे आध्यात्मिक उत्तरदायित्व से हीन थीं। वेदो-शास्त्रो का अध्ययन उनके लिये वर्जित था। गृह-परिचर्या ही उनकी साधना थी। और उसी से उन्हे सन्तोष करना पडता था।[१] निर्गुण सन्तो ने स्त्रियों को ऊँचा उठाने का भरसक प्रयत्न किया। उनकी दृष्टि में स्त्रियों का पद स्त्री होने के नाते नीचा न रह गया। पुरुषों के समान वे भी भक्ति की अधिकारिणी हुई। स्वामी रामानन्द के शिष्यों में पद्मावती और सुरसरी नाम की दो स्त्रियों भी थीं। आगे चलकर दयाबाई और सहजोबाई भी भक्त सन्तों में हुई। स्त्रियों की स्वतन्त्रता के परम विरोधी, उनको घर की चहारदीवारी मे कैद रखने के कट्टर पक्षपाती तुलसीदास भी मीराबाई को 'राम विमुख तजिय कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही' का उपदेश दे सके, वह निर्गुणभक्ति के ही अनिवार्य और अलक्ष्य प्रभाव के प्रसाद से समझना चाहिए।[२]

यह पहले कहा जा चुका है कि स्त्रियों की दशा अत्यन्त शोचनीय थी। उनमे बाल-विवाह, पर्दा और सती-प्रथा का प्रचलन था क्योंकि मुसलमानों के समय मे हिन्दू-स्त्रियों की मान-मर्यादा की रक्षा करना असम्भव हो रहा था। अलाउद्दीन ने पद्मिनी

---

१. श्री गुरु ग्रन्थ दर्शन, पृष्ठ ४६

२. कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ ११

की प्राप्ति के हेतु चित्तौर पर जो आक्रमण किया वह स्त्रियों की दशा का प्रत्यक्ष उदाहरण है। गुरु नानक ने हिन्दूजाति के उपेक्षित नारीसमाज को गौरव के आसन पर प्रतिष्ठित करने की चेष्टा की, उन्होंने स्पष्ट कहा कि स्त्री से हमारी जीवनपर्यन्त मित्रता रहती है, उसीसे हम जन्म लेते हैं, उसीसे विवाह होता है, उसीसे सृष्टि का क्रम चलता है और उसीसे महान् पुरुष अवतरित हुए हैं। एक स्त्री की मृत्यु के पश्चात् हमें दूसरी स्त्री की खोज करनी पड़ती है। हमारे जीवन के प्रत्येक क्षण में वह सहायक होती है तो फिर हमें उसकी निन्दा कभी नहीं करनी चाहिए।[1] गुरु रामदास ने सती प्रथा का कड़ा विरोध किया।[2] गुरु गोविन्दसिंह ने भी स्त्रियों का समुचित आदर गुरु नानक के सदृश ही किया। खालसापंथ का उद्‌घाटन उन्होने माता सुन्दरी से ही करवाया। वे खालसा को अपने पुत्र तुल्य समझते थे। इसीलिये खालसा के जन्म मे भी उन्होंने स्त्री का होना परमावश्यक समझा।[3] इस प्रकार स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार देने में सिक्ख गुरुओं को विशेष श्रेय मिला।

इतने सब दोषों और विशृंखलताओं के होते हुए भी सामाजिक सम्पन्नता बढ़ी-चढ़ी ही थी। विलासिता के उपकरण जनसाधारण तक मे प्रयुक्त होते थे। किसी न किसी रूप मे हिन्दूजन अपने उल्लासमय त्योहारो मे अपने पराभव को भुलाने का प्रयत्न करते थे। इस काल के हिन्दुओ मे सावन तीज पर झूले, रक्षाबन्धन, दशहरा, दिवाली, होली आदि के त्योहार प्रचलित थे, यद्यपि शासक की रुझान इस ओर न

---

१. भंडी जमीए भंडी नीमीए भंडी मगणु बिआहु।
भंडहु होवे दोसती, भंडहु चलै राहु
भंडु मुआ भंड भालिए भंडी होवे बंधानु।
सो किउ मंदा आखिए जितु जंमहि रजानु॥
श्री गुरु ग्रंथ साहिब, आसा दी वार, महला १, पृष्ठ ४७३

2. Guru Amar Das prohibited the practice of Sati or the burning of widows on the funeral pyre of their husbands.

Evolution of the Khalsa, pp 180-181

In the sprit of nanak he likewise pronounced that the true sati was she whom grief and not flame consumed, and that the afflicted should seek consolation with the Lord, thus mildly discountenancing a perverse custom, and leading the way to amendment by persuasion rather than by positive enactment.

History of the Sikhs, Page 45.

३. असी हुण खालसा पुत्र पैदा करन लगे हां। सो स्त्री तो बिना एह नहीं सी उत्पन्न होना।

श्री दशमेश चमत्कार, पृष्ठ २२९

रहने के कारण उनका यह आनन्द निरापद नही था। सभवतः भेदकलह एवं सशययुक्त समाज के आन्तरिक असन्तोष को दूर करने का एकमात्र साधन उन्मुक्त भोग को अपनाना शेष रह गया था। हिन्दू और मुसलमान कोई भी इस प्रचलित विलासिता से बचा न रह सका था। चारों ओर सुख-साधनों मे लिप्त रहने का फल यह हुआ कि देश-विदेश से विलासिता तथा भोग-विलास की अनेक सामग्रियाँ आने लगी। उन वस्तुओं का व्यवहार जनजीवन मे प्रचुर मात्रा मे हो गया और देश; विदेश के माल पर निर्भर हो गया।[१]

उपर्युक्त विवेचन के पश्चात् निःसंकोच रूप से कहा जा सकता है कि गुरु गोविन्दसिंह के समस्त कार्य-कलापों एवं साहित्यिक रचनाओ की पृष्ठभूमि के रूप में तद्युगीन सामाजिक वातावरण ही था। मत-मतान्तर एवं उपासना-पद्धतियों के परस्पर विरोधी होने के परिणामों से परिचित होने के कारण, दशमेश जी ने सबके दोषों का उद्घाटन किया। विलासिता, प्रेममयी उन्मुक्त अनैतिकता का स्पष्ट चित्रण करके उनके दोषों से समाज को सचेत किया, कर्मकाडो, बाह्याचारो और कुप्रथाओं का स्थान-स्थान पर विरोध किया और सर्वत्र सरल, जनोपयोगी उपासना, जीवनपद्धति और शान्ति के अभिनव सन्देश को प्रचारित करते दिखाई पडे।

इस प्रकार सामाजिक स्थिति के प्रभाव के फलस्वरूप दशमेश जी की काव्य-साधना में श्रृंगारपरक मनोहारी दृश्य, प्रेम के विविध विषयक चित्र, वीर भावनाओं की तीव्र अभिव्यक्ति और नीति उपदेश की प्रभावपूर्णशक्ति का अनायास ही प्रवेश हो गया।

साहित्यिक परिस्थिति

मुसलमानों के भारत में जम जाने के कारण वीरगाथाकालीन भावनाएँ प्रायः लुप्त हो गई। कवियों का राजाश्रय समाप्त हो गया और वे राजाश्रय से वंचित होकर विरक्त साधुओं की कुटियाँ में आश्रय प्राप्त करने लगे जिसके परिणामस्वरूप राजाओं की प्रशस्ति के गान के स्थान पर ईश्वर का कीर्तिगान प्रारम्भ हुआ। कबीर, नानक और जायसी का काव्य इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि किस प्रकार उन्होंने निराश जनता को सही मार्ग का निदर्शन कर शान्ति प्रदान की थी।

विक्रम की १५ वी शताब्दी के अन्तिम काल से लेकर १७ वीं शताब्दी के अन्त तक देश में सगुण और निर्गुण भक्तिकाव्य की दो धाराएँ निरन्तर चलती रहीं। कलात्मक सौंदर्य और शास्त्रीय विवेचन की दृष्टि से यह युग हिन्दी साहित्य में सबसे महत्वपूर्ण स्थान रखता था। केन्द्रिय शासन के सुदृढ़ होने के कारण अधीनस्थ राजाओं, नवाबों, सामन्तो और जमींदारों में निश्चिन्तता और देश की अन्य समस्याओं के प्रति उदासीनता का भाव विद्यमान था। साधारण जनता की स्थिति विशेष

---

१. अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, पृष्ठ ७

सन्तोषजनक न होने पर भी उच्चवर्ग में विलासिता और ऐश्वर्य के साधन प्रचुर मात्रा मे थे। देश की समृद्ध और सम्पन्नता का प्रत्यक्ष लाभ इसी वर्ग को प्राप्त होता था। ऐश्वर्य और समृद्धिजन्य विलासिता में तद्युगीन साहित्य भी अप्रभावित न रह सका। विलासप्रिय, ऐश्वर्यशाली नरेशो, नवाबों और सामन्तों के सौंदर्य-प्रेम, कलाप्रियता के कारण उनके आश्रम मे पोषित कविगण एवं कला के साधक अपनी वैयक्तिक साधना मे निमग्न थे। जनसाधारण के प्रति वे प्रायः उदासीन-से थे।

उस परिस्थिति मे शृंगार-रस की रचनाएँ अत्यन्त स्वच्छन्दतापूर्वक लिखी गई जो जन-हृदय को स्पर्श तो करती थी, किन्तु उनमे जनहित-भावना का अभाव था। उनमे कल्पना की उड़ान तो थी, किन्तु गम्भीर चिन्तन का पुट न था और इन सबका कारण था अकृत्रिम जीवन से दूर पेट भरने के लिये अपने आश्रयदाताओ के इशारों पर नाचने वाले कवियो का मार्ग कल्पना-लोक का विचरण और झूठे स्वर्ग को धरातल पर अवतरित करना।

भक्तिकाल के उत्थानकाल मे हिन्दी भाषा की प्रथम विस्तृत रचना कबीर की ही मिलती है। कबीर ने हिन्दू और मुसलमानों के धार्मिक सिद्धान्तों का समन्वय किया। कबीर के समय तक सन्त-साहित्य की रचनाओं पर जैन-साधना, इस्लाम-धर्म के सूफीवाद तथा रामावतार-सम्प्रदाय के भक्तिवाद का भी पूर्ण प्रभाव पड़ चुका था।[1] कबीर साक्षर नहीं थे इस कारण उनकी वाणियॉ दूसरे व्यक्तियो द्वारा संग्रहीत हुई। उनकी वाणी का संग्रह-बीजक के नाम से प्रसिद्ध है जिसके तीन भाग सबद, रमैनी, साखी हैं। साखियों में दोहा, रमैनी में चौपाई, दोहा और सबद में पद का प्रयोग मिलता है। उनकी भाषा पंजाबी, ब्रज, राजस्थानी मिश्रित खड़ी बोली या सधुक्कडी है। उन्होंने अपनी रचनाओ में ज्ञानोपदेश, योग, सन्त-महिमा, सत्यनाम-महिमा, सत्यपुरुष निरूपण, भक्त की दिनचर्या, विनय, प्रार्थना, माया, गुरु-महिमा, स्वर-ज्ञान आदि विषय रखे हैं। साथ ही उन्होंने तीर्थ-व्रत, नमाज, रोजा, मूर्ति आदि की निन्दा की है।[2]

सन्त साहित्य की रचनाओं में विशेष रूप से सिद्धान्तों एवं साधनाओं का निरूपण तथा प्रतिपादन मात्र होने के कारण उसमें विषय और भाव का ही प्राधान्य है। भाषा को गौण मानकर उस ओर विशेष ध्यान नही दिया। उनकी रचनाएँ साहित्यिक स्तर से दूर फुटकल दोहों और पदों में हैं। अशिक्षित एवं निम्नश्रेणी की जनता पर इसका अधिक प्रभाव पड़ा। सन्त-कवियों के काव्य में काव्यक्रम, भावानुभूति अधिक है।

---

१. भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक रेखाएँ, परशुराम चतुर्वेदी, पृष्ठ ५१
२. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृष्ठ ८२, ८३

निःस्वार्थ निष्काम प्रेम ही सब कुछ है। प्रेम की तल्लीन अवस्था में ही ईश्वर की अनुभूति सम्भव है और शैतान, साधक को निर्दिष्ट मार्ग से विचलित करने का प्रयास करता है। शैतान से बचने के लिये पीर की आवश्यकता होती है। इन्हीं व्यापक सिद्धान्तों को लेकर प्रेम-काव्य चला।[1] प्रेममयी काव्यधारा के प्रमुख कवि जायसी हुए। जायसी के पूर्व सूफी कवियो की रचनाएँ कल्पना पर आधारित थीं। जायसी ने सूफी सिद्धान्तों को भारतीय कथा मे पिरोया और हिन्दू हृदय को आकर्षित किया। उन्होने सब धर्मों को समान दृष्टि से देखा। उन्होने पद्मावत की रचना फारसी की मसनवी शैली पर की। कला का खण्डों में विभाजन, कथा प्रारम्भ मे ईश्वर स्तुति, मुहम्मद आदि पैग़म्बरो और तत्कालीन शासक शेरशाह की वन्दना, आत्मपरिचय, छोटी-छोटी बातो का विस्तृत वर्णन, विरह वर्णन मे भी बीभत्सता आदि बाते मसनवी शैली के ढंग पर अपनाई गई हैं। साथ ही भारतीय परम्परा के अनुसार षट् ऋतुवर्णन, बारहमासा, रस, अलंकार आदि और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भी भारतीय परम्परा का अनुसरण किया।[2] वर्णनात्मक काव्य के लिये दोहा-चौपाई वाली शैली को ही अपनाया गया। पॉच-पॉच चौपाइयो पर एक दोहा का प्रयोग मिलता है। भाषा अयोध्या के आस-पास की ठेठ अवधी है।[3]

पहले कहा जा चुका है कि युग की परिस्थितियाँ ही काव्य का विकास करती हैं। भक्ति-काव्य राजाओ या शासको के प्रोत्साहन पर अवलम्बित न था। वह जनता की प्रवृत्ति का प्रवाह था जिसका प्रवर्तक काल ही था। उसे न तो पुरस्कार या यश ने उत्पन्न किया और न भय ही रोक सका। अकबर की नीतिकुशलता और उदारता से काव्य और कला के क्षेत्र मे उत्साह का संचार हुआ जो भारतीय कलावंत छोटे-मोटे राजाओ के यहॉ किसी प्रकार अपना निर्वाह करते हुए, संगीत को सहारा दिये हुए थे, वे अब उसी शाही दरबार मे पहुँच कर वाह-वाह की ध्वनि के बीच अपना करतब दिखाने लगे। जहॉ बचे हुए हिन्दू राजाओं की सभा मे कविजन थोड़ा-बहुत उत्साहित या पुरस्कृत किये जाते थे, वहाँ अब बादशाह के दरबार मे भी उनका सम्मान होने लगा। कवियों के साथ-साथ उनकी कविता का सम्मान भी बढ़ने लगा।[4] अकबर के शासनकाल में एक ओर तो साहित्य की चली आती परम्परा को प्रोत्साहन मिला, दूसरी ओर भक्त कवियो की दिव्यवाणी का स्रोत उमड

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, प० रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ ६६
   हिन्दी साहित्य का इतिहास, डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, पृष्ठ ८९

२. वही, पृष्ठ ९३

३. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ ६८

४. वही, पृष्ठ १८१

चला। सूर और तुलसी जैसे भक्त कवि उसी काल में हुए। जनता पुनः अवतारवाद तथा ईश्वर संगुणोपासना की ओर झुकी। ईश्वर में शील, शक्ति सौन्दर्य का उचित सामञ्जस्य स्थापित किया गया। भक्तिभावना के निरूपण में कविगण अधिक लीन हुए। सगुणोपासना के दो रूप प्रधान थे; एक कृष्ण भक्ति, दूसरा राम भक्ति। साहित्य की इन प्रबल लोकअनुरंजन और लोकउपकार करने वाली दो भावनाओं को बाद में चलकर दो अप्रतिम आश्रय प्राप्त हुए सूर और तुलसी।

कृष्ण भक्त कवियो में सूरदास ने प्रेममूर्ति कृष्ण को ही लेकर प्रेमतत्त्व की सुन्दर अभिव्यञ्जना की है। तुलसीदास के समान इनमें लोकसंग्रह का भाव नहीं था। सूरसागर में भागवत के दशम स्कंध की कथा ही ली गई है। इसमें कृष्ण जन्म से लेकर कृष्ण के मथुरा जाने तक की कथा अत्यन्त विस्तार से फुटकल पदों में गाई गई है। इनके गीतों में श्रृंगार और करुण दोनों का स्वाभाविक विकास हुआ है। उनकी श्रृंगारिक पदों की रचना बहुत कुछ विद्यापति की पद-पद्धति मे ही हुई है। श्रृंगार और वात्सल्य के क्षेत्र में जहाँ तक इनकी दृष्टि पहुँची, वहाँ तक और किसी कवि की नहीं। श्रृंगार के अन्तर्गत भावपक्ष और विभावपक्ष दोनो के अत्यन्त विस्तृत वर्णन मिलते हैं। उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों की प्रचुरता है।[1] श्रृंगार के अतिरिक्त उनकी रचना मे शान्त, हास्य और करुण रस का सुन्दर सामञ्जस्य मिलता है। उनके काव्य मे भाषा और भाव का भी उत्कृष्ट समन्वय हुआ है।

राम साहित्य के प्रधान कवि तुलसीदास हैं जो एक महान् लोकनायक और धर्मात्मा थे। उनके प्रसिद्ध ग्रंथ रामचरितमानस और विनयपैत्रिका में उनके व्यक्तित्व की स्पष्ट झलक मिलती है। रामचरितमानस मे भरत के चरित्र का उन्होंने जो चित्रण किया है वह कई दृष्टियों से परमोपयोगी है। उसमें उन्होंने भरत को न केवल एक बन्धु के नाते महत्त्व दिया है; अपितु उनमें अपने अनुसार एक सच्चे भक्त का भी आदर्श रख दिया है।[2] उनके पात्र मानवजीवन के किसी न किसी अंग पर प्रकाश डालते हैं और मनुष्य के हृदय में सद्वृत्ति जगाते हैं। उन्होंने भगवान की नरलीला के माध्यम द्वारा मानव उत्थान को अपना चरम लक्ष्य बनाकर काव्य के सारे उपकरण परम्परागत ही ग्रहण किये। उनकी रचनाओं मे भावों का सुन्दर, सजीव और यथा-तथ्य वर्णन है। वे आर्यमर्यादा वैदिक वर्णाश्रमधर्म, राजधर्म, समाजधर्म, गृहधर्म, राष्ट्रधर्म और संयम के पोषक थे। उन्होंने भारतीय संस्कृति का वास्तविक रूप जनता के सामने रखा और राम के लोकपावन रूप का आधार लेकर साहित्य और जीवन दोनों का उज्ज्वल सामञ्जस्य किया। उनकी भाषा परिमार्जित और साहित्यिक है। उन्होंने भावमय, सरस एवं कोमल संस्कृत शब्दो का चयन किया। दोषपूर्ण भद्दे

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ १५७
२. भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक रेखाएँ, परशुराम चतुर्वेदी, पृष्ठ १३२

ग्रामीण प्रयोगों से मुक्त उनका शब्दचयन, पात्रानुकूल, भावानुकूल और विषयानुकूल है। भोजपुरी, बुन्देली और सर्व परिचित अरबी-फारसी के शब्दों से परिपूर्ण उनकी भाषा नवों रसों का भार वहन करने में समर्थ हुई है।

राम काव्य के अन्तर्गत केशव का नाम भी उल्लेखनीय है। केशव भक्तकवि नहीं थे। रामकथा का विषय लेकर उन्होंने साहित्यिक गौरवपूर्ण दृष्टि से काव्य की रचना की थी। वे कवि की अपेक्षा, आचार्य अधिक थे। उनका समय भक्ति तथा रीति का सन्धियुग था। केशव की रचना 'रामचन्द्रिका' में न तो कोई दार्शनिक अथवा धार्मिक आदर्श है और न लोकशिक्षा का ही वह स्वरूप जो तुलसी के रामचरितमानस में है। वास्तव में केशव के आचार्यत्त्व प्रदर्शन के मोह में भक्ति दर्शन आदि आदर्शों की अपेक्षा हो गई है।[1] वे किसी भी पात्र के आदर्श पूर्ण चरित्र की स्थापना नही कर सके हैं। कविप्रिया रसिकप्रिया रस सम्बन्धी तथा कविप्रिया अलंकार सम्बन्धी लक्षणग्रन्थ हैं। नखशिख में नायिका के नभ से शिख तक विभिन्न अंगों की विधि बतलाई है। इन तीनों ग्रन्थों में धार्मिक भावना ही प्रधान है जो उस युग का प्रभाव है।[2] वास्तव में केशव में भावों की तन्मयता और काव्य की सरसता का अभाव है। उनकी भाषा बुन्देलखंडी मिश्रित ब्रजभाषा है। अत्यधिक संस्कृत गर्भित और अप्रचलित शब्दों के प्रयोग से ब्रजभाषा का माधुर्य बहुत कुछ समाप्त हो गया है। भाषा में अलंकारों की छटा पग-पग पर द्रष्टव्य है।

भक्तकवियों में गुरु नानक का नाम भी उल्लेखनीय है। सिक्खधर्म के मूल प्रवर्तक गुरु नानक ने तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों का पर्यवेक्षण करके ही काव्य की रचना की। उन्होंने यह कार्य किसी जातिविशेष के निर्माण के लिये नहीं किया था। उस समय की सामाजिक परिस्थिति एवं समाज की सामुदायिक मनोवृत्ति के कारण उनका पहले धर्म के सहारे चलना स्वाभाविक था। उन्होंने सर्वप्रथम परमात्मा का अस्तित्व, उसके स्वरूप तथा उसकी आराधना की समीक्षा आरम्भ की और तब दूसरी ओर अग्रसर हुए। फिर भी उनके प्रारम्भिक प्रयत्नों मे भी भविष्य के संगठन का बीज वर्तमान था जो आगे चलकर उत्तरोत्तर अंकुरित और पल्लवित हुआ।[3]

गुरु नानक ने भौतिक धारणा से प्रभावित होने के ही कारण अपने जीवन में किसी प्रकार की विभिन्नता को नहीं माना। उन्होंने अपने पदों की रचना करते समय अपने नाम के स्थान पर केवल 'नानक' शब्द का ही व्यवहार किया। तदनुसार जिस प्रकार एक दीपक से जलाये हुए सभी अन्य दीपक एक ही ढंग से प्रकाश फैलाते हैं और उनमें किसी प्रकार का भी मौलिक अन्तर नहीं रहता, उसी प्रकार

---

१. आचार्य केशवदास, डा० हीरालाल दीक्षित, पृष्ठ १७

२. वही, पृष्ठ १८

३. भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक रेखाएँ, परशुराम चतुर्वेदी, पृष्ठ १३९

उक्त नव सिक्ख गुरुओ ने भी गुरु नानक द्वारा किये गये प्रस्तावों को उचित एवं सर्वमान्य समझकर उनका समर्थन किया और उनमें निहित सिद्धान्तो को कार्यरूप मे परिणत करने के लिये वे सदा सचेष्ट रहते आये।[1] सिक्ख गुरुओ ने अपने सिद्धान्तों का केवल मौलिक प्रचार ही किया था। प्रथम चार सिक्ख गुरु अर्थात् नानक, अंगद, अमरदास एवं रामदास ने काव्य क्षेत्र मे विशेष मौलिक उद्भावना नही की।

अकबरकाल के पूर्व हिन्दीसाहित्य के मध्यकाल के सन्त कवि कबीर, नानक, भोजपुरी, पंजाबी, राजस्थानी मिश्रित देशी भाषाओं मे, प्रेममार्गी सूफी कवि कुतुबन, मंझन, जायसी आदि अवधी बोली में तथा सगुण भक्ति केर सखान, आलम, मीराबाई ब्रजभाषा मे अपनी रचनाएँ प्रस्तुत कर चुके थे। इन कवियों ने अपने परवर्ती अकबर-कालीन कवियों के लिये काव्य का मार्ग प्रशस्त कर दिया था। तत्कालीन विशेष परि-स्थितियो के कारण साहित्य मे काव्य के अतिरिक्त किसी अन्य अंग की ओर लोगो का ध्यान न था।[2] परिस्थितियों की जटिलता के कारण गुरु अर्जुनदेव के समय मे मुगलों और सिक्खो मे मनोमालिन्य बढ़ा। घात-प्रतिघात की प्रक्रिया नवे गुरु तेगबहादुर की हत्या के बाद, और भी अधिक हुई। इसका प्रभाव काव्य पर भी पड़ना स्वाभाविक ही था। यही कारण है कि गुरु गोविन्दसिंह के पूर्व, सिक्ख गुरुओं की रचनाओं में धार्मिक भावनाओं एवं सिद्धातो से संबंधित सरल प्रतिपादन मिलता है और सामाजिक एवं धार्मिक जटिलताओं का विरोध भी कम नहीं है। परन्तु गुरु गोविन्दसिंह जैसी वीर भावना का सर्वथा अभाव मिलता है। किसी न किसी रूप मे दशमेश जी के अतिरिक्त सभी गुरुओं ने गुरु नानकदेव का ही अनुकरण किया है।

युग की परिस्थितियों ने जिस तीव्र झंझावात की अवतारणा की, उससे प्रभावित होकर शान्त, धार्मिक सिक्ख समुदाय वीर-सेना के रूप मे उठ खड़ा हुआ और शास्त्र-चर्चा के ही साथ शस्त्र-परिचालन की भी महत्ता बढ़ गयी। इसका परिणाम यह हुआ कि शान्त-रस परिपूर्ण ईश्वरस्तुतियों के साथ ही वीर रस का महत्त्व भी बढ़ चला। यही नही, ईश्वर का भी शस्त्रधारी बनने के लिये विवश होना पड़ा। दशमेश जी की सारी रचनाओ में वीर-रसात्मकता को प्राथमिकता मिलने का कारण, युगीन परिस्थितियों की बदलती करवटे ही थी। साहित्य मे सुमधुर ईश्वरभजन के स्थान पर अस्त्रों-शस्त्रों की झनझनाहट भी गूँजने लगी। इसे युग की मॉग का पूरा होना ही समझा जाना चाहिये।

वह युग रीति-काव्य की रचनाओं का था। रीति-युग मे यद्यपि वीरगाथा और भक्तिकालीन प्रवृत्तियाँ अवश्य है, परन्तु उनका इसमे प्रायः उल्लेखमात्र ही है। इस

---

१. वही, पृष्ठ, १४३

२. अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, पृष्ठ ७

साहित्य मे न तो वीरगाथाकाल की सी राष्ट्रीय जागरूकता ही है, न आत्मगौरव एवं अमम्य वीरता की भावना। इसमें विलासिता, रसिकता का विशेष जोर है। ईश्वर, परलोक, मुक्ति आदि का कहीं-कही परम्परा निर्वाह के लिये उल्लेख किया गया है। साहित्य की आत्मापोषण के स्थान पर उसके बाह्यागों पर साहित्यकारो की विशेष रुचि प्रतीत होती है। शब्दों का कलात्मक प्रयोग कब और कैसे तथा किन-किन अवसरो पर होना चाहिए उसमे बडी सतर्कता एवं सावधानी बर्ती गई है। आलंकारिक उपकरणों द्वारा साज-सज्जा की ओर कवियो की दृष्टि अधिक केन्द्रित मिलती है।

देश की तत्कालीन परिस्थितियों ने रीतिकालीन प्रवृत्तियो के विकास को एक कलात्मक मोड़, राजनैतिक निश्चिन्तता और देश की समृद्धि ने पराधीनता और निष्क्रिय मनोवृत्ति ने काव्य और कला की सृजनात्मक प्रक्रिया में रसिकता और विलासिता को प्रोत्साहित किया। दरबारी वातावरण मे पलने वाला कवि एवं कलाकार अपने आश्रयदाता के विलास और राग-रंग मे घुल-मिल सा गया। आश्रयदाता की मानसिक स्थिति को देखते हुए उसे कभी-कभी अपनी वृत्ति की सुरक्षा के लिये अपने शृंगारिक भाव छिपाकर आश्रयदाताओं को संतुष्ट करनेवाली वाणी का प्रयोग भी करना पड़ता था। इन कवियो ने नायक-नायिका का चुनाव भी इसी दृष्टि से किया। राजाश्रय में लिखे गये साहित्य में मौलिक और गम्भीर चिन्तन का अभाव ही है। हिन्दी काव्य-शास्त्र के आचार्यों एवं समीक्षको का उस युग मे अभाव नही मिलता। ये संख्या की दृष्टि से ही नही गुणों की दृष्टि से भी उल्लेखनीय थे। यह युग मूलतः काव्य की सजावट का था। काव्य के बहिरंग के सौदर्य-विधान के लिये अच्छे से अच्छे काव्य-सिद्धान्तों और पद्धतियों को पुरानी परम्परा से छानबीन कर अपने लिये अलग कर लिया गया। इससे काव्य का बहिरंग अवश्य चमकदार, भड़कीला एव सौदर्य से समृद्धिशाली बना, परन्तु उसके आन्तरिक पक्ष को वे उद्घाटित न कर सके। इस प्रकार के ग्रथों मे काव्य-लक्षण, छंद, अलंकार, रीति आदि पर विशेष ध्यान दिया गया, इनके सारे लक्षण तथा अन्य काव्य-रीतियाँ सब संस्कृत कवियों से उद्धृत थीं। उन्होंने संस्कृत साहित्य से अपनी युग की रसिकता के तृप्त करनेवाले स्थलों को अपना लिया। कुछ ने इस क्षेत्र में अपनी मौलिकता का दावा भी किया।

तात्विक अथवा दार्शनिक विवेचन से पूर्ण कोई ग्रन्थ इस युग में नहीं लिखा गया। क्योंकि सर्वत्र विलासपूर्ण वातावरण से राजाओं, नवाबों, धनिकों का जीवन रसिकता मे डूबा हुआ था। उन्हें ऐसे शुष्क विषय पर चिन्तन कर अपना समय खोने की आवश्यर्कता ही नही प्रतीत होती थी। इसके अतिरिक्त राजनैतिक परिस्थितियों भी इसके अनुकूल नही थीं। शासन की ओर से इसकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था। भक्तिकाल मे जिस प्रकार की उच्चकोटिक चिन्तनप्रधान रचनाएँ लिखी गईं, उसका रीतिकाल मे केवल परम्परा के रूप में वर्णन मिलता है। शृंगारिक छंदों के

बीच-बीच में कहीं एकाध भक्ति या नीति के दोहे या उसकी समर्थित पक्तियाँ आ गई हैं। यद्यपि परम्परा के रूप में वही पुरानी लकीर पीटी जा रही थी।

इस युग की मूल प्रवृत्ति 'शृंगार' थी। शृंगार का रस-राजत्व सबने एक स्वर से स्वीकार किया है। यह परम्परा संस्कृत से ही उद्भृत थी। भक्ति के उपास्य अथवा भक्ति के आलंबन इस युग में शृंगार के नायक-नायिका अथवा आलंबन-आश्रय बने। उपासना का आवरण पहने जो शृंगारी कविता हिन्दी में प्रचलित हुई, उसका लगाव पीयूषवर्षी जयदेव से कहा जाता है। वही विद्यापति और सूर आदि व्रजवासी कवियों से होती हुई अपना प्रसार कर रही थी। कवियो ने जब इस शृंगार का निरूपण आरम्भ किया तो वे राधा-कन्हाई के सुमिरन का बहाना, करके घोर शृंगार............आदि के अश्लील वर्णन भी साहित्य के भंडार मे भरते गए।[1] राजाओं, नवाबों की मनोवृत्तियों के अनुसार जो साहित्य रचा जा रहा था, उसमें शृंगार से सनी छोटी-छोटी उक्तियों का बड़ा आदर बढ़ता जा रहा था। थोड़े से समय मे रसाभिभूत कर देने की क्षमता जितनी मुक्तकों मे होती है, उतनी अन्य किसी काव्य पद्धति में नही। फलतः काव्य क्षेत्र में मुक्त छंदों की खूब माग बढ़ने लगी। मुक्तको के प्रचार के साथ ही भारतीय साहित्य में शृंगार की उक्तियों भी बढ़ने लगी।[2] शृंगारिकता के प्रवाह से इस युग का कोई भी साहित्यकार अपने को बचा न सका। गुरु गोविन्दसिंह की रचनाओं पर शृंगारिकता का स्पष्ट प्रभाव है, यथा कृष्णावतार ग्रंथ में तो रासक्रीड़ा, केलि, कामोत्तेजकऋतुओं एवं परिधानों का वर्णन आदि। परन्तु उनके शृंगारिक वर्णन में कहीं भी उच्छृंखलता अथवा निम्नकोटि की रसिकता नहीं मिलती। वीर सेनानी शासक के लिये जो संयमित, सन्तुलित शृंगारिक भावना आवश्यक होती है वही उनमें विद्यमान है।

शृंगार के नायक-नायिका, सखी, दूती, पड़ोसिन, बारहमासा, षटऋतु, संयोग, पूर्व-राग, मान, प्रवास, उपालंभ, विरह की विविध दशाएँ उनकी रचनाओं मे वर्णित हैं। नायक नायिका की अवस्थानुसार सौंदर्यविकास, नखशिख वर्णन जो रीतिकाल की प्रमुख विशेषता है, उसका प्रभाव भी गुरु जी के ग्रंथों मे पर्याप्त दृष्टिगोचर होता है। नायक-नायिका भेद के लक्षणों को भी यदि सूक्ष्मता से ढूँढा जाये तो वह भी उनकी रचनाओ मे प्रायः मिल जायँगे।

शृंगार का केन्द्रबिन्दु युवा नारी अथवा युवा पुरुष का सौंदर्य एवं रसमय जीवन का चित्रण हुआ करता है। इसका प्रभाव साहित्य पर पड़ा। नारी को देखकर पुरुष के हृदय मे जितने प्रकार के भाव प्रकट हो सकते हैं, सभी का भली प्रकार चित्रण हुआ है।

---

१. बिहारी वाग्विभूति, आ० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृष्ठ

२. वही, पृष्ठ

रीतिकाल में भारतीय परम्परा पर फ़ारसी काव्य का भी प्रभाव पड़ा। भारत में स्वकीया के प्रेम का ही वर्णन प्रमुख रहा है। स्वकीया के दाम्पत्यजीवन मे हस्तक्षेप करनेवाले स्त्री-पुरुषो को अधमा तथा अधम की उपाधि देकर तिरस्कृत दृष्टि से देखने की प्रवृत्ति रही है। गुरु गोविन्दसिंह ने पाख्यान चरित्र में परकीया प्रेम को हतोत्साहित किया है।[1]

रीतिकालीन साहित्य में प्रेम की चर्चा अधिक मिलती है, परन्तु यह प्रेम आदर्श-कोटि का नहीं। इस प्रेम का आलम्बन नारी और आश्रय पुरुष ही अधिकाशतः है। नारी के प्रति सामन्तीय दृष्टिकोण होने के कारण इस युग का साहित्यकार प्रेम का स्वस्थ चित्रण न कर सका। वह समाज का एक चेतन इकाई न होकर बहुत कुछ जीवन का उपकरण मात्र थी। चेतन के प्रति चेतन का सक्रिय आकर्षण न होकर व्यक्ति का सुन्दर उपभोग्य वस्तु के प्रति निष्क्रिय आकर्षण अधिक है।[2] नायिका-भेद मे नारी के अंगों-प्रत्यंगो, उसकी मनोभावनाओ, दशाओं, क्रियाओं का विस्तार हुआ है। नारी की कोई वैयक्तिक सत्ता नही प्रतीत होती, न पुरुषो को उसकी इस सता से प्रेम ही है। उसके लिये तो प्रेम केवल नारी के प्रमदा कामिनी रूप से ही है। नैतिक् आदर्शों की शिथिलता होने के कारण रीतिकाल में कामवृत्ति की अभिव्यक्ति की स्वछन्दता थी। अतएव इस युग के काव्य मे स्थूल शारीरिकता और प्रेम के बाह्य रूप का ही विशेष चित्रण है।

जैसा कि पहले सकेत किया जा चुका है, राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक परिवेश पर शासन की धर्मान्धता, कट्टरता, अनीति का आधिपत्य था, जिसके विरोध में स्थान-स्थान से पंजाब, महाराष्ट्र और बुन्देलखंड से हिन्दू वीर उठ खडे हुए। ऐसे समय में वास्तविक कवि भी अपने अशक्त स्वर में जनता को अन्याय और अत्याचार के विरोध में जगाने का सफल प्रयत्न करने लगे। भूषण, लाल, सूदन आदि ऐसे ही कविपुंगव थे। गुरु गोविन्दसिंह अत्याचार एवं उत्पीड़न के सर्वाधिक विरोधी युगनिर्माता होने के साथ ही, सरस्वती को भी दुर्गा के रूप में वीर-वेश में सज्जित करने में सफल हुए।

तद्युगीन परिस्थितियों के कारण दशमेश जी की रचनाएँ भक्ति, शृंगार के साथ-साथ वीर-रस की भी सफल अभिव्यक्ति करती है। उनमें युद्ध-वर्णनों और संघर्षो का प्रभावशाली चित्रण उस काल के वातावरण को उद्घाटित करता है। इसके प्रभाव

---

१. निज नारी के साथ नेह तुम नित्य बढ़ैयहु,
पर नारी की सेज भूलि सुपने हूं न जैयहु ॥
पर नारी के भजे सहस बासव भग पाए,
पर नारी के भजे चन्द्र कालंक लगाए ॥
पा० चरित्र, दशम गुरु ग्रंथ, सं० २२, छंद संख्या ५१, ५२

२. रीतिकाव्य की भूमिका, डा० नगेन्द्र पृष्ठ १७६

स्वरूप रीतिकाल में विद्यमान हिन्दू राष्ट्रनेता, जागरूक धर्मोपदेशक गुरु गोविंदसिंह के काव्य में उस युग की सभी प्रवृत्तियों का समावेश मिलता है। दशमेश जी का सारा काव्य रीतिबद्ध कवियों मे आता ही नही है। वे किसी रूढ़ि-पद्धति, रीति-परम्परा के कायल नही थे। वे स्वच्छन्द साधक थे। शृंगारकाल अथवा रीतिकाल की भावनात्मक प्रवृत्तियों का प्रभाव उनमे होते हुए भी वह रीतिबद्ध कवियों मे नही आते।

भावों के समान ही काव्य की शैली मे भी विशेषता दृष्टिगत हुई। निर्गुण कवियो की गीतपद्धति का प्रभाव जनता के हृदय पर अधिक पडा था और जब सूर तथा अन्य मुक्तककारो ने इस पद्धति को भाव के सुनहले रत्नो द्वारा मंडित किया तो उसका चमत्कार कई गुना बढ़ गया।[1] सूरदास के अतिरिक्त वल्लभ संप्रदाय के अन्य अष्टछापी कवियों एवं भक्त कवियो ने भी गीतपद्धति को ही अपनाया। मुक्तक रचनाओ में कवित्त, सवैया, छप्पय, सोरठा, बरवै आदि छन्द विशेष रूप से प्रयुक्त हुए। संस्कृत छंदो का भी यत्र-तत्र प्रयोग किया गया। नीति सम्बन्धी रचनाओ के लिये दोहे, सवैये और छप्पय, इतिवृत्तात्मक प्रकार की कविता के लिये चौपाई, सोरठा, और शृङ्गार आदि की रचना के लिये कवित्त सवैया का आश्रय विशेष रूप से लिया गया। शान्त-रस के साथ रौद्र, वीर, बीभत्स आदि नवों रसों की अभिव्यक्ति भी कुछ स्थलो पर हुई।

साहित्यिक जीवन के आरम्भ मे सर्वप्रथम किसी भाषा का प्रेम होना अति आवश्यक है। भाषा क्षेत्र मे भी क्रांति हुई। वीरगाथाएँ अधिकतर राजस्थानी में ही लिखी गई थीं; किन्तु भक्ति सम्बन्धी रचनाओ में ब्रज और अवधी का स्रोत प्रवाहित हुआ। दशमेश जी को सब भाषाओ के आदिस्रोत संस्कृत से अधिक प्रेम था। संस्कृत के अतिरिक्त फारसी, अरबी, ब्रज आदि भाषाओ का भी पूर्ण ज्ञान था। यही कारण है कि दशमेश जी की रचनाओ मे तद्युगीन छंदो दोहा, चौपाई, चौपई, अरिल्ल, पद, भुजंग, प्रभात, नाराच आदि विविध काव्य-शैलियो, उपाख्यान, चरित्र, नाम-स्तुति, मुक्तक, प्रबंध, दृष्टकूट आदि विविधभाषाओ, ब्रज, अवधी, फ़ारसी, आदि और विविध विषयो का स्पष्ट प्रयोग एवं प्रतिपादन मिलता है।

---

१. अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, पृष्ठ ८.

द्वितीय अध्याय

जीवन-वृत्त

भारतीय कवियों तथा लेखकों के सम्बन्ध में यह एक विशेष बात दृष्टिगत होती है कि वे अपने जीवन-सम्बन्धी उल्लेखों के प्रति सदैव से उदासीन रहे हैं। संस्कृत, प्राकृत ग्रंथो के रचयिताओं का नाम आज भी हमें ज्ञात नही है। संभवतः इसीलिए कि वे अपने जीवन-वृत्त के सम्बन्ध मे कुछ लिखना आत्मश्लाघा समझते थे। अतएव अनेक कवियों अथवा लेखको के सम्बन्ध मे उनके समकालीन और परवर्ती कवियो के उल्लेखो पर ही प्रायः निर्भर करना पड़ता है। हाँ, कुछ कवियों की रचनाओं में यद्यपि उनके जीवन का कोई क्रमबद्ध विकास नही मिलता; किन्तु उनमे प्रसंगवश उनके जीवन सम्बन्धी कतिपय घटनाओं के उल्लेख स्वतः आ ही जाते हैं और इसमे सन्देह नहीं कि ये उल्लेख उनके जीवन के विविध सूत्रों को जोड़ने मे अत्यधिक सहायक सिद्ध होते हैं। अतः किसी भी कवि की रचनाओं मे समकालीन अथवा परवर्ती कवियों के निर्देश अथवा स्वयं कवि की रचनाओ में उसके निजी उल्लेख जो क्रमशः बहिस्साक्ष्य और अंतस्साक्ष्य के रूप में होते हैं, अधिक महत्वपूर्ण माने जाते हैं। इस प्रकार कवियों का जीवन-वृत्त अन्तस्साक्ष्य और बहि-स्साक्ष्य दोनो सूत्रों पर आधारित होता है।

सिक्खधर्म के दसवे गुरु गोविन्दसिंह हिन्दी के प्रतिभाशाली कवियों मे श्रेष्ठ स्थान रखते हैं। उनके जीवन के सम्बन्ध मे अनेक यूरोपीय तथा भारतीय विद्वानों ने कई ग्रंथ लिखे हैं। वे ग्रथ उनके जीवन-वृत्त पर भी यथेष्ट प्रकाश डालते हैं। यूरोपीय विद्वानो मे मैकालिफ, कनिंघम के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं और यह सन्तोष की बात है कि इन विद्वानों की रचनाओं में अधिक मतभेद नहीं मिलता। गुरुजी ने स्वरचित "विचित्र नाटक" नामक ग्रंथ में अपने जीवन की कतिपय घटनाओं का क्रमबद्ध उल्लेख किया है; किन्तु इस ग्रंथ मे उनके जीवनपर्यन्त तक का विवरण नहीं मिलता है। परवर्ती रचनाओं मे भाई सुखासिंह रचित गुरुविलास और संतोषसिंह रचित सूरजप्रकाश तथा उसकी टीका दशमेश-चमत्कार आदि महत्त्वपूर्ण प्राचीन रचनायें हैं जिनमे गुरु गोविन्दसिंह का जीवन-वृत्तात पद्यबद्ध मिलता है। इन ग्रंथों की प्रामाणिकता के सम्बन्ध मे कोई मतभेद नही है। ऐतिहासिक ग्रंथों से भी इन घटनाओं की पुष्टि होती है। यहाँ पर गुरु गोविन्दसिह के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में उक्त स्रोतो का आधार किया गया है।

जन्म तथा वंश-परिचय—

गुरु गोविंद सिंह का जन्म पटना नगर में संवत् १७२३ वि० पूस के महीने में हुआ जिसका उल्लेख प्राचीन प्रामाणिक ग्रंथों में हुआ है। इसकी पुष्टि अन्य ग्रंथ से भी होती है। उन्होंने स्वरचित ग्रंथ 'विचित्र नाटक' में अपने जन्म-स्थान और जन्म-समय की घटनाओं का सविस्तार उल्लेख किया है।[1] पटना जो गुरु गोविंद सिंह की जन्म-भूमि है वहाँ के शिरोमणि गुरुद्वारे के तहखाने में अंकित स्मारक-प्रस्तर पर उनकी जन्मतिथि का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। उसी गुरुद्वारे मे प्राप्त सर्व-प्राचीन हस्तलिखित संग्रह-ग्रंथ मे गुरु जी की जन्मतिथि पूस सुदी सप्तमी संवत् १७२३ दी हुई है।[2] उनका जन्म सोढी वंश में हुआ था। प्रथम तीन गुरु वेदी वंश और उनके पूर्व के छः गुरु सोढी वंश में हुए। गुरु गोविद सिंह ने विचित्र नाटक में अपने वंश का विस्तार पूर्वक परिचय दिया है।[3] उनके पिता का नाम गुरु तेगबहादुर और माता का नाम गूजरी था। गुरु जी के बचपन का नाम 'गोविद राय' था। तत्पश्चात् खालसा पंथ में दीक्षित होने पर उन्होंने अपना नाम 'गोविंद सिह' रख लिया था। गुरु जी की माता उनको इस नाम से नहीं बुलाया करती थीं क्योंकि हिन्दू-प्रथा के अनुसार वह अपने बड़े ससुर का नाम नहीं लेती थी। छठे गुरु का नाम भी हरगोविन्द था। इसलिये वह उनको 'श्याम' के नाम से ही सम्बोधित किया करती थीं।[4]

---

१. (अ) मुर पित पूरब कीयसि पयाना ॥ भाँति-भाँति के तीरथि नाना ॥
जब ही जात त्रिवेणी भये। पुन्य दान दिन करत बितये ॥
ताही प्रकाश हमारा भयो। पटना सहर मिलें भव लयो ॥
विचित्र नाटक, अध्याय ७, पृष्ठ ४५

(ब) संवत् सत्रह सहस भनीजै। बीस तीन संग बरख गनीजै ॥
महि पोख पुन अधिक सुबीनै। जगत प्रवेस कृपानिधि कीनै ॥
गुरु विलास, पृष्ठ ४६

२. (अ) इस पवित्र स्थान से ही मिती पोष सुदी सप्तमी संवत् १७२३ में श्री गुरु गोविन्द सिंह महाराज का जन्म हो गया।
पटना के गुरुद्वारे में स्मारक प्रस्तर पर अंकित।

(ब) दि पोयट्री आफ दशम ग्रंथ : डा० धर्मपाल आश्ता, पृष्ठ ३११

(स) जीवन कथा, श्री गुरु गोविंद सिंह : प्रो० कर्तार सिंह, पृष्ठ २८

३. (अ) विचित्र नाटक, पृष्ठ २०, २३

(ब) गुरु विलास, छंद ८१, पृष्ठ ५०

४. दि पोयट्री आफ दशम ग्रंथ, पृष्ठ १४
गुरु विलास, पृष्ठ ५०

बाल्यकाल—

गुरुजी का बचपन पटना शहर में ही व्यतीत हुआ। बाल्यकाल में उनका लालन-पालन बडे उत्साहपूर्वक किया गया। उनकी माता के प्रेमपूर्ण व्यवहार ने उनके जीवन में मधुरता और मृदुता भर दी। कई ऐसे उल्लेख मिलते हैं जिनसे बाल्यकाल में ही उनकी वीरता, धर्म-प्रेम और कुशाग्रबुद्धि का परिचय प्राप्त होता है। बचपन में वह ऐसे खेल खेला करते थे जिन्हें बडे होने पर उन्होंने अपने जीवन में चरितार्थ किया। अपने साथियों को दो दलों में बाँट कर कृत्रिम युद्ध किया करते और स्वयं उनके सरदार बनकर उन्हें युद्ध-विद्या सिखाया करते थे। इसका अभ्यास वे झूठे बाण, तोपे, खड्ग, गुलेल आदि बनाकर किया करते थे।[1] पटना के शिरोमणि गुरुद्वारे में अभी भी उनके बचपन के शस्त्र तथा अन्य सामान उपलब्ध हैं। जब उन्होंने आनन्दपुर के लिये प्रस्थान किया तब भी वे अपने साथ वहाँ से युद्ध के शस्त्र ही साथ लेकर गये थे।[2]

पटने मे केवल हिन्दू ही नहीं, मुसलमानों के हृदय में भी बालक गोविन्द के लिए श्रद्धा उत्पन्न हो गई। इनमे नवाब रहीम बख्श और सैयद भीखन के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। नवाब के भाइयों के दो बाग और एक गॉव अब भी गुरुद्वारे के नाम से प्रसिद्ध हैं।[3] कुछ काल पश्चात् उनके पिता जी ने उनको आनन्दपुर मे शीघ्र

---

१. तीर तुपक, निसंग, सर, तोर तबर तरवार।
खंजर बुगद कटार वर सिखन देहि सुधार॥

गुरु विलास, पृष्ठ ५३

२. आयुध श्री सतिगुरु के जेते॥ डारि संदुकन लीन सु तेते॥
खंजर, बुगदे, तेग, कटारी॥ जिनकी अधिक सुकीमत भारी॥

गुरु विलास पृ. ५७

शस्त्रों के नाम : चक्र २, चक्री १, कड़ा १, खंजर १, कटार १, दुधारा तलवार १, तीर ४, मिट्टी गुलेला १, इसके अतिरिक्त हाथी दाँत की खड़ाऊँ और चन्दन का कंघा तथा पाकिस्तान बनने के बाद खंडवा की सिंह सभा से प्राप्त अंगरखा। चोला १५ वर्ष की अवस्था का।

तीर तुफंग निखंग सुजानहु॥ तोप तमाचे सिपर प्रमानहु॥
चीज दिसावर विविध सुजेती॥ कर लेइ तियार सकल सो तेती॥

गुरु विलास, पृष्ठ ५७

३. जीवन कथा, श्री गुरु गोविन्द सिंह, प्रो० कर्तार सिंह, पृष्ठ ३५

आने के लिये लिखा। तदनन्तर उन्होंने आनन्दपुर के लिये प्रस्थान किया।[१] मार्ग में वे काशी[२], प्रयाग, अयोध्या, लखनऊ[३], हरिद्वार[४], मथुरा और वृन्दावन आदि तीर्थ-स्थानो मे ठहरते हुए लखनौर[५] पहुँचे। अपने पिता के आदेशानुसार वे कुछ

---

१. मद्र देस कों अबही आवहु।
यामहि रती न देर लगावहु॥
आयस ले तब करी तियारी।
भांति-भांति की सौज सुधारी।
तम्बू चार कनात मिआने।
सतरांजी ज़ाजम समिआने॥

गुरु विलास, पृष्ठ ५६

२. केतक मारग में दिन लाईं, वाराणसी मधि पहुँचे आईं॥
काशीपुरी अधिक बरसोहे, तवन समान पुरी नही कोहे॥
वाराणसी नाम कह कहे, अनिक जन्म के किलविख दहे॥

गुरु विलास, पृष्ठ ७०

३. दीन दयाल दयानिध साहिब आवत है इम कूच सु कीनै
श्री अवधेस के देसन में निज आन धसे जगन्नाथ प्रवीने।
औध पुरी सरजू तट पावन आन परा प्रभु पग पंकज दीने।
आनन्द भयो दुख द्वन्द मिटे पुन तीरथ राज दीदार सु लीने।

गुरु विलास, पृष्ठ ६८

४. केतक काल दयाल प्रभु हरिदुआर पुरीनिज भीतर आये।
रूप अनूप पुरी सु विलोकत धन्न श्री मुख तीरथ गाये।
सेस सुरेस धनेस पुरी यह देखत ही तर सीस निवाये।
छीर समान चले गंग उदक जो परसे तिह पाप निसाए॥

वही, पृष्ठ ७०

५. ताते पयान निधान करायो।
करुणा बद बरखत मग धायो।
कितक काल इह भांत बिताईं।
श्री लखनौर पहुंच आईं॥
पुर लखनौर अजब अस्थाना।
कर चरित्र प्रभु जिह थाना।
पल्लव पग पंकज सुख सारे।
अद्भुत गुरु जिह धरे पिआरे।

वहीं, पृष्ठ ७१

दिन लखनौर शहर में रहे। यहाँ भी वह अपने साथियों के साथ वही खेल खेलने लगे जो वे पटने मे खेला करते थे। घोडे पर सवार होकर प्रतिदिन नगर मे निर्भय होकर घूमना और शिकार खेलना उनका मुख्य कार्य था।[१] इस नगर मे भी उन्होंने अपने गुणों द्वारा मुसलमानों को अपनी ओर आकर्षित कर लिया। इनमें पीर अलफदीन का नाम प्रमुख है।[२] लखनौर से कुछ दिन बाद प्रस्थान करके कीर्तिपुर पहुँचे जहाँ गुरु हरिराय रहा करते थे। कीर्तिपुर के निकट ही उन्होंने एक सुन्दर नगर बसाया।[३] अन्त में वह आनन्दपुर पहुँचे जहाँ पर अपने सम्बन्धियों से मिलकर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

गुरु गोविन्द सिह ६ वर्ष की अवस्था तक पटना में रहे थे इसलिये वहाँ की स्थानीय भाषा पूर्वी हिन्दी उन्होने अच्छी तरह सीख ली थी। आनन्दपुर के निवासी बड़े चाव से उनकी बातें सुना करते थे। हिन्दी गुरु गोविन्द सिंह की एक प्रकार से मातृभाषा हो गई थी। कतिपय लेखकों का विचार है कि गुरु गोविन्द सिह के आनन्दपुर पहुँचने के पहले ही उनके पिता गुरु तेगबहादुर, मुगल शासक औरंगजेब के आमंत्रण पर दिल्ली प्रस्थान कर चुके थे, इसलिए वे अपने पिता से न मिल सके; किन्तु उनका यह विचार सत्य नहीं सिद्ध होता क्योंकि गुरु गोविन्द सिह ने स्वरचित 'विचित्र नाटक' में इसका उल्लेख किया है कि उन्हे अपने पिता का स्नेह प्राप्त हुआ। उन्होंने उनके लालन-पालन का उचित प्रबन्ध किया था। अनेक प्रकार के उपदेश प्राप्त हुए थे और जब वे धर्म-कर्म के योग्य हो गये तो पिता ने स्वर्गलोक को प्रस्थान किया।[४] इस कथन से यह स्पष्ट है कि पिता का साक्षात्कार उन्होने किया था और उनका स्नेह उन्हें काफी समय तक प्राप्त हुआ।

---

१. करहिं शिकारहु सुचनल प्रकारा,
निरमे फिरहिं देस तिह माहीं।
वही, पृष्ठ ७२

२. जारत कर मुलतान दी
अरफदीन इक पीर।
प्रो. कर्तारसिंह. जीवन-कथा गुरु गोविन्द सिंह, पृ० ४१.

३. कीरतपुर ते अग्र वर पांच कोस के तीर।
नगर बसायो सतिगुरु सुन्दर गहर गंभीर ॥
गुरु विलास, पृष्ठ ४

४. मद्रदेस हमको लै आए। भांति भांति दाइअन दुलराए ॥
कीनी अनिक भांति तन रच्छा। दीनी भांति-भांति की सिच्छा ॥
जब हम धर्म करम मो आए। देवलोक तब पिता सिधाए ॥
विचित्र नाटक, अध्याय ७, पृष्ठ ४५

ऊपर कहा जा चुका है कि हिन्दी उनकी मातृभाषा बन गई थी इसके अतिरिक्त उन्होंने अन्य भाषाओं को भी सीखा। पंजाबी उन्होंने साहबचन्द ग्रन्थी से सीखी। फारसी भाषा की शिक्षा उन्होंने एक मुस्लिम शिक्षक पीर मुहम्मद से प्राप्त की। गुरु तेगबहादुर ने प्रारम्भ से ही उन्हें शस्त्र-विद्या और घोड़े की सवारी की भी शिक्षा दिलवा दी थी।[1]

गुरु जी के स्वरचित विचित्र नाटक से ज्ञात होता है कि पिता के वध के पश्चात् छोटी अवस्था में ही वे गुरु-गद्दी पर बैठे। उस समय उनकी अवस्था केवल दस वर्ष की ही थी। "जनम साखी गुरु गोविन्द सिंह" में उनके राजगद्दी पर बैठने की तिथि माघ सुदी तीज संवत् १७३३ विक्रमी दी गई है।[2] गुरु विलास में भी इसकी पुष्टि होती है।[3] पिता का निर्दयता से वध किये जाने का उन पर गहरा प्रभाव पड़ा था। उनके हृदय मे तभी से ऐसे अत्याचारी क्रूर शासक के प्रति घृणा का भाव उत्पन्न हो गया। गुरु तेगबहादुर के वध का उल्लेख प्राचीन प्रामाणिक रचनाओं तथा ऐतिहासिक ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। प्रसिद्ध इतिहासकार डा० यदुनाथ सरकार ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि उन्होंने काश्मीर के हिन्दुओं को इस्लामधर्म मे जबरदस्ती परिवर्तित करने का खुला विरोध किया था। दिल्ली में बुलाये जाने पर उन्हें कारागार में डालकर इस्लामधर्म ग्रहण करने के लिए विवश किया गया और उनके विरोध करने पर पाँच दिनों के पश्चात् उनका वध कर दिया

दि पोयटरी आफ दशम ग्रंथ, डा० धर्मपाल आश्ता, पृष्ठ ३११
जीवन कथा श्री गुरुगोविंद सिंह, प्रो० कर्तार सिंह, पृष्ठ ४५

१. (अ) दि पोयटरी आफ दशम ग्रंथ, डा० धर्मपाल आश्ता, पृ० ३११

(ब) जीवन कथा : श्री गुरु गोविन्द सिंह, प्रो० कर्तार सिंह, पृ० ४४

(स) तीर तुपंग निखंग सर, तोप तपर तरवार।
खंजर बुगद कटार बर सिक्खन देहि सुधार॥
गुरु विलास, पृ० ५३

२. इह सतिगुरु जी मघर सुदी तीज सम्मत १७३३ विक्रमी नु राजगद्दी दे तखत ते विराजमान होए।
श्री दशमेश चमत्कार : भाई ज्ञान सिंह, पृ० ७२

३. सत्रह सै त्रियतीस में भाखत सुमत सुजान।
राज साज प्रभु धारियो इह पुर अधिक प्रमान॥ दो० २२०
गुरु विलास, पृ० १०१

गया ।[1] गुरु-विलास में भी गुरु तेग बहादुर के वध का वर्णन विस्तार से मिलता है ।[2] स्वयं गुरु जी ने उनके बलिदान का उल्लेख किया है ।[3]

सेना-संगठन—

गुरु गोविंद सिंह पर पिता के वध का गहरा प्रभाव पड़ा और उन्होंने मुगल शासक से लोहा लेने का दृढ़ निश्चय किया । यह पहले कहा जा चुका है कि गुरु गोविंद सिंह को बाल्यकाल से ही शस्त्र-विद्या से प्रेम था और परिस्थितिजन्य विवशता

---

१. He encouraged the resistance of the Hindus of Kashmir to forcible conversion to Islam and openly defied the Emperor. Taken to Delhi, he was cast in prison and called upon to embrace Islam and on his refusal was tortured for five days and then beheaded on warrant from the Emperor.

History of Aurangzeb—Dr. J. N. Sarkar, Page 313

२. मुगल सम्राट औरंगज़ेब ने हिन्दुओं पर अनेक प्रकार के अत्याचार करके उन्हें मुसलमान बनाया था । संवत् १६७५ ई० तक उसने अनेक हिन्दुओं को मुसलमान बना लिया था । हज़ारों हिन्दू इस अत्याचार से पीड़ित और दुखी थे । अन्त में काश्मीर के पण्डित गुरु तेगबहादुर के पास आनन्दपुर आये और अपने दुखों का वर्णन इस प्रकार किया—

इक काश्मीर सुसङ्ग जो आयो ॥ तिन वृतान्त हजूर सुनायो ।
तुरकन अधिक अनीति उठाई ॥ हिन्दू किये सब तुरक बनाई ॥

गुरु विलास, पृष्ठ ८१

उनकी दुःखद कथा सुनकर गुरु तेगबहादुर सोचने लगे कि जब किसी क्षत्री की बलि चढ़ाई जाएगी तभी हिन्दुओं का उद्धार हो सकेगा किन्तु ऐसा शूरवीर कौन हो सकता है ? तभी गुरु गोविन्द सिंह ने इस प्रकार उत्तर दिया—

यों सुनकर पित की सुतबानी बीच सभा कहि प्रकट बखानी ॥
तुमते अधिक और को आही ॥ देग तेग जाके गृह माहीं ॥

गुरुविलास, पृष्ठ ८१, दो. १६

गुरु तेगबहादुर ने इतना सुनते ही दिल्ली को प्रस्थान किया । वहाँ अत्याचारी शासक औरंगजेब ने उनका वध करवा दिया । इस प्रकार हिन्दू धर्म के रक्षार्थ वह बलिदान हो गये ।

३. तिलक जञ्जू राखा प्रभ ताका ।
कीनो बड़ो कलू महि साका ॥

विचित्र नाटक, अध्याय ५, पृष्ठ ३३

के कारण भी वे अपने शस्त्र और सेना को बढाते रहे। प्रतिदिन वे शस्त्र चलाने का अभ्यास किया करते थे। उनके साथ उनकी बुआ के पाँच लड़के सागू शाह, जीतमल, गोपालचन्द, गंगाराम, मेहरीचन्द और सुरजमल के दो लड़के गुलाब राय और श्यामदास, मामा कृपाल सिंह, भाई दयाराम और नन्द-चन्द रहते थे।[1] धीरे-धीरे बहुत से लोग उनकी सेना में सम्मिलित हो गये। डा० गोकुल चन्द नारंग ने अपनी पुस्तक मे वर्णन किया है कि वे मनुष्य जिन्होंने कभी कृपाण को छुआ तक नही था और न बन्दूक को कभी अपने कंधे पर रखा था, वीर सैनिक बन गये। उन्होंने ऐसे लोगों को वीर योद्धा बना दिया जो कभी औरगजेब का नाम सुनकर काँप जाया करते थे। उनकी सेना में सभी जाति और वर्ग के लोग धोबी, चमार, मेहतर आदि निम्न वर्ग के लोग सम्मिलित थे।[2] प्रतिदिन आनन्दपुर के मैदान में शस्त्रों और घुड़दौड़ का अभ्यास होता था। पिता की हत्या की ही यह प्रतिक्रिया थी।[3] जब सब लोगों को यह मालूम हुआ कि गुरु गोविंद सिंह अन्य उपहारो की अपेक्षा शस्त्र, घोड़े आदि अधिक स्वीकार करते हैं तो बस लोग उन्हें उपहार मे हृष्ट-पुष्ट घोडे, शस्त्र तथा अन्य युद्ध का सामान भेट करने लगे। इस प्रकार दिन प्रतिदिन उनकी सेना और शस्त्रों मे वृद्धि होने लगी। इसके अतिरिक्त काबुल, कंधार, बलख और गजनी के लोग अमूल्य दुशाले आदि भी उनके लिये उपहार मे लाते थे। उन्होंने गुरु गोविन्द सिह को एक बहुमूल्य तम्बू भेट किया जिसमें सोने और चाँदी के तारों से कशीदाकारी और नकाशी का काम किया हुआ था। उसे बनवाने मे सवा दो लाख रुपये खर्च हुए थे। वह तम्बू काबुल के एक

---

१. दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, पृष्ठ २

गुरु जी शस्त्रां दा अभ्यास कर दे, तिखे तीरां दा निशाना कर दे, होर नेजाबाजी आदिक खेडां करदे, सुरजमलजी दे दोवें पुत्र, इन्हां दी भुआ दे पँजे पुत्र, मामा कृपाल जी ते दयाराम प्रोहित जी भी चँगी तरह शस्त्र विद्या दा अभ्यास करके सिख गये।

श्री दशमेश चमत्कार, पृष्ठ ७६

२. ट्रान्स्फारमेशन आफ् सिक्खिज़्म, डा० गोकुल चंद नारंग, पृष्ठ

३. महाराज ने सब किसम दे शस्त्र हथियार इकट्ठे किने, अते न केवल आप ही उन्हां दी वरतों दा अभ्यास रोज कर दे सगो अपने सब सिखां नू इस आहरे लाई रख दे। उन्हां दा समां सुरमीआंदि आ बारां गऊन ते सुनन, शिकार खेडन, तीर अंदाज़ी, घोड़ दौड़ अते अजेहे होंर सूरवीरां वाले कमां विच गुज़र जादां सी।

जीवन कथा, गुरु गोविंद सिंह, प्रो० कर्तार सिंह, पृष्ठ ७८

(शेष पाद टिप्पणी अगले पृष्ठ पर देखिये)।

सिक्ख दुनी चन्द ने भेट किया था। ऐसा तम्बू दिल्ली के बादशाह के पास भी नहीं था।[1] आसाम के राजा रत्नराय ने एक सुन्दर हाथी जिसे सब प्रकार का काम करना सिखाया गया था और एक ऐसा शस्त्र जिसे दबाने से बर्छी, बल्लम, पिस्तौल और बन्दूक आदि पाँच अलग-अलग शस्त्र बन जाते थे, भेट किये। उस हाथी का नाम 'प्रसादी' रखा गया। साथ मे एक ऐसी चौकी दी जिसमें चार पुतलियाँ थीं जो कल दबाने से पासा खेलती थीं। बहुत से घोड़े भी भेट किये।[2]

सेना की वृद्धि करने के पश्चात् गुरु गोविन्द सिंह ने यह अनुभव किया कि सेना के साथ एक नगाड़ा भी होना अति आवश्यक है क्योंकि बिना इसके सेना में अनुशासन रहना असम्भव है। उन्होने एक नगाड़ा भाई नन्द-नन्द और कृपाल सिंह की सहायता से तैयार करवाया। उसका नाम 'रणजीत नगाड़ा' रखा।[3] उन दिनों में

He was not the person to leave his father's death unrevenged. All his thoughts were directed to turning the Sikhs into soldiers to the exclusion of every other aim.
History of Aurangzeb, J. N. Sarkar, p. 314

१. जीवन कथा गुरु गोविन्द सिंह, प्रो० कर्तार सिंह, पृष्ठ ७९
श्री दशमेश चमत्कार, भाई ज्ञान सिंह, पृष्ठ ८७

२. दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, पृष्ठ ४, ५
श्री दशमेश चमत्कार, पृष्ठ ९२

प्रसादी हाथी सुन्ड विच चौर लेके महाराज ते फेरदा, चरण धोन लगियाँ गंगा सागर सुन्ड विच फड़के पानी पाउंदा ते तोलिए नाल चरण, पंझूदा, महाराज दे चलाये होए तीर दूरों लम्भ लिओन्दा। पंज कला हथिआर तियार करवाया जिस दी कला फेरन नाल बर्छी, गुरज, तलवार, पिस्तौल ते बन्दूक पंज बखरे बखरे शस्त्र बन जांदे सन। पंज सजे होए घोड़े, चहुं पुतलियाँ वाली चौकी मोतियाँ दी माला आदि भेंट कीते।

जीवन कथा : श्री गुरु गोविन्द सिंह, प्रो० कर्तार सिंह, पृ० ८०, ८१
गुरु विलास, पृष्ठ १०८

३. (अ) दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, पृष्ठ ५
(ब) जीवन कथा श्री गुरु गोविन्द सिंह, प्रो० कर्तार सिंह, पृष्ठ ८४
(स) श्री दशमेश चमत्कार, भाई ज्ञान सिंह, पृष्ठ ९३
(ह) सुरा धूप दे सुमन चढ़ाई ॥ श्री रणजीतहु करी बड़ाई ॥
पकर चोब तिन की सु निबहि ॥ दीनो श्री रणजीत बजाई ॥

नगाड़ा केवल राजाओं के पास ही रहता था। कोई भी राजा किसी दूसरे राजा को नगाड़ा बजाकर अपने राज्य से बिना पराजित किये जाने नहीं देता था। गुरु जी के शिष्यों ने उनसे नगाड़ा न रखने के लिये आग्रह किया; किन्तु जब वह न माने तो उनकी माताजी के पास जाकर कहा कि गुरुजी नगाड़ा रखकर राजाओ से शत्रुता मोल ले लेगे। उनकी माता ने भी उन्हें ऐसा करने से रोका; किन्तु गुरुजी तोनिर्भीक थे, उन्होंने अपनी माताजी को यही उत्तर दिया कि उनका जन्म ही अत्याचारी राजाओं का दमन करने के लिये हुआ है। वह मानव रक्त बहाने वाले दुष्टों का नाश करके, निर्मल, निस्सहाय और पददलित मनुष्यों की रक्षा करेगे।[1]

पहाड़ी राजाओं से संघर्ष

गुरु गोविन्द सिंह की बढती शक्ति को आसपास के राजा सहन न कर सके और वे उनका विरोध करने लगे। इस कारण गुरु गोविन्द सिंह के जीवन मे संघर्षों का श्रीगणेश हुआ। एक बार जब गुरु जी विलासपुर के पास शिकार खेलने गये तो रणजीत नगाड़ा की आवाज राजा भीमचन्द ने सुनी तो उसने अपने मंत्री से पूछा कि यह नगाड़ा किसने और कहाँ बजाया है? मंत्री ने उत्तर दिया कि "मतोवाल में गुरु गोविन्द सिंह जो गुरु नानक की परम्परा मे दसवे गुरु हैं, उनका यह नगाड़ा है। उनके पिता ने लुंग पर्वत के नीचे थोड़ी जमीन खरीद कर गाव बना लिया था। सहस्रों व्यक्ति दूर-दूर से उनके पास नतमस्तक होने आते हैं। अभी हाल में राजा आसाम ने अनुपम वस्तुएँ उन्हें भेट की थीं। मेरे विचार से उनके साथ सौहार्द भाव रखना उचित होगा।"[2] राजा भीमचन्द ने गुरु जी से मिलने का निश्चय किया

इह बिध गरज्यो तबै नगारा ॥ कंपत भई सपत ही धारा ॥
जैसे सिंघ जलद धुन होई ॥ तस रणजीत नाद धुन सोई ॥

गुरु विलास, पृष्ठ १०४

१. (अ) हम एह काज जगत मो आए ॥ धर्म हेत गुरुदेव पठाए ॥
जहाँ तहाँ तुम धर्म बिथारो ॥ दुष्ट देखीअन पकरि पछारो ॥
याही काज धरा हम जन्मं ॥ समझ्हु लेहु साधु सब मनमं ॥
धर्म चलावन, सन्त उबारन ॥ दुष्ट सभन को मूल उपारन ॥

विचित्र नाटक, अध्याय ७, पृष्ठ ४१

(ब) दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, पृष्ठ ६

२. (१) दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, पृष्ठ ७
(२) गोविंद सिंह वर नाम भनीजै ॥
तिनका नृपति समझहु नगाड़ा ॥ बाजत माखोवाल मझारा ॥

गुरु विलास, पृष्ठ १०५

और आनन्दपुर उनके पास पहुँचा। गुरु गोविन्द सिंह ने उसका स्वागत किया और आसाम के राजा की भेट की हुई वस्तुएँ उसको दिखाई। "प्रसादी" को देखकर राजा उस पर मुग्ध हो गया तथा उसे प्राप्त करने के उपाय सोचने लगा और उसमें असफल होने पर वह गुरु जी का शत्रु बन गया।[१]

शनैः शनैः गुरु गोविन्द सिंह की सेना की चर्चा सब जगह होने लगी। श्रीनगर के राजा फतेह चन्द से नाहन के राजा मेदनी प्रकाश की शत्रुता थी। नाहन के राजा ने गुरु गोविन्द सिंह को अपने पास बुलाया और अपने नगर की बहुत प्रशंसा की। उन दिनों भीमचन्द गुरु गोविन्द सिंह से युद्ध करने के लिये तैयार था। उनके शिष्यों ने सोचा कि यह बहुत सुन्दर अवसर है। गुरु गोविन्द सिंह यदि वहाँ चले जायेंगे तो भीमचन्द से युद्ध नही होगा। उन्होने उनकी माता से कहा कि गुरुजी को किसी तरह नाहन भेज दे। गुरु गोविन्द सिंह ने अपनी माता की आज्ञा का पालन किया और उन्होंने वहाँ जाने की तैयारी कर ली। गुरुजी पहाड़ी राजाओं की कूट नीति से भली भाँति परिचित थे इसलिये वहाँ जाने के पूर्व उन्होने पूरा प्रबन्ध कर लिया। अपने साथ ५०० उदासी सिक्ख, हाथी, घोडे, तोपे आदि लेकर उन्होंने नाहन की ओर प्रस्थान किया।[२] आनन्दपुर की देखभाल का भार सूरजमल के दोनों लड़के गुलाब राय और श्यामदास को सौंप गये।[3] वहाँ के राजा ने उनका आदर-सत्कार किया और शिकार के लिये अनेक रमणीक स्थान दिखाये। उन्ही स्थानों मे से गुरु

---

(३) एक दिन राजे भीमचन्द ने रणजीत नगाड़े दी गर्ज अपनी राजधानी दे नै है सुनी तां वजीर नू पुछिया इह दिल काम्बा देन वाली गर्ज किस दे नगाड़े दी है? कौन राजा चढ़ाई करके आरिहा है। वजीर ने किहा श्री गुरु गोविंद सिंह जी शिकार दा आनन्द ले रहे हन ॥

जीवन कथा श्री गुरु गोविन्द सिंह, प्रो० कर्तार सिंह, पृष्ठ ८९

१. दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, पृष्ठ ९,१०

२. (१) दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, मैकालिफ, पृष्ठ १६

(२) सकल कूच की करी तियारी ॥ गज बाजन पर पाखर डारी ॥
पुन श्री मुख सो यों फुरमयो ॥ तोपखाना प्रति आयस दयो ॥

गुरु बिलास, पृष्ठ १२५

(३) इह विध देस चाल प्रभू करी ॥ सहर पांवटा की सुधि धरी ॥
धुजा पताका घुरत नगारे ॥ गये कूच दर कूच सुधरे ॥

वही, पृष्ठ १२५

३. (१) श्री दशमेश चमत्कार, पृष्ठ ११९

(२) दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, पृष्ठ १६

गोविन्द सिंह को एक स्थान किला बनाने के लिये अधिक उपयुक्त जान पडा।[1] उनके इस विचार से राजा बहुत प्रसन्न हुआ क्योंकि वह स्थान नाहन की सीमा पर था। सीमा के उस पार राजा फतेह शाह रहता था जो नाहन के राजा का शत्रु था और उसने अनेक स्थानों पर अधिकार कर लिया था। शीघ्र ही वहाँ पर किला बनाया गया जिसका नाम उन्होंने पावटा रखा।[2]

पावटा नगर में प्रतिदिन अनेक सैनिक गुरु के पास आकर उनकी सेना में भर्ती होते रहते थे। यहीं पर बुद्ध शाह सठीरे का जागीरदार भी अपने साथ ५०० शस्त्रों से सुसज्जित उन पठानों को लेकर आया जिन्हे औरंगजेब ने अपनी सेना से निकाल दिया था और बादशाह के भय से कोई भी उन्हें अपने पास नहीं रखता था। गुरु गोविन्द सिंह ने निर्भीकतापूर्वक उन पठानों को अपनी शरण मे ले लिया और सेना में भर्ती कर लिया। उन पठानों के पाँच मुख्य सरदार थे—हयात खा, कालेखा, निजावत खा, ऊमर खां, और भीखन खा।[3]

---

(३) समै सु भूमि हेर के प्रभू सु बैण गाहयो ॥
इहै सु भूमि आच्छ है हमें सुचीत माह्यो ॥
सु सुध मध भूम का कृपाल हेरिके ॥
कह्यो नरेस एस को करो किला सु घेर के ॥

गुरु विलास, पृष्ठ १२६

नगर विराजत उत सिरी इत नाहन की हद्द ॥
मध्य भाग दोहरान के लग्यो नाथ को गद्द ॥

गुरु विलास, पृष्ठ १२९

१. (१) देश चाल हमते पुनि भई। शहर पांवटा की सुधि लई ॥
कालिन्द्री तटि करे विलासा। अनिक भांति के पेत तमासा ॥

विचित्र नाटक, पृष्ठ ४६

(२) प्रभु जू धरै उतार पग पंगज इत पावटे
ताटे करयो दियार नामु शिरोमणि पांवटा ॥

गुरु विलास, पृष्ठ १२७

(३) दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, पृष्ठ १७

२. (१) सुने जु अस बात को पठान जुआन आइयों
बसी सु जानदा मले सहस पांच धाइयो
भले सु ओर भीखन खनं मजा बतंवई
सिरदार जान तीन के बड़े बखानीये सुई।

गुरु गोविंद सिंह ने जब पाँवटा का किला नाहन और श्रीनगर की सीमा पर बनाया तो श्रीनगर का राजा फतेहशाह उसके पास विरोध प्रकट करने के लिए आया।[1] गुरुजी के मामा कृपाल सिंह ने उसे समझाया कि नाहन के राजा से शत्रुता छोड़ दीजिये। फतेह शाह ने इसे स्वीकार कर लिया। इस प्रकार गुरु गोविंद सिंह ने राजा मेदनी प्रकाश और राजा फतेह शाह की वर्षों से चली आई शत्रुता का अन्त करके सन्धि करवा दी और दोनों के छीने हुए प्रदेश उन्हें वापिस करा दिये। इस घटना से दोनों राजा गुरु गोविंद सिंह के अनुयायी बन गये। गुरुजी राजा फतेह शाह और मेदनी

लिखी तिने सु चाकरी रखै हजूर में सबैं।
सु और औघने रखे जिते हजूर में तबैं।

गुरु विलास, पृष्ठ १२७

(२) दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, मैकालिक, पृष्ठ २०

(३) बुद्ध शाह ने आखिआ इह पंज सौ पठान हन जिन्हा नू औरंगजेब ने कह दिता है। पातशाह तो डरदा कोई एन्हा नू नौकर नहीं रखदा। एह पठान लोग लड़ाई विच तकड़े हुन्दे हन। सरदारा दे नाम ह्यूयात खाँ, कालेखाँ, निजावत खाँ, ऊमरखाँ, भीखन खाँ सन।

श्री दशमेश चमत्कार, पृष्ठ १२७

१. (१) जीवन कथा श्री गुरु गोविन्द सिंह, प्रो० कर्तार सिंह, पृष्ठ १०५

(२) तहिं के सिंह घने चुनि मारे।
रोझ रीछ बहु भाँति विदारे॥
फतहशाह कोपा तब राजा।
लोह परा हम सों बिनु काजा॥

विचित्र नाटक, पृष्ठ ४६

(३) श्री दशमेश चमत्कार, पृष्ठ १२१

(४) इह विध देस चाल प्रभु करी। सहर पाँवटा की सुध धरी।
धुजा पताका घूरत नगारे, नये कूच दर कूच सुधारे॥

गुरु विलास, पृष्ठ १२५

(५) प्रभू जी धरे उतार पग पंगज इत पाँवटे।
तातें धरयो दियार नामु सिरोमणि पाव्टाँ॥

वही, पृष्ठ १२५

प्रकाश को साथ लेकर नाहन के जंगलों में शिकार खेलने जाते थे।[1] वहाँ भी युद्ध का अभ्यास करते थे। एक बार उन्हें मालूम हुआ कि उस जंगल में श्वेत रंग का एक अत्यन्त बलवान शेर रहता है। उसे मारने के लिये कई राजाओं ने प्रयत्न किया किन्तु सभी असफल हुए। गुरु गोविन्द सिंह ने उसे मारने का निश्चय किया। उस समय उनके साथ दोनों राजा भी थे। गुरुजी ने उन्हें भी उस शेर को मारने के लिये कहा; किन्तु उन्होंने यही उत्तर दिया कि उसे मारना उनके लिये असम्भव है। तब गुरु जी स्वयं ढाल और तलवार लेकर वहाँ गये जहाँ शेर बैठा था। शेर जब उनकी तरफ झपट कर आया तो उन्होंने उसके दोनो पंजों को ढाल से रोक लिया और तलवार से एक झटके में उसके दो टुकडे कर दिये। उनकी इस अतुलित वीरता को देखकर सभी आश्चर्य चकित हुए।[2] गुरु गोविन्द सिंह के ऐसे वीरतापूर्ण कृत्यों ने ही समीपस्थ राजाओं तथा उनके अनुयायियों में उनके प्रति श्रद्धा और आदर का भाव उत्पन्न कर दिया।

पारिवारिक जीवन

गुरु गोविन्द सिह की वीरता की प्रशंसा सुनकर दूर-दूर के लोग उनके दर्शनार्थ आते थे। उनमें ऐसी आकर्षण शक्ति थी जिस कारण कई संभ्रात व्यक्ति उनसे

---

१. सिंघन साथ लरावहि वीरन ढाल कृपाण धरे हथियारा
एक लरे सकटारन सो निज जो वर बीर वचित्र अपारा
एक बन्दुकन सो लरही वह त्रास करे हरि जच्छ निहारा।
दीन दयाल किधौं बन भीतर लाइ रह्यो इह जुद्ध अखारा॥
गुरु विलास, पृष्ठ १२९

२. (१) जीवन कथा श्री गुरु गोविन्द सिंह, प्रो० कर्तार सिंह, पृष्ठ १०९
(२) और सु शेर घने जु हने पुन, एक मृगीस बह्यो बलधानी।
मारिओ मरे न किसु भट ते बल रूप भयानक है वह जानी॥
देस नदेस भटेस बुले प्रभ काहू न ता संग वार करानी॥
बीर सुवीर प्रहार हरेवह केहर है किधौ काल निधानी॥
गुरु विलास, पृष्ठ १३०

(३) हाथ उठाइ सुतुंड पसारी। गुरु पर आयो वह पसु आरी।
तौ करुणानिध गहि कर ढार। रोके वाके पंज हजार॥
दूते हाथ गहि कलत कृपानी। हनियो घाव सिंह उर मधि जानी।
ऐस कृपान वही उर मधि। उरवी गिरियो होइ कर वधि॥
गुरु विलास, पृष्ठ १३१

(४) श्री दशमेश चमत्कार, पृष्ठ १२५

अपनी पुत्रियों का विवाह सम्पन्न करने के प्रबल इच्छुक थे। लाहौर निवासी सुमिखिया क्षत्री ने २३ अषाढ़ संवत् १७३४ मे अपनी सुपुत्री जीतो देवी का विवाह उनसे कर दिया।[१] रामसरन क्षत्री की इच्छा भी अपनी पुत्री का विवाह गुरु जी से करने की थी। उन्होंने तो इसे अस्वीकार किया; किन्तु गुरु जी की माता जी ने रामशरन की प्रार्थना को स्वीकार करके उनकी पुत्री सुन्दरी का विवाह उनसे कर दिया।[२] एक अन्य सूत्र से ज्ञात होता है कि गुरुजी के तीन विवाह हुए थे। तीसरा विवाह रोहतास गॉव के एक प्रेमी सिक्ख की कन्या से हुआ। गुरुजी का इस कन्या से कोई शारीरिक सम्बन्ध नहीं था। उन्होंने उसे खालसा जी की माता बन कर रहने को कहा जिसे उस कन्या ने स्वीकार कर लिया।[3]

गुरु गोविन्द सिंह के बहु विवाह का विषय विवादपूर्ण है क्योंकि उनके आचरण को ध्यान मे रखते हुए यह बात मानने योग्य नही है। विशेष रूप से जब कि वे मोह-माया मे लिप्त नहीं थे और उनका सारा जीवन ही उत्कृष्ट कार्य करने में व्यतीत हुआ तो वे तीन विवाह किस प्रकार कर सकते थे ! जब वह स्वयं किसी को दुःखी नही देखना चाहते थे तो फिर एक स्त्री के रहते हुए उसे कष्ट पहुॅचा कर दो विवाह और कैसे कर लिये होंगे ! यह तो मानना ही पड़ेगा कि वह स्त्रियों के मोहमाया से बिल्कुल अलग थे। उनके स्वरचित प्रामाणिक ग्रन्थ पाख्याने चरित्र में भी उनके आदर्श चरित्र की कई घटनाएँ उपलब्ध हैं। कहा जाता है कि पाख्याने चरित्र लिखने का प्रमुख कारण ही चन्द्र कुँवर नामक एक धनाढ्य रमणी का उनकी सुन्दरता पर मोहित होना था।[४] सम्भव है उनका एक ही विवाह हुआ हो और हिन्दू प्रथा

---

१. दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, मेकालिफ, पृष्ठ २
श्री दशमेश चमत्कार, भाई ज्ञान सिंह, पृष्ठ ८०,८२

२. श्री दशमेश चमत्कार, भाई ज्ञान सिंह, पृष्ठ ८८
दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, मैकालिफ, पृष्ठ ३

३. संमत् १७६० दे करीब पिंड रोहतास तो इक प्रेमी सिक्ख अपनी जवान धी नू अपने नाल लैके गुरु जी दे दर्शन करन आईया अते बेनती कीती है सबै पातशाह जम्म तो ही साहिब देवी दा नाता असी तुहाई नाल कर छडिया है। इसनू अपनी दासी प्रदान करो। गुरु साहिब ने किहा चंगा फेर इह मेरे पुत्र खालसा दी माता बने अते इस नो निहाल दी मांवा वांगर सेवा करे। जेकर इसनू इस तरह दा जीवन गुजारना प्रदान है ताँ बड़ी खुशी नाल इसनू ऐथे छड जाओ।

जीवन कथा श्री गुरु गोविन्द सिंह, प्रो० करतार सिंह पृष्ठ २३९

४. पाख्यान चरित्र, सं० २३, पृष्ठ ८४४

के अनुसार उसी का नाम ससुराल में जाकर सुन्दरी रखा गया हो। किन्तु प्रामाणिक पुस्तकों से यही विदित होता है कि जीतो देवी और सुन्दरी एक ही स्त्री के दो नाम नहीं थे। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि उनकी दो पत्नियों ही थीं। यह हो सकता है कि एक पत्नी के कोई सन्तान न हुई हो तो उन्होंने दूसरे विवाह की स्वीकृति दे दी हो क्योंकि दोनों के विवाह की तिथियों में कुछ वर्षों का अन्तर मिलता है। कतिपय लेखक गुरु गोविन्द सिंह का प्रथम विवाह ज्येष्ठ संवत् १७३० मे और दूसरा १७४१ संवत् में मानते हैं और अन्य लेखक जिनमें मैकालिक का नाम भी सम्मिलित है वे उनकी प्रथम शादी आषाढ़ १७३४ वि० और दूसरी ४ वर्ष बाद मानते हैं।[1] किन्तु तीसरा विवाह निश्चय ही संदिग्ध है क्योंकि प्रामाणिक सूत्रों से उसकी पुष्टि नहीं होती। गुरु जी के पुत्रों की जन्म-तिथियों पर विचार करने से भी मालूम पड़ता है कि उनकी एक पत्नी के दो नाम नहीं थे। प्रथम पुत्र अजीत सिंह का जन्म माता सुन्दरी की कोख से वैशाख २३, संवत् १७४५ मे हुआ और चैत २१ संवत् १७४७ मे जुआर सिंह का जन्म माता जीतो की कोख से हुआ। सावन १२, संवत् ७५३ को जोरावर सिंह और चौथे पुत्र फतेह सिह का जन्म फाल्गुन ११, सं० १७५५ में माता जीतो की कोख से हुआ।[2]

उपरोक्त कथन से स्पष्ट है कि गुरु गोविन्द सिंह के चार पुत्र थे। वे चारों भी अपने पिता का ही अनुकरण करते थे। चारों को गुरुजी ने युद्ध-विद्या की उत्तम शिक्षा दी थी। वे पिता की तरह शूर, वीर, निर्भीक और धर्म की रक्षा के लिये

---

१. दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, मैकालिक, पृष्ठ ३, ४

२. श्री दशमेश चमत्कार, भाई ज्ञान सिंह, पृष्ठ १७९, १९६।

(१) साहिब अजीत सिंह जी माता सुन्दरी जी दी कुख चो माघ १७४३।

(२) साहिब जुझार सिंह जी माता जीतो जी दी कुख जो चैत १७४७।

(३) साहिब जोरावर सिंह जी माता जीतो जी दी कुख चो माघ १७५३।

(४) साहिब फतेह सिंह जी माता जीतो जी दी कुख चो चैत १७५५।

जीवन कथा गुरु गोविन्द सिंह, प्रो० कर्तारसिंह, पृष्ठ २६७ मैकालिफ के अनुसार गुरु जी के पहले पुत्र अजीत सिंह का जन्म माघ सं० १७४३, दूसरे पुत्र जोरावर सिंह का चैत सं. १७४७, तीसरे पुत्र जुझार सिंह का माघ संवत १७५३ और चौथे पुत्र फतेह सिंह का फाल्गुन सं० १७५५ में हुआ।

दि सिख रेलिजन भाग ५, पृष्ठ ५१, ५५, ५९, ६०। क्रमशः। श्री दशमेश चमत्कार में जुझार सिंह और जोरावर सिंह को क्रमशः दूसरा और तीसरा पुत्र माना गया है। फतेह सिंह का जन्म चैत १७५५ में न मानकर मैकालिफ ने फाल्गुन सं० १७५५ माना है।

प्राणों की आहुति देने के लिये तत्पर रहते थे। गुरुजी ने अपने पुत्रों को देश की राजनीतिक परिस्थितियो से भली भाँति परिचित करा दिया था। जिनके प्रभाव-वश वे युद्ध-विद्या मे प्रवीण हो गये। वे युद्ध-स्थलों पर अपने पिता के साथ रहकर रण-कुशलता और युद्धविद्या को उत्साहपूर्वक देखते थे। चपकोर के प्रसिद्ध युद्ध में उनके दो पुत्र अजीत सिंह और जोरावर सिंह शहीद हुए थे। इस युद्ध का विस्तृत वर्णन आगे दशमेश जी के राजनीतिक जीवन के प्रसंग मे दिया गया है।

खालसा पंथ की स्थापना—

यद्यपि गुरु गोविंद सिंह का अधिकाश समय युद्धो की तैयारी अथवा युद्धों में ही व्यतीत हुआ तथापि इसका कारण यह नही था कि वे हृदय से युद्धों के पक्ष में थे; किन्तु उस समय की परिस्थितियो ने उन्हें ऐसा करने के लिये विवश कर दिया था। वे सदैव युद्ध को टालने का प्रयत्न करते थे क्योंकि युद्ध प्रायः उनके धार्मिक कार्यों में बाधक होते थे। वे हृदय से जनता का सुधार करने के इच्छुक थे। यदि वे युद्ध चाहते होते तो पीडितों की सहायता के लिये अपने पिता का बलिदान कदापि न होने देते और वीरता से युद्ध मे मुगल सम्राट को पराजित करके हिन्दू-धर्म की रक्षा करते।[१] जब उन्हे यह ज्ञात हो गया कि इस प्रकार आत्मोत्सर्ग, बलिदान तथा कष्ट सहन करने से निर्दयी सम्राट के हृदय मे कोई परिवर्तन नहीं होगा, तभी उन्होंने पाप की शक्ति को नष्ट करने के लिये सशस्त्र सेना तैयार करने का दृढ़ संकल्प किया। वे किसी भी जीव को कष्ट देना नहीं चाहते थे, किन्तु निर्बल, निस्सहाय प्राणियों को सबल, अत्याचारी के पंजे से मुक्त करना भी अपना धर्म समझते थे। जिस समय उनके पिता का वध हुआ उस समय वे केवल १० वर्ष के ही थे। मुगल सम्राट औरंगजेब का सामना करने के लिये उन्हे अपार सेना और शस्त्रों की आवश्यकता थी। उस समय उनके कोमल हृदय ने उन पददलित मनुष्यो को अपनी ओर आकर्षित किया जो हिन्दू संस्कारो की जंजीरों में बँध कर पददलित हो चुके थे। ऐसे मनुष्यों को एकत्र करके उन्होंने अपनी सैनिक-शक्ति को सुदृढ़ किया। गुरु जी ने उन नर-कंकालों में नया जीवन, नई शक्ति का संचार किया। दशमेश जी ने यह प्रतिज्ञा की थी कि वह इन पद-दलित हिन्दू जाति को जो औरंगजेब का नाम सुनकर ही काँपती है, वीर बनाकर युद्ध कराएँगे और अपने इस लक्ष्य को उन्होंने सार्थक करके ही दिखाया।[२]

---

१. जीवन कथा श्री गुरु गोविंद सिंह, पृष्ठ १९८, २२१

२. (१) भेड़ों को मैं शेर बनाऊँ, राठन के संग रंक लड़ाऊँ॥
भूप गरीबन को कहवाऊँ, चिड़ियों से मैं बाज तुड़ाऊँ॥
सवा लाख से एक लड़ाऊँ, तबै गोविन्द सिंह नाम कहाऊँ॥
जीवन कथा श्री गुरु गोविन्द सिंह : प्रो० कर्तार सिंह, पृ० ४५१.

डा० गोकुल चन्द नारंग ने लिखा है कि वे मनुष्य जिन्होंने कभी कृपाण को छुआ तक नहीं था और न बन्दूक को ही अपने कंधे पर रख कर देखा था, सशक्त बीर बन गये। आपने झीवरों, धोबियों, चमारों को भी ऐसा सेनापति बना दिया जिनके आतंक से बडे से बडे राजा भी भयभीत होने लगे। उनका कार्य केवल धर्म का सुधार और दुष्टों का संहार करना ही था। इसकी पूर्ति उन्होंने एक नया पंथ चला कर की जिसका नाम "खालसा पंथ" रखा गया। 'खालसा' अरबी 'खालिस' पर आधारित है जिसका अर्थ है शुद्ध। खालसा-पंथ के द्वारा उन्होंने विशुद्ध मार्ग का अवलंबन कराया इसलिये उनके अनुयायी सन्त भी थे और सैनिक भी। गुरु गोविन्द सिंह ने पाँच सिक्खों की परीक्षा लेकर उन्हें "पंच प्यारे" की उपाधि दी। यह पाँच सिक्ख वे थे जिन्हें ब्राह्मणों ने नीच समझ रखा था। उनके नाम इस प्रकार हैं; भाई दयाराम, लाहौर का खत्री; भाई धर्मदाम, दिल्ली का जाट; हुकुम चन्द, द्वारका का धोबी; हिम्मत राय, जगन्नाथ का कहार; साहब चन्द, विदर का नाई।[1] तत्पश्चात् एक लोहे के बर्तन मे जल डालकर उसमे अपनी खड्ग घोलकर उन सिक्खों को उसे अमृत तुल्य बताया और उन्हे पिलाया; बाद मे सभी सिक्खों को वही जल पिला दिया और कहा कि जिसने यह पिया है वह शेर की तरह बलवान बनेगा और साथ में यह उपदेश भी दिया कि आज से तुम सबका पुनर्जन्म हुआ है। जन्म से तुम सब जिस जाति मे उत्पन्न हुए थे वे समाप्त हो गई हैं, अब जन्म से नहीं कर्म से जाति की परीक्षा होगी। जो वीरता का कार्य करेगा वही क्षत्री हो सकेगा। निर्बलों, निस्सहायो की सहायता करना तुम सबका पवित्र कर्तव्य है। शस्त्रों का अभ्यास करना प्रत्येक दिन का कार्यक्रम होगा। सम्मिलित भोजन करना, अधिकार सम्मत आय तथा ईश्वर का भजन करना यही जीवन का लक्ष्य होगा। अपनी आय का दसवाँ भाग ईश्वरोपासना मे व्यय करना, ईश्वर को छोड अन्य किसी की पूजा न करना, गुरु और ईश्वर के

---

(२) ट्रांस्फारमेशन आफ् सिक्खिज़्म, डा० गोकुल चन्द नारंग, पृ० १३८.

(३) रहनी रहे उही सिख मेरा, उह साहिब मैं उसका चेरा।

श्री दशमेश चमत्कार, पृष्ठ २३०.

१. वासी मोर लाहौर दयाला। नाम दयासिह दास कृपाला॥
मुहकम नाम दुतिगायो। वासी द्वारावती जतायो।
साहिब सिह नाम इक कहा। वासी विदर दछनै अहा।
चतुर्थ धर्मसिह अविनाशी। हस्तन पुरवा जवन की वासी।
पंचम हिम्मत सिह जतायो। वासी श्री जगन्नाथ मनायो।
इह पांचों प्यारे निज जान। जिह कह पाहुल दई निधान॥

गुरु विलास, पृष्ठ २३५

विना किसी के सामने मस्तक न झुकाना, देवी-देवता, पत्थर, मूर्ति किसी की पूजा न करना सभी का परम कर्तव्य होगा।[१] गुरु गोविन्द सिंह ने सिक्खों की एक विशेष वर्दी की भी व्यवस्था की। प्रत्येक सिक्ख के लिये पाँच ककारो को धारण करना अनिवार्य था; केश, कंघा, कड़ा, कृपाण और कच्छा।[२] उन्होंने सबको एक उच्च जाति के साँचे में ढाल दिया। सब सिक्खों के नाम के अन्त में 'सिंह' का चिन्ह रखा। स्वयं सबके पिता, साहिब कौर को माता और आनन्दपुर को सबका गाँव बना दिया। इस प्रकार उन्होंने खालसा पंथ द्वारा सिक्खों में वीरता के भाव जाग्रत किये।

पहाड़ी राजाओं की कुमंत्रणा

गुरु गोविन्द सिंह की इस बढ़ती शक्ति को देख कर पहाड़ी राजा ईर्ष्या करने लगे।[३] उन्होंने उसके पिता के घातक मुगल सम्राट औरंगजेब को गुरुजी के विरुद्ध भड़काया। औरंगजेब ने आज्ञा दी कि शीघ्र ही उन्हें लाकर उसके समक्ष उपस्थित किया जाय। किन्तु गुरु गोविन्द सिंह को पकड़ना टेढ़ी खीर थी। कई दिनों तक

---

१. राजजोग तुम कह मैं दीना। परम जोत संग परचो कीना।
सन्त समुहन को सुख दीजै। अचल राज धरनी महि कीजै।
खालस की चरणी सब लागो। अरम जोत के रस में पागो।
खड्ग गोद तुम कह मैं पायो भिन्न भिन्न कर पंथ बतायो।
महाकाल का करयो ध्याना, घट में निरखो हरि भगवाना।
तुर्क मलेछन सो नहीं मिलना, लै हथियार सामने पिलना।
गुरु विलास, पृष्ठ २३६

सेवा भाव भगति उर धारो। दुष्ट बिदार सन्त निस्तारो।
खड्ग पान बिन अवर न मानहु। सति नाम मंत्र मुख ठानहु।
शस्त्र अस्त्र को करहु तियारा। रहो खालसे जू सद नारा॥
वही, पृष्ठ २४४

२. लै आयस गुरदेव की श्री खालस महाराज।
प्रगट कर्यो जग खालस हिन्दु तुर्क सिरताज।
झूठ पंथ सब त्याग कै एक पंथ दृढ़ कीन।
परम जोति श्री सतिगुरु ज्यों श्री मुख कह दीन।
वही, पृष्ठ २४४

दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, पृष्ठ ९४, ९७
भारत का इतिहास, डा० ईश्वरी प्रसाद, पृष्ठ २००

३. प्रभु को जस लख अनल समाना॥ जहं तहँ जरत राव अरु राना॥
गुरु विलास, पृष्ठ ३८८

मुगल सेना आनन्दपुर को घेरे रही। जब इस प्रकार शाही सेना उन्हें न पकड़ सकी तो गुरुजी को धोखे से पकड़ने के उपाय किये गये। औरंगजेब ने उन्हें गाय और कुरान की शपथ का उल्लेख करते हुए एक पत्र भेजा कि यदि वे आनन्दपुर छोड़ देंगे तो घेरा हटा लिया जायेगा और उनसे मिलने की इच्छा प्रकट की।[1]

औरंगजेब का विश्वासघात

गुरुजी कूटनीतिज्ञ औरंगजेब की नीति को समझते थे; किन्तु उनकी माता तथा सिक्खों ने उन्हें आनन्दपुर छोड़ने के लिये विवश कर दिया। आठ महीने तक लगातार युद्ध में लगे रहने से सैनिक निराश हो चुके थे। वे भूख से व्याकुल थे क्योंकि अब उनके पास खाने के लिये कुछ नहीं रह गया था।[2] उनकी माता जी ने अपने दो पोतों को साथ लेकर आनन्दपुर से प्रस्थान किया। इनको देखकर गुरुजी के सैनिक भी आनन्दपुर छोड़ कर चले गये। तब गुरुजी ने भी विवश होकर आनन्दपुर छोड़ दिया। प्रत्येक सिक्ख को पाँच हथियार बाँध दिये, बाकी सब सामान लुटा दिया और बहुमूल्य वस्त्र और कनाते जला दीं। केवल आवश्यक कागज-पत्र ही

---

१. हे गुरु जी मैं मुलक दा बादशाह हाँ मैं कुरान दी कसम खा के तुहानू इतबार दिंदा हाँ कि मै कदै तुहाडे नाल बुरा बरताव नहीं कराँगा। जैकर मैं अपनी कसम तो बाहर हो जाँता मैनू दरगाह विचो सजा मिले। तुसी लड़ाई बन्द करके आनन्दपुर छड़ दिओ।

श्री दशमेश चमत्कार, पृष्ठ ४८१

धर्म कौल तिन लिख सु पठाइओ। खाई कसम कुरान उठाइओ॥
जो तमरो हम बुरा तकावें। निज दरगाह ठौर नहीं पावें॥
इहाँ ते कूच बेर इक कीजै। हमको आन दरस इत दीजै॥
करिए दोई जबानी बाताँ। जते है इत उत कुसराता॥

गुरु विलास, पृष्ठ ४१५

श्री दशमेश चमत्कार, पृष्ठ ५२७
दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, पृष्ठ १८४,१८५.

२. एक रुपये सेर सुजानहु। बिके अनाज तवन ही थानहुं।
सोभी ढूंढत हाथ न आवै। कहो धीर किऊ तन एह पावै।

गुरु विलास, पृष्ठ ३९९

देखहु अष्टमास अब भये। भोजन बिन प्राण चल गये॥
किह विध धरै कहो हम धीरो। योगत सबके भई सरीरी॥

वही, पृष्ठ ४१५

वे अपने साथ लेकर चल सके।[1] प्रातः जब शत्रु को मालूम हुआ कि रात को ही गुरुजी ने आनन्दपुर छोड़ दिया है तो उन्होंने उनका पीछा किया। सिरसा नदी के किनारे पर शत्रुओ ने आक्रमण कर दिया। उसी समय भाग दौड़ मे गुरु जी की माता और दोनों पुत्र नदी के पार चले गये। माता साहिब कौर और सुन्दरी दोनों दूसरी ओर निकल गयी। बाद मे दिल्ली मे जाकर गुरुजी से मिलीं।

पुत्रों का बलिदान

दशमेशजी की माता और दोनों छोटे शाहजादों को उनका रसोइया गंगू ब्राह्मण रोपड की ओर दूसरे मार्ग से ले गया।[2] माता जी के साथ एक मोहरों से लदा हुआ खच्चर था। उसी के लालच से गंगू ब्राह्मण ने उनके साथ विश्वासघात किया। उसने सोचा कि यदि इन तीनों को वह तुर्क को सौप देगा तो उधर से भी पुरस्कार प्राप्त कर लेगा और चोरी का भेद भी नहीं खुलेगा। अतएव वह मुरंडे के नवाब के पास यह सूचना देने गया। मुरंडा में तुर्की सेना ने डेरा डाल रखा था। वे गुरुजी के पुत्रों और माताजी को लेकर सरहंद में नवाब वजीद खा के पास पहुँचे।[3] नवाब के पास ही एक सुचानन्द नाम का खत्री बैठा था, उसने

---

१. संगत राजन अर बादशाहा। तिनको छिखयो लयो निज पाहा॥
हारियो अपनी जेब मझारा। अच्छल पुरख साहब कर्तारा॥
तम्बू मेख कनात जो असन बसन बहुभाइ॥
दे आइस महाराज जू दीनी अगन लवाइ॥
वही, पृष्ठ ४१५

२. रोपर ते वहु राहुं भुलाई। निजपुर को लै गयो कसाई॥
साहिबजादे दोऊ कुमार। तीजे दादी साथ निहार॥
वही, पृष्ठ ४४६
जीवन कथा, श्री गोविन्द सिंह, प्रो० कर्तार सिंह, पृष्ठ ३०४

३. श्री दशमेश चमत्कार, पृष्ठ ५२८
लै बहु साथ मोरचे आयो। सगरो भेद चल उतै जितायो॥
दोनो पुत्र गुरु की माई। चल अब तुमको देउं बताई॥
मुझे इनाम बड़ो कछु दीजो। लै हजरत के हाजर कीजौं।
गुरु विलास, पृष्ठ ४४८
तौं झूठे खत्री सूति तात। इह विध कहा वचन बअिचात॥
नागन के हैगे इह पूत। नखसिख पूरे जहर अछूत।
कोट बार भाखहु जे आन। यह सलाम कौं पनही ठान॥
वही, पृष्ठ ४४९

नवाब से कहा कि इनपर दया दिखाना उचित नहीं है, अन्यथा यह भी अपने पिता की तरह मुगल शासन की जड़े उखाड़ देंगे। यह सॉप के बच्चे हैं। इनको शीघ्र नष्ट कर दीजिए।[1] उसने उन पुत्रों से कहा कि नवाब साहब को झुककर जुहार करो और इस्लाम-धर्म ग्रहण करो तभी तुम जीवित रह सकते हो।[2] यह बात सुनते ही उन वीर बच्चों ने ओज पूर्ण शब्दों में उत्तर दिया कि एक अकाल पुरुष और गुरु के अतिरिक्त वे किसी अन्य के सामने अपना मस्तक नहीं झुकाएँगे और न ही मृत्यु के भय से वे धर्म विमुख होंगे, यही शिक्षा उन्हें मिली है। धर्म के कारण बलि होना ही सच्ची मृत्यु है। उनके दादा के वध का कारण भी यही था क्योंकि वे धर्म-विमुख नही हुए।[3] उन बच्चों की बातों से निर्दयी नवाब का कठोर हृदय न पसीज सका और उसने उन दोनों को जीवित ही दीवाल में चुनवा दिया।

---

१. सुच्चानन्द खत्री ने आखूआ नवाब जी इह सपां से पुत्तर हन। फेर गुरु गोविंद सिंह वरगे सूरमें दे पुत्तर जिसने पातशाही विच तरथल मचा छड्डिया है। सो नवाब साहब, सपां दे पुत्रां ते रहम करना ठीक नहीं। इह जितने छोटे उतने खोटे हुन्दे हन, इह भी पिछु वागं तुहाड़ी आ जड़ाँ पुटनगे।

श्री दशमेश चमत्कार, पृष्ठ ५२९

दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, पृष्ठ १९६

२. मोर डेस रंघड़ कहि आन। नह तुमको मारत बल धाम ॥
इह नवाब की करी सलाम। तसलीम करो याको कर जोर ॥
जीवत देहैं तुअको छोर ॥

गुरु विलास, पृष्ठ ४४९

दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, पृष्ठ १९६,१९७

३. दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, पृष्ठ ६०
जीवन कथा श्री गुरु गोविन्द सिंह प्रो० कर्तार सिंह, पृष्ठ ३३३
बात सलाम सु दीन मिलान की दूतन भांति अनेक बखानी।
जोर जितो सब लाये थके अर साहिब नन्द मुखे मुखि ठानी ॥
गार दई खलदीन अरान को भाख थके मुख एक नपानी ॥
मानत है न कछू अरकी हर सत्य कला जगदीस पछानी ॥

गुरु विलास, पृष्ठ ४४९

नवाब जी, असी एहना लोभ लालचा विच नहीं आ सकदे। असी ऐना लालचा विच आके अपना धर्म नहीं छड सकदे। मरन तो असी नहीं डरदे।

श्री दशमेश चमत्कार, पृष्ठ ५३१

सूरज प्रकाश और गुरु विलास ग्रंथों से स्पष्ट होता है कि जुझार सिंह और फतेह सिंह की मृत्यु दीवाल मे चुनाये जाने के कारण नहीं हुई; वरन् तलवार से उनका वध किया गया।[१] नवाब ने उन्हें अनेक प्रलोभन दिये थे, किन्तु वीर पुत्र विचलित न हुए और १३ पूस, संवत् १७६२ मे वे दोनों अपने धर्म पर बलिदान हो गये।[२] एक धनी सिक्ख टोडर मल अत्यधिक धन लेकर नवाब के पास आया जिससे कि प्रलोभन में आकर वह किसी प्रकार इन राजकुमारों को छोड़ दे, किन्तु उसके पहुँचने से पहले ही उनका वध कर दिया गया था। उस वीर ने इसकी सूचना माता गूजरी को दी। पोतों की दुःखद मृत्यु का समाचार सुनते ही माताजी के प्राण पखेरू उड़ गये। तत्पश्चात् उन तीनों शवों का संस्कार टोडरमल ने विधिपूर्वक किया। उसी स्थान पर फतेहगंज नाम का गुरुद्वारा बनवाया गया।[३] इसकी सूचना जब गुरुजी को मिली तो वे अत्यन्त दुःखी हुए और क्रोध में उन्होने उसी समय यह दृढ़ प्रतिज्ञा की कि इस अत्याचारी राज्य का वे समूल अन्त करेंगे। उनके दो पुत्र तो चमकौर के युद्ध में लड़ते-लड़ते वीरगति को प्राप्त हो ही चुके थे। दीना गाँव में एक दिन वह बैठे-बैठे भूमि को अपनी तलवार से कुरेद रहे थे तो उनसे किसी ने पूछा कि आप यह क्या कर रहे हैं तो उन्होंने उत्तर दिया कि वह तुर्कों के राज्य की जड़े काँट रहे हैं ताकि वे पुनः न उभर सकें। तभी उन्होंने औरंगजेब को फारसी में एक पत्र लिखा जिसे "जफरनामा" का नाम दिया। इसमे उसे झूठी सौगन्ध खाने के लिये लज्जित किया। यह जफरनामा उन्होंने भाई दया सिह द्वारा औरंगजेब के पास भेजा।[४]

---

१. श्री दशमेश चमत्कार, भाई, ज्ञान सिंह, पृष्ठ ५३२

२. दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, पृष्ठ १९८

दोऊ सिसन के सीस उतारी, दए काट उन अधम गवारी

गुरु विलास, पृष्ठ ४५०

इह साका १३ पोह संवत् १७६२ नू होइआ।

जीवन कथा श्री गुरु गोविन्द सिंह, पृष्ठ ३३६

His two remaining sons were arrested by the Governor of Sarhind and put to death.

History of Aurangzeb, J. N. Sarkar, P. 319

३. दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, मैकालिफ, पृष्ठ १९९

सूरज प्रकाश से स्पष्ट होता है कि तिलोक सिंह और समसिंह नामक सिक्खों ने गुरुजी की माता और पुत्रों का दाह संस्कार किया।

४. (१) श्री दशमेश चमत्कार, पृष्ठ ५४६

(२) जीवन कथा गुरु गोविन्द सिंह, प्रो० कर्तार सिंह, पृष्ठ ३४४

जब माता सुन्दरी और साहब कौर को ज्ञात हुआ कि गुरुजी साहबों की तलवंडी नगर में आ गये हैं तो वे दोनों उनके पास गईं। वहाँ अपने पुत्रों को न देखकर गुरुजी से पूछा कि चारों पुत्र कहाँ हैं? तब गुरुजी ने उन्हें बताया कि चारों पुत्र खालसा पंथ की रक्षा के लिये शहीद हो चुके हैं।[1] यह हृदय-विदारक समाचार सुनकर दोनों माताएँ अत्यन्त दुःखी हुईं तब गुरुजी ने उन्हें मानव-शरीर की क्षण-भंगुरता का उपदेश दिया और बताया की चिन्ता की कोई बात नहीं है। तुम्हारा पाँचवाँ पुत्र खालसा उनकी इस शहीदी से दिन-प्रतिदिन शक्तिशाली होगा[2]। अन्त में सब सिक्खों की ओर संकेत करके उन्होंने कहा—

इन पुत्रन के सीस पै, वार दिये सुत चार ॥
चार मुए तो क्या भया जीवत कई हजार ॥

---

(३) ताते सु ज़फर नामो बनाई। पठयो सुदूत के तट लिखाई ॥
जफर नाम ताको धर नामा। पैठ दयो साहिब अभिरामा।
कई हिकायत तहाँ लिख डारी। गज़ल ख्वाई फरद हज़ारी ॥
सूबै उमरावन की बाता। तामैं लिखी जू पुरख विधाता ॥
बादशाहन की कथा सु जानहु। सब पैगम्बर भेद पछानहु ॥

गुरु विलास, पृष्ठ ४६५, ४६६

इत विध अति समुझाइके कृपा सिंध कर्तार ॥
दया सिंह जी को पठयो औरंगतीर सुधार ॥

गुरु विलास, पृष्ठ ४७०

१. श्री दशमेश चमत्कार, पृष्ठ ४९५
जीवन कथा, गुरु गोविन्द सिंह, पृष्ठ ३७५

२. इसी भाँति सतगुरु कह जानहु। हरख सोग है एक समानहु ॥
आई को निज हरख न करे। गये पदार्थ चिन्त न धरै ॥
जब चाहत तब करत पसारा। जौ खेंचत तब एक ओंकारा ॥
हुक्म सति सति गुरू का सिरे। जो भावे सो भावन करे ॥
साहिब जादे और हम आप। जुदे न होसन इक प्रताप ॥
नास मलेछन करने काज। लाए सीस गरीब निवाज़ ॥
हरख सोग चिन्ता नहीं लोभ मोह तै पाक।
तासो सतिगुरु जानिए अद्भुत जाके वाक ॥ •

गुरु विलास, पृष्ठ ४६१

जननी जने तां भगत जन कै दाता कै सूर।
नाहि ते जननी बाँझ रहे कहैं गुवावे नूर ॥

श्री दशमेश चमत्कार, पृष्ठ ५९६

यह दशमेशजी की वीरता और बलिदान का आदर्श था।

गुरुजी की दक्षिण-यात्रा

कुछ समय पश्चात् गुरुजी ने दक्षिण की ओर यात्रा करने का विचार किया। संवत् १७६३ में कार्तिक के महीने में उन्होंने वहाँ के लिये प्रस्थान किया।[1] कतिपय लेखकों का कथन है कि गुरु गोविंद सिंह औरंगजेब से मिलने के लिये दक्षिण की ओर गये थे और कुछ का विचार है कि भाई दया सिंह को पत्र लेकर गये बहुत समय हो गया था इस कारण गुरुजी ने विचार किया कि संभव है औरंगजेब ने उसके साथ भी निर्दयतापूर्ण व्यवहार किया हो। इसलिये वे अपने साथ सेना लेकर दक्षिण की ओर गये थे। गुरुजी का दक्षिण की ओर जाने का मुख्य कारण दया सिंह की खोज करना ही विदित होता है।

औरंगजेब की मृत्यु

जब वह बघौर नगर में पहुँचे तो वहाँ के लोग भयभीत हुए कि कहीं यह लूटने के लिये तो नहीं आये हैं।[2] वहाँ उनका बघौर के नवाब से युद्ध हुआ। बघौर नरेश को पराजित और वध कर वे शाहजहानबाद की ओर बढ़ गये।[3] बघोर नगर में ही उन्हें औरंगजेब की मृत्यु का समाचार मिल चुका था।[4] संवत् १७०७ में औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात उनके उत्तराधिकारी तारा आजम और बहादुरशाह में संघर्ष हुआ। बहादुरशाह गुरुजी की शक्ति से भली-भाँति परिचित था। उसने दीवान नन्दलाल को उनसे सहायता प्राप्त करने के लिये भेजा और स्वयं इस कारण न गया कि संभव है उसके पिता के व्यवहार से असन्तुष्ट होकर वे उसकी सहायता न करें। गुरुजी तो शरणागत की रक्षा करना अपना धर्म समझते थे, उन्होंने बहादुरशाह की तारा आजम के विरुद्ध सहायता करने के लिये धर्म सिंह को विश्वसनीय सैनिकों के

---

१. संवत १७६३ विच कतक दे महीने दखन वल तुर पये।
जीवन कथा गुरु गोविंद सिंह, प्रो० कर्तार सिंह, पृष्ठ ३८१

२. शहर बघोर प्रभू जब आए। निरख लोग बिसमय डर पाये।
तिन करयो जुद्ध का सामा। शस्त्र अस्त्र गहि बैठ तमामा॥
गुरु विलास, पृष्ठ ५१०

३. मार बघोर नरेश जुत कीचक भूम निहार
शाहजहानाबाद को किओ पयानो दियार।
वही, पृष्ठ ५६१

४. श्री दशमेश चमत्कार, पृष्ठ ६४४
जीवन कथा श्री गुरु गोविंद सिंह, प्रो० कर्तार सिंह, पृष्ठ ३८३

साथ भेजा।[१] घमासान युद्ध के पश्चात बहादुरशाह विजयी हुआ। बहादुरशाह ने गुरुजी को आगरा में अपने दरबार में आने के लिये प्रार्थना की। वे दिल्ली से मथुरा, बृन्दावन होते हुए आगरा पहुँचे। आगरा में बहादुरशाह ने उनका धूम-धाम से स्वागत किया और कुछ दिन वहाँ रुकने की प्रार्थना की।[२] कई दिनों तक वे वहाँ रहे और वहाँ भी धर्म का उपदेश करते रहे। तभी औरंगजेब के राजाश्रित कवि नन्द-लालजी ने फारसी मे गुरुजी की प्रशंसा की गजले लिखीं। बहादुरशाह वहाँ के रमणीक स्थान दिखाने और शिकार खेलने मे उनके साथ ही जाता था। चार महीने तक गुरुजी आगरा मे बहादुरशाह के साथ रहे।

बहादुरशाह के साथ दक्षिण यात्रा

यह पहले बताया जा चुका है कि गुरुजी दक्षिण की ओर गये थे; किन्तु बहादुर-शाह की सहायता के लिये वे लौट आये थे। बहादुरशाह को दक्षिण में राजपूतों के विद्रोह और छोटे भाई कामबख्श के विद्रोह को शान्त करने के लिये जाना पड़ा। उसने विचार किया कि गुरु गोविंद सिंह को साथ लेकर चलना ही अच्छा होगा क्योकि उनके चलने से अनुकूल प्रभाव पडेगा। इसलिये उसने उन्हें साथ चलने का आग्रह किया। गुरुजी ने इसे स्वीकार किया क्योंकि वे तो उस ओर जाने के लिये पहले से इच्छुक ही थे। वे उसके साथ नागपुर, पूना आदि से होते हुए नदेड़ नगर के पास गोदावरी पर डेरा लगा कर रहने लगे।

कतिपय लेखकों का कथन है कि गुरुजी बहादुरशाह की सेना में सम्मिलित हो गये थे इसलिये दक्षिण की ओर उसके साथ गये। किन्तु यह बात उचित नहीं जान पड़ती क्योकि गुरुजी को यदि सेना मे सम्मिलित होना था तो वे उसी समय से हो जाते जब औरंगजेब ने उन्हें तीन-चार पत्र लिखकर बुलाया था। जिसने यह प्रतिज्ञा की हो कि वह ऐसे राज्य को समूल नष्ट करेगा वह उसकी सेना में कोई पद कैसे ग्रहण कर सकता था? इसलिये सर जान मैलकम, खाफीखा, सय्यद मुहम्मद लतीफ फास्टर, कनिंघम आदि ने जो भी इस सम्बन्ध मे लिखा है वह बिलकुल अप्रामाणिक ही सिद्ध होता है। प्रो॰ कर्तार सिंह ने उक्त विद्वानों के इस अनुमान का सविस्तार खण्डन किया है।[३]

बन्दा वैरागी से भेंट

नदेड़ शहर में पहुँच कर गुरुजी ने बहादुरशाह का साथ छोड़ दिया। वे वहीं रहने लगे। एक दिन वह शिकार खेलने जा रहे थे तो नदी के किनारे समीप ही

१. दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, पृष्ठ २३०

२. वही, पृष्ठ २३२

३. जीवन कथा, श्री गुरु गोविन्द सिंह, प्रो॰ कर्तारसिंह, पृष्ठ ४०१, ४१२

के साथ किये गये अन्यायों का पूरा प्रतिशोध लिया।[1] इस प्रकार उसने गुरुजी के पुत्रों का प्रतिशोध लिया। बहादुरशाह को जब यह विदित हुआ कि एक सिक्ख, साम्राज्य की नींव खोखली कर रहा है तो वह गुरुजी के पास पहुँचा और बहुमूल्य हीरा जिसे औरंगजेब ने युद्ध करके तानाशाह से प्राप्त किया था, गुरुजी को भेंट किया। गुरुजी ने उस हीरे को गोदावरी में फेंक दिया। बहादुरशाह निराश हो गया तब गुरुजी ने उसे समझाया कि तेरा राज्य तेरे जीवन तक ही रहेगा आगे मुगल शासन नही चलेगा।[2] कालान्तर मे बन्दा वैरागी ने भी गुरुजी के बताये हुए नियमों का उल्लंघन किया जिस कारण उसकी शक्ति भी क्षीण हो गई।

गुरुजी का अन्त समय और मृत्यु

नन्देड़ में गुल खाँ नाम का एक पठान रहता था। वह पैंदा नामक पठान का पोता था जिसका वध गुरु गोविन्द सिंह के पूर्व छठे गुरु ने कर दिया था। उसने अपने दादा के वध का बदला लेने का निश्चय किया। वह गुरुजी के पास प्रतिदिन चौपड़ खेलने के लिए आता था। वे उसे प्रतिदिन पॉच मोहरे दिया करते थे। अवसर पाकर उसने गुरुजी पर दो बार वार किया और वे घायल हो गये, किन्तु घायल अवस्था में भी उन्होंने उस पठान का वध कर दिया। बहादुरशाह ने कुशल चिकित्सकों से गुरुजी का उपचार कराया और वे १५ दिनों मे ही स्वस्थ हो गये। उनके स्वस्थ होने के पश्चात् चिकित्सक चले गये। बादशाह ने तदनन्तर उन्हें काफी सौगाते उपहार में भेजीं जिनमे दो धनुष भी थे। उल्लेख मिलता है कि गुरुजी ने उस धनुष को जैसे ही मोड़ा उनका एक ताजा घाव फट गया और रुधिर की धारा बहने लगी। उनके शिष्यों ने तत्काल उसका उपचार किया, किन्तु इस बार वे स्वस्थ न हो सके।[3]

गुरुजी जब दिल्ली गये थे तो माता सुन्दरी को वहीं छोड़ आये थे। साहिबा को पहले तो वे अपने संग ही ले आये थे, किन्तु बाद मे उन्हें भी सुन्दरी के पास ही भेज दिया। संभवतः उन्हें अपनी मृत्यु का आभास पहले से ही हो गया था। उन्होंने चालीस दिन तक विशेष दिवान लगाया। अन्तिम दिन उन्होंने सब सिक्खों को एकत्र

---

१. दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, पृष्ठ २३९

२. इह राज तेरी जिन्दगी नाल ही रहेगा, बाकी हुन अगे मुगलिया पातशाही नहीं रहेगी।

श्री दशमेश चमत्कार, पृष्ठ ७००

३. दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, पृष्ठ २४२

दस रोजन में बेद सुजाना। आछो जलम कीन बिधि नाना।

गुरु-विलास, पृष्ठ ५८९,

करके भाँति-भाँति के उपदेश दिये। उन्होंने पाँच हजार रुपये का 'कड़ाह प्रसाद' बनवाया और सभी सिक्खों को खिलाया और उपदेश दिया कि अकालपुरुष के सहारे सब कार्यों के करने से सफलता प्राप्त होगी। साथ में यह भी कहा कि उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके लिये कोई रोकर दुःखी न हो। शिष्यों के पूछने पर कि उनका उत्तराधिकारी अब कौन होगा? उन्होंने उत्तर दिया कि अब खालसा ही गुरु होगा और गुरु खालसा है। ग्रंथ साहब और खालसा मे ही उन्होंने अपनी आध्यात्मिक भावना और शारीरिक आत्मा तिरोहित कर दी है।[1] इस प्रकार उपदेश देने के पश्चात् उन्होंने अन्त समय निकट आया जान कर स्नान करके नये वस्त्र पहने। जापुजी का पाठ और ईश्वर प्रार्थना की। शस्त्रों को शरीर पर धारण किया। उन्होंने ग्रन्थ साहब खोलकर ५ पैसे और एक नारियल उसके सामने रखा और उसे अपना उत्तराधिकारी जानकर मस्तक नवाया और 'वाह गुरुजी का खालसा, वाह गुरुजी की फतेह' का उच्चारण किया और खालसा को सम्बोधित करके कहा कि जो मुझे देखना चाहे वे ग्रन्थ साहब में देखे। ग्रन्थ साहब मे निर्दिष्ट आदेश का पालन करे।[2] इसके पश्चात् कार्तिक सुदी ५, सं० १७६५ के दिन गुरुजी का शरीरात हो गया।[3] माता सुन्दरी और साहिब कौर इस समाचार को सुनकर अत्यन्त दुःखी हुईं। माता साहब कौर की तो गुरुजी के शोक मे शीघ्र ही मृत्यु हो गई। माता सुन्दरी नेगुरु जी की मृत्यु के अनन्तर अजीतसिंह को दत्तक पुत्र बना लिया था जिसका एक पुत्र हथी सिह हुआ। अजीतसिंह ने माता सुन्दरी और सिक्ख धर्म का तिरस्कार किया।

---

1 Henceforth the Guru shall be the khalsa and the khalsa the Guru. I have infused my mental and bodily spirit into the Gran;h Sahib and the khalsa.

The Sikh Religion, Vol V, p. 244

जो हमको रोवेगा कोई।
इत उत ताकों दुख होई॥

गुरु विलास, पृष्ठ ५६०

2 O beloved Khalsa, let him who desireth to behold me, behold the Guru Granth. Obey the Granth Sahib It is the visible body of the Guru. And let him who desireth to meet me diligently search its hymns.

The Sikh Religion, Vol. V, p. 244

३. संवत सत्रह सहस मनीजै, अर्द्ध सहस धित अवर गणीजै॥
कार्तिक सुदी पंचमी जान। वीरधार निस चढ़े बिमान॥

गुरु-विलास, पृष्ठ ५९९

दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, पृष्ठ २४६

अतः उसे त्याग दिया गया। अंत में मुगल-शासक ने उसका वध करा दिया। हथी सिंह ने भी गुरुओं की अवहेलना की और उसे भी माता सुंदरी ने त्याग दिया। कालातर में उसकी मृत्यु बुरहानपुर में हो गई। उसके कोई पुत्र संतान न हुई थी। अंत में माता सुंदरी का शरीरात सं० १८०४ में हो गया।[१]

गुरु गोविन्द सिंह का राजनैतिक जीवन

पहले कहा जा चुका है कि गुरु गोविन्द सिंह ने शस्त्र-विद्या का अध्ययन बाल्यावस्था मे ही कर लिया था और उस कला में वे पूर्णतया पारगत हो चुके थे। वे युद्ध के पक्ष मे भी नहीं थे किन्तु उस समय की परिस्थितियों ने उन्हे युद्ध के लिये विवश कर दिया। वे इस बात से भली-भाँति परिचित थे कि देश की उन्नति और शान्ति मे सदैव विघ्न के कारण युद्ध होते हैं। उन्होंने स्वरचित विचित्र नाटक मे भी लिखा है कि ईश्वर ने उन्हें संसार में कुछ विशिष्ट कार्य करने के हेतु ही उत्पन्न किया है।[२] किन्तु जब उन्होंने अनेक मनुष्यों को दुःखों से पीड़ित देखा तो उन्हें युद्ध ही एक मात्र उपाय जान पडा और उन्होंने अत्याचारी शासकों के साथ युद्ध करके ही उनका अन्त करने का निश्चय कर लिया। गुरुजी ने अपने इस दृढ़ संकल्प की पूर्ति के लिए ही खालसा पंथ चलाकर एक सुदृढ़ सेना का संगठन किया। फलस्वरूप उनका सम्पूर्ण जीवन ही युद्धों से ओतप्रोत हो गया। उन्होंने अपने जीवन में जो युद्ध किये उनका वर्णन यहाँ संक्षेप में देना अप्रासंगिक न होगा क्योंकि इनसे दशमेश जी के व्यक्तित्व पर स्पष्ट रूप से प्रकाश पड़ता है।

भंगानी का युद्ध

संवत १७४६ मे प्रथम युद्ध आरम्भ हुआ।[३] श्रीनगर के राजा फतेहशाह की सुपुत्री का विवाह बिलासपुर के राजा भीमचन्द के पुत्र से होना निश्चित हुआ। राजा फतेहशाह ने गुरु गोविन्द सिंह को भी विवाह का निमंत्रण दिया। गुरु जी ने विचार किया कि उनका स्वयं वहाँ उपस्थित होना उचित नहीं है क्योंकि संभव है

---

१. दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, पृष्ठ २५४, २५७.

२. मैं अपना सुत तोहि निवाजा। पन्थ प्रचुर करबे को साजा ॥
जाहि तहाँ से धर्म चलाइ। कुबुधि करन ते लोक हटाइ ॥
इह कारन प्रभु मोहि पठायो। तब मैं जगत जन्म धरि आयो ॥
जिम तिन कही तिनै तिम कहिहों। और किसू तो बैर न गहिहौं ॥

विचित्र नाटक, पृष्ठ ३९

३. सत्रह सहस छियालीस मधि,
भयो पावटे प्रथम युद्ध।

गुरु विलास, पृष्ठ १६०

भीमचन्द शत्रुता के कारण कहीं वहीं पर युद्ध के लिये प्रेरित न कर दे और यदि वे यह सोचकर अपने साथ कुछ सेना ले जायेंगे तो फतेहशाह को उनकी सेना के लिये भी खर्च करना पडेगा। वे स्वयं तो न गये किन्तु उन्होंने नन्दचन्द को सवालाख का बहुमूल्य आभूषण उपहार के लिये देकर विवाह में भेज दिया। नन्द-चन्द अपने साथ कुछ सैनिक लेकर चल दिया। राजा फतेहचन्द ने उसका स्वागत किया और पाँवटा के शाही बाग में उन्हें ठहरा दिया।

उन दिनों गुरु जी पॉवटा मे ही रहते थे, यह पहले कहा जा चुका है। राजा भीमचन्द अपने साथ राजा केसरी चन्द, राजा गोपाल, राजा हरिचन्द, कागड़ा के राजा सुकेत और मंडी के राजा को साथ लेकर श्रीनगर की ओर पाँवटा के मार्ग से जाने की सोचने लगा।[1] उसका विचार था कि उसकी सेना जो बारात के रूप में साथ थी, पाँवटा पर टूट पडेगी। उसने अपने मंत्री को गुरु गोविन्द सिंह के पास भेजकर कहलाया कि वह उसी मार्ग से श्रीनगर जाना चाहता है इसलिये इसकी अनुमति वह उन्हे दे दे। गुरु जी उसकी राजनीतिक चाल को समझ गये और उत्तर दिया कि केवल वीर पुरुष ही इस मार्ग से जा सकते हैं। इस उत्तर के पश्चात राजा भीमचन्द स्वयं तो दूसरे मार्ग से गया किन्तु अपने पुत्र को कुछ सैनिकों के साथ पॉवटा के मार्ग से भेजा। गुरुजी ने सहर्ष उसे रास्ता दे दिया। विवाह हो जाने के अनन्तर भीमचन्द ने फतेहशाह के समक्ष यह शर्त रखी कि यदि वह गुरु गोविन्द सिंह से युद्ध करेगा तभी उसकी पुत्री को वे लेकर जायंगे, अन्यथा यहीं छोड़ जायेंगे। राजा फतेहशाह असमंजस में पड़ गया, क्योंकि यह बहुत बड़ी शर्त थी। वह गुरु जी से शत्रुता नहीं करना चाहता था। अन्त मे विवश होकर उसने युद्ध करना स्वीकार कर लिया है।[2]

नन्दचन्द को जब यह सूचना मिली तो वह गुरु जी के दहेज का बहुमूल्य सामान वापिस लेकर चला तो मार्ग मे भीमचन्द के सैनिकों ने घेर लिया, किन्तु वह साहस से भाग निकला और पावटा में पहुँच कर गुरु जी से सब वृत्तान्त कहा। अपने साथ वह एक सौदागर के द्वारा प्रदत्त १०० घोड़ों को भी बचा कर निकाल ले गया और गुरु जी की सेवा मे अर्पित किया जिनकी उन्हे उस समय तात्कालिक आवश्यकता थी। इस पर गुरु गोविन्द सिंह ने अपनी सेना को अस्त्रों-शस्त्रों से सुसज्जित किया।[3] साथ में उन्हें युद्धसामग्री गोला, बारूद, बन्दूक आदि भी दे दीं। उनके पास जो ५०० पठान थे

---

१. दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, पृष्ठ २४,२५

२. दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, पृष्ठ २७, २८

३. कलूर और हंडूर पै, जंस जु बाल जानियै ॥
गुपाल सो गुलेर है, कटोच संग आनियै ॥

वे युद्ध के भय से भाग कर फतेहशाह की सेना में भर्ती हो गये। गुरु जी की शक्ति से सब परिचित थे अतः अनेक उनकी सेना में भी आकर मिल गये। पठानों की तरह उनके उदासी भी भयभीत हो कर भाग गये, केवल उनका महन्त कृपालसिंह ही उनके पास रहा।[1]

गुरु गोविन्द सिंह ने पावटा से सात-आठ मील दूरी पर भंगानी के मैदान में सेना को खड़ा कर दिया।[2] उनकी सेना मे पाच योद्धा वीर, संगी सिंह, जीतमल, गुलाब, गंगाराम, हरिचन्द थे। जिन्हें उस सेना के साथ भेजा।[3] दुर्ग में भली-प्रकार प्रबन्ध करके वह स्वय युद्ध के मैदान मे पहुँचे।[4] बुद्धूशाह अपने पुत्र-पौत्रों को साथ लेकर गुरु जी के पास आ गया। कृपालसिंह ने उन्हें शत्रु-सेना की स्थिति बता दी कि सबसे पहले पठान, उनके पीछे पहाड़ी सेना और उनके पीछे फतेह शाह स्वयं खडा है।[5] गुरु जी ने भी अपनी सेना का वैसे ही प्रबन्ध कर लिया। नन्द चन्द

फते जु शाहि संग में अनेक और मेल है।
चढ़े सु आप नाथ में करो अबै सु सैल है॥

गुरुविलास, पृष्ठ १४२

बीरन बोल करो इक टोल सुगोलन बांध के देहु दिखाई
गोर बरूद बटो निज बीरन पूरत नीर न लेहु बनाई।
इह भांति उतै प्रभू वीर उठै॥ इत बीरन लै निगवान कठै॥
सर सांग सु चाप बन्दूक लई। निज वीरन को कर सोध भई॥

वही, पृष्ठ १४३–४४

दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, पृष्ठ २९

१. वही, पृष्ठ ३४, ३५

२. जोजन एक पांवटे अग्ग। अहैं भंगानी भूप अभग॥

गुरु विलास, पृष्ठ १५३

३. संगो सिंह प्रथम धर नाम, चलकर भयो साह संग्राम॥
अस पोरख पूर्ण जब करा। तब प्रभू जू इह नाम सुधरा॥
जीतमल सिंघ और गुलाब। लाल रूप रण भयो सहाय॥
गंगा राम मा हरिचन्द। ए पांचों चुनलीन मुकन्द॥

वही, पृष्ठ १५३

४. दुर्ग शिरोमणि के लिखे कर कायम वर वीर
बहुर प्रभू रण को चढै धुरत नाद रणधीर॥

वही, पृष्ठ १५३

५. श्री दशमेश चमत्कार, पृष्ठ १६०
दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, पृष्ठ, ३६

और दयाराम पुरोहित को पठानो के साथ लड़ने के लिये तैयार किया। घमासान युद्ध हुआ। दोनों ओर से तीरो की बौछार होने लगी।[1] माहिर चन्द और सगों ने पठानों को पराजित कर दिया। बुद्धूशाह और उसके लड़के पहाड़ी राजाओं से लड़ रहे थे। राजा गोपाल चन्द की सेना ने बुद्धू और उसके पुत्रों को घेर लिया। कृपाल चन्द ने तलवार चलाकर उस घेरे को तोड़ा। गोपाल चन्द के बाण से बुद्धूशाह के लड़के के प्राण पखेरू उड़ गये। कृपाल चन्द युद्ध करता रहा। उसकी वीरता के सामने पहाड़ी सेना ठहर न सकी और भागने लगी। तत्पश्चात् फतेहशाह ने पठानों के सरदार ह्यात खाँ को मैदान में भेजा। उसने अनेक सिक्खों को मृत्यु के घाट उतारा। सन्त कृपाल सिंह ने ह्यात खाँ से युद्ध किया। ह्यात खाँ की घोडे से गिर कर मृत्यु हो गई।[2] पठानों ने सन्त कृपाल सिंह को चारों ओर से घेर लिया परन्तु जीतमल ने बाणों द्वारा घेरे को तोड़ दिया। साहिब चन्द, जीतमल, गुलाबचन्द, नन्दचन्द, दयाराम और संगोशाह ने सेना का डटकर मुकाबला किया। बुद्धूशाह का दूसरा पुत्र भी युद्ध के मैदान में शहीद हो गया।

जीतमल राजा हरिचन्द से और संगोशाह निजामत खाँ से पारस्परिक युद्ध करने लगे। हरिचन्द के बाण से जीतमल मूर्छित को गया और सिक्ख उसे मैदान से उठा

---

१. बिसख बाण बर्छां तबर सैफ सूल जमधार।
बरखत में दुहु ओर ते सावन घन अनुसार॥
गुरु विलास, पृष्ठ १५४
दल दूतन को इह भांति हता। जिम मारित मेघ करै सुकता।
बहु भाँति मलेच्छ अनेक हनै। कवि जतह पास न जात गनै।
वही, पृष्ठ १५४

२. साध कृपाल तने निजधा। कुतका कर लीन कियो अयुद्धा।
निज खान ह्यात को सीस दियो। प्रभू पेख महा सु प्रसन्न भयो॥
गुरु विलास, पृष्ठ १५४
तहा साह श्री साह संगराम कोपै। पंचो बीर बंके पृथी पांय रोपै॥
हठी जीतमलं सुगाजी गुलाबं। रणं देखिए रंग रूपं सहाबं॥
हठियो माहरीचंदयं गंगरामं। जिने कित्तियं जितयं फौज तामं॥
कुपे लाल चन्दं किये लाल रूपं। जिनें गंज्जीयं गरब सिंघं अनूपं॥
कुपियों माहरू काहरू रूप धारे। जिनें खाँन खावीनीयं खेत मारे॥
कुपयों देवतेसं दयाराम जुद्धं। कियो द्रोण की जीउंन महाजुद्ध सुद्धं॥
किरपाल कोपयं कुतको सम्भारी। हठी खान ह्यात को सीस झारी॥
विचित्र नाटक, पृ ४६

लाये। संगोशाह ने भी युद्ध में वीरगति पायी। गुरुजी तब स्वयं रण के मैदान में घोड़े पर सवार होकर गये। उन्होंने एक-एक तीर से दस-दस शत्रुओं को मारा। पहाड़ी-सेना गुरुजी के सामने न ठहर सकी, तब राजा हरिचन्द युद्ध करने के लिये आया। उसने गुरुजी को तीन तीर निशाना बाँध कर मारे; किन्तु उनको एक भी बाण घायल न कर सका। पहला निशाना घोड़े की पीठ पर लगा। दूसरा गुरु के कान के पास से होकर निकल गया। तीसरा उनकी पेटी में लगा। अन्त में गुरुजी के एक बाण लगने से ही हरिचन्द वहीं धराशायी हो गया।[1] सिक्ख-सेना पहाड़ी-सेना पर टूट पडी। हरिचन्द की मृत्यु का समाचार सुनते ही पहाड़ी-राजा अपनी सेनासहित मैदान छोड़ गये। फतेहशाह भी भागकर श्रीनगर चला गया।[2] इस प्रकार गुरु गोविन्द सिंह की भंगानी के युद्ध में विजय हुई। गुरुजी की विजय से सिक्खों के हृदय मे अत्यधिक उत्साह उमड़ पड़ा। उनकी सेना से जो भाग गये थे वे लज्जित हुए। विजयी पक्ष ने आनन्द के गीत गाये। बड़े उत्साहपूर्वक यह उत्सव मनाया गया।[3]

---

१. हरीचन्द कोपै कमाणं सम्भारं। प्रथम बाजीयं ताण बाणं प्रहारं॥
दुतीय ताक कै तीर मोको चलायं। रख्यो दैव मैं कान छ्वैकै सिधायं।
तृतीय बाण मार्यो सु पेटी मंझारं। विधिअं चिलकतं दूवाल पारं पधारं।
चुभी चिचं चर्म कछू घाऊ न आयं। कलं केवलं जान दासं बचायं॥
विचित्र नाटक, पृष्ठ ५०

तिनै कमान तानकै, हठ्यो अंस निधान कै॥
प्रभू सो कान पास ही, गयो सरं निरासही॥
तृतीय जु बान मारिआ, पिटी चील तिपारिया॥
गुरु-विलास, पृष्ठ १५७

दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, मैकालिक, पृष्ठ ४४
श्री दशमेश-चमत्कार, पृष्ठ १६९

२. फतेहशाह भाजियो। वरं जा विराजिओ॥
नही बैन बोलैं। समा सोई टोलै॥
गुरु-विलास, पृष्ठ १५८

श्री दशमेश चमत्कार, पृष्ठ १६९

३. रणं त्याग भागे। सबै त्राश पागे॥
भई जीत मेरी। कृपा लालं केरी
विचित्र नाटक, पृष्ठ ५१

युद्ध के पश्चात् गुरुजी ने भाई संगो और जीतमल के शवों का पावटा मे दाह-संस्कार कराया। जब वे युद्ध के मैदान में गये तो वहाँ का दृश्य देखकर उनका मन खिन्न हो उठा। असंख्य शव पड़े थे, उन्होने सिक्खों को आज्ञा दी कि सभी घायलों की सेवा करो, चाहे वह शत्रु की सेना का भी क्यों न हो। उनके हृदय मे दीनों, निर्बलों और निस्सहायों के प्रति अथाह प्रेम उमड़ पडा। अनेक सिक्खो ने उनसे प्रार्थना की कि उन्हे श्रीनगर और दिल्ली को लूटने की आज्ञा प्रदान करे और आनन्दपुर मे स्वतंत्र राज्य स्थापित करे।[1] यह पहले कहा जा चुका है कि वे राज्य-लिप्सा के कारण युद्ध नही करते थे। उनके युद्धों का कारण दुष्टों का सहार करना ही था, इसलिये उन्होंने सिक्खों की प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया। कोहलूर में उन्होंने एक किला बनवाया।[2] प्रतिदिन उसी किले में उनके सैनिक शस्त्रों का अभ्यास करते थे। राजा भीमचन्द ने उनसे मित्रता का व्यवहार स्थापित किया और कहा कि

विजय नाथ पाई। कला लै दिखाई॥

गुरु-विलास, पृष्ठ १५८

जय गीत गाए। महामोद पाये॥

वही, पृष्ठ १६१

रणं जीति आये। जयं गीत गाए॥
धनं धार बरखै। सबै सूर हरखै॥

विचित्र नाटक, पृष्ठ ५१

१. अब हमको आयस कर दीजै। जीत धरनि सगरी कर लीजै॥
श्रीनगर पर को चढ़ जावै। दिल्ली कहो लुट लै आवै॥
आनन्दपुर एह ठौर मझारा। एक राज्य करिये विस्थारा॥

गुरु-विलास, पृष्ठ १५९

दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, मैकालिक, पृष्ठ ४६
श्रीदशमेश-चमत्कार, पृष्ठ १७१

२. जुद्ध जीत आए जवै। टिकै न तिनपुर पावं॥
कोहलूर में बांधिओ। आन आनन्दपुर गांव॥

विचित्र नाटक, पृष्ठ ५१

देश कलूर हजूर कृपानिधि है नगरेश रचिओ पुर भारी।
रिद्ध सुसिद्ध भरिओ बर पूरन चूर करै अरु मार विदारी॥

गुरु-विलास, पृष्ठ १६९

दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, मैकालिक, पृष्ठ ४९-५०

कोहलूर प्रदेश उन्हीं का है, जहाँ चाहें वे अपना अधिकार कर सकते हैं।[1] इससे सन्तुष्ट होकर गुरु गोविन्द सिंह अपनी सेना को वापिस लौटा कर आनन्दपुर चले आये।

नादीन का युद्ध

जब औरंगजेब दक्षिण में गोलकुंडा के राजा तानाशाह से युद्ध करने में व्यस्त था उस समय सभी प्रांतों की दशा शोचनीय थी। अत्याचारी सूबेदार प्रजा से अपनी-अपनी इच्छानुकूल कर वसूल करते थे। जम्मू के वायसराय मियाँ खॉं ने अपने सेनापति अलिफ खॉं को कागड़ा के राजा कृपाल, जालवाल के राजा केसरीचन्द, डढ़वाल के राजा पृथ्वीचन्द और जसरोट के राजा सुखदेव से जजिया लेने के लिये भेजा[2] और साथ में यह संदेश भी दिया कि जो जजिया नहीं देगा उससे युद्ध होगा। अलिफ खाँ सबसे पहले कृपाल कटोचिए के पास पहुँचा। उसने युद्ध के भय से काफी भेट दी और कहा कि भीमचन्द से अधिक कर लेना, क्योंकि यह सब पहाड़ी राजाओं मे अधिक धनवान है।

अलिफ खॉं नादीन की ओर गया। भीमचन्द से उसने जब जजिया मॉंगा तो उसने देना अस्वीकार किया और कहा कि वह ज़ज़िया देने की अपेक्षा युद्ध करना अधिक उचित समझता है।[3] तत्पश्चात् राजा भीमचन्द युद्ध की तैयारी करने लगा। गुरु

---

१. तब राजन ऐसे कह्यो हाथ जोर तिह ठाम।
आदि अन्त महाराज को कोहलूर यह धाम॥

गुरु-विलास, पृष्ठ १६४

२. इक खान पठान मीयाँ जू हुतो। बादशाहन के उमराव सुतो।
गयो आप जम्मू इते काम कीनो। अलफ खाँ हूँको इते भेज दीनो॥
कटोचं, गुलेरं जसवारं केरे। इने पास जाई लबो दाम घेरे॥

वही, पृष्ठ १६४

बहुत काल इह भाँति बितायो, मीयाँ खान जम्मू कह आयो।
अलफ खान नादीन पठावा। भीमचन्द तन वैर बढ़ावा॥

विचित्र नाटक, पृष्ठ ५१

दि सिक्ख रेलिजन, मैकालिफ, पृष्ठ ५१
श्री दसमेश-चमत्कार, पृष्ठ १८२

३. आलिफ खाँ नादौन पठावा। भीमचन्द तन वैर बढ़ावा॥

विचित्र नाटक, पृष्ठ ५१

नहीं दाम देना, सिरजुद्ध लीना.

गुरु-विलास, पृष्ठ १६५ श्री दशमेश-चमत्कार, पृष्ठ १८२

गोविन्द सिंह की सेना की वीरता वह मंगानी युद्ध में देख ही चुका था, उसने इस युद्ध के लिये गुरु गोविन्द सिंह से सहायता माँगी। राजा पृथ्वीचन्द, राम सिंह, जैदेव जसरोटिया की सेनाएँ मिल कर नादीन के मैदान में पहुँच गईं।[1] युद्ध प्रारम्भ हुआ। कृपाल सिंह कटोचिए ने भीमचन्द की सेना के बहुत से सैनिकों का संहार कर दिया। सैनिकों की मृत्यु से भीमचन्द निराश हो गया और हनुमान नाम का जाप करने लगा।[2] गुरु गोविन्द सिंह इतने में उसकी सहायता के लिये जा पहुँचे। राजा भीमचन्द ने इनसे शत्रुओं को पराजित करने के लिये प्रार्थना की। वे एक टीले पर खड़े होकर बाणों की बौछार करने लगे। शत्रुओं की सेना में खलबली मच गई। राजा कृपाल भीमचन्द से युद्ध कर रहा था। गुरुजी वहाँ मैदान में पहुँच गये। राजा दयाल ने क्रोधित होकर गुरुजी की ओर तीन बाण चलाये, लेकिन उसका निशाना तीनों बार चूक गया। घमासान युद्ध होता रहा। अन्त में दयाल सिंह की मृत्यु गुरुजी की गोली से हुई।[3] सारी सेना भाग कर जंगलों में छिप गई। राजा कृपाल ने अलिफ खाँ को लौटने के लिये प्रेरित किया और परामर्श दिया कि गुरु गोविन्द सिंह की सेना के लौट जाने पर युद्ध करना उचित होगा। वे दोनों रण के मैदान से चले गये। गुरुजी युद्ध के पश्चात् आठ दिन तक व्यास नदी के रमणीक दृश्य देखने के लिये वहाँ ठहरे रहे।[4] राजा कृपाल और भीमचन्द की संधि हो जाने के पश्चात् वे आनन्दपुर लौट आये।

दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, मैकालिक, पृष्ठ ५२

१. तहा राजसिंह बली भीमचन्दं चढ़ियो राम सिंह महाँ तेज बंदं ॥
सुखंदेव गाजी जसारोट राजं। चढ़े क्रुद्ध कीने करे सरब काजं ॥
पृथीचन्द पढ़िओ चढ़े डढ्ढवारं। चले सिद्ध हुए काज राजं सुधारं ॥
करी ढूक ढोअं किरपाल चंदं। हठाए सबै मारि के वीर ब्रिन्दं ॥

विचित्र नाटक, पृष्ठ ५२

२. तबै भीमचंद कियो कोपु आपं। हनुमान के मंत्र को मुख जापं ॥

वही, पृष्ठ ५२

दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, पृष्ठ ५३

३. The Guru, seeing this, took steady aim with his musket and lodged a bullet in Dayal's breast. Dayal fell like a tree blown down by the wind.

The Sikh Religion, Volume, V, page 54

४. दिन आठ जानो, मुकाम रखानो,
नदी व्यासतीरं, बसे ठाथ धीरं ॥

गुरु-विलास, पृष्ठ १६८

गुरुजी की विशाल सेना की वीरता की प्रशंसा अब सब स्थानों में होने लगी। दिलावर खाँ पराजित होने से भड़का हुआ था, उसने अपने लड़के को आनन्दपुर जजिया लेने के लिये भेजा। वह सेना सहित जब आन्दपुर पहुँचा तो उसे देख गुरुजी ने रणजीत नगाड़ा बजाया जिसकी आवाज सुनते ही सिक्ख-सेना चमकती तलवारें लेकर सतलज के किनारे एकत्र हो गई। दिलावर खाँ का पुत्र दूर से ही सेना देखकर भाग गया।[1] उसकी सेना ने लौटते हुए मार्ग मे बरवा गाँव को लूटा और कुछ दिन मलान गाँव में भी ठहरी।[2]

हुसैनी युद्ध

दिलावर खाँ के पुत्र ने जब लौट कर पिता से गुरुजी की सेना की वीरता का वर्णन किया तो वह आगबबूला हो उठा। दिलावर खाँ के यहाँ एक गुलाम सरदार हुसैन खाँ था जिसने प्रस्ताव किया कि उसे यदि सेना के साथ भेज दिया जाय तो वह गुरु के नगर आनन्दपुर को लूट कर राजा भीमचंद आदि से जजिया वसूल करके लौटेगा।[3] हुसैन खाँ को दो हजार सैनिकों की सुसज्जित सेना के साथ आनन्दपुर में गुरुजी से जज़िया लेने के

नदी पै दिनं अष्ट कीनै मुकामं। भलि भांति देखे सबै राज धामं॥

विचित्र नाटक, पृष्ठ ५५

श्री दशमेश-चमत्कार, पृष्ठ १८६
दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, पृष्ठ ५४

१. बजी भेर भुंकार धुंके नगारे। महाबीर धानैत बंके वकारे॥
भय बाहु आघात नच्चे मरालं। कृपासिंधु काली गरज्जी करालं॥
इते बीर गज्जे भये नाद भारे। भजे खानं खुनी बिना शस्त्र झारे॥

विचित्र नाटक, पृष्ठ ५६

२. बरवा गाँव उजारिकै करे मुकाम भलान।
प्रभू बल हमें न कुछ सकै भाजत भए निदान

विचित्र नाटक, पृष्ठ ५७

हनौं बरवा चले धाई सोई। मध्य जा भलानं मुकाम सु होई॥

गुरु-विलास, पृष्ठ १७०

दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, मैकालिफ, पृष्ठ ५६
श्री दशमेश-चमत्कार, पृष्ठ १९०

३. दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, पृष्ठ ५६

लिये भेजा गया।[1] मार्ग में वह गाँव को लूटता गया।[2] उसने डड़वाल के राजा को भी परास्त किया। गुलेर का राजा गोपाल बहुत-सा धन लेकर हुसैन खाँ से मिलने आया।[3] हुसेन खाँ लालच में आ गया और उसने उससे और धन माँगा। राजा भीमचंद तथा अन्य पहाड़ी राजाओं ने हुसेन खाँ को पर्याप्त धन पहले ही दे दिया था और उसके साथ सम्मिलित हो गये थे। राजा गोपाल जब सहमत न हुआ तो हुसैन खाँ की सेना ने गुलेर किले को चारों ओर से घेर लिया। राजा गोपाल ने गुरु गोविन्द सिंह से युद्ध के लिये सहायता की प्रार्थना की। गुरुजी ने संगतिए को सेना सहित उसकी सहायता के लिये भेजा।[4] उसने पहले दोनों की सन्धि कराने की चेष्टा की। हुसेन खाँ ने दस हजार रुपये की माँग की। राजा गोपाल ने इसे अस्वीकार किया और युद्ध प्रारम्भ कर दिया। एक ओर राजा भीमचन्द, राजा कृपाल और हुसेन खाँ थे। दूसरी ओर राजा गोपाल और रामसिंह जासवाल थे।[5] भाई संगतिआ भी गोपाल की ओर ही था। घमासान युद्ध हुआ। दोनों ओर से बाण चलने लगे।[6] युद्ध का दृश्य भयानक था।

---

१. गयो खान जादा पिता पास भज्ज। सके ज्वाब दै ना हने सूर लज्ज॥
तहां ठोक बाहां हुसेनी गरजियं। सबै सूर लैके सिलासाज सज्जियं॥
विचित्र नाटक, पृष्ठ ५७

२. करियो जोरा सैनं हुसेनी पयानं।
प्रथम कूटि कै लूट लीने अवानं॥
पुनरि डड़वालं कियो जीत जेरं।
करे बंदिकै राजपुत्रान चेरं॥
वही, पृष्ठ ५७

३. गुआलेरिआ मिलन कह आये। राम सिंह भी संग सिधाए॥
दस सहस्र अबही के देहू। नातर मीच मूंड पर लेहू।
वही, पृष्ठ ५८, ५९

दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, पृष्ठ ५८
श्री दशमेश-चमत्कार, पृष्ठ १९२

४. सिंह संगतीआ तहाँ पठाए। गोपालै सु धर्म दै लियाए॥
विचित्र नाटक, पृष्ठ ५९

दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, पृष्ठ ५७
श्री दशमेश-चमत्कार, पृष्ठ १९३

५. दि सिक्ख रेलिजन भाग ५, पृष्ठ ५८

६. बजी भेर भुंकार तीरं तड़के। मिले हस्थि बथ्यं कृपाणं कड़के।
बजे जंग निसाण कत्थे कथीरं। फिरै रुंड मुंड तनं तच्छ तीरं॥

दोनों ओर की असंख्य सेना मृत्यु के घाट उतारी गई। हिम्मत और किम्मत दोनों योद्धा हुसेन खाँ की ओर लड़ने के लिये रणभूमि मे आये।[1] सात सवारों को साथ लेकर संगत राय ने युद्ध किया। दोनों ओर के वीर वीरता से लड़ते रहे। अन्त में हुसेन खाँ, राजा कृपाल कटोचिया और सरदार हिम्मत और किम्मत युद्ध में मारे गये। उनकी मृत्यु से सेना का उत्साह भंग हो गया और भीमचंद भी मैदान छोड़ कर भाग गया। इस प्रकार युद्ध में राजा गोपाल को विजय प्राप्त हुई। राजा गोपाल ने आनन्दपुर जाकर गुरुजी को अनेक उपहार दिये और उनके प्रति कृतज्ञता का प्रकाशन किया।[2]

युद्ध में विजय प्राप्त करने के पश्चात् सिक्ख सेना अत्यधिक प्रोत्साहित हुई। गुरुजी उन्हें वीरता की कहानियाँ सुनाकर उनमे वीरता के भाव का संचार करते थे। सिक्ख-सेना आततायी लोगों को लूटने लगी। पहाड़ी राजाओं ने मिल कर कई गाँवों में सेना का प्रबन्ध कर दिया। एक बार गुरुजी कुछ सेना सहित शिकार खेलने गये। मार्ग में उन्हें बलियाचन्द और आलमचन्द ने रोक लिया। उस समय गुरुजी की सेना की संख्या कम थी और पहाड़ी राजाओं की सेना असंख्य थी। दोनों दलों में घमासान युद्ध हुआ। शत्रुओं की सेना बुरी तरह घायल हुई। बलियाचन्द घायल हुआ। शत्रु-सेना के पाँव रणभूमि से उखड़ गये।[3]

जुटे आपमे बीर बीरं जुझारे। मनो गज्ज जुट्टे दंतारे दंतारे।
किधौं सिंह सो सारदूलं अरुझे, तिसी भांति क्रिपाल गोपाल जुझे॥
विचित्र नाटक, पृष्ठ ६१, ६२

१. हठियो हिम्मतं किंमतं लै कृपाणं, लये गुरज चल्लं सुजलाल खानं।
हठे सूरमा योद्धा जुझारं। परी कुट कुट्टं उठी शस्त्र झारं॥
जसवाल धाए। तुरंग नचाये। लयी भेरि हुसैनी, हन्यो सांगपैनी।
तिनू बाण बाहे। बड़े सैन गाहे। जिसे अंगि लाग्यो, तिसै प्राण त्याग्यो॥
वही, पृष्ठ ६२

जीत भई रण भयो उजारा। सिमरति करि सब घरों सिधारा॥
राख लियो हमको जग राई। लोह घटा अन्नतै बरसाई॥
विचित्र नाटक, पृष्ठ ६७

२. On seeing this Bhim Chand fled with his army Gopal then went with large offerings to the Guru and thanked him for his support and his prayers for the victory
The Sikh Religion, Volume V, p. 58

३. श्री दशमेश-चमत्कार, पृष्ठ २९१

इस युद्ध से सभी पहाड़ी राजा भयभीत हो गये और उन्होंने दिल्ली के सूबेदार को गुरुजी को आनन्दपुर से निकालने के लिए लिखा। सूबेदार ने पहाड़ी राजाओं से धन लेकर उनकी इस प्रार्थना को स्वीकार किया और दीनबेग और पैंदा खॉं को दस हजार सेना सहित आनन्दपुर की ओर भेजा।[१] इधर गुरु जी भी अपनी सेना एकत्र कर युद्ध के लिये तत्पर हो गये। दोनों सेनाओं के बीच घोर युद्ध होने लगा। पैंदा खाँ ने गुरु जी को अपने साथ युद्ध के लिये ललकारा। गुरु जी घोड़े पर उसके पास पहुँच गये और उत्तर दिया कि उनकी यह प्रतिज्ञा है कि वे कभी भी किसी पर पहले वार नहीं करेंगे। तभी पैंदा खाँ ने उनकी छाती का निशाना करके तीर छोड़ा; किन्तु निशाना चूक जाने से बाण कान के पास से निकल गया। उसके दोनों बाण व्यर्थ गये। गुरुजी ने उसके कान का निशाना लगाकर ऐसा बाण मारा कि वह घायल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और फिर न उठा। गुरु जी उसका सिर बर्छी पर टाँग कर अपनी सेना के पास ले गये।[२] पृथ्वी रक्त से लाल हो गई। पैंदा खॉं की मृत्यु के पश्चात दीनबेग ने युद्ध का भार ग्रहण किया। काफी सेना नष्ट हुई। पहाड़ी राजाओं ने भी उसकी सहायता की किन्तु वे सब मैदान छोड़कर भाग गये। राजा भीमचंद भी अपनी सेना लेकर भाग गया। दीनबेग भी घायल होकर भाग गया। सिक्ख सेना ने रोपड़ तक उसका पीछा किया।[3] गुरु जी की सेना काफी सामान लूट कर वापिस लौट आई।

पहाड़ी राजाओं से युद्ध

राजा भीमचन्द ने राजा भूपचंद, राजा अजमेरचन्द आदि सभी पहाडी राजाओं को लिखकर भेज दिया कि गुरु गोविन्द सिंह भी औरंगजेब की भाँति उनके हिन्दू धर्म के विरोधी हैं और उनकी शक्ति का बढ़ना हिन्दू धर्म के लिए अहितकर होगा और उन्हें आमंत्रित भी किया। यह समाचार मिलते ही जम्मू, नूरपुर, मूटान, मंडी, कौंथल, कुल्लू, चम्बा, गुलेर, डड़वाल, श्रीनगर आदि के राजा अपनी-अपनी सेना लेकर

---

१. वही, पृष्ठ ३०४
दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, पृष्ठ १२४

२. दि सिक्ख रैलिजन, भाग ५, पृष्ठ १२५
श्री दशमेश चत्मकार, पृष्ठ ३०६

३. By this time Din Beg was severely wounded and began to ask himself why he should try to keep the field any longer, since all those whom he had come to assist had ingloriously fled. He accordingly beat a retreat and was pursued by the Sikha as far as Ropar.

The Sikh Religion, Volume V, page 125.

भीमचंद के पास आ गये।[१] सबने कुमंत्रणा करके गुरु गोविन्द सिह को पत्र लिखा कि वे उन्हे जमीन का कर दे अथवा आनन्दपुर छोड़ दे क्योंकि यह स्थान उनके पिता जी को रहने के लिये दिया गया था, राज्य स्थापित करने के लिये नहीं। गुरु जी ने उसका उत्तर दिया कि यह जमीन उनके पिता ने पूरा रुपया दे कर खरीदी थी। यदि तुम्हारी दूषित भावना है तो खालसा की तलवार के सामने अभिमानी नहीं रह सकेंगे।[२] अपनी कुमत्रणा का समुचित उत्तर पाकर सभी राजाओं ने सेना सहित आनन्दपुर की ओर प्रस्थान किया। गुरु जी तो पहले से ही युद्ध की तैयारी किये बैठे थे। उन्होंने उत्साहवर्धन करते हुए खालसा को संबोधित किया कि यदि वे युद्ध में मृत्यु को प्राप्त हुए तो वीरगति को प्राप्त करेंगे और यदि विजयी हुए तो सारा राज्य उनका है।[३] उन्होंने लौहगढ़ और फतेहगढ़ दोनों किले पहाडी पर बना रखे थे और दोनों किलों में युद्ध की सामग्री और सेना तैयार रखी। शेरसिह और नाहर सिंह पाँच-पॉच सौ सैनिक लेकर लौहगढ़ की रक्षा कर रहे थे। उदयसिंह को फतेहगढ़ का भार सौपा गया।

राजा भीमचन्द सर्वप्रथम अपनी सेना लेकर आगे बढ़ा। राजा जसवालिया के साथ भाई उदय सिंह युद्ध करने लगे। अजीतसिंह, भाई दया सिंह और आलम सिंह ने अपनी तलवारों से कई शत्रुओं का वध किया। सिक्खों की सेना पर एक तरफ केसरी-चन्द और दूसरी ओर जगतुल्लह बाण चलाने लगे। केसरी चन्द को आगे बढ़ता देख-कर अजीतसिंह ने भाई मोहकम चन्द और दया सिह को साथ लेकर उसका सामना किया। उन्होंने अपनी तलवारो से कई सैनिकों के सिर शरीर से अलग कर दिये। पृथ्वी रक्त-रंजित हो गई। अजीतसिंह के बाण से राजा केसरी चन्द घायल हुआ। उदय सिह और साहब सिंह ने जगतुल्लह को गोली से मार दिया। राजा घमंडसिंह जगतुल्लह का शव उठाने के लिए आगे बढ़ा किन्तु वह भी घायल होकर भाग गया।[४]

दूसरे दिन पहाड़ी राजाओं की सेना ने आनन्दपुर को घेरना चाहा; किन्तु सिक्ख सेना ने वीरता से सामना किया। दोनों ओर से गोली, बर्छी, बाण, तलवारे चलने लगीं और मृतकों की संख्या बढने लगी। अजीतसिह के घोड़े को गोली लग जाने से वह घायल हुआ। अजीतसिह नीचे उतर कर बाण चलाता रहा। अन्त में पहाड़ी सेना निराश होकर लौट गई।

---

१. श्री दशमेश चमत्कार, पृष्ठ ३०८
   दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, पृष्ठ १२७
२. वही, पृष्ठ १२७, १२८
३. वही, पृष्ठ १२९
४. वही, पृष्ठ १३१

कई दिनों तक पहाड़ी राजाओं के साथ गुरु जी की सेना का युद्ध होता रहा। एक अंधेरी रात को ही सिक्खों ने पहाड़ी सेना पर आक्रमण किया और उनके अस्त्र-शस्त्र लूट कर आनन्दपुर लौट आये। पहाड़ी राजाओं ने मिलकर विचार किया कि इस प्रकार इतने दिनों तक युद्ध करने से कुछ लाभ नहीं होगा। व्यर्थ में प्रतिदिन सैकड़ों सैनिकों की मृत्यु होती है। उन्होंने राजा केसरी चन्द के प्रस्ताव पर एक हाथी को शराब पिलाकर मस्त किया और शस्त्रों से सुसज्जित कर उसके माथे पर बर्छी-भाले आदि लगाकर उसे आनन्दपुर की ओर किले का मुख्य द्वार तोड़ने के लिए भेजा।[१] किन्तु भाई विचित्रसिंह ने हाथी के मस्तक पर ऐसा भाला मारा कि वह घायल होकर पीछे की ओर भागा और अपनी ही सेना को कुचलने लगा। शत्रु-पक्ष के अनेक व्यक्तियों को मारकर स्वयं भी जमीन पर गिर कर मर गया। द्वन्द्व युद्ध में भाई उदय सिंह ने राजा केसरी चन्द का सिर तलवार से काट कर शरीर से अलग कर दिया। हन्डूर का राजा भी घायल हुआ।[२]

दूसरे दिन राजा घमंड सिंह युद्ध का सेनापति बना। दोपहर तक तो उसकी सेना वीरता से लडती रही और सिक्ख-सेना भाग कर किले में जा छिपी। पश्चात् सिक्खों ने बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी और एक बाण से घमंड सिंह स्वयं भी घायल हो गया। उसे घायल अवस्था में देखकर पहाड़ी राजा निराश हो गये और युद्ध बन्द कर दिया गया। जब वे युद्ध-भूमि में आये थे तो उनके पास तीन लाख सेना थी। किन्तु लौटते समय उनके साथ केवल एक लाख ही सैनिक शेष बचे थे। सिक्खों ने घायलों का उपचार और मृतकों का दाह-संस्कार किया।[3]

उपरोक्त युद्ध में पराजित होने के पश्चात पहाडी राजाओं ने औरंगजेब को गुरु जी के विरुद्ध भड़काया और लिखा कि उनकी शक्ति को दबाना ही उचित

---

१. As proposed by Raja Kesarı Chand, an elephant was intoxicated and prepared for the attack on Anandpur. All his body except the tip of his trunk was encased in steel Astroy spear projected from his forehead for the purpose of assault.

The Sikh Religion, Vol. V, p 134.

२. Udai Singh on this dashed forward sword in hand and with one blow cut off Kesari Chand's head. Then posing the head on his spear he rode into the fort to exhibit it as a tangible proof of his victory...In this retreat the Raja of Handur was severely wounded by the brave Sahıb Singh.

The Sikh Religion, Vol. V, p 135

३. दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५. पृष्ठ १३६

होगा। औरंगजेब ने सरहिन्द के गवर्नर वजीर खाँ को लिखा कि वह पहाड़ी राजाओं की सहायता करें।[1]

इधर पहाड़ी राजाओं ने अपनी कूटनीति से गुरु जी को गाय की शपथ दिलाकर आनन्दपुर छोड़ने के लिये लिखा। गुरु जी देश, धर्म की रक्षा के हेतु सब कुछ बलिदान करने को तत्पर थे। वे आनन्दपुर छोड कर मैदान मे आ गये।[2] पहाड़ी राजाओं ने श्री गुरु जी को अल्प सेना के साथ देख कर उन पर आक्रमण कर दिया। गुरु जी और उनकी सेना एक टीले पर खड़े होकर बाणों की वर्षा करती रही। अनेक शूरवीरों की मृत्यु हुई। अपनी पराजय देखकर पहाड़ी राजा पीछे लौटने लगे। इतने में सरहिन्द का नवाब वजीर खाँ भी पहाडी राजाओं की सहायता के लिये आ पहुँचा। वजीर खाँ की सेना ने सिक्ख सेना को चारों ओर से घेर लिया। अब आनन्दपुर लौटना उनके लिये असंभव हो गया। गुरु जी की सेना ने शत्रुओं की सेना के दाँत खट्टे किये और रात हो जाने के कारण युद्ध बन्द हो गया।[3]

शत्रुओं की सेना की ऐसी स्थिति में मुकाबला करना गुरु जी के लिये संभव न जान पड़ा। वैसाली का राजा गुरुजी को अपने पास कई बार बुला चुका था। गुरु जी ने वैसाली जाने का निश्चय किया। वे जब वैसाली जा रहे थे तो वजीर खाँ की सेना ने आगे से उनकी सेना पर आक्रमण कर दिया। उदय सिंह, आलम सिंह, दया सिंह, हुकुम सिंह और गुरु जी के पुत्र अजीत सिंह ने वीरता से शत्रु-सेना का सामना किया। गुरु जी शीघ्रता से सतलज नदी के उस पार चले गये, किन्तु नदी मे बाढ़ आने के कारण शत्रु की सेना आगे न बढ़ सकी। कुछ समय तक वैसाली और मंवीर रह कर गुरु जी उदय सिंह, दया सिंह आदि की प्रार्थना पर आनन्दपुर लौट आये।[4]

---

१. Large Imperial forces were sent from Sarhind to cooperate with the quotas of the hill Rajas, and suppress the Guru but they were usually worsted.

History of Aurangzeb, J. N. Sarkar, Vol III, p. 318

२. दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, पृष्ठ १३९, १४०

३. हे दीना बन्धु, सच्चे खत्री योद्धे, असां बड़ा पाप कीता है जो तुहाड़े नाळ लड़ाई छेड़ लई। सानू इह यकीन हो गया है कि तुसी अजित हो। साडे बिच सेनी दलेरी नहीं जो कि खुलम खुला अपनी हार मन लइये। इस लई तुहानू गऊ माता, हिन्दू धर्म अते खत्री धर्म दा वास्ता पा के बेनती करदे हां कि सानू हार खान दी शर्म दी हेठी तो बचाओ। आनन्दपुर तो भौवे इक दिन लई ही चले जाओ। असी सदा लई तुहाड़े दास बने रहांगे।

जीवन कथा, श्री गुरु गोविंद सिंह, प्रो० कर्तार सिंह, पृष्ठ २५५

४. जीवन कथा, श्री गुरु गोविंद सिंह, प्रो० कर्तार सिंह, पृष्ठ २६०

सय्यद बेग और आलिफ खाँ दो मुगल सरदार लाहौर से दिल्ली की ओर जा रहे थे, तभी पहाड़ी राजाओं ने उन्हे दो हजार रुपया प्रतिदिन देना स्वींकार करके गुरु जी के विरुद्ध लड़ने के लिये भेजा। उन दोनों के पास दस हजार सैनिक थे। उस समय गुरु जी चमकौर के निकट ही थे। उन्होंने उनका उत्साहपूर्ण सामना किया। सय्यद खाँ गुरु जी की वीरता देखकर चकित हो गया और उनसे इतना प्रभावित हो गया कि उनकी सेना मे सम्मिलित होकर अलिफ खाँ से युद्ध करने लगा। उसे गुरु जी की ओर से युद्ध करते देख कर अलिफ खाँ का साहस समाप्त हो गया और वह रणभूमि छोड़ कर भाग गया।[१] सय्यद बेग दिल्ली के मुगल बादशाह से संबंध विच्छेद करके गुरु जी के साथ ही रहने लगा और अपना सारा धन उन्हें दे दिया।

पहाडी राजाओं ने पुनः औरगजेब से प्रार्थना की कि गुरु गोविद सिंह की सेना दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है। उसका अन्त करना अनिवार्य है अन्यथा वह शक्तिशाली बन कर अपने पिता का प्रतिशोध लेगा।[२] औरंगजेब ने पहाडी राजाओं की प्रार्थना पर विचार करके सय्यद खाँ को एक बड़ी सेना के साथ गुरु जी के विरुद्ध भेजा। मार्ग मे पहाडी राजाओं की सेना भी उसके साथ मिल गई। इस समय गुरु जी के पास केवल ५०० सैनिक ही थे। मुगल सेना के सौ-सौ पठानों ने एक एक सिक्ख को घेर लिया। मेमू खाँ और सय्यद बेग ने गुरु जी की ओर से मुगल सेना के साथ डट कर सामना किया। रणभूमि रक्त-रंजित और शवों से आक्रात हो गई। सिक्ख-सेना वीरता से लड़ती रही। सय्यद बेग ने रणभूमि में वीर गति प्राप्त की। तदनंतर सय्यद खाँ ने गुरु जी के साथ द्वन्द युद्ध करने की इच्छा प्रकट की; किन्तु जब गुरु जी

दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, पृष्ठ १४१, १४२

१. Alif Khan on seeing that Saiyad Beg had joined the Sikhs concluded that he had no chance of victory and retired from the contest. He was hotly pursued by the Sikhs and Saiyad Beg.

The Sikh Religion, Vol 5, p. 154

२. साडी खवाइश ताँ है कि कुकर फैलाऊन वाले गुरु अते उसदे साजे होये फसादी फिरके नू मलिया मेट करके आप जी दिआं खुशीयाँ प्राप्त करिये। पर उह साडे नालो बहुत तकड़े हन। असी कई हल्ले कीतै हन पर हार जान्दे रहे हां। साही मदद लई जेहड़ियाँ शाही फौजा आऊदीआं रहियाँ हन उन्हा दा भी उसा ही हाल हुंदा रिहा है। सानू निसचा हो गया है कि जद तक आपदी खास फौज मैदान विच नहीं अऊँदी तद तक साडी तुहाडी हिक बिचों इह कंडा नहीं निकल सकदा।

जीवन कथा, श्री गुरु गोविन्द सिंह, पृष्ठ २८४

उसके सामने गये तो सय्यद खाँ ने अपने शस्त्र छोड़ दिये और युद्ध के मैदान से हट गया। सय्यद खाँ के इस व्यवहार से रमजान खाँ अत्यंत क्रुद्ध हुआ और सिक्ख-सेना से अकेले लड़ता रहा। किन्तु गुरु जी के तीर से उसका घोड़ा मर गया और वह निहत्था होकर अपनी सेना में वापिस लौट गया। मुगल सेना ने दृढतापूर्वक सिक्खों का मुकाबला किया और गुरु जी को आनन्दपुर छोड़ने के लिये विवश कर मुसलमानों ने नगर पर अधिकार कर लिया और गुरु जी की संपत्ति को लूटा। इसके पश्चात् वह सरहिन्द की ओर बढ़ गई।[1] तदनन्तर गुरु जी अपनी सेना को लेकर आनन्दपुर लौट आये। पठानों की सेना ने आनन्दपुर के निकट स्थान को लूटा। दूसरी रात को जब पठान सो रहे थे तो सिक्खों की सेना ने उनपर आक्रमण किया और घमासान युद्ध हुआ। पराजित हो कर पठान सेन भाग गई। सिक्खों ने उनका सब सामान संग्रह कर लिया।

औरंगजेब से उसकी सेना ने जब युद्ध में पराजय का समाचार सुनाया तो वह आग-बबूला हो गया। पहाड़ी राजा उसको युद्ध के लिये पहले ही उत्तेजित कर चुके थे। उसने सरहिंद और लाहौर के गवर्नरों को लिखकर भेजा कि पहाड़ी राजाओं की सहायता से वे गुरु जी पर पुनः आक्रमण करे। विलासपुर, कागरा, जसपाल, कूलू, कियोंथल, मडी, जम्मू, नूरपुर, चम्बा, गुलेर, दरौली, डड़वाल के राजा सेना सहित राजा भीमचन्द के पास पहुँच गये।[2]

इधर गुरु जी को औरंगजेब ने कूटनीति से आनन्दपुर छोड़ने के लिये लिखा और यह भी लिखा कि उसके विचार गुरु जी से भिन्न नहीं हैं इसलिये वे उनसे

---

१. The Guru on closely observing the combat saw that there was no chance of retrieving his position, so he decided to evacuate Anandpur. The Muhamedans then captured the city and plundered the Guru's property On obtaining this booty they proceeded in the direction of Sarhind.

The Sikh Religion, Volume V, page 163, 164

२. गवारियर जसवार सुजानहु। जम्मू लाग कटौंच पछानहु।
पुरीआनूर चन्द्रशेखर आयो। गिरि की सैन अधिक लै आयो॥

गुरु विलास, पृष्ठ ३९०

श्री दशमेश चमत्कार, पृष्ठ ४४५

The hill chiefs who arrayed themselves against the Guru were Ajmer Chand of Bilaspur, Ghumand Chand of Kangra, Bir Singh of Jaspat and the Rajas of Kullu, Kionthal, Mandi, Jammu, Nurpur, Chamba, Guler, Srinagar, Bigharwal, Darauli and Dadhwal

The Sikh Religion, Vol. V, p. 166.

आकर मिले। गुरु जी ने उसके प्रस्ताव का विरोध किया। पहाड़ी राजाओं की संगठित सेना ने आनन्दपुर को चारों ओर से घेर लिया। एक ओर सरहिन्द, दूसरी ओर लाहौर, तीसरी ओर दिल्ली की सेना और चौथी ओर पहाडी राजा स्वयं थे। गुरु जी ने सभी मोर्चों पर सिक्ख-सेना तैनात कर दी।[1] सिक्ख सेना पहाडी से और शत्रुओं की सेना मैदान में खडे होकर लड़ रही थी। सिक्खों की तोपों से अनेक सैनिक घायल होते थे; किन्तु तुर्की सेना का निशाना व्यर्थ ही जाता था। वजीर खाँ और जबरदस्त खाँ के विरोध में उदयसिंह और दयासिंह लड रहे थे। शत्रु-सेना की अपार क्षति हुई।

दूसरे दिन गुरु जी स्वयं मैदान में आ खड़े हुए। जबरदस्त खाँ तथा उसके सैनिकों ने उन पर कई गोलियाँ चलाईं, किन्तु सभी निशाने चूक गये। गुरु जी एवं सिक्खों ने बर्छी, भाले, तोप, तलवार से शत्रु-सेना को नष्ट किया। शत्रु-सेना के सैनिक जो बच गये थे, उन्होंने आनन्दपुर को घेर लिया। गुरु जी ने अपने पुत्र अजीत सिंह एवं अन्य सेना-नायकों—नाहर सिंह, शेर सिंह, आलम सिंह, उदय सिंह, दया सिंह को नगर के विभिन्न भागों की सुरक्षा के लिये तैनात कर दिया था। कई दिनों तक घेरा पड़ा रहा। सभी आने-जाने के मार्ग बन्द पड़े थे।[2] खाद्य-सामग्री बाहर से नहीं आ सकती थी; किन्तु फिर भी सिक्ख सेना ने धैर्य न छोड़ा। वे रात को लूटकर अपने लिये खाने का प्रबन्ध कर लेते थे।[3] गुरुजी के पास

---

१. जबै प्रबल दल अरिन कै, लगे चहूं दिसि आई।
श्री सतगुरु कर मोर्चे दीने सिक्ख बिठाई॥

गुरु विलास, पृष्ठ ३९२

श्री दशमेश चमत्कार, पृष्ठ ४४६

दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, पृष्ठ १६९, १७०

२. रोक लये तिन है सब मार्ग लछ कई दल अहि लखाओ।
केतक मास बीत कर गये, घेरा दसो दिसन तिन पये॥

गुरु विलास,

आवन रसत मनैं उन करई मार्ग रोक सबै दिसि लई॥

गुरु-विलास, पृष्ठ ३९९

३. श्री दशमेश-चमत्कार, पृष्ठ ४९७

When provisions were running short, the Sikhs made several night sorties and took supplies from the enemy's camp. On such occasions they were often attacked but they generally contrived to return with scant loss.

The Sikh Religion, Vol V, p. 174

वाघिन और विजयघोष के नाम की दो तोपे थीं। इनके निशानों से शत्रुओं के खेमों और झंडों के टुकडे कर दिये गये। उनके तीरों से घोड़े और सैनिक घायल होकर पृथ्वी पर धराशायी हुए और शवों के ढेर युद्ध-भूमि में लग गये। शत्रु-सेना निराश होकर भाग गई और गुरुजी ने विजय की घोषणा की।[1] आनन्दपुर को कई दिनों तक शत्रु-सेना ने घेर रखा था जिसके कारण वहाँ अकाल पड़ गया। एक रुपये सेर अनाज मिलने लगा। सेना, हाथी और घोड़े भूख से दुर्बल हो गये।[2] कई सिक्ख-सैनिक युद्धों से तंग आकर गुरुजी का साथ छोड़ने को तत्पर हुए। गुरुजी के शत्रुओं को जब ज्ञात हुआ कि गुरु का साथ सिक्ख छोड़ रहे हैं तो उन्होंने इस अवसर से लाभ उठाने का प्रयत्न किया। औरंगजेब ने ईश्वर को साक्षी बना कर कुरान की सौगन्ध खाते हुए गुरुजी को लिखा कि वे यदि आनन्दपुर छोड़ देंगे तो वह उन्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं पहुँचने देगा। साथ में यह भी इच्छा प्रकट की कि वह उनसे मिल कर प्रसन्न होगा।[3]

गुरुजी उसकी कूटनीति से भलीभाँति परिचित थे। उन्होंने उसके इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। गुरुजी की माता और सिक्खों ने उनको औरंगजेब के लिखे पत्र पर विश्वास करने को बाध्य किया। प्रायः सभी सिक्ख उनका साथ

---

1 The tents and standards of the Muhemmedans were first blown away. Their two Generals on seeing this retreated. As the guns oommitted further destruction both the Mahammedan and the hill armies took to flight.

The Sikh Religion, Vol. V, p 173

२. मास देह ते उड गयो रहे हाड और स्वांस।
आजकल इह जात हैं भोजन हीन ग्रास॥

गुरु-विलास, पृष्ठ ४०१

एक रुपये सेर सुजानहु। बिकै अनाज तवन ही थानहु
सो भी ढूंढत हाथ न आवे।......... ....।

वही, पृष्ठ ३९९

दि सिक्ख रेलिजन भाग ५, मैकालिफ, पृष्ठ १७५

३. तब लख लिखा औरंग का तहीं पहुचओं आन।
जब बाचिओं वह छोर कर रेस लिखिओ तिह मध्य॥
कसम कुरान पिकम्बरी कौल करेसु बेहद।
....।

जो तुमसे हम बुरा तकावै। निज दरगाह ठौर नहीं पावैं।

गुरु-विलास, पृष्ठ ४१४

छोड़ गये। गुरुजी के पास केवल चालीस सिक्ख ही शेष रहे। भाई दयासिंह, उदय सिंह, अजीतसिंह और जोरावरसिंह ने भी उनके साथ आनन्दपुर से प्रस्थान किया।[१] उन्होंने आनन्दपुर छोडते समय बहुमूल्य कनातों को अग्नि के अर्पण कर दिया और धन-सामग्री आदि सिक्खो को बाँट दिया। १५ माघ संवत् १७६१ को गुरुजी ने आधी रात में आनन्दपुर से प्रस्थान किया।[२] कीरतपुर से होते हुए वे निरमोह गॉव में पहुँच गये।

पहाड़ी राजाओं ने जब दोनों किले खाली देखे तो गुरु जी का पीछा करने के लिये चारों ओर अपनी सेनाएँ भेजी। उदय सिंह और जीवन सिंह जो अजीत सिंह की रक्षा के लिये साथ में गये थे, लड़ते हुए शहीद हो गये। अजीत सिंह और गुरु जी सरसा नदी पार कर रोपड़ पहुँच गये।

चमकौर का युद्ध

सरसा नदी पार कर गुरु जी माजरपुर गाँव में पहुँचे तो उन्हें यह सूचना मिली कि शाही सेना सामने आ रही है।[3] गुरु गोविन्द सिंह चमकौर की ओर बढे, वहीं एक बाग मे अपना डेरा डाला, एक जाट किसान की ऊँची हवेली को किला बनाया और उसी मे सिखों सहित रहने लगे।[४] उन्होंने आठ सिक्खों को किले के भीतर चारों

---

१. श्री दशमेश-चमत्कार, पृष्ठ ४८६
दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, मैकालिफ, पृष्ठ १८५

२. संमत सत्रह सहससुमधि। माघ इकाहठ भयो सयुद्ध।
तब करुणा निधि किओ पियाना। सुखासिंह सुनियो इम काना।
गुरु-विलास, पृष्ठ ४१९-४२०

Annandpur was five timesinvested. In the last attack of undergoing great hardship and loss, with his followers and family threating to desert if he prolonged the resistence The Guru erected the Fort and then went Kirtpur and Roper closely persuaded by the Mughals.

History of Aurangzeb, J. N. Sarkar, p 319

३. माजर पुर सुना इक ग्राम। ठाढ़ भये तित प्रभु गुण धाम।
गुरु विलास, पृष्ठ ४३३

श्री दशमेश चमत्कार, पृष्ठ ४९३
दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, मैकालिफ, पृष्ठ १८६

४. ऊंचो नगर गढ़ लख पाई, आए शहन शाह सुख दाई।
दशम दिशा बाग लख पाई। उतरे यो चमकौर सों आई॥
गुरु विलास, पृष्ठ ४२२

ओर निश्चित स्थानों पर खड़ा कर दिया। भाई मदन सिह और कोठा सिह को दरवाजे पर खडा किया। स्वयं दोनो शहजादो, भाई दया सिह और संत सिंह सहित अटारी पर खडे हो गये। मानसिंह और आलम सिंह को पहरेदार नियुक्त किया।[1] शत्रुओ की दस हजार सेना ने किले को चारों ओर से घेर लिया। काबुल, कंधार, बलख, बुखारा, ईरान, काश्मीर आदि से सेनाएँ मँगवाई गई थी।[2] गुरु गोविन्द सिह तथा उनके साथी सिक्खों ने हवेली के अन्दर से ही बाणों और गोलियों से शत्रुओं पर अनवरत प्रहार किये। गुरु जी के एक-एक तीर ने शत्रु पक्ष मे कई-कई लोगों का वध किया। सेना का विध्वंस देखकर सेनानायक आगे बढ़े किन्तु वे भी घायल होकर पृथ्वी पर गिर गये। शाही सेना ने किले का फाटक तोड़ने का प्रयास किया। गुरुजी ने पहली बार छः सिक्खों—मुहार सिंह, कीरत सिंह, आनन्द सिंह, लाल सिह, केसर सिंह, अमोलक सिंह, को रणभूमि मे भेजा। वे सभी असंख्य शत्रु-सेना का संहार करके स्वय भी वही शहीद हो गये।[3] इनके अतिरिक्त ज्ञान सिंह, ध्यान सिह, दान सिंह और मोहकाम सिंह भी सामना करने रणक्षेत्र में जा पहुँचे। इन शूरवीरों ने अन्त समय तक शत्रुओं को नष्ट किया। अकेले मोहकम सिंह ने हजारों शूरवीरो को नष्ट किया। तत्पश्चात् इन वीरों ने युद्ध मे वीरगति प्राप्त की। नाहर खाँ और गैरत खाँ अपनी सेना लेकर हवेली के निकट अभी पहुँचे ही थे कि गुरुगोविन्द सिंह ने उन्हे ऐसा बाण मारा कि दोनों वहीं घायल होकर गिर पड़े और उनकी मृत्यु हो गई। हिम्मत सिंह भी वहीं शहीद हुआ।

---

१. गढ़ के मध्य कृपानिधि आई। जथा जोग किनी तरकाई॥

वही, पृष्ठ ४२५

श्री दशमेश चमत्कार, पृष्ठ ४९७

दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, मैकालिफ, पृष्ठ १८७

२. कारे, पीरे, भूरे तुर्क, सिलह संजोव सीस धर बुर्क।
रूसी, रूमी, हवश, पिशोरी, काबुल, गजनी जिह ग्रिह ठोरी,
बलख, बुखारा, ईरानी किते, हरेव कंधारी, भर वारी हुते।
ठटा और काश्मीरी बन्दर, सब आए इनके जो अन्दर।
बाई धार राव और राने, गूजर रंघड़ कौन बखाने।

गुरु विलास, पृष्ठ ४२६

३. वही, पृष्ठ ४२१

श्री दशमेश चमत्कार, पृष्ठ ५०१

दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, मैकालिफ पृष्ठ १८८, १८९

गुरु जी का पुत्र अजीत सिंह भी पिता से आज्ञा लेकर पाँच सिक्खो सहित रणभूमि मे पहुँचा। उस समय उसकी अवस्था केवल अठारह वर्ष की ही थी। उन्होने शत्रुओं को बाण, भाले, बर्छी से घायल कर घोड़ों सहित पृथ्वी पर गिराना आरम्भ किया। भयानक युद्ध होता रहा। रक्त से पृथ्वी लाल हो गई। शवों के ढेर लग गये।[1] अपनी सेना का विनाश देखकर जबरदस्त खॉं पुनः बाणो की वर्षा करने लगा। अजीत सिह का शरीर बाणों से बुरी तरह छिद गया। वह रणक्षेत्र में लडते हुए वीरगति को प्राप्त हो गया।[2] तदनन्तर जोरावर सिंह भी अजीत सिह के समान पॉंच सिक्ख लेकर पहुँचा। ये भी वीरता से शत्रु सेना का सामना करते रहे, अन्त में शहीद हुए।[3] इस प्रकार दोनो भाइयों ने दस लाख सेना के बीच घमासान युद्ध किया।[4] गुरु जी ने तब स्वयं बाणों की बौछार प्रारम्भ की। उन्होंने शत्रुओं की

---

१. मार अस्वार धमकार ते गिरत है सरन की चोट सहके करारी।
एक को मार बिदार दू जान को। चार ओर तीन पंच बिदारी।
संटस फ्तान आठान को चीर कै नवं दासान को कर प्रहारी।
गियार बारान तैरान कौ डार धर जात न राच सूकै आगारी॥

गुरु विलास, पृष्ठ ४३३

२. साहिब सिंह अजीत कृपानिध जुद्ध करयो अरको दल माहीं।
शत्रुन हाथ दिखाय भली विध लोप भये रण में तब आही॥

वही, पृष्ठ ४३४

३. धनुष नाराच जो तान रण में, गयो शत्रु की सैन अनगन संघारी
सरन को मार अपार केतक दई तुपक तरवार सो कित बिदारी।
हने अरिजाल कराल से लागत है, पीड़ कर भरत हैं हुं हंकारी
अन्ध का बंध इक सीस विन डोलत ही परत हहैक तिनको मझारी।
एकन को मार, दुजान को छेद के तीसरे मध्य कर बिसख जाही।
लगत है जासके अंग बलवान को तड़प कर देह पल में गिराही।
फिरत हैं अरुन मैं मेघ चपलान जितने, लखत कित जाइ लखबौ न आई॥
बिसख बान सर तुपक अस, चलत लोह की धार।
जोरावर तिन में फिरत गहै हाथ हथ्यार॥

वही, पृष्ठ ४३५

दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, पृष्ठ १८८, १८९

४. इह विधि युद्ध मचाइकै दह लख सेना संग।
भये अलोप रण भूमि में दोनों वीर निसंग।

गुरुबिलास, पृष्ठ ४३७

श्री दशमेश चमत्कार, पृष्ठ ५०४

उनचास हज़ार सेना को मृत्यु के घाट उतारा। रक्त की नदी बहने लगी।[1]

गुरु जी के पास अब केवल पाँच सिक्ख शेष रह गये थे। अन्त में इन सिक्खो के आग्रह से गुरु जी हवेली के दूसरे फाटक से बाहर निकल कर दक्षिण की ओर चल दिये। उन्होंने जाने के पूर्व पहरेदारों पर दो बाण चलाये जिससे कि वह उनके संबंध में सचेत हो जायँ। सन्त सिंह और संगत सिंह जो गुरु जी से पीछे छूट गये थे, मुसलमानी सेना का काफी संहार करके वीरगति को प्राप्त हुए। अन्त मे शत्रु सेना निराश होकर तितर-बितर हो गई।

उपरोक्त युद्ध-वर्णन में गुरु जी के पुत्रों के सम्बन्ध में लेखकों के विभिन्न मत प्राप्त होते हैं। गुरु विलास में जोरावर सिंह का वर्णन मिलता है कि पिता के साथ वह युद्धक्षेत्र मे थे और जुझार सिंह को दीवार में चुनवा दिया गया था। मैकालिफ ने भी युद्ध में जोरावर सिंह के ही शहीद होने का उल्लेख किया है किन्तु प्रो० कर्तार सिंह ने और भाई ज्ञान सिंह ने जुझार सिंह की शहीदी का उल्लेख युद्ध में और जोरावर सिंह का दिवार मे चुनवाये जाने का ही वर्णन किया है। गुरु गोविन्द सिंह के स्वरचित विभिन्न नाटक में जुझार सिंह का ही चमकौर के युद्ध मे बलिदान होने का उल्लेख मिलता है।[2] अतः यही प्रमाणित जान पड़ता है कि चमकौर के युद्ध मे

---

१. चली रक्त की नदी बिराजे, बैतरनी ताकों लख लाजे।

गुरुविलास, पृष्ठ ४३७

२. अपने भरा अजीत सिंह जी नू शहीद होइया देखके जुझार सिंह ने पिता पासों
जुद्ध विच जान दी आज्ञा मंगी।
श्री दशमेश चमत्कार, पृ० ५०२
तब जुझार एकल ही धयो।
वीरन घेरि दसो दिस लयो॥
इह विधि सो वध भयो जुझारा।
आन बसे तब धाम लुझारा॥

विचित्र नाटक, पृष्ठ ६९

जोरावर तिनमें फिर गहै हाथ हथ्यार।

गुरुविलास, पृष्ठ ४३५

Zorawar Singh, the Guru's second son on seeing his brother's fate could not restrain himself and asked his father's permission to go forth as Ajit Singh has done and avenge his death,

The Sikh Religion, Vol. V, P. 189.

जुझार सिंह ही अपने पिता के साथ थे और जोरावर सिंह अपने भाई फतेह सिंह के साथ दिवार में चुनवाया गया अथवा तलवार के घाट उतारा गया।

मुक्तसर का युद्ध

दशमेश जी आनन्दपुर छोड़कर जब दीना मे सुरक्षा का प्रबन्ध कर रहे थे तो उन्होंने उस गाँव को शत्रुओं की कोप-दृष्टि से बचाने के लिये छोड़ दिया और भगता गाँव होते हुए कोट कपूरा पहुँचे। वहाँ से खिदराना गाँव की ओर जा रहे थे तभी मंझा के सिक्खों का दल जिसने आनन्दपुर मे उनका साथ छोड़ दिया था, क्षमा-याचना के लिये गुरु जी के पास आया। मझा के पाँच सिक्खों ने पैंतीस और सिक्खों को गुरु जी की सहायता के लिये प्रेरित किया।[1]

गुरु जी इन चालीस सिक्खों को साथ लेकर खिदराना गाँव पहुँचे। वहाँ तलाब के निकट डेरा लगाया। उधर तुर्की सेना को जब गुरु जी के पड़ाव की जानकारी हो गई तो वह वहाँ जा पहुँचे। दोनों दलो में घमासान युद्ध हुआ। गुरु जी के चालीस सिक्खों ने कई हजार सेना से मुठभेड़ की। पहले पाँच सिक्ख आगे बढ़े किन्तु गोलियों के शिकार हुए। दुबारा दस आये और उन्होंने शत्रु-पक्ष के अनेक सैनिकों का संहार किया, अंत मे शहीद हो गये। इसके पश्चात् वजीर खा की सेना गुरु जी के और निकट आ गई। ग्यारहों सिक्खों ने उसका डट कर मुकाबला किया और शहीद हुए। भगो नामक स्त्री जो गुरु जी की शरण मे आ गई थी उसने भी अत्यन्त वीरता दिखाई और शत्रु-पक्ष के अनेक सैनिको को नष्ट करके स्वयं भी वीरगति को प्राप्त हुई। समस्त चालीस सिक्ख शहीद हो चुके थे। गुरु जी ने दो मील दूर एक पहाड़ी पर अपनी सुरक्षा का स्थान बनाया और वहीं से बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी जिससे तुर्की सेना विचलित हो गई। बाणों के समाप्त होने पर वजीर खाँ ने समझा कि गुरु जी भी मार डाले गये और अपने सैनिकों को उनका शव ढूँढ़ने का आदेश दिया।[2] तुर्की सेना प्यास से व्याकुल हो रही थी। सेना की व्याकुलता देखकर वजीर खाँ ने युद्ध बन्द कर दिया क्योंकि प्यासी सेना के लिये युद्ध करना असम्भव था। वजीर खाँ अपनी सेना को वापिस लौटा ले गया। गुरु गोविन्द सिंह को विजय

हुन साहब जुझार सिंह जी हथ बन के खड़े हो गये अते उहो बैनती कीती जेहड़ी बड़े भरा ने कीती सी। मैं वैरियां नाल सन्मुख होके जूझदा अते गुरु ते वाहिगुरु दा ध्यान ते सिमरण करदा होइया शहीदी पांवागा।

जीवन कथा, श्री गुरु गोविन्द सिंह, प्रो० कर्तार सिंह, पृ० ३१२

१. दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, पृष्ठ २११, २१२

२. दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, पृष्ठ २१३

प्राप्त हुई। जिस तालाब पर वे जाकर ठहरे थे उसका नाम उन्होंने मुक्तसर रखा जो आज भी सिक्खों का प्रसिद्ध तीर्थस्थान है।[१]

पहले कहा जा चुका है कि बन्दा बैरागी को गुरु जी ने पंजाब मे नवाबों और सूबेदारों से प्रतिशोध लेने के लिये भेजा था। उसने वजीर खाँ का अन्त किया और सरहिंद मे सिक्खों की विजय-पताका को फहराया। गुरु जी की प्रतिज्ञा को पूर्ण किया और इस प्रकार सतलज एवं यमुना के बीच के क्षेत्र मे सिक्खों का अधिकार हुआ तथा निरंकुश मुगल शासन भी बहादुरशाह के पश्चात् समाप्त-सा हो गया।

गुरु गोविन्द सिंह का चरित्र और व्यक्तित्व

दशमेश जी से संबंधित उपरोक्त सभी युद्धों के विवरणों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि उन्होंने राज्य-लिप्सा की भावना से प्रेरित होकर कभी भी कोई युद्ध नहीं किया। उनके सभी युद्ध अन्याय, अनाचार, अत्याचार आदि को रोकने या मिटाने के लिये ही किये गये थे। उनका सारा जीवन युद्ध करते ही बीता किन्तु वे न तो कभी निराश ही हुए और न कभी उन्होंने अन्याय-पथ का ही अवलंबन किया। वे हृदय से युद्ध करने के पक्ष में नहीं थे किन्तु सच्चे धर्म के विस्तार और दुष्टों के संहार के उद्देश्य से ही उन्होंने युद्धों में रुचि दिखाई। इन युद्धों से विदित होता है कि उनकी युद्ध-नीति सत्यता और पवित्रता पर ही आधारित थी। उन्होंने युद्ध में कभी किसी पर न तो पहले आक्रमण ही किया और न किसी राज्य पर अधिकार-लिप्सा प्रकट की। कोई भी युद्ध किसी प्रदेश को जीतने अथवा बलात् अपने धर्म मे मिलाने के लिये भी नहीं किया गया। उन्होंने कितनी ही बार पहाड़ी राजाओं को रणक्षेत्र मे पराजित किया किन्तु किसी से भी न तो किसी प्रकार का कर लिया और न अधिकार ही प्रदर्शित किया। उनके युद्ध किसी जातिविशेष अथवा संप्रदाय के विरुद्ध न थे। उनका उद्देश्य केवल अत्याचारियों का दमन करना ही था। उनकी सेना में अनेक मुसलमान पठान भी ऐसे थे जो अपनी ही जाति और धर्म के विरुद्ध युद्ध करते रहे और बुद्धूशाह जैसे वीर ने तो उनकी ओर से लड़ते हुए अपने दो पुत्रों की आहुति भी रणभूमि मे दे दी।[२]

अपनी सेना में सेवा-कार्य करनेवालों को गुरु जी ने यह आदेश दे रखा था कि घायल किसी भी जाति अथवा पक्ष का हो उसकी समान सेवा-सुश्रूषा की जाय। इस

---

१. वही, पृष्ठ २१४

२. श्री दशमेश चमत्कार, पृष्ठ १५५ से १६२ तक

संबंध में एक विद्वान लेखक का कथन महत्वपूर्ण और द्रष्टव्य है।[१] उन्होंने प्रत्येक सिक्ख को यह आज्ञा दे रखी थी कि वह कभी भी अपनी कृपाण से न तो कोई अत्याचार या अनाचार करे और न अपना धर्म बलात दूसरों पर लादे। शक्ति का प्रयोग केवल निर्बल को सबल के पंजे से मुक्त कराने तथा न्यायोचित कार्यों में ही किया जाय।[२] देश सेवा के लिए उन्होंने अपना सर्वस्व बलिदान किया किन्तु भक्ति-भावना को कभी भी न छोडा। युद्धों में भी वे अपने सैनिकों सहित ईश्वर की उपासना का समय निकाल लेते थे। ईश्वर की प्रार्थना और आराधना उनका दैनिक कार्यक्रम था और इसका पालन वे गोलियों और तीरों की बौछार में भी निरन्तर करते रहे। धर्म-रक्षा के लिये स्वयं को बलिदान कर देना ही उनका लक्ष्य था।

रूढ़िगत बन्धनों के कारण बहुत से लोगों को जाति-बहिष्कृत कर दिया गया था। जाति के इन भेदों को मिटाने के लिये ही दशमेश जी ने लंगर (सहभोग) की प्रथा प्रचलित की थी। इसमें प्रत्येक वर्ग के लोग मिलकर एक स्थान पर ही एक जैसा भोजन ग्रहण करते थे। इससे समानता की भावना को प्रोत्साहन मिला। वे बाल्यकाल से ही पण्डितों की पूजा और बाह्याडम्बरों का खंडन करते थे।[3] उन्होंने ब्राह्मणों की परख के लिये एक बार ब्रह्म-भोज दिया। काश्मीर, लाहौर, पेशावर और काशी आदि नगरों से पण्डितों को आमंत्रित किया गया। ब्रह्म भोज के लिये दो स्थानों पर

१, Even during the life time of Guru his principle of universal brotherhood had reached a very high pinnacle An historical incident is faithfully recorded of Bhai Mohan Singh whose duty was to give water to the thirsty and the wounded in the battle field. It is recorded that he gave water to every body who needed it. It was impossible for him to distinguish between a foe and an ally that was exactly in consonance with the spirit of the Guru's teaching. There is no such thing as Hindu or Sikh or Mohammadan or Christians. Man is man and man is one

The uplift of Humanity, p. 4.

२. Abandon covetousness, practise contentment, covet not another's wife, another's wealth or another's children, practise not oppression on those whom you know to be weaker than yourselves Be not proud of the possessions of learning, beauty, great intellect, untold wealth or similar fleeting advantages.

The Sikh Religion, Vol. V, p. 160

३. दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, पृष्ठ ६१

तम्बू लगाये गये। एक मे मिठाई, मक्खन, निरामिष भोजन और दूसरे मे मास आदि आमिष भोजन का प्रबन्ध किया गया और यह आज्ञा दी गई कि जो आमिष भोजन ग्रहण करेगा उसे पाँच मोहरे और जा निरामिष, उसे पॉच रुपये दिये जायँगे। ब्राह्मण धन के लालच में अपने धर्म को भूलकर आमिष भोजन खाने लगे। इस पर गुरुजी ने उन्हें बहुत लज्जित किया और सद्धर्म का ज्ञान और उपदेश दिया।[१]

दशमेश जी ने रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत् और अन्य पुराणों का हिन्दी में अनुवाद करने के लिये अनेक कवियों को नियुक्त किया था। किन्तु इसमें उनका आशय अपने शिष्यों में न्यायोचित धर्म और कर्म की भावना को जाग्रत करना था, ताकि वे भी महाभारत और पुराणों में वर्णित महापुरुषों के चरित्रों का अनुकरण कर सके।[२] गुरु जी ने राम और कृष्ण को भगवान अर्थात् ईश्वरीय अवतार न मान कर केवल महापुरुष के रूप में ही माना है। ईश्वर का कोई माता-पिता, जाति-पाति नहीं है।[३] अपने संबंध में भी उन्होंने यही आदेश दिया कि उन्हे कोई ईश्वर का अवतार न माने, वे सर्वथा मानव हैं और कुछ नहीं। यदि उन्हे कोई ईश्वर मानेगा तो नर्क का भागी होगा।[४]

---

१. The Guru being thus importuned, determined to demonstrate the hypocrisy of the Brahmans He invited them all to a great feast...he made it known that he would give five gold muhars to each Brahman who ate meat while to each of those who ate food cooked with clarified butter, he would give five rupees .. The Guru went to the Brahman's who had eaten it (meat) and rebuked them saying you are setting a bad example to your people You are not Brahmans but ghouls

The Sikh Religion, Vol. V, p. 61

२. It does not follow from this that the Guru worshipped those whose acts were thus celebrated, this was done only for the purpose of inciting to bravery, dispelling cowardice and filling the hearts of his troops with valour to defend their faith.

Ibid , Vol. V, p 83

३. प्रभु जाति न पाति न जोति जुतं॥
जिहु तात न मात न भ्रात सुतं॥

अकाल स्तुति, पृष्ठ २७

४. जो मोको परमेश्वर उच्चरिहै, ते नर नरक कुंड महि परिहै॥
मैं हों परम पुरुख को दासा। देखन आयो जगत तमासा॥

विचित्र नाटक, पृष्ठ ४०

गुरु गोविद सिंह एकेश्वरवादी थे। मूर्तिपूजा का उन्होने बराबर खंडन किया और स्पष्ट किया कि प्रेम के बिना सगुण अथवा निर्गुण ईश्वर को मानना व्यर्थ है। प्रेम के द्वारा ही ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है।[१] जो अशिक्षित और अज्ञानी हैं, वे ही बाह्याडंबरों में विश्वास रखते हैं। ब्राह्मणों द्वारा प्रसारित धार्मिक अंधविश्वास के वे घोर विरोधी थे। जब केशो मित्र नामक पंडित ने दुर्गा को प्रकट करने के हेतु बृहत् यज्ञ की आयोजना की तो गुरु जी ने उसकी असत्यता प्रमाणित करने के लिये पूरी सहायता की। पंडित ने एक दिन के बाद दूसरा दिन देवी के प्रकटीकरण का नियत किया किन्तु देवी प्रकट न हुई। जब पंडित ने इसके लिये नर-बलि की आवश्यकता घोषित की तो गुरु जी ने उस पंडित को ही इसके लिए सबसे अधिक उपयुक्त समझा, तभी पंडित बहाने से भाग गया। इसी का परिणाम था कि वैसाखी पर दशमेश जी ने जब एक बड़ी दावत दी और दान आदि दिया तो केशो पंडित एवं किसी भी ब्राह्मण को निमंत्रित नही किया। निम्नवर्ग तथा दलितवर्ग के लोगों को ही दान आदि देकर कृतकृत्य किया गया।[२] इससे स्पष्ट होता है कि गुरु जी समद्रष्टा थे। वे समस्त प्राणियो को एक ही पिता की सन्तान समझते थे। उनका एक निश्चित मत था कि जो प्रभु से प्रेम करना चाहता है उसे पहले प्राणियों से प्रेम करना सीखना चाहिये क्योंकि सबके हृदय मे एक ही ईश्वर व्याप्त है। स्त्रियो के प्रति उनमे अत्यधिक आदर-भावना थी। युद्ध मे यदि परास्त प्रदेशों की स्त्रियॉ उनके अधिकार मे आ जाती थीं तो वे उनके साथ पूर्ण शिष्टता और आदर का व्यवहार करते थे और उन्हें उनके परिवारवालों के पास सुरक्षित भेजना अपना परम कर्तव्य समझते थे।

दशमेश जी ने ऐसी अनेक संस्थाओ का अन्त किया जो भ्रष्टाचार और अनाचार को बढावा देती थीं और सांस्कृतिक-एकता मे विघ्नस्वरूप बनी हुई थीं। उन्होंने खालसापंथ चला कर, जिसका विस्तृत उल्लेख पहले हो चुका है, इन सबको समाप्त किया। उन्होंने हिन्दू-सिक्ख एकता पर बल दिया और स्पष्ट किया कि सिक्ख भी हिन्दू जाति से ही उत्पन्न हुए हैं, इसलिये उनसे उनका अटूट सम्बन्ध है। वे भारत के नागरिक हैं। स्वदेश और हिन्दु-जाति को अत्याचारी और निरंकुश-शासन से मुक्त करना उनका परम धर्म है।

---

१. All worship is valueless without love. The worship of images is unreal, the worship of God alone is real Nothing can be obtained by image worship. They who place images before them and worship them are fools.

The Sikh Religion, Vol, V, p. 148

२. दि सिक्ख रेलिजन, भाग ५, पृष्ठ ६४, ६५

गुरु जी धर्म-परायण वीरपुरुष थे। प्रारम्भिक जीवन में ही उन्होंने कठिनाइयों का सामना त्याग, बलिदान, धैर्य और निर्भयता पूर्वक करने का पाठ सीख लिया था। वे दृढसंकल्पी व्यक्ति थे और अपने संकल्प पर प्रकृति के नियमो की तरह अटल रहते थे। उनका सम्पूर्ण जीवन संघर्षमय परिस्थितियों का सामना करने मे ही व्यतीत हुआ। अनेक मतभेद, विरोध, प्रतिद्वंद्विता और आपत्तियो की आँधी, तूफान भी उनको प्रशस्त मार्ग से विचलित न कर सके। वह ईश्वर से सदैव यही प्रार्थना करते थे कि हे ईश्वर! तू मुझे ऐसी शक्ति दे कि प्रत्येक अवसर पर मै अपने नियमों का पालन भली-भाँति कर सकूँ और मुझसे शुभ कर्म सदैव होते रहें।[1]

गुरु गोविंद सिंह एक सफल सेनानायक थे। अपनी तत्संबंधी विशिष्टता के कारण ही नीच, पददलित व्यक्तियों से ही उन्होंने ऐसी समर्थ और योग्य सेना तैयार की थी जिसने मुगल सेना से कई बार टक्कर ली।[2]

उनका वैयक्तिक प्रभाव ही उनके सैनिकों पर विशेषरूप से पडा। इसी कारण वे युद्धों मे सदैव विजयी होते रहे। वे कर्मनिष्ठ योगी थे। देश, जाति के हेतु उन्होंने अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया और अपने निजी, पारिवारिक सुख से जाति और देश के सुख को सर्वोपरि समझा। वे त्याग की मूर्ति और मानवता की भावना से ओतप्रोत थे। शरणागत की रक्षा करना वे अपना परम धर्म समझते थे। उनका राज्य राम-राज्य था। जो मनुष्य दूसरे राजा अथवा बादशाह से परेशान होते थे वे उनकी शरण में आकर सुखी जीवन व्यतीत करते थे। गुरु जी आज्ञाकारी पुत्र, सहृदय पिता तथा दयालु स्वामी थे। माता की आज्ञा का पालन करने के हेतु ही वे इच्छा न होने पर भी आनन्दपुर छोड़ कर चले गये थे यद्यपि उसका परिणाम अत्यन्त घातक

---

१. देह सिवा वर मोहि इहै, शुभ कर्मन ते कबहूँ न टरौं।
न डरों अरि सों जब जाइ लरौं। निश्चय कर अपनी जीत करौं॥
अरु सिख हों अपने मन को, इह लालच हौं गुण तौं उचरो।
जब आवक अउद निदान बनै। अतही रण में तब जूझ मरौं॥

चंडी चरित्र, छंद सं० २३१

2. The Guru's teaching had the magical effect of changing a pariah or outcast through an interminable line of heredity into a brave and staunch soldier as the history of the Sikh Mazhabi regiments conclusively proves. This metamorphosis has been accomplished in defiance of the hide bound prejudices and conservatism of the old Hindu religious systems.

The Sikh Religion, Volume V, page 99, 100.

सिद्ध हुआ और उनके चारो पुत्र इसी कारण बलिदान हुए। अपने पुत्रों को भी उन्होने वीरता और धर्म-परायणता की शिक्षा दी थी जिसके परिणाम स्वरूप उनके सात और नौ वर्ष के पुत्रो ने सब सुखों के प्रलोभन को त्याग कर धर्म की रक्षा के लिए अपने को बलिदान कर दिया था।

गुरु गोविन्द सिह की गुण-ग्राहकता और साहित्यिक अभिरुचि

गुरु गोविन्द सिह केवल एक वीर सेनानी और कुशल राजनीतिज्ञ ही नहीं थे वरन् एक सिद्धहस्त महाकवि होने के साथ-साथ उच्चकोटि के गुण-पारखी भी थे। जीवनपर्यन्त अपने अवशिष्ट समय में काव्य सृजन करते रहे। उनकी समस्त रचनाएँ 'दशमग्रन्थ' के नाम से अभिहित हैं जिसका विस्तृत परिचय अगले अध्याय मे दिया गया है। यहाँ पर केवल उनके काव्य-प्रेरक व्यक्तित्व का संक्षिप्त परिचय देना अभीष्ट है।

गुरुजी की गुण-ग्राहकता और कला-प्रेम की प्रसिद्धि उस काल मे इतनी अधिक हो गई थी कि दूर-दूर के कवि और कलाविद् उनका राजाश्रय प्राप्त करने के लिए लालायित रहते थे। उनके दरबार में संस्कृत, फारसी, हिन्दी, पंजाबी आदि भाषाओं के अनेक कवियो को राजाश्रय प्राप्त था जिनकी संख्या ५२ से भी अधिक थी।[१] इन कवियों में हिन्दू-मुसलमान सभी सम्मिलित थे और उनमे परस्पर कोई भेद-भाव नहीं था। ये कवि प्रायः अपनी रचनाएँ स्वातःसुखाय लिखते थे और उन्होंने गुरुजी से प्रेरित किये जाने पर अनेक ग्रन्थों का भाषानुवाद भी प्रस्तुत किया। आनन्दपुर ही इन सब रचनाओं का केन्द्र था। कवि अमृतराय ने महाभारत के सभा-पर्व का भाषा-

---

१. The Guru kept fiftytwo bards permanently in his employ and other occasionally visited him. They wrote on all the nine subjects which in the opinion of orientals are suitable themes of poetry but the composition of eulogies on the Guru occupied most of their attention

The Sikh Religion, Vol. V, p 161

गुरु गोविन्द सिंह के दरबार के बावन कवियों के नाम निम्नलिखित हैं—

अचलदास, अमीराय, अमृतराय, अलीहुसैन, अल्लू, आसासिंह, ईश्वरदास, उदयराय, कलुआ, कुवरेष, खानचन्द, गुरुदास, गोपाल, चन्द, चन्दन, जमाल, दयासिंह, धर्मचन्द, धर्मसिंह, धन्नासिंह, ध्यानसिंह, नन्दलाल, नन्दसिंह, निश्चलदास, निहालचन्द, पिण्डीमल, वल्लभदास, बिधीचन्द, ब्रजलाल, बुलंद, मथुरादास, मदनसिंह, मानचन्द, मानदास, मालासिंह, मंगल, रामचन्द, रावल, रोशनसिंह, लक्खासिंह, सारदा, सुक्खासिंह, सुक्देव, सुदामा, सुन्दर, सेनापति, सोहन, हंसराम, हरि आदि।

श्री दशमगुरुकाव्यामृतसार, पृष्ठ १०६

नुवाद किया जिससे प्रसन्न होकर गुरुजी ने उन्हे साठहजार रुपये का पुरस्कार दिया। इसका उल्लेख कवि ने स्वयं किया है :—

सभा पर्व तातें बनवायो। स्रवण जोग कविता मन भायो।
साठ सहस्र रुपैय्या दीना। सिरोपाउ पशमम्बर भीना।[१]

कवि कुवरेश ने गुरु जी के आदेश से महाभारत के द्रोणपर्व का हिन्दी में अनुवाद किया जिसका उल्लेख कवि के निम्नलिखित छन्द मे द्रष्टव्य है :

संवत, सत्रह से अधिक, बावन बीतै थौर।
तामै कवि कुवरेश इह, कियो ग्रंथ को डौर ॥
गुरु गोविन्द नरिन्द है, तेग बहादुर नन्द।
जिनते जीवन है सकल, भूतल कवि बुध वृन्द ॥
नदी सत द्रुम तीर तहि, सुभ आनन्दपुर नाम।
गुरु गोविन्द नरिन्द के, राजत सुभग सुधाम ॥
गंगा जमुना बीच में, बरी ग्राम को नाम।
तहाँ सुकवि कुबरेश को, वास करै को धाम ॥[२]

उपरोक्त छंद मे कवि ने ग्रंथ का रचनाकाल संवत् १७५२ और रचना का स्थान आनन्दपुर तथा अपने ग्राम का भी उल्लेख कर दिया है।

मंगल कवि ने दशमेश जी की आज्ञा से महाभारत के 'शल्यपर्व' का भाषानुवाद प्रस्तुत किया था। कवि ने इसका उल्लेख निम्नलिखित दोहों मे किया है :

गुरु गोविन्द मन हरख हुवै मंगल लियो बुलाइ।
शल्य पर्व आज्ञा करी, लीजै तुरत बताइ ॥
संवत् सत्रह सै बरख, त्रेपन बीतन हार।
माधव ऋतु तिथि त्रयोदसी, ता दिन मंगलवार ॥
शल्यपर्व भाखा भयो, गुरुगोविन्द के राज।
अरब खरब बहु दरब दै, कर कवि जन को काज ॥[३]

उक्त दोहों मे कवि ने ग्रंथ-रचनाकाल की तिथि का भी निर्देश कर दिया है।

कवि हंसराज ने महाभारत क 'कर्णपर्व' का भाषानुवाद किया था जिस पर गुरुजी ने प्रसन्न होकर साठ हजार रुपये का पुरस्कार दिया था। इसका उल्लेख कवि ने स्वयं किया है :

---

१. विद्यासागर, पृष्ठ ५.
२. विद्यासागर, पृष्ठ ८।
३. वही, पृष्ठ ११।

प्रथम कृपा करि राख कर गुरु गोविन्द उदार।
टका करे बखसीस तब मोकौ साठ हजार॥
तांकी आइसु पाइकै। करणपर्व मैं कीन।
भाषा अर्थ विचित्र कर सुने सु कवि प्रवीन॥[१]

चाणक्य के नीति-ग्रंथ का अनुवाद दशमेश जी की आज्ञा से कवि सेनापति ने सर्वोत्कृष्ट रूप में प्रस्तुत किया जिसका उल्लेख कवि ने निम्नलिखित दोहे में किया है :

गुरु गोविन्द की सभा में लेखक परम सुजान।
चाणका भाखा कियो, कवि सेनापति नाम॥[२]

ऊपर कहा गया है कि गुरुजी के संरक्षण मे ग्रंथ लिखे गये। इन सम्पूर्ण ग्रंथों का संकलन 'विद्यासागर' के नाम से अभिहित किया गया जिसका भार नौ मन के लगभग बताया गया है। इसका उल्लेख कवि सन्तोष सिह ने तथा अन्य कवियों ने किया है[३] :

तिन कबियन बानी रची लिख कागद तुलवाइ।
नौ मन होए तीस महिं, सुलभ लिखित लिखाइ॥
नाम ग्रंथ को विद्यासागर।
राखन कीनो श्री प्रभु नागर॥

दुर्भाग्य से यह समस्त सामग्री आनन्दपुर पर आक्रमण के समय शत्रुओं द्वारा नष्ट-भ्रष्ट कर दी गई या गुरु जी के अभियान मे सरसा नदी मे बह गई। केवल उसके कुल अंश यत्र-तत्र प्राप्त होते हैं। उपरोक्त तथ्यों का उल्लेख अन्य विद्वानों तथा कवियो की रचनाओ मे प्राप्त होता है। इस संबंध मे निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :

बावन कवि हजूर गुरु, रहत सदा ही पास।
आवें जांहि अनेक ही, कहि जस ले धन रास॥
तिन कवियन बानी रची लिखि कागद तुलवाय।
नो मन हुये तोल महि सूखम लिखित लिखाय॥
विद्याधर तिस ग्रंथ को, नाम धर्यो कर प्रीत।
नाना विधि कविता रची, रखि, रखि नौ रस प्रीत॥
मच्यो जंग गुरु संग बड़, रह्यो ग्रंथ सो बीच।
निकसे आनन्दपुर तज्यो, लुटयो पुनि मिलि नीच॥
पृथक-पृथक पन्ने हुते, लुट्यो सु ग्रंथ बिखेर।
इस थल रह्यो न, इमि गयो, जिस तें मिल्यो न फेर॥

---

१. विद्यासागर, पृष्ठ २२
२. वही, पृष्ठ २०
३. वही, पृष्ठ २.

· बाहठ पन्ने कहूं तें, रहे आनन्दपुर मांहि।
तिन तें लिखे कवित इहु, गुरु जस बरन्यो जांहि ॥[१]

कुछ लोग इस ग्रंथ का नौ मन भार होने में संदेह करते हैं किन्तु उस समय प्रेस आदि न होने से संपूर्ण साहित्य हाथ से ही लिपिबद्ध होता था, अतएव बावन कवियों की समस्त रचनाएँ भी बहुत हुई फिर भी इसके तौल के संबंध में कुछ प्रत्युक्ति तो हो सकती है। जो भी सामग्री शेष उपलब्ध होती है, उससे गुरु जी की उदारता, दानशीलता, वीरता, परदुखकातरता, शरणागत दीन-वत्सलता गुणों पर यथेष्ट प्रकाश पड़ता है। यहाँ पर दशमेश जी के सम्बन्ध मे उनके राजाश्रित कवियों के निजी उद्गारों का परिचय संक्षेप में दे देना अप्रासंगिक न होगा।

गुरु जी का जीवन और व्यक्तित्व अद्भुत था। वे नवों रसों से अभिसिक्त थे। उनके इसी व्यक्तित्व का प्रकाशन कवि अमृतराय ने निम्नलिखित कविता मे किया है :

प्रिया प्रेम सो सिंगारी, हास्य सों विनोद भारी।
दीनन पै करुणासारी सुख दीनो है॥
कीनों अरि रुंड मुंड रुद्र रस भर्‍यो झुंड।
फौजन सुधारन में वीर रस कीनो है॥
डंक सुन लंक भयभीत शत्रु बाम निन्दा।
विक्रम प्रबल अद्‌भुत रस लीनो है॥
ब्रह्म ज्ञान सम रस अमृत बिराजै सदा,।
श्री गुरु गोविन्द राह नवो रस भीनो है॥[२]

उक्त कवित्त मे दशमेश के पूर्व नाम गोविन्द राय का निर्देश हो गया है।

कवि आलम ने गुरु गोविन्द सिंह की शोभा और शील का वर्णन करते हुए उन्हें राजा भोज के सदृश बताया है :

सोभाहूं के सागर, नवल नेह नागर हैं।
बल भीम सम, सील कहां लौ गिनाइये॥

---

१. गोविन्द रामायण, पृष्ठ १०
The Guru once had the curiosity to weigh their compositions. They amounted to about two and a half hunderweight The Guru included them in a Compilations which he called vidyadhar. He so valued the book that he ever kept it by him even when he went inte battle but it was lost in one of his engagements.

The Sikh Religion, vol v, p 161.

२. विद्यासागर, पृष्ठ ५

भूम के बिभूखन, जु दूखनं के दूखन।
समूह सुख हूं के, सुख देखे ते अघाइये॥
हिम्मत निधान आन दान को बखाने जाने।
आलम तमाम जाम आठों गुण गाइये॥
प्रबल प्रतापी पातिसाहि गुरु गोविन्द जी।
भोज की सी मौज तेरे रोज रोज पाइये॥[1]

उल्लेख मिलता है कि राजा भोज के युग मे काव्य-रस घर घर में प्रवाहित होता था। साधारण श्रेणी और निम्न व्यवसाय के व्यक्ति भी कविता में पूर्ण अभिरुचि रखते थे। उसका कारण राजा भोज का कला-प्रेम और साहित्यिक अभिरुचि ही थी। 'यथा राजा तथा प्रजा' की उक्ति उसके राज्यकाल में चरितार्थ होती थी। गुरु गोविन्द सिंह ने भी बहुत कुछ वैसी ही अभिरुचि का परिचय दिया था। अतः कवियों द्वारा उन्हें राजा भोज की श्रेणी में रखना उचित ही जान पड़ता है। राजा भोज जैसे दानी चाहे वे भले ही न रहे हों किन्तु उनमें भोज जैसी गुण-ग्राहकता अवश्य थी। एक उल्लेख मिलता है कि चन्दन कवि को अपनी काव्य-कला का बहुत अभिमान था। वे एक बार गुरुजी के दरबार में गये और उन्होंने स्वरचित एक छन्द का अर्थ जानने की इच्छा प्रकट की। गुरुजी उनका छन्द सुनकर मुस्कराए और उत्तर दिया कि ऐसे छन्दों का अर्थ तो हमारे यहाँ के घसियारे भी कर लेते हैं :

इस जैसन के अर्थ बिचारन,
हमरे घाही करे उचारन॥[2]

उन्होने चोबदार को आज्ञा दी कि घुडसाल से भाई धन्यासिह को आकर इस छन्द का अर्थ करने के लिये कह दो। भाई धन्नासिह ने आकर तत्काल उसका अर्थ कर दिया और गुरुजी के आदेश पर जब उन्होंने अपने एक छन्द का अर्थ चन्दन कवि से पूछा तो वे न बता सके और लज्जित होकर गुरुजी के कवि-समुदाय में सम्मिलित हो गये।[3]

उपरोक्त वार्ता से स्पष्ट है कि गुरुजी के संसर्ग और प्रभाव से उस युग के निम्न वर्ग तक के लोग भी काव्य-रस से अभिसिक्त थे।

मंगल कवि के लिये उनका राजाश्रय इतना सुखद और प्रेरक था कि वे आनन्द-पुर को आनंद का ही वास्तविक केन्द्र समझने लगते हैं :

---

१. वही, पृष्ठ ६
२. विद्यासागर, पृष्ठ ८
३. गोविंद रामायण, पृष्ठ १३, १४

पूरन पुरुष अवतार आनि लीन आप,
जाके दरबार मन चितवै सो पाइयै।
घटि घटि बासी अविनासी नाम जाको जग,
करता करन हार सोई दिखराइये।
नोमै गुरु नन्द जग बन्द तेग त्याग पूरो,
मंगल सु कवि कहि मंगल सुपाइये।
आनन्द को दाता गुरु साहिब गोविन्द राइ,
चाहे जो आनन्द तौ आनन्दपुर आइये ॥[1]

इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि गुरु जी का जीवन स्वयं तो काव्य से ओतप्रोत था ही, उनके युग का साधारण व्यक्ति भी काव्य-रसामृत-पान की रुचि रखता था।

पहले कहा जा चुका है कि सेनापति दशमेश जी के प्रमुख कवियों में से थे। गुरु जी के व्यक्तित्व से वे इतने अधिक अभिभूत हुए कि उन्होने 'श्री गुरुशोभा' नाम से गुरु जी के जीवन-चरित्र का प्रणयन किया। खालसा-पंथ की प्रशंसा उन्होंने निम्नलिखित कवित्त मे की है :

वाक्य कियो कर्णहार, सन्तन कियो विचार,
सुपने संसार ताहि काहि लपटाइये।
विस्थन सो तज स्नेह, सतगुरु की सिक्ख लेहि,
बिनसे छिन माहि देहि, यमपुरी में जाइये।
सीस न मुहायो मीत, हुक्का तजि भली रीति,
प्रेम प्रीति मन कर सबद कमाइये।
जीवन है चार दिन देख मन में विचार,
वाहि गुरु गुरु जी का खालसा कहाइये ॥

दशमेश जी की वीरता इतिहास-प्रसिद्ध है। उनके युग में वैसा ही वीरता का उल्लेख कविवर भूषण ने महाराज शिवाजी का किया है। गुरु जी जिस निर्भीकता और वीरता से युद्ध करते थे उसकी एक झाँकी कवि सेनापति के निम्नलिखित कवित्त से मिलती है :

रण में धसि कै इस लोह कियो, न कियो तिह मोह महामन को।
जिम सारंग माहि पतंग परै, न डरै करि लोभ कछू तन को।
रण में हम धूम करि अति ही, मनो खेलंत कानार फागुन को।
इह भाँति गुलाबु गुलाल लिये, करि जाति जमात के डारन को ॥[2]

---

१. विद्यासागर, पृष्ठ १२।

२. विद्यासागर, पृष्ठ २०

दशमेश जी की वीरता की जितनी प्रशंसा की जाय अल्प है। विषम परिस्थितियों में अपने व्यक्तित्व के अनुरूप ही उन्होंने कभी साहस नहीं छोड़ा। उसी का परिणाम था कि खालसा को विरोधी राजा तथा मुगल शासक समूल नष्ट न कर सके एवं उसकी जड़े और भी गहरी हो गई।

कवि हंसराज ने दशमेश जी के युगल-चरण को ही मुक्तिदाता मानकर सुन्दर सार्थक कल्पना की है :

अवध अन्हाए कहाँ, तिलक बनाए कहाँ,
द्वारका छपाए कहाॅ, तन ताइयति है।
कोविन्द कहाए कहाॅ, बेनी के मुॅडाए कहाॅ,
कासी के बसाए कहाॅ, लाहू लखियति है।
मोहन मनाए कहाॅ, भूपत रिझाए कहाँ,
कहाॅ हंसराम जो धरा में धाइयति है।
चारहु चरन ताके हरन कलेस गुरु,
गोविन्द के चरण, मुकति पाइयति है ॥[1]

कवि की उक्त कल्पना निराधार नहीं कही जा सकती क्योंकि दशमेश जी ने जीवनपर्यन्त धर्म-सम्बन्धी बाह्याडम्बरों का खण्डन किया और उनके संपर्क में जो भी आया, धर्म के सच्चे मार्ग का निर्देशन कर उसके लिये मोक्ष-मार्ग को प्रशस्त कर दिया। कवि हंसराम द्वारा उनकी सर्वगुण-सम्पन्नता भी निम्नलिखित छन्द में द्रष्टव्य है :

गुनन में गुनी कहै, ज्ञान निधि मुनी कहैं,
दाता सब दुनी कहै, दारिद नसाइयें।
एक कहै दच्छन के लच्छन प्रतच्छ यामें,
एक कहैं छवि के वितान छित छाइये।
एक वीर भारी कहैं, एक उपकारी कहैं,
एक धर्म धारी कहैं, लोकालोक गाइये।
लाज के जहाज गुरु गोविन्द बिराजे आज,
जग के समाज सब राउरे में पाइये ॥[2]

मंगल कवि ने व्रजभाषा के अतिरिक्त पञ्जाबी मे भी गुरुजी की प्रशंसा की है। उनके समय मे आनन्दपुर सचमुच समस्त स्त्री-पुरुषों के लिये आनन्द का केन्द्र बन

---

१. वही, पृष्ठ २३
२. व्रिद्यासागर, पृष्ठ २९

गया था। गोविन्दसिंह के रणजीत नगाड़े से राजा लोग इतने भयभीत हो गये थे कि रात-दिन उनको नींद नहीं आती थी :

आनन्द दा बाजा नित वज्जदा अनन्दपुर,
सुणि सुणि सुद्ध सुल्ल दीए नरनाह दी।
भौं भया भभीछणे नू लंकागढ़ वस्सणे दा,
फेर असवारी आंवदीए महा बाहु दी॥
बल छड्ड बलि जाइ छपिआ पताल बिच्च,
पते दी निशानी जै दै द्वारा दरगाह दी।
सवण न देंदी सुख दुज्जणां नू रात दिन,
नौबत गुबिन्द सिंह गुरु पातशाह दी॥[1]

जिस प्रकार बिभीषण को राम-सेना का भय हो गया था और बलि भय के कारण पाताल में जाकर छिप गया था, उसी प्रकार गुरु जी के भय से तत्युगीन राजा भी सदैव आतंकित रहते थे। गुरु गोविन्द सिंह जैसे महान पुरुष का जन्म यदि न हुआ होता तो क्या वस्तुस्थिति होती, इसकी सार्थक कल्पना कवि सन्तोष सिंह ने एक छंद में की है :

छाइ जाती एकता अनेकता बिलाइ जाती,
होवती कुचीलता कतेचन कुरान की।
पाप ही प्रपक्क जाते धर्म धावक जाते,
वरन गरक्क जाते सहित विधान की।
देवी देव देहरे संतोष सिंह दूर होते,
रीति मिट जाती कथा वेदन पुरान की।
श्री गुरु गोविन्द सिंह पावन परम सूर,
मूरति न होती जो पै करुणा निधानकी॥[2]

इसमे संदेह नहीं कि उस युग में सूर, तुलसी जैसे भक्त महाकवियों और महाराज शिवाजी और गुरु गोविन्दसिंह सदृश देश जाति के कर्णधारों ने ही हिन्दू धर्म के आदर्शों की रक्षा की तथा शासक एवं शासित के बीच अपने व्यक्तित्व के द्वारा न्यायोचित मार्ग को अपनाने की प्रेरणा दी।

भारतीय इतिहास में गुरु गोविंदसिंह का व्यक्तित्व अनूठा और अनुपम है। उनके असीम त्याग, आत्मबलिदान, कष्टसहिष्णुता, धैर्य, साहस, आशावादिता, दृढ़ता,

---

१. श्री दशमेश काव्यामृतसार, पृष्ठ १०९
२. श्री दशमेश काव्यामृतसार, पृष्ठ १२८

वीरता, गुण-ग्राहकता आदि गुणों की जितनी प्रशंसा की जाय वह अत्यल्प ही है। उन्होंने धर्म और राजनीति को नई चेतना प्रदान की।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि युग में अपने गुणों को समाज के लिये उपयोगी बना कर समष्टिगत स्तर प्रदान करना दशमेश जी की अभूतपूर्व विशेषता थी जिसने न केवल तत्कालीन महान व्यक्तियों को प्रभावित किया वरन् सामान्य जन-जीवन पर भी अमिट छाप लगा दी। परिणामस्वरूप, आनदमयी व्यावहारिक समाज साधनाओं के प्राजल रूप को सामने उपस्थित करके दशमेश जी सम्प्रदायगत कट्टरता से सर्वथा पृथक् मानवता की शाश्वत प्राण प्रतिष्ठा कर सके। उन्होंने विशृंखलित वीरों को संघटित कर दिया, कलाकारों को संरक्षण प्रदान किया, शस्त्र एवं शास्त्र की सम्यक् साधना की और समस्त तिमिराच्छादित युग पर अपनी ज्योतिकिरणें बिखेर कर एक अभिनव आलोकमयी दिशा की ओर इंगित किया जो युग-युग तक प्रेरणा प्रदान करती रहेंगी।

तृतीय अध्याय

रचनाएँ और उनका वर्ण्य-विषय

गुरु गोविन्दसिंह बहुमुखी प्रतिभा-सम्पन्न महाकवि थे। उनकी साहित्यिक कुशलता और काव्य-सर्जनात्मक-शक्ति अद्भुत थी। उन्होंने विविध विषयों की रचनाओं का निर्माण करके हिन्दी साहित्य में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। दशमेश जी की समस्त काव्यकृतियों को 'दशम ग्रथ' के नाम से अभिहित किया गया है।[१] किन्तु इसमें संग्रहीत सभी ग्रंथ गुरु गोविन्दसिंह रचित ही हैं, इस सम्बन्ध में कतिपय विद्वानों ने शंकाएँ उठाई हैं। उनके अनुसार कई ग्रंथ गुरु जी के राजाश्रित कवियों के द्वारा लिखे गये हैं। 'पाख्यान चरित्र' और 'हिकायत' जैसी रचनाएँ जिनमें स्त्रियों की दुर्बलताओं का नग्न चित्रण है, दार्शनिक एवं धार्मिक विचार वाले व्यक्तियों द्वारा लिखी रचनाएँ कदापि नहीं हो सकतीं। डा० मोहनसिंह के अनुसार 'राम' और 'श्याम' गुरु जी के दो दरबारी कवियों ने 'त्रिया चरित्र' की रचना की थी।[२] गोकुल चन्द नारंग ने भी इसी प्रकार के मत का प्रकाशन किया है।[3] दशमेश जी के ग्रंथों की रचना के स्थान एवं काल के सम्बन्ध में भी मतभेद है।[४] कई विद्वानों ने इनका रचना-स्थान दमदमा माना है।[५] डा० धर्मपाल आश्ता ने गुरु जी के ग्रंथों के रचना-स्थान के सम्बन्ध में अन्तस्साक्ष्य और बहिस्साक्ष्य के आधार पर निश्चित निष्कर्ष निकाला है कि उनका प्रणयन आनन्दपुर में हुआ, दमदमा में नहीं। प्राचीन प्रामाणिक ग्रंथ 'गुरु-बिलास' से स्पष्ट होता है कि दमदमा को दशमेश जी ने 'हमारी

1, The Dasam Granth is variously known to be Daswen padshahka Granth. The Granth or Granth Sahib of the Tenth Guru, Govind Singh and Shri Dasam Guru Granth Sahibji

The poetry of Dasam Granth, page 1.

गुरु जी की समस्त रचनाओं के लिये यह नाम संग्रहकर्ताओं के द्वारा रखा गया है, ऐसा नहीं है। स्वयं दशमेश जी ने इसका यत्र तत्र प्रयोग किया है।

देखिये कृष्णावतार, श्री गुरु दशम, गुरु ग्रन्थसाहिब खंड १, छंद संख्या ४

२. हिस्ट्री आफ् पंजाबी लिट्रेचर, पृष्ठ ४०

३. ट्रांसफ़ारमेशन आफ् सिक्खिज्म, पृष्ठ ३४२

४. दि पोयट्री आफ् दशम ग्रंथ, पृष्ठ २

५. एवोल्युशन आफ् खाल्सा, पृष्ठ १८९

काशी' कहा है जो कालान्तर में गुरुमुखी लेखकों का केन्द्र बन गया;. किन्तु ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता जिससे यह सिद्ध हो सके कि वह दशमग्रंथ का रचना-स्थान भी है।[1]

रचनाओं की प्रामाणिकता—

भाई मणिसिंह, गुरु जी के शिष्य और अपने युग के प्रतिष्ठित विद्वान् पुरुष थे। उन्होंने गुरु जी के निधन के पश्चात् ९ वर्ष कठिन परिश्रम करके दशमेश जी की रचनाओं का संग्रह किया। उनके एक पत्र की फोटो कापी जिसे उन्होंने गुरु जी की पत्नी माता सुन्दरी को अमृतसर से लिखा था, डा० आश्ता के ग्रंथ में प्रकाशित मिलती है। इससे बिल्कुल स्पष्ट होता है कि दशम ग्रंथ का प्रणयन आनन्दपुर में हुआ और 'पाख्यान चरित्र' 'गुरु जी का स्वरचित ग्रंथ है।[2] गुरु जी के कई ग्रंथों का आरम्भ ही "श्री मुखवाक" पातशाही १० से होता है जिसका तात्पर्य है-दसवें पातशाह के "मुख से" जापु, विचित्र नाटक, सवैया, शब्द हजारे का आरम्भ इसी वाक्यांश से होता है। अतः इन रचनाओं का गुरु जी द्वारा रचित होने में संशय नहीं हो सकता। दशमेश जी ने स्वयं इन रचनाओं को अपने राजाश्रित कवियों से लिपिबद्ध कराया था। उन दिनों गुरु, साधु, सन्यासियो में अपने विचारों को शिष्यों द्वारा लिपिबद्ध कराये जाने की परम्परा थी। गुरु गोविन्दसिंह ने विचित्र नाटक में अपनी रचनाओं के संबंध में निम्नलिखित उल्लेख किया है—

> प्रथमें सतजुग जो विधि लहा।
> प्रथमें देवि चरित्र को कहा।
> पहिले चंडी चरित्र बनायो।
> नखशिख ते क्रम भाख सुनायो।
> छोड़ कथा तब प्रथम सुनाई।
> अब चाहत फिर करीं बड़ाई[3] ॥

उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि उन्होंने 'चंडी चरित्र' का प्रणयन सर्व प्रथम किया और इनमें 'चंडी चरित्र उक्ति विलास' पहले लिखा जिसमें देवी चंडी का नखशिख वर्णन भी है और जो दूसरे चंडी चरित्र की अपेक्षा छोटा है। अतएव कवि की प्रारम्भिक रचना लगभग संवत् १७४० में लिखी गई होगी। कतिपय विद्वानों के अनुसार 'चंडी चरित्र उक्ति विलास' के प्रथम १ से २२७ छंद संवत् १७४०-४१ के

---

१. दि पोयट्री आफ् दशम ग्रंथ, पृष्ठ ५. ६

२. वही पृष्ठ ८

३. विचित्र नाटक, अध्याय १४, पृष्ठ ७५-७६

लगभग लिखे गये, शेष ६ छंद जो पटना की पोथी में हैं, संवत् १७५२ मिती फाल्गुन २८ को लिखकर बढ़ाये गये।[1] श्री 'भगवती दी वार' की गणना भी गुरु गोविन्दसिंह की प्रारम्भिक कृतियों में की गई है और यह गुरु जी की प्रथम रचना कही जा सकती है।

चौबीस अवतार के अंतर्गत कृष्णावतार के बीच ऐसे कई उल्लेख मिलते हैं जिनसे उसके दशमेश जी कृत होने में कोई सन्देह नहीं रहता। ये उद्धरण निम्नलिखित हैं :

जै जै किसन चरित्र दिखाए। दसम बीच सब भाख सुनाए।
ग्यारा सहरा बानवै छंदा, कहै दसमपुर बैठ अनन्दा॥[2]

दूसरे चरण में 'दसम' शब्द का प्रयोग 'दशम ग्रंथ' और चौथे चरण में 'दशम' का प्रयोग 'दशम गुरु' के लिये हुआ है। कृष्णावतार के शेष छंद पावटा में लिखे गये जिसका उल्लेख दशमेश जी ने उस रचना के अन्त में किया है।

सत्रह से पैंताल महि सावन सुदि थिति दीप,
नगर पांवटा सुभ करन जमुना बहै समीप।
दसम कथा भागौत की भाखा करी बनाइ।
अवर वासना नाहिं प्रभु धर्म जुद्ध कै चाइ॥[3]

धर्म-युद्ध की इतनी उत्कट चाह रखने वाला गुरु गोविन्दसिंह के अतिरिक्त और कौन हो सकता है? कृष्णावतार में 'श्याम' और 'राम' दशमेश जी के उपनाम हैं। पहले कहा जा चुका है कि कतिपय विद्वानों ने राम और श्याम को गुरु के राजाश्रित कवि माना है जिनका खंडन अन्य विद्वानों ने प्रामाणिक सूत्रों के आधार पर किया है। 'श्याम' गुरु जी का बचपन का नाम था। उनकी माता जी उन्हें गोविन्द के नाम से सम्बोधन नहीं करती थी क्योंकि यह उनके पूर्वज हर गोविन्द छठे गुरु के नाम के साथ लगता था। श्याम और गोविन्द के स्थान पर यत्र-तत्र राम की छाप भी भाव-

---

१. शब्द मूरति रणधीर सिंह, पृष्ठ ११

२. कृणावतार, श्री दशम गुरु ग्रंथ साहब, खंड १, छंद सं० ४, पृष्ठ २५४
भाई मणिसिंह की पोथी में इसका निम्नलिखित पाठ मिलता है।
जै जै क्रिसन चरित्र दिखाए। दसम बीच सभ भाखि सुनाए।
गियारा सै सु छिआसी छंदा। कहै दसम पुर बैठ अनन्दा॥
दि पोयट्री आफ् दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ११

३. कृष्णावतार, श्री दशम गुरु ग्रन्थ साहब, खंड १, छंद सं० २४९१, पृष्ठ ५७०

साम्य के आधार पर मिलती है ।[१] राम अवतार के अन्त में दशमेश जी ने स्वरचित होने का निर्देश किया है ।

सगल दुआर कौ छाँड़ि कै गह्यो तुहारो दुआर ।
बाँहि गहै की लाज अस गोविन्द दास तुहार ।।[२]

ऊपर उल्लेख हो चुका है कि पाख्यान चरित्र भी दशमेश जी की रचना है । उसमें भी 'श्याम', 'राम' की छाप मिलती है । इसमें उपलब्ध 'काल' की छाप 'अकाल-पुरुष' अथवा काल से सम्बन्धित है । श्याम, राम, गोविन्द, हरि के सदृश यह भी ईश्वरीय नाम का पर्याय है । इसके अतिरिक्त इसमें 'श्री मुखवाक' के सादृश्य पर 'कवि वाच' का प्रयोग भी बराबर मिलता है । 'कवि' का प्रयोग दशमेश जी के लिये हुआ है ।

गुरु गोविंदसिंह की रचनाओं से संबंधित हस्तलिखित संग्रह-ग्रंथ

दशमेश जी रचित प्रामाणिक कृतियों तथा उनके नाम से सम्बद्ध कुछ अन्य रचनाओं के उल्लेख प्राचीन हस्तलिखित संग्रह-ग्रंथों में उपलब्ध होते हैं । पटना के गुरुद्वारे में सुरक्षित प्राचीन हस्तलिखित संग्रह-ग्रंथ में गुरु जी के स्वलिखित कई पन्नों की प्रतिलिपियाँ भी सम्मिलित हैं ।[३] दूसरा प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथ भाई मनिसिंह विरचित भी है जिसमें गुरु जी के स्वलिखित असली पन्ने सम्मिलित हैं । राम-कथा के उपरान्त ही दूसरे पन्ने में स्वलिखित कृष्णावतार सम्बन्धी २२ पंक्तियाँ हैं जिसकी फोटो-प्रति रणधीर सिंह रचित पुस्तक में प्राप्त होती है ।[४] अन्य हस्तलिखित प्रतियों से भी उक्त तथ्य प्रमाणित हो जाता है ।

दूसरा हस्तलिखित संग्रह ग्रन्थ संगरूर, पटियाला के दीवानखाने के गुरुद्वारे में सुरक्षित है । एक बहुत पुरानी हस्तलिखित ग्रन्थी, जो ज्ञानी गरजासिंह के पास है, उससे भी यह पुष्ट होता है ।[५]

दशमेश जी रचित ग्रन्थों की पुष्टि-हेतु अमृतसर, पटियाला, पटना आदि स्थानों में प्राप्त अनेक हस्तलिखित संग्रह-ग्रन्थों का अध्ययन और निरीक्षण किया गया,

१. दि पोयट्री आफ् दशम ग्रन्थ, पृष्ठ १३, १४
२. गोविंद रामायण, पृष्ठ २४२
३. पटना के गुरुद्वारे में प्राप्त अनेक हस्तलिखित संग्रह-ग्रन्थों का लेखिका ने स्वयं वहाँ जाकर अध्ययन किया । उसमें वह प्राचीन हस्तलिखित संग्रह-ग्रन्थ भी देखने को मिला जिसमें गुरुजी के स्वलिखित पन्ने भी सम्मिलित हैं ।
४. शब्द मूरति, रणधीर सिंह, पृष्ठ ९
५. वही, पृष्ठ २७

जिनका संक्षिप्त विवरण यहाँ पर प्रस्तुत किया जा रहा है। श्री गुरु रामदास लाइब्रेरी, अमृतसर में गुरु गोविंदसिंह की रचनाओं से संबंधित कतिपय हस्तलिखित संग्रह-ग्रंथ उपलब्ध हैं, जिनका विवरण निम्नलिखित है :—

१. संख्या ११८९

आकार ९½ इंच, ६¾ इंच; पृष्ठ संख्या ७०९; ग्रंथ लगभग २०० वर्ष पुराना जान पड़ता है। ग्रन्थ के आरम्भ में '१ ॐ सतिगुरु प्रसादि जापु श्री मुखवाक पातसाही १०' के बाद 'जापु' के १-१९८ छंद लिपिबद्ध हैं। तदनन्तर कुछ स्फुट पद और सवैयों के बाद, चौबीस अवतार शुरू होता है जिसके अन्तर्गत केवल २३ अवतारों का वर्णन मिलता है। अन्तिम अवतार 'कल्कि' का वर्णन नहीं दिया गया। पुस्तक के अन्तिम पृष्ठ पर 'इति श्री विचित्र नाटक ग्रन्थ बऊब अवतार समाप्तमस्तु शुभमस्तु' लिखा है।

२. संख्या ११०९३

आकार ७ इंच, ५½ इंच; इसमें संख्या १-२१९ पन्ने मिलते हैं और इसके बाद पुनः १ से आरम्भ होकर ३७२ पन्ने प्राप्त होते हैं। ग्रन्थ लगभग १५० वर्ष प्राचीन जान पड़ता है। आरम्भ में १ से २६० पन्ने तक गुरु नानक, कबीर, फरीद आदि की रचनाएँ संग्रहीत हैं। पन्ना २६१ से क्रमशः गुरु गोविन्दसिंह रचित जापु के १ से १९८ छंद, अकाल स्तुति के १ से २७१ छंद संग्रहीत हैं। इसके बाद पुनः १ से २१९ पन्ने मिलते हैं। यहाँ से अक्षर अधिक सुबोध, सुन्दर, सुपाठ्य और बड़े हैं। इसका लिपिकार निश्चित ही कोई भिन्न व्यक्ति जान पड़ता है। इसमें गुरु गोविन्द-सिंह रचित सम्पूर्ण विचित्र नाटक (१ से ४७१), 'चंडी चरित्र उक्ति विलास' (१ से २३३ छंद), चंडी चरित्र (छंद १ से २६२), ज्ञान प्रबोध (१ से ३३६ छंद) तथा १६ सवैये लिपिबद्ध हैं। तदनन्तर पूर्व के लिपिकार ने पुनः ३२९ पन्ने का क्रम लेकर श्री भगवतीजी सहाय के १ से ५५ छंद चौबीस अवतार के अन्तर्गत मत्स्य अवतार अंत में कृष्णावतार प्रसंग में बारह मासा सवैया देकर समाप्त कर दिया है।

३. संख्या ११८८

आकार १३ इञ्च, १२ इञ्च। इसके अक्षर सुबोध, सुन्दर और बड़े हैं। लिपिकाल सं० १९२९ और लिपिकार रिखीसिंह हैं। प्रारम्भ में गुरु गोविन्दसिंह रचित जापु के (१ से १९९ छंद), चण्डी चरित्र (१ से २६२ छंद), श्री भगवती सहाय (१ से ५५ छंद), स्फुट छंद ३६ के अनन्तर गुरु हर गोविन्द कृत परीक्षा ग्रन्थ लिपिबद्ध मिलता है। इसी के अन्त में ग्रन्थ-रचयिता का नाम और लिपिकाल इस प्रकार अंकित है—संवत् १९२९ जेठ सुदी पञ्चमी सु ईस परीक्षा की पोथी लिख दीना, रिखी सिंघ सेवक गुरु चीना। उक्त हस्तलिखित ग्रन्थ की अपेक्षा पूर्व उल्लिखित दोनों संग्रह-ग्रंथ देखने में काफी प्राचीन जान पड़ते हैं।

श्री शिरोमणि गुरु द्वारा की रेफ्रेंस लाइब्रेरी, अमृतसर में भी अनेक प्राचीन हस्तलिखित संग्रह ग्रन्थ उपलब्ध हैं जिसमें गुरु गोविन्दसिंह की कृतियों का उल्लेख है। इनका विवरण निम्नलिखित है।

संख्या ४६।११०५ :

आकार १०॥ इञ्च, ६ इञ्च। इसमें कुल ९२२ पन्ने हैं और लिपिकाल माघ संवत् १८५२ दिया हुआ है। इसमें सम्पूर्ण पाख्यान-चरित्र (४०५ चरित्रों) लिपिबद्ध है। प्रारम्भ में विषय-सूची है। तदनन्तर '१ ॐ' सतिगुरु प्रासादि श्री भगवती नमह अथ पाख्यान चरित्र लिख्यते पातसाही १० से उक्त ग्रन्थ आरम्भ होता है।

संख्या ७२।१५७८ :

आकार ८ इञ्च, ५॥ इञ्च। ग्रंथ लगभग १५० वर्ष पुराना जान पड़ता है। इसमें कुल १ से ४९४ पन्ने हैं। आरम्भ में गुरु नानक रचित 'जपु' आदि रचनाओं का संग्रह है, तदनन्तर गुरु गोविंदसिंह कथित 'परीक्षा ग्रन्थ' का उल्लेख है और २४७ पन्ने के दूसरे पृष्ठ से गुरु गोविंदसिंह रचित जापु (छंद १-१९८), अकाल-स्तुति (१-२७१ छंद), विचित्र नाटक (१–४७१ छंद), चंडी चरित्र उक्ति बिलास (१–२३३ छंद), चंडी चरित्र (१–२६२ छंद), वार श्री भगवती जी (१ से ५५ छंद), ज्ञान-प्रबोध (१–३३६ छंद), चौबीस अवतार के अन्तर्गत मत्स्य (१–५४ छंद), सवैये (१–३२), और सवैये १–१६ का उल्लेख है। ग्रन्थ के अन्त में गुरु अर्जुन देव कृत 'परीक्षा' रचना लिपिबद्ध है।

संख्या ३।२७४ :

आकार ७ इञ्च, ५ इञ्च। ग्रंथ प्राचीन है और उसके अन्त में लिपि-तिथि और लिपिकार के सम्बन्ध मे 'फागुन वदी चौदस तिथि दिन कुजवार। पोथी सम्पूर्ण भई लिखि गुरमुख सिंह कपीस्वर' अंकित है। विक्रम संवत् का उल्लेख करना लिपिकार भूल गया है। ग्रन्थ में कुल १–५६५ पन्ने हैं जिसमें चौबीस अवतार के अन्तर्गत सम्पूर्ण कृष्णावतार वर्णित है।

संख्या ३७।७९९ :

आकार ७॥ इञ्च, ५। इञ्च। पुस्तक प्राचीन और सुबोध है। इसमें कुल १–५६७ पन्ने हैं। सर्वप्रथम गुरु गोविन्दसिंह रचित जापु (१–१९८ छंद), अकाल स्तुति (१–२७१), विचित्र नाटक (१–४७१), चंडी चरित्र उक्ति बिलास (१–२३३ छंद), चंडी चरित्र (१–२६२ छंद), वार श्री भगवतीजी की (१–५५ छंद), ज्ञान प्रबोध (१–३३६ छंद), चौबीस अवतार के अन्तर्गत कच्छ अवतार तथा स्फुट पद ४, सवैये १–३२ और स्फुट सवैये १–१६ लिपिबद्ध मिलते हैं। पुस्तक के अंत में पाँचवें गुरु अर्जुनदेव रचित परीक्षा ग्रंथ लिपिबद्ध है।

संख्या ९५।२०६५ :

आकार ६ इंच, ४ इंच। पोथी लगभग १०० वर्ष से अधिक प्राचीन जान पड़ती है। इसमें कुल १–३५७ पन्ने हैं। ग्रंथ मे गुरु गोविन्दसिंह रचित जापु (१–१९८ छंद), अकाल स्तुति (१–२७१ छंद), विचित्र नाटक (१–४७१ छंद), चंडी-चरित्र उक्ति विलास (१–२३३ छंद), चंडी चरित्र (१–२६२ छंद), ज्ञान प्रबोध (१–३३६ छंद), चौबीस अवतार के अन्तर्गत मच्छ अवतार, सवैया १–३२, पाख्यान चरित्र के अन्तर्गत देवी स्तुति के १–३० छंद और अन्त में केवल एक स्फुट पद का उल्लेख है।

संख्या १७३।२८२९ :

आकार ६ इंच, ५ इंच। पुस्तक लगभग १०० वर्ष प्राचीन कही जा सकती है। इसमें कुल १–४५८ पन्ने हैं। ग्रंथ में गुरु गोविन्दसिंह रचित जापु (१–१९८ छंद), अकाल स्तुति (१–२७१ छंद), विचित्र नाटक (१–४७१ छंद), चंडी-चरित्र उक्ति विलास (१–२३३ छंद), चंडी चरित्र (१–२६२ छंद), ज्ञान प्रबोध (१–३३६ छंद), रचनाओं का उल्लेख है। अन्तिम रचना में छंद-संख्या ३३५ के अनन्तर ३३७ का निर्देश लिपिकार संभवतः भूल से कर गया है। ३३७ छंद संख्या के स्थान पर ३३६ छंद संख्या होनी चाहिये।

संख्या १८७।३३९८ :

आकार ६॥ इंच, ४। इंच। पोथी लगभग १५० वर्ष प्राचीन प्रतीत होती है। इसमें गुरु गोविन्दसिंह रचित जापु (१–१९८ छंद), अकाल स्तुति (१–२७१ छंद), तथा चौबीस अवतार के अन्तर्गत मच्छावतार, सवैये (१–१६), सवैये (१ से ३२) स्फुट पद (१–१०), स्फुट छंद (१–३) शब्द (१–१२) का उल्लेख है। इसके अनन्तर गुरु अर्जुनदेव कृत 'परीक्षा' ग्रंथ और तदनंतर गुरु गोविन्दसिंह रचित परीक्षा ग्रंथ लिपिबद्ध मिलते हैं। अंत में गुरु गोविन्दसिंह कृत जफरनामा के छंद (८२३–८५१) भी लिपिबद्ध मिलते हैं।

संख्या २३६।४४७१ :

आकार ७॥ इंच, ५। इंच। ग्रंथ लगभग १५० वर्ष पुराना जान पड़ता है। अक्षर सुन्दर और सुबोध हैं। इसमें कुल ५८२ पन्ने हैं। आरम्भ में अन्य कवियों की कृतियाँ हैं। बाद मे गुरु गोविन्दसिंह रचित जापु के १–१९८ छंद (पन्ना ५११ से पन्ना ५२७) और अकाल स्तुति के १–२७१ छंद (पन्ना ५२७ से ५८२ तक) उपलब्ध होते हैं।

संख्या १९८।३९१४ :

आकार १३॥ इंच, ९॥ इंच। पोथी प्राचीन और अक्षर सुपाठ्य हैं। इसमें कुल

४०० पन्ने हैं। गुरु गोविन्दसिंह रचित सम्पूर्ण पाख्यान चरित्र (४०५) इसमें वर्णित हैं। पोथी १०० वर्ष से अधिक प्राचीन नहीं जान पड़ती।

संख्या ७९।१७०१ :

आकार ५॥ इंच, ३ इंच। पुस्तक लगभग १०० वर्ष प्राचीन जान पड़ती है। इसमें गुरु गोविन्दसिंह रचित सम्पूर्ण शस्त्र नाममाला (छंद संख्या १–१३२०) १–२९५ पन्नों पर और जफ़रनामा १–१५७ पन्नों पर लिपिबद्ध है।

संख्या २७।७६७ :

पोथी प्राचीन और अक्षर सुपाठ्य हैं। इसके प्रारम्भ में गुरु गोविन्दसिंह रचित जफ़रनामा तथा अन्य कवियों की दीवानगाथा,रुबाइयाँ आदि रचनाएँ संग्रहीत हैं।

संख्या ४७।११०६ :

आकार ६। इंच, ३॥। इंच। ग्रंथ प्राचीन और अक्षर सुपाठ्य हैं। इसमें कुल १–३७२ पन्ने हैं। इसमें गुरु गोविन्दसिंह रचित जापु २७२ पन्ने से प्रारम्भ होता है। आरम्भ में अन्य कृतियों का संग्रह है। जापु के १–१९८ छंद के अनन्तर अकाल स्तुति के १–२७१ छंद और वार श्री भगवती जी की १–५५ छंद तथा अन्त में स्फुट छंदों का उल्लेख है।

संख्या ४७।११०७ :

आकार ५। इंच, ३। इंच पुस्तक प्राचीन और अक्षर सुपाठ्य हैं। आरम्भ में अन्य कवियों की रचनाएँ संग्रहीत हैं। इसमें कुल १–५६९ पन्ने हैं। गुरु गोविन्दसिंह रचित अकाल स्तुति के १–२७१ छंद के अनन्तर १–३२ सवैयों तथा स्फुट छंदों का उल्लेख है।

संख्या ९३।१९७५ :

आकार ७ इंच, ४॥ इंच। ग्रंथ का लिपिकाल सं० १८८३ है। यह एक खंडित संग्रह-ग्रंथ है। आरम्भ में ३२७ पन्ने हैं। पोथी में ३२८ पन्ने उपलब्ध होते हैं। बीच में ३४७ से ३५६ पन्ने लुप्त हैं। गुरु गोविन्दसिंह रचित जापु के १–१५४ छंद (अपूर्ण) मिलते हैं। भगवती छंद खष्टक (छक्का) पहला छक्का छंद ५–११, और शेष १ से ११ छंद, पाख्यान चरित्र सम्बन्धी भगवती प्रशंसा के १–१६ छंद, देवी जी की स्तुति के १–४ छंद, शस्त्र नाम माला के पहले अध्याय के १–२७ छंदों का उल्लेख है। पुस्तक के अन्त में लिखा है—"पोथी लिखी कश्मीर विच भूलि चूकि बखसणा संवत १८८३ दे विच कत्तक दिन पहले भोग पाया।"

पटियाला सेन्ट्रल लाइब्रेरी में हस्तलिखित पोथियों का सुन्दर संग्रह मिलता है। अनेक संग्रह-ग्रंथों में गुरु गोविन्दसिंह विरचित कृतियां संग्रहीत मिलती हैं। किन्तु खेद है इन पोथियों के लिपिकाल और लिपिकर्ता के विषय में कोई उल्ले नहीं मिलता।

फिर भी प्रतियों के कागज स्याही और लिखावट से उनकी प्राचीनता स्पष्ट होती है। इन संग्रह-ग्रंथों का विवरण निम्नलिखित है :

संख्या ५७५ :

आकार ५ इंच, ३ इंच। प्रति लगभग १२५ वर्ष पुरानी जान पड़ती है। अक्षर बड़े और सुपाठ्य हैं। इसमें कुल १ से २६५ पन्ने हैं। यह संग्रह-ग्रंथ नहीं है। इसमें केवल गुरु गोविंदसिंह रचित ज़फ़रनामा (१–८६ छंद) लिपिबद्ध हैं।

संख्या ६०५ :

आकार ६॥ इंच, ५ इंच। पोथी में कुछ ३३५ पन्ने हैं। यह लगभग १०० वर्ष पुरानी जान पड़ती है। इसमें गुरु गोविन्दसिंह रचित गीता ग्रंथ का उल्लेख अठारह अध्यायों में है।[1]

संख्या ७१३ :

५ इंच, ४ इंच। पोथी प्राचीन और अक्षर सुपाठ्य हैं। इसमें कुल १९३ पन्ने हैं। गुरु गोविन्दसिंह रचित जापु ११२ पन्ने से शुरू होता है। जापु के १-१९८ छंद के अनन्तर गुरु जी के स्फुट पदों का संग्रह है। इसके अनन्तर अन्य कवि रचित 'नसीहत नामा' संग्रहीत है।

संख्या ७४६ :

आकार १२ इंच, ८ इंच। ग्रंथ लगभग १०० वर्ष प्राचीन प्रतीत होता है। पोथी में कुल १-६७ पन्ने हैं। गुरु जी रचित जापु के १-१९८ छंद, अकाल स्तुति के १-२७१ छंद, विचित्र नाटक के १-४७१ छंद, चंडी चरित्र उक्ति विलास के १-२३३ छंद संग्रहीत हैं।

संख्या ७४७

आकार १० इंच, ७॥ इंच। ग्रंथ लगभग १०० वर्ष प्राचीन, अक्षर सुपाठ्य एवं सुन्दर हैं। पोथी के आरम्भ में गुरुगोविन्द सिंह रचित पारसनाथ रुद्र अवतार के १–३५८ छंद और पाख्यान चरित्र के केवल राजपरी चरित्र के १–८५ छद संग्रहीत हैं।

संख्या ७७८ :

आकार ८ इंच, ६ इंच। पोथी लगभग १५० वर्ष प्राचीन जान पड़ती है और कोई काश्मीरी ब्राह्मण लिपिकार बताया गया है। अक्षर सुन्दर और सुपाठ्य हैं। पोथी में कुल ४५० पन्ने हैं। प्रारम्भ में गुरु नानक रचित जपु, अन्य उपदेश आदि का संग्रह है। इसके बाद गुरु गोविन्दसिंह रचित पाख्यान चरित्र की ४०४ कथाएँ लिपिबद्ध हैं। 'इतिश्री चरित्र पाख्याने त्रिया चरित्र मंत्री भूप सवादे चार से चार

---

१. प्रस्तुत कृति के विषय में पहले उल्लेख हो चुका है और इसे गुरु गोविन्दसिंह रचित नहीं माना जाता है।

चरित्र समाप्तम् ।' तदनन्तर गुरुजी रचित जापु (१–१९८ छंद), अकाल स्तुति (१ से १७१ छंद), विचित्र नाटक (१–४७१ छंद), चण्डी दी वार (१ से ५५ छंद), ज्ञान प्रबोध (१–३३६ छंद), संग्रहीत हैं। अन्त में गुरु नानक रचित 'परीक्षा' का उल्लेख है।

संख्या ७४९

आकार १३", ७ इञ्च। पोथी लगभग १५० वर्ष पुरानी लिपिबद्ध प्रतीत होती है। अक्षर सुबोध और सुपाठ्य हैं। पुस्तक के प्रारम्भ में गुरु नानक रचित जापु आदि रचनाएँ लिपिबद्ध हैं। तदनन्तर गुरु गोविन्दसिंह रचित जापु (छंद १–१९८), अकाल स्तुति (१–२७१ छंद), विचित्र नाटक (१–४७१छंद), चंडीचरित्र उक्ति विलास (१–२३३ छंद), चंडी-चरित्र (१–२६२ छंद), श्री भगवती दी वार (१–५५ छंद), ज्ञान प्रबोध (१–३३६ छंद), तथा चौबीस अवतार के अन्तर्गत राम अवतार, पारस नाथ रुद्र अवतार तथा मच्छ अवतार संग्रहीत हैं।

संख्या ७५० :

आकार ६।। इंच, ४।। इञ्च। पोथी लगभग १५० वर्ष प्राचीन जान पड़ती है। अक्षर सुपाठ्य हैं। यह संग्रह-ग्रन्थ नहीं है। इसमें केवल एक ग्रन्थ लिपिबद्ध है। कुल १–६२५ पन्ने हैं। १ ॐ गुरुजी की फतेह के बाद गुरु 'गोविन्दसिंह रचित क्रिसन अवतार इकीसवाँ अवतार कथन' शुरू होता है जिसकी छंद संख्या १–२४९० है। रचना के अन्त में लिखा है—'इति श्री दसम स्कंध पुराणे विचित्र नाटक ग्रंथे क्रिसन अवतार अध्याय समाप्तमस्तु शुभमस्तु'।

संख्या ७५१ :

आकार ५ इञ्च, ४ इञ्च। पोथी प्राचीन है। इसमें कुल १–११९ पन्ने हैं। यह संग्रह-ग्रंथ नहीं है। गुरु गोविन्दसिंह रचित जफरनामा व हिकायतें (१–८६५ छंद) लिपिबद्ध मिलती हैं।

संख्या ७५५ :

आकार ३।। इञ्च, ३ इञ्च। पोथी लगभग १०० वर्ष पुरानी है। लिपिकाल और लिखिया का नाम अज्ञात है। इसमें कुल १–१६४ पन्ने हैं। यह संग्रह-ग्रंथ नहीं है। इसमें गुरु गोविन्द सिंह रचित केवल एक ग्रंथ अकाल स्तुति (१–२७१ छंद) उपलब्ध होता है।

संख्या ७५६ :

आकार १० इञ्च, ६ इञ्च। पोथी लगभग १५० वर्ष प्राचीन है। इसमें कुल १–७८ पन्ने हैं। यह संग्रह-ग्रंथ नहीं है। गुरु गोविदसिंह रचित चौबीस अवतार के अन्तर्गत केवल रामावतार (१–८६४ छंद) वर्णित हैं। पोथी की छंद संख्या

८६० में उक्त-ग्रंथ का रचनाकाल लिपिबद्ध है। संवत् सत्रह सौ पचपन हाड़ बदी प्रथमा सुखदामन तव प्रसाद करि ग्रंथ सुधारा। भूल परी लहु लेहु सुधारा ।।"

संख्या ७५७ :

आकार ६।। इञ्च, ५ इञ्च। ग्रंथ लगभग १०० वर्ष प्राचीन जान पड़ता है। प्रारम्भ में दयालनेमि, गुरु नानक की कुछ रचनाएँ लिपिबद्ध हैं। तदनन्तर गुरु गोविंद-सिंह रचित जापु (१–१९८ छंद) अकाल स्तुति (१–२७१ छंद), देवी जी की स्तुति (१–११ छंद) शब्द भगवती दी वार (१–५५ छंद) संग्रहीत हैं।

संख्या ७५९ :

आकार ६ इञ्च, ४ इञ्च। ग्रंथ लगभग १०० वर्ष प्राचीन जान पड़ता है। पोथी मे कुल १–२१५ पन्ने हैं। आरम्भ मे गुरु गोविन्दसिह रचित सम्पूर्ण जफ़र-नामा (१–१२) हिकायते लिपिबद्ध हैं। तदनन्तर नन्दलाल विरचित गज़ले और गुरु नानक रचित 'जापु' आदि संग्रहीत हैं।

संख्या ७६२ :

आकार ७ इञ्च, ४ इञ्च। पोथी लगभग १५० वर्ष प्राचीन है। कुल पन्नों की संख्या १३५ अंकित है किन्तु आरम्भ के १–२३ पन्ने उपलब्ध नहीं हैं। गुरु गोविन्द-सिंह रचित सम्पूर्ण ज़फ़रनामा (१–१२), हिकायते (छंद १–८५५) लिपिबद्ध हैं।

संख्या ७६३ :

आकार ३।।, ३।। इञ्च। पुस्तक बहुत अधिक प्राचीन नहीं जान पड़ती है। अक्षर सुन्दर और सुपाठ्य हैं। कुल (१–१६९) पन्ने हैं। यह संग्रह-ग्रंथ नहीं है केवल गुरु गोविंदसिंह रचित ज़फ़रनामा (१–१२) और हिकायतें लिपिबद्ध मिलती हैं।

संख्या ७६५ :

आकार ३।। इञ्च, २ इञ्च। प्रति लगभग १०० वर्ष प्राचीन जान पड़ती है। अक्षर छोटे सुन्दर और सुपाठ्य हैं। कुल १ से २३१ पन्ने हैं। इसमे गुरु गोविन्द-सिंह रचित जापु (१–१९८ छंद), अकाल स्तुति (१–२७१ छंद), सवैया (१-३२), शब्द (१–३), ख्याल १, सोरठा (१–२) संग्रहीत हैं। अन्त में गुरु नानक की वाणी लिपिबद्ध है। इसके आगे पन्नों की संख्या का निर्देश नही हुआ है।

संख्या ७६६ :

आकार ११ इंच, ८ इंच। पोथी में लिपि संव्त् का उल्लेख संवत् १९०४ असे सुदी ६ वार शुक्रवार मिलता है। इसमें कुल १–३६७ पन्ने हैं। यह संग्रह-ग्रंथ नहीं है। केवल गुरु गोविन्दसिह रचित चौबीस अवतार के अन्तर्गत सम्पूर्ण कृष्णावतार (१–२४०९ छंद) लिपिबद्ध मिलता है। ग्रंथ के अन्त में अंकित है 'इति श्री दशम स्कन्ध पुराणे विचित्र नाटक ग्रंथे कृष्णावतार सम्पूर्ण समासमस्तु शुभमस्तु ।।"

संख्या ७६७ :

आकार ७, ५ इंच। ग्रंथ लगभग १०० वर्ष प्राचीन प्रतीत होता है। ग्रंथ में कुल १ से ४१६ पन्ने हैं। अन्त में १–१९७ पन्ने का लिखिया (लिखारी) कोई धर्म सिंह और १९८–४१६ पन्नों का लिखिया कोई किसन सिंह बनूरी हैं। आरम्भ में गुरु नानक रचित जापु आदि तथा अन्य रचनाएँ लिपिबद्ध हैं। इसमें गुरु गोविन्दसिंह रचित स्फुट कवित्त (१–१०), सवैये (१–१०), शब्द (१–४), ख्याल (१), शब्द (१–३) संग्रहीत हैं। अन्त में गुरु नानक के शब्दों का संग्रह है।

संख्या ७६८ :

आकार ४", ३ इंच। प्रति लगभग १०० वर्ष प्राचीन जान पड़ती है। अक्षर सुपाठ्य छोटे हैं किन्तु सुन्दर नहीं हैं। इसमें १–४१४ पन्ने तक गुरु गोविन्दसिंह रचित जापु, (१–१९९ छंद), अकाल स्तुति (१–२७१ छंद), विचित्र नाटक (१–४७१ छंद), चन्डी चरित्र उक्ति विलास (१–२३३ छंद), ज्ञान प्रबोध (१–३३६ छंद), वार श्री भगवती जी (१–५५ छंद) और १–९१ पन्नों पर छक्का श्री भगवती जी के क्रमशः २१, २२, २३ छंद, भगवती जी की प्रशंसा के २ छंद संग्रहीत हैं। बाद के पन्ने १–९१ तक कोई अन्य लिखिया के जान पड़ते हैं क्योंकि अक्षर काफी बड़े और भ्रष्ट आकृति के हैं।

संख्या ७६९ :

आकार २", १॥ इञ्च। पुस्तक अधिक प्राचीन नहीं है। पोथी के आरम्भ मे आरम्भकाल वैशाख सं० १९४८ का निर्देश हुआ है। यह संग्रह-ग्रंथ नहीं है। केवल गुरु गोविन्दसिंह रचित जापु के (१–१९८ छंद) लिपिबद्ध हैं।

संख्या २१८४ :

आकार ७", ४ इंच है। पुस्तक लगभग १२५ वर्ष पुरानी प्रतीत होती है। यह खंडित प्रति है। आरम्भ के १–३३३ पन्ने प्राप्त हैं। इसमें गुरु गोविन्दसिंह रचित जापु (१–१९८ छंद), अकाल स्तुति (१–२७१ छंद), विचित्र नाटक (१–४७१ छंद), चंडी चरित्र उक्ति विलास (१–२३३ छंद), चंडी चरित्र (१–२६२ छंद), वार श्री भगवती जी (१–५५ छंद), ज्ञान प्रबोध (१–३३६ छंद), शब्द हजारे (१–१५), ख्याल (१), शब्द (१–१०) संग्रहीत हैं।

संख्या २१९८ :

आकार ७", ५ इंच। पोथी लगभग १०० वर्ष पुरानी जान पड़ती है। इसके आरम्भ में गुरु अर्जुनदेव की परीक्षा और अन्त में गुरु नानक देव की परीक्षा रचनाएँ लिपिबद्ध हैं। पोथी के बीच गुरु गोविन्दसिंह रचित परीक्षा ग्रंथ के (१–६४ छंद), संग्रहीत हैं।

संख्या २२२४ :

आकार ७", ५ इञ्च। ग्रंथ लगभग १५० वर्ष पुराना प्रतीत होता है। अक्षर बड़े, सुपाठ्य और सुन्दर हैं। पुस्तक में पन्नों का एक संख्या-क्रम १-४१६ और दूसरा १-१८३ है। इससे आभास मिलता है कि उनके लिपिकर्ता कोई दो भिन्न व्यक्ति हैं किन्तु लिखावट मे कोई विशेष अन्तर नहीं जान पड़ता है। १-४१६ पन्नों में गुरु गोविन्दसिंह रचित सम्पूर्ण पाख्यान चरित्र (१-४०५ चरित्र) वर्णित हैं और पन्ना १-१८३ पर गुरु जी रचित चौबीस अवतार के अन्तर्गत मच्छ से लेकर राम अवतार के १-२० छंद लिपिबद्ध हैं।

संख्या २२२९ :

आकार ९", ५ इञ्च। पोथी बहुत प्राचीन नहीं है। अक्षर सुन्दर, सुपाठ्य और बड़े हैं। इसमें गुरु गोविन्दसिंह रचित जापु (१-१९६ छंद), शब्द (१-१६) और अन्त में कोई अन्य कवि कृत पद, दोहे आदि संग्रहीत हैं।

संख्या २२३०:

आकार ९", ५ इञ्च। ग्रंथ १०० वर्ष से कुछ अधिक प्राचीन जान पड़ता है। अक्षर सुपाठ्य और बड़े हैं। आरम्भ में गुरु गोविन्दसिंह रचित पाख्यान-चरित सम्बन्धी देवी स्तुति के प्रारम्भिक १-४८ छंद लिपिबद्ध हैं। अन्त में गुरु नानक रचित जपु आदि का संग्रह है।

संख्या २३९९ :

आकार ७ इञ्च, ५ इञ्च। ग्रंथ १५० वर्ष से अधिक प्राचीन प्रतीत होता है। अक्षर सुपाठ्य और बड़े हैं। इसमें कुल १-३३३ पन्ने हैं। इसमें गुरु गोविन्दसिंह रचित जापु (१-१९८), अकाल स्तुति (१-२७१ छंद), विचित्र नाटक (१-४७१ छंद), चण्डी चरित्र उक्ति विलास (१-२३३ छंद), चंडी चरित्र (१-२६२ छंद), वार श्री भगवती जी (१-५५ छंद), ज्ञान प्रबोध (१-३३५ छंद), चौबीस अवतार के अन्तर्गत मच्छ अवतार के १-५४ छद संग्रहीत हैं।

संख्या २४०४ :

आकार २ इञ्च, १॥ इञ्च। पोथी १०० वर्ष से अधिक प्राचीन जान पड़ती है। अक्षर सुन्दर, छोटे और सुपाठ्य हैं। कुल २६३ पन्ने हैं। गुरु गोविन्दसिंह रचित चंडी चरित्र उक्ति विलास के (१-२३३ छंद) १-२२१ पन्नों में वर्णित हैं। २२२ से २६३ पन्नों में अन्य कृतियाँ संग्रहीत हैं।

संख्या २५६२ :

आकार ६॥ इञ्च, ५॥ इञ्च। पोथी १५० वर्ष से अधिक पुरानी जान पड़ती है। अक्षर सुन्दर, अत्यन्त छोटे और सुपाठ्य हैं। हाशिया चित्ताकर्षक है। आरम्भ में गुरु गोविन्दसिंह रचित जफरनामा १-६ हिकायते पूर्ण और ७ वीं हिकायत अधूरी

१–२३ पन्नों पर लिपिबद्ध हैं। तदनंतर २४–१९९ पन्नों में गुरुजी रचित चौबीस अवतार के अन्तर्गत कच्छ से लेकर रामावतार तक, पारस नाथ रुद्र अवतार के १–३५८ छंद २५० पन्नों में, सवैया, फिर कृष्णावतार के १७८६–२४९० सख्या तक के छंद संग्रहीत हैं। पुस्तक के अन्त में गुरु गोविन्दसिंह रचित जफ़रनामा की सातवीं हिकायत दी गई है और गुरु नानक के छंदों का संग्रह है।

संख्या २५७६ :

आकार ५ इञ्च, ३ इञ्च। पुस्तक लगभग १५० वर्ष प्राचीन प्रतीत होती है। अक्षर बड़े और सुपाठ्य हैं। पहली संख्या १–२४० पन्नों की है जिसमें गुरु गोविन्दसिंह रचित ज़फ़रनामा (१ से ८६८ छद) वर्णित हैं और दूसरी संख्या १-८७ है जिसमें अध्यात्म रामायण का उत्तरकाड संग्रहीत है। पन्नों की भिन्नता के कारण ऐसा आभास होता है कि उनके लिखिया अलग-अलग व्यक्ति हैं यद्यपि लिखावट में कोई विशेष अन्तर नहीं है।

पटना के गुरुद्वारा में एक प्राचीन हस्तलिखित संग्रह-ग्रंथ सुरक्षित है जिसका उल्लेख पहले हो चुका है। इसमें संग्रहीत कतिपय रचनाएँ यथा संसाहार सुखमना (१ से १२७ छंद), छंद छक्का भगवतीजी (१–१३७), भागवत गीता (१–१८०० छंद) तथा कुछ अन्य फुटकर छंद जिनकी कुल संख्या २१०९ है, गुरुजी कृत नहीं जान पडती। गुरु जी की अन्य समस्त रचनाएँ जापु से लेकर जफ़रनामा तक जो जो इसमें संग्रहीत मिलती हैं, प्रामाणिक हैं। पटियाला सेन्ट्रल लाइब्रेरी में सुरक्षित उपरोक्त हस्त लिखित ग्रंथ सं० ६०५ में अथ गीता ग्रंथ अठारह अध्याय मुख पातशाही दस का उल्लेख मिलता है। ऊपर जैसा हस्तलिखित ग्रंथों के विवरणों से स्पष्ट है कि उक्त लाइब्रेरी में हस्तलिखित संग्रह-ग्रंथ संख्या २१९८ में गुरु अर्जुनदेव की परीक्षा कृति के अनन्तर 'परीक्षा वाहिगुरु जी के वचनापातशाही १० के अन्तर्गत १ से ६४ छंदों का उल्लेख है। रेफ़्रेंस लाइब्रेरी, अमृतसर में हस्तलिखित संग्रह-ग्रंथ संख्या १८७।३३९८ में भी गुरु गोविन्दसिंह रचित 'परीक्षा श्रीमुखवाक पातशाही दस' १०८ छंदों में दी गई है। इस प्रकार केवल दो हस्तलिखित प्रतियों में गुरु गोविन्दसिंह रचित भागवत गीता और दो प्रतियों में परीक्षा नामक कृतियाँ उपलब्ध होती हैं। उपरोक्त अनेक हस्तलिखित ग्रंथों में इन दोनों कृतियों अथवा उपर्युक्त पटना वाली पोथी में उपलब्ध अतिरिक्त रचनाओं का कोई उल्लेख नहीं मिलता। इन कृतियों की भाषा-शैली भी कुछ भिन्न प्रतीत होती है। अतएव उक्त रचनाओं को गुरु गोविंदसिह रचित प्रामाणिक कृतियों की कोटि में रखना उचित नहीं जान पड़ता[1]।

---

१. शब्द मूरति, रणधीर सिंह पृष्ठ १२

जनश्रुति के अनुसार गुरु गोविन्दसिंह की समग्र रचनाओं की छंद-संख्या सवा लाख से अधिक बताई जाती है। इसमें जापु से लेकर रामावतार तक की रचनाएँ सम्मिलित नहीं हैं किन्तु उक्त रचनाओं को सम्मिलित कर भी लिया जाये तो कुल छन्द-संख्या उक्त छंद-संख्या की चौथाई भी नहीं आती। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि अकाल स्तुति ग्रंथ का अंतिम छंद अधूरा है और इसके आगे अनेक छंद रहे होंगे जो नष्ट हो गये होंगे।[१] कतिपय विद्वानों का अनुमान है कि संवत् १७५५ तक गुरु गोविन्दसिंह की समस्त रचनाएँ लिखी जा चुकीं थी और इन कृतियों की जिल्द-बन्दी न होने के कारण जब गुरुजी को आनन्दपुर से वैसाली और भंबोर जाना पड़ा तो शत्रुओं ने लूट-खसोट की। उसी समय ग्रंथसाहब के पन्ने सरसा नदी में बह गये।[२]

गुरु जी के जीवन-काल की उथल-पुथल को देखने से उक्त तथ्य असम्भव नहीं जान पड़ता। उनका कहीं भी स्थिर रूप से निवास नहीं रहा और इस भाग-दौड़ मे काफी सामग्री नष्ट हो गई हो अथवा शत्रुओं द्वारा नष्ट कर दी गई हो तो कोई अस्वाभाविक बात नहीं है। फिर भी उनके द्वारा जापु से रामावतार तक की रचना के अतिरिक्त सवा लाख छंद रचे जाने की जनश्रुति उचित नहीं मालूम देती।[३]

गुरु गोविन्दसिंह रचित ग्रंथ "दशम" ग्रथ के नाम से दो खंडों में प्रकाशित भी मिलते हैं। प्रकाशित दशम ग्रंथ में रचनाओं को काल-क्रमानुसार नहीं दिया गया है। गुरु गोविन्दसिंह की उपर्युक्त रचनाओं में से जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया गया भगवत गीता परीक्षा, सर्वलोह प्रकाश, मालकोश की वार, संसाहार सुखमना हक्का श्री भगवती जी को प्रामाणिक कोटि मे नहीं माना जाता क्योंकि इनका उल्लेख केवल दो तीन प्रतियों में ही मिलता है। अन्य सूत्रों से इनकी प्रामाणिकता सिद्ध नहीं होती।[४]

अतएव प्रकाशित और प्राचीन हस्तलिखित संग्रह-ग्रन्थों के अनुसार गुरु गोविन्दसिंह रचित निम्नलिखित कृतियाँ प्रामाणिक कही जा सकती हैं।

१. जापु
२. अकाल स्तुति

---

१. वही, पृष्ठ १२
२. शब्द मूरति, रणधीर सिंह, पृष्ठ १४
३. ऐसी ही जनश्रुति महाकवि सूरदास के सम्बन्ध में भी है कि उन्होंने सवा लाख पद बनाये यद्यपि उनका सोलहवाँ अंश भी उपलब्ध नहीं है।
४. शब्द मूरति, रणधीर सिंह, पृष्ठ ११

३. विचित्र नाटक
४. चंडी चरित्र उक्ति विलास
५. चंडी चरित्र
६. वार श्री भगवती जी दी
७. चौबीस अवतार
८. मीर मेंहदी
९. ब्रह्मा अवतार
१०. रुद्र अवतार
११. शस्त्र नाममाला
१२. ज्ञान प्रबोध
१३. पाख्यान चरित्र
१४. हजारे दे शब्द
१५. सवैये
१६. जफरनामा

रचना-काल

गुरु गोविन्दसिंह ने अपनी कतिपय रचनाओं मे उनके रचना-काल का भी निर्देश कर दिया हैं। अतएव रचनाओं का काल-क्रम निर्धारण करने मे अधिक सुविधा हो जाती है। उनका सम्पूर्ण रचना-काल बीस-पच्चीस वर्ष का कहा जा सकता है। उपलब्ध सभी हस्तलिखित संग्रह ग्रंथों मे प्रायः जापु प्रथम रचना के रूप मे लिपिबद्ध मिलता है, जिसका रचनाकाल संवत १७४० के लगभग माना जा सकता है। तदनन्तर अकाल स्तुति, विचित्र नाटक, चंडी चरित्र उक्तिविलास, चंडी दीवार, वार श्री भगवती जी की, ज्ञान प्रबोध आदि ग्रंथ लिपिबद्ध मिलते हैं। यही क्रम उनके रचनाकाल का भी माना जा सकता है। यह उचित भी जान पड़ता है क्योंकि गुरु गोविन्दसिंह जैसे धार्मिक गुरु द्वारा सर्वप्रथम ईश्वर-स्तुति और ईश्वर-महिमा का गान ही प्रस्तुत किया गया होगा। अनुमान किया गया है कि इस ग्रंथ की रचना उस समय हुई जब गुरु गोविन्दसिंह आनन्दपुर में आकर रहने लगे थे और उनके दर्शनार्थ अनेक साधू, महात्मा, फकीर आते रहते थे। इस ग्रंथ की रचना भी कोई एक समय में नहीं हुई। श्री रणधीर सिंह के मतानुसार ११–१५० छंदों की रचना संवत् १७५३ के पूर्व, १५१–१६० छंद वैसाली के अवसर पर सं० १७५५ के जेठ महीने में लिखे गये।[1] ग्रंथ की भाषा प्रौढ़ और परिमार्जित है। इससे भी यही निष्कर्ष निकलता है कि इस ग्रंथ का प्रणयन बाद की रचना है। कवि की यह

1. शब्द मरति, रणधीर सिंह, पृष्ठ १९

आरम्भिक कृति नहीं है। इस ग्रंथ में रचना-काल का कोई उल्लेख तो नहीं है किन्तु जिन रचनाओं में गुरु जी ने रचना-काल निर्देश किया है उनसे स्पष्ट होता है कि उनके ग्रंथों की रचना वर्ण्य-विषय के अनुसार बिल्कुल क्रमबद्ध नहीं हुई है। बाद का विषय पहले लिखा गया है और पहले का विषय बाद में रखा गया है। श्री दशमेश चमत्कार में लेखक ने रचनाओं की क्रमबद्धता का विवरण इस प्रकार दिया है—जापु जी, अकाल स्तुति, विचित्र नाटक, चौबीस अवतार, चंडी चरित्र, चंडी दी वार आदि।[1] किन्तु गुरु जी ने स्वरचित विचित्र नाटक में निर्देश किया है कि उन्होंने प्रथम चंडी चरित्र की रचना की है जिसका उल्लेख पहले हो चुका है। अतएव उक्त क्रम ज्यों का त्यों मान्य नहीं हो सकता।

चंडी चरित्र मे रचना-काल का उल्लेख नहीं है किन्तु इस ग्रंथ के सम्बन्ध में गुरु गोविन्दसिंह के स्वरचित विचित्र नाटक के उल्लेख से जिसे पहले उद्धृत किया गया है, स्पष्ट होता है कि उन्होंने देवी चरित्र का गान सर्वप्रथम किया और इसमें चंडी चरित्र उक्ति विलास पहले लिखा जिसमें चंडी का नखशिख वर्णन भी है और दूसरे चंडी चरित्र की अपेक्षा छोटा है। अतएव कवि प्रारम्भिक रचना लगभग संवत् १७४० मे लिखी गई होगी। कुछ विद्वानों के अनुसार चंडी चरित्र, उक्ति विलास के प्रथम १-२२७ छद सं० १७४०-४१ के लगभग लिखे गये और शेष ६ छन्द जो पटना की पोथी मे हैं वे संवत् १७५८ मिती फाल्गुन २८ को लिखकर बढ़ाए गये।[2] चंडी चरित्र का रचना-काल भी इसी सवत् के आस पास माना जा सकता है।

गुरु जी ने विचित्र नाटक में रचना-काल का उल्लेख नहीं किया किन्तु इसमें संवत् १७५५ तक की घटनाओं का वर्णन मिलता है। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि ग्रंथ की समाप्ति संवत् १७५५ के लगभग हुई। इसमें उन्होंने अपने जीवन-वृक्ष का परिचय यथेष्ट रूप से दिया है। अतएव इसमें उल्लिखित संवत् १७५५ तक की घटनाओं को अप्रामाणिक नही माना जा सकता।

चौबीस अवतार नामक कृति में कृष्णावतार इक्कीसवाँ अवतार है जिसके मध्य और अन्त मे उन्होंने स्वय उसके रचनाकाल का निर्देश किया है। रचना सम्बन्धी निम्नलिखित छंद द्रष्टव्य है :

---

१. श्री दशमेश चमत्कार, पृष्ठ १३०
   विचित्र नाटक, पृष्ठ ७५, ७६

२. शब्द मूरति, रणधीरसिंह, पृष्ठ १६

संवत सत्रह सौ चौताल मैं सावन सुदी बुद्धवार,
नगर पांवटा मो सु मैं रच्यो ग्रंथ सुधार ॥[1]

यह भाई मणिसिह की पोथी का ३९१८ वा छन्द है ।[2] उक्त छंद के अनुसार संवत् १७४४ सावन सुदी बुधवार तक कृष्णावतार के ९४९ छंदों तक की रचना हो चुकी थी।

उस ग्रंथ में रासवर्णन का अन्त करते समय रचना-काल का निर्देश निम्नलिखित छंद में मिलता है :

सतरह सैं पैताल में कीन्ही कथा सुधार।
चूक होय जहँ तह सु कवि लीजहु सकल सुधार ॥[3]

भाई मणिसिह की पोथी के अनुसार यह ७५० वाँ छंद है और पटने की पोथी का ३७९६ वाँ छंद है।

कृष्णावतार के अन्त में निम्नलिखित छंद द्वारा ग्रंथ के रचनाकाल का निर्देश हुआ है :

बहुर सुजुद्ध प्रबन्ध बखाना।
जे विधि हरि दारुन रन ठाना ॥
आठ सहस पचत्तहर परधाने।
कहा छंद परबंध मैं आने ॥[4]

सतरह सै पैताल में सावन सुदि थिति दीप।
नगर पांवटा शुभ करण जमुना बहै समीप ॥[5]

दशमेशजी ने पाख्यान चरित्र के रचना-काल का निर्देश निम्नलिखित छंद में किया है :

संवत सतरह सहस भनीजै।
अर्ध सहस कुनि तीन कहीजै ॥
भादख सुदी अष्टमी रविवारा।
तीर सत्रु द्रव ग्रंथ सुधारा ॥[6]

---

१. कृष्णावतार, दशम गुरु ग्रंथ, खंड १, छंद संख्या ९८३
२. शब्द मूरति, रणधीर सिंह, पृष्ठ १७
३. कृष्णावतार, श्री दशम गुरु ग्रंथ, खंड १, छंद संख्या ७५५, पृष्ठ ३५४
४. शब्द मूरति, रणधीर सिंह, पृष्ठ १८
५. श्री दशम गुरु ग्रंथ खंड १, कृष्णावतार, छंद संख्या २४९०
६. पाख्यान चरित्र, दशम ग्रंथ खंड २, छंद संख्या ४०५, पृष्ठ १२८८

इससे स्पष्ट होता है कि इसका रचना-काल संवत् १७५३ भादों सुदी अष्टमी रविवार है।

जफ़रनामा गुरु गोविन्दसिंह की अन्तिम रचना मानी गई है जिसका रचना-काल संवत् १७६३ के लगभग माना जाता है।[1] अतएव गुरु गोविन्दसिंह का रचना-काल संवत् १७४० के कुछ पूर्व से लेकर संवत् १७६३ तक के लगभग माना जा सकता है।

अब यहाँ पर उपरोक्त कृतियों का संक्षेप मे परिचय देना समीचीन होगा।

जापु

गुरु गोविन्दसिंह ने सिक्ख धर्म के अन्तर्गत, अपने काल की राजनीतिक परिस्थिति से प्रेरित होकर खालसा की स्थापना की थी। उन्होंने अपने धर्म को रजोगुणी बताया है किन्तु उनके धार्मिक संस्कार बड़े प्रबल थे। धर्म उनके लिये सर्वोपरि था, इसलिये ईश्वरनाम का स्मरण, स्तुति और वन्दना से सम्बन्धित यह रचना सर्वप्रथम उद्धरित हुई, यह कहा जा सकता है। जैसे कि पहले कहा गया है, प्राप्त समस्त हस्तलिखित संग्रह-ग्रंथो में जापु उनकी सर्वप्रथम रचना है। यह सिक्ख धर्म में नित्य पाठ मे सम्मिलित है। यह प्रमाण भी उक्त कथन की पुष्टि करता है। अनेक संग्रह ग्रंथों का उल्लेख पहले हो ही चुका है। गुरु रामदास लाइब्रेरी मे प्राप्त ग्रंथ संख्या ११८८ में जापु की छंद संख्या क्रम से १–१९८ दी हुई है किन्तु लिपिकार ने छन्द संख्या १९७ पर संख्या १९६ लिख दिया है। अतएव कुल छंदों का योग १९९ है। ग्रन्थ संख्या ११११ और ११९३ में १–१९८ छंद ही मिलते हैं। शिरोमणि गुरुद्वारा, अमृतसर की रेफरेन्स लाइब्रेरी में उपलब्ध हस्तलिखित ग्रंथ संख्या ४७।११०६, ३७।७९९, ७२।१५७८, ९५।२०६५, १७३।२८८९, २३६।४४७१ में १–१९८ छंद, ग्रंथ संख्या १८७।३३९८ में १–१९९ छंद लिपिबद्ध हैं। सेंट्रल लाइब्रेरी, पटियाला के हस्तलिखित संग्रह ग्रंथ सं० ७१३, ७४६, ७४९, ७५७, ७६५, ७६९, २१८४, २३९९ में १–१९८ छंद, ग्रंथ संख्या ७४८, ७६८ में १–१९९ छंद उपलब्ध होते हैं। रेफरेस लाइब्रेरी की ग्रंथ संख्या ९३।१९७५ और सेन्ट्रल लाइब्रेरी, पटियाला की प्रति सं० २२२९ में क्रमशः १–५४ और १–१९६ छंद ही लिपिबद्ध हैं। सर्वप्राचीन हस्तलिखित तथा प्रकाशित ग्रंथो में 'जापु' की छंद संख्या १९९ है और यही संख्या ठीक प्रतीत होती है।

इस कृति के प्रारम्भ में गुरु गोविन्दसिंह ने ईश्वर के निराकार रूप को विविध विशेषणों से सम्बोधन करते हुए उसको नमस्कार किया है। उसके अदृश्य, अनाम, अनादि, अपार रूपों की बार-बार वन्दना की है। उसे अजन्मा, निराधार, निर्विकार,

---

१. शब्द मूरति, रणधीर सिंह, पृष्ठ २१

दयालु आदि बताया है। वही मुसलमानों का रफीक, रहीम, करीम और अल्लाह है। तदनन्तर उसकी सर्वव्यापकता का वर्णन किया गया है। वह जल, थल में सर्वत्र विद्यमान है। वह समस्त विश्व का श्रष्टा अकाल पुरुष है। उसका न कोई शत्रु है, न मित्र है, न कोई पुत्र है, न पौत्र है, न माता है, न पिता है और न उसकी कोई जाति-पाँति है। वह अमीनुल जमा, करीमुलकमाल और अमीकुल इमा है। वह अन्धकार, प्रकाश, जीव, प्रकृति सब का कारण है। कृति के अन्त में कवि ने पुनः उस सच्चिदानन्द, परमेश्वर को नमस्कार किया है। पुस्तक का नाम 'जापु' सार्थक है।

'जापु' कवि की मुक्तक रचना है। प्रत्येक छंद स्वतंत्र और अपने में पूर्ण है। उसमें पूर्वापर सम्बन्ध की कोई अपेक्षा नहीं है। इसमें छप्पय, भुजंगप्रयात, चाचरी, चरपट, रुमाल, मधुमार, भगवती रसावल, हरिबोलमना, एक अछरी दस प्रकार के छन्दों के प्रयोग किये गये हैं। इनमें भी भुजंग-प्रयात और चाचरी छन्द का आधिक्य है। ग्रन्थ की भाषा 'व्रज' है। इसमें अवधी भाषा का भी पुट मिलता है। यत्रतत्र फारसी अरबी के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। अनेक छंद तो बिलकुल फारसी शब्दावली में ही हैं। उनमें केवल 'हैं' क्रिया पद का प्रयोग हो गया है, कहीं पर यह भी नहीं है। संस्कृत तत्सम शब्दों के प्रयोग भी ईश्वर-गुणों के अनुसार स्वाभाविक ढंग से हुए हैं। तद्भव शब्द भी बड़े सुन्दर ढंग से छंद की लड़ियों में पिरोये गये हैं। यह रचना विष्णु सहस्रनाम की शैली पर लिखी गई है जिसमें ईश्वर को विविध नामों में संबोधित किया गया है।[1]

अकाल-स्तुति

जापु के अनन्तर दूसरी रचना हस्तलिखित संग्रह तथा प्रकाशित ग्रंथों में अकाल-स्तुति लिपिबद्ध मिलती है। अकाल-स्तुति में कुल २७१ छंद उपलब्ध होते हैं। कई हस्तलिखित और प्रकाशित ग्रंथों में २७१ के बाद आधा छंद और लिपिबद्ध मिलता है। गुरु रामदास लाइब्रेरी, अमृतसर के ग्रंथ संख्या ११९३ मे २७१ छंद, रेफरेन्स लाइब्रेरी, अमृतसर के ग्रंथ संस्था ४७।११०६, ४७।११०७, ३७।७९९, ७२।१५७८, ५९।२०६५, १७३।२८२९, १८७।३३९८ २३६।४४७१, में २७१ छंद तथा पटियाला

1. The Japji of Guru Govind Singh is held by the sikhs in the same estimation as the Japji of Guru Nanak. The Hindus have a work entitled 'Vishnu Sahasra Nam' Vishnu's thousand names. The Japji was composed to supply the sikhs with a similar number of epithets of the Creator.

The Sikh Religion, Volume V, P. 261

सेन्ट्रल लाइब्रेरी के ग्रंथ संख्या ७४६, ७४९, ७५५, ७५७, ७६५, ७६८, २१८४, २३९९ मे भी २७१ छंद उपलब्ध होते हैं। २७१ छंद के पश्चात आधा छंद से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि इस ग्रंथ की छंद संस्था २७१ से अधिक रही होगी। किन्तु मूल पोथी के बिखर जाने के कारण हस्तलिखित ग्रन्थों में यह ग्रंथ खंडित रूप में उपलब्ध होता है।[1]

अकाल-स्तुति के आरम्भ में गुरु गोविन्दसिंह ने ब्रह्म के निराकार एवं सर्वव्यापक रूप का वर्णन किया है। वह मानव-शरीर से लेकर समस्त सृष्टि मे व्याप्त है। उसके लिये राजा और रंक, हाथी और कीड़े सब एक समान हैं। उसका सगा सम्बन्धी कोई नहीं। वह सर्वज्योतिर्मान है। उन्होंने इसमे ईश्वर के सगुण और अवतारी रूप का भी वर्णन किया है, जो परम्परागत है। वह कभी त्रिगुणातीत है, कभी साकार है; वह संसार के सभी प्राणियों और पदार्थों मे रमा हुआ है। वह समस्त सृष्टि का नियन्ता है, बिना उसके कोई कार्य संभव नहीं। ईश्वर की महिमा वर्णन के अतिरिक्त बीच-बीच में कवि ने पाखंड, लौकिक उपचार, वासना आदि का खंडन भी किया है। दोनों नेत्रों को बन्द करके ध्यान लगाने, सात समुद्रो में स्नान करने, बुतों और पत्थरों को पूजने, लिंग को गले मे लटकाने, श्राद्ध आदि के करने से ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती। केवल प्रेम-भावना से ही वह प्राप्त हो सकता है। कवि ने एक छन्द में केवल 'तुही,' 'तुही' शब्दों के प्रयोग से ईश्वरीय सत्ता की सर्वव्यापकता मे अपने दृढ़ और अटूट विश्वास को प्रकट किया है। स्थान-स्थान पर संसार की नश्वरता और क्षणभंगुरता का वर्णन भी हुआ है। ज्ञान के द्वारा ही ईश्वर प्राप्त होता है, अन्ध-विश्वास द्वारा नहीं;। इस तथ्य को कई छंदों मे व्यक्त किया गया है।

संसार के समस्त मानव एक ब्रह्म द्वारा ही रचे गये हैं। हिन्दू, तुर्क में कोई भेद नहीं है। यहाँ पर कवि का मानवतावादी दृष्टिकोण स्तुत्य है। ग्रंथ में ईश्वरीय गुणों और नामो के वर्णन में स्थान-स्थान पर पुनरुक्ति भी मिलती है। इस्लाम और हिन्दू धर्म की समान उपासना के वर्णन मे गुरु गोविन्दसिंह के समन्वयवादी दृष्टिकोण का परिचय मिलता है। उन्होंने संस्कृत, अरबी, तुरकी, फारसी, पहलवी, पश्तो, देशभाषा सभी को समान माना है। इसमें उल्लिखित एक छन्द से उनकी पुनर्जन्म सम्बन्धी आस्था की पुष्टि होती है। ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र के जाति-धर्म की शिथिलता का भी उल्लेख हुआ है। ग्रंथ के छन्द २०१-२१० में आत्मा-परमात्मा, जीवन-मरण, पाप-पुण्य, ज्ञान-अज्ञान आदि के सम्बन्ध में प्रश्नावली के रूप मे शंकाएँ उठाई गई हैं किन्तु इनका उत्तर ग्रंथ में उपलब्ध नहीं होता। इससे ग्रंथ के रचना-क्रम और वर्ण्य-विषय के संबंध में संशय बना रहता है। ऐसे ही छंद २६१ मे सृष्टि-

---

१. शब्द मूरति, रणधीरसिंह, पृष्ठ १४

विस्तार तथा ईश्वरीय सत्ता के सम्बन्ध में प्रश्न है परन्तु उसका भी कोई स्पष्टीकरण ग्रंथ में नही मिलता। ग्रंथ के अन्त मे आधा छंद ही प्राप्त होता है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि उक्त प्रश्नावली सम्बन्धी शंकाओं का सविस्तार समाधान संभवतः इसमें किया गया होगा किन्तु ग्रन्थ के अपूर्ण होने के कारण वह अंश उपलब्ध नहीं होता। अतएव ग्रंथ का मुख्य विषय ईश्वर-स्तुति ही है परन्तु प्रसंगवश अन्य धार्मिक, सामाजिक, भाषा सम्बन्धी तथ्यों के प्रकाशन हो गये हैं।

ग्रंथ मुक्तक काव्य का उत्कृष्ट उदाहरण है। ईश्वरीय नामों और गुणों का वर्णन प्रत्येक छन्द मे स्वतंत्र रूप से हुआ है। अन्धविश्वास, पाखंड आदि सम्बन्धी छंदों में भी पूर्वापर सम्बन्ध की अपेक्षा नहीं है। मुक्तककाव्य की सभी विशेषताएँ इसमें उपलब्ध होती हैं। डा० धर्मपाल आस्ता ने इसमें प्रतिपादित विषय का विभाजन ६ भागों में माना है।[1] इसमे चौपाई, कवित्त, सवैया, तोमर, लघु निराज, भुजंगप्रयात, पाधड़ी, तोटक, नराच, रुआमल, दोहरा, दीर्घ त्रिभंगी छन्दों के प्रयोग हुए हैं। इनमे कवित्त और सवैया छंदों का आधिक्य है। ग्रंथ में व्रजभाषा के प्रौढ़ और परिमार्जित रूप का प्रयोग हुआ है। भाषा प्रसाद-गुण-युक्त है। स्थान-स्थान पर फारसी शब्दों के प्रयोग भी मिलते हैं। संस्कृत पदों का भी यत्किंचित स्थानों पर प्रयोग हुआ है जले, हरे, बने, गिरे, नमे में सप्तमी विभक्ति, सिद्धवृद्धिदा, सिद्ध बुद्धिदा आदि। पूर्वी हिन्दी के शब्दों के भी यत्रतत्र प्रयोग हुए हैं। वर्ण्यविषय और छन्दों के अनुकूल भाषा का प्रयोग इस कृति की विशेषता है। हिन्दी साहित्य के सन्त-काव्य के अन्तर्गत इस रचना की विशेष गणना की जा सकती है।

विचित्र नाटक—

अकाल-स्तुति के अनन्तर प्रकाशित तथा हस्तलिखित संग्रह-ग्रंथों में विचित्र नाटक लिपिबद्ध मिलता है। इस ग्रंथ में ४७१ छंद उपलब्ध होते हैं। गुरु रामदास लाइब्रेरी, अमृतसर के हस्तलिखित ग्रंथ संख्या ११९३ में १४७१ छंद, रेफरेन्स लाइब्रेरी, अमृतसर के हस्तलिखित ग्रंथ संख्या ३७।७९९, ७२।१५७१, ९५।२०६५, १७३।२८८९ तथा पटियाला सेन्ट्रल लाइब्रेरी के हस्तलिखित ग्रंथ सं० ७४६, ७४८, ७४९, ७६८, २१८४, २३९९ मे भी ४७१ छंद उपलब्ध होते हैं। प्रकाशित दशम ग्रंथ में भी ४७१ छंद मिलते हैं।

इस रचना के लिखने का एक कारण यह बताया गया है कि एक श्रद्धालु सिक्ख ने गुरु जी से प्रार्थना की कि ईश्वर के सम्पूर्ण गुणों का वर्णन कीजिये। तभी गुरुजी ने इस ग्रंथ की रचना की और विस्तार से सृष्टि के प्रारम्भ, सोढी वंश की उत्पत्ति तथा

---

१. दि पोयट्री आफ् दशम ग्रन्थ, पृष्ठ ३७,३८

ईश्वर की महिमा का गान किया और कहा कि यद्यपि ईश्वर के सूक्ष्म रूप का वर्णन नही हो सकता फिर भी अवतारों के रूप मे उन्होंने इस ग्रंथ मे उसे व्यक्त किया है।[1]

संपूर्ण ग्रन्थ चौदह अध्यायों में विभाजित है। इसमें गुरु गोविन्दसिंह के वंश और जीवन का विस्तृत वर्णन मिलता है। पहले अध्याय के आरम्भ मे अकाल-पुरुष की स्तुति है। ब्रह्म के निराकार-रूप, उसकी सर्वव्यापकता और अनेक गुणों का वर्णन भी किया गया है। तदनन्तर काल की सर्वव्यापकता दिखाई गई है। मूर्तिपूजा, पाखंड आदि का खंडन किया गया है। अकाल की स्तुति का यह अध्याय १०१ छंदों में वर्णित है।

दूसरे अध्याय में ईश्वर स्तुति के बाद सोढी वंश के उद्भव और विकास का उल्लेख किया है। सूर्यवंश मे राजा दशरथ के पुत्र राम और उनके पुत्र लव-कुश हुए। काल केतु—ब्रह्मा—ने कालराय को निकाल दिया तो उसने सनोढ देश में जाकर शादी कर ली और उसका वंश सोढी कहलाया। यह अध्याय ३६ छदों में है। तीसरे अध्याय मे लव, कुश के पारस्परिक युद्ध का वर्णन है, जिसमे लव की जीत हुई। इसमे कुल ५२ छंद हैं। चौथे अध्याय में वेदी वंश का वर्णन है। लव वंश के वेदपाठी जब मद्र देश पहुँचे तो वहाँ का राजा वेदपाठी से अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसने अपना राज्य उन्हें सौप दिया और स्वयं संन्यास ले लिया। इसमे कुल १० छंद हैं। पाँचवे अध्याय में सिक्ख धर्म के प्रवर्तक गुरु नानकदेव और उनके बाद के अन्य आठ गुरुओं का उल्लेख है। यह १६ छंदों में वर्णित है। छठे अध्याय में गुरुजी ने अपने जन्म के हेतु का वर्णन किया है। अकाल-पुरुष ने उन्हे अपना पुत्र बनाकर पाखंड, बहुधर्मवाद, अन्धविश्वास आदि के खंडन तथा धर्म की रक्षा और दुष्टों का दलन करने के लिए संसार में भेजा। इसमें कुल ६४ छद हैं। सातवें अध्याय मे केवल तीन छंद हैं जिसमें उन्होंने अपने जन्म-स्थान और बाल्यावस्था का वर्णन किया है। आठवे अध्याय में पाँवटा के पास भंगानी युद्ध का वर्णन है। यह अध्याय ३८ छंदों में है। नवे अध्याय मे गुरुजी और राजा भीमचन्द के साथ नादीन के युद्ध का वर्णन २४ छन्दों मे हुआ है। दसवें अध्याय मे औरंगजेब के हाकिम दिलावर खाँन के साथ १० छन्दों मे[2] युद्ध का वर्णन[3] है। ११ वे अध्याय मे हुसेन खाँ के साथ ६९ छन्दों मे युद्ध का वर्णन किया गया है। १२ वे अध्याय मे दिलावर खाँ

---

१. सूछमा रूप न बरना जाई ॥ बिरध सरूपेहि कहो बनाई।

२. प्रथम कथा सछेप ते कहों सो हितु चितु लाई।
बहुर बड़ो बिस्थार के, कहिहौं सभै सुनाइ ॥
विचित्र नाटक, अध्याय २, पृष्ठ १८, १९

३. शब्द मूरति, रणधीर सिंह, पृष्ठ २२

के साथ उनके पुत्र जुझारसिंह के युद्ध का वर्णन १२ छन्दों में मिलता है। १३ वे अध्याय मे औरंगजेब के हाकिम मिर्जा बेग के अत्याचार और उपद्रवों का वर्णन है। चौदहवें और अन्तिम अध्याय में सर्वकाल की विनती की गई है।

प्रस्तुत ग्रंथ आत्मचरित्र काव्य की कोटि मे रखा जा सकता है क्योंकि इसमें गुरु गोविन्दसिंह के जीवन सम्बन्धी अनेक घटनाओं का विस्तार से वर्णन किया गया है। ग्रंथ में भुजंगप्रयात, रसावल, नराज, तोटक, सवैया, चौपाई, दोहरा, छप्पय, अड़िल, त्रिभंगी, भुजंग, मधुमार छन्दों के प्रयोग किये गये हैं। भुजंगप्रयात, दोहरा रसावल, चौपाई का आधिक्य मिलता है। इसमे व्रजभाषा का प्रौढ़ और परिमार्जित रूप व्यवहृत हुआ है। यत्र-तत्र अवधी शब्दों का भी व्यवहार हुआ है। वर्ण्य-विषय के अनुसार ही शब्दावली का प्रयोग हुआ है। अरबी-फारसी शब्दों का प्रायः निराकरण है। हिन्दी साहित्य में पंजाबी क्षेत्र की यह आत्मचरित्र सम्बन्धी पहली उत्कृष्ट रचना है।[1]

चंडीचरित्र उक्ति-विलास

अधिकाश हस्तलिखित तथा प्रकाशित संग्रहग्रंथो में विचित्र नाटक के अनन्तर चंडीचरित्र उक्ति-विलास लिपिबद्ध मिलता है। कतिपय हस्तलिखित प्रतियो में जापु के अनन्तर दूसरी रचना चंडीचरित्र उक्ति-विलास संग्रहीत मिलती है। ग्रंथ में कुल २३३ छंद हैं और यह सात अध्यायों मे विभाजित है। गुरु रामदास लाइब्रेरी, अमृतसर के ग्रंथ संख्या ११८८, १८९३, रेफरेन्स लाइब्रेरी के ग्रंथ संख्या ३७।७९९, ७२।१५७८, ९५।२०६५, १७३।२८८९, सेन्ट्रल पटियाला लाइब्रेरी के ग्रंथ संख्या ७४६, ७४८, ७४९, ७६८, २१८४ २३९९, २४०४ में चंडीचरित्र उक्ति-विलास के सात अध्यायों में १–२३३ छंद मिलते हैं।

चंडीचरित्र उक्ति-विलास में देवी चंडी की कथा मार्कण्डेय पुराण के आधार पर उत्कृष्ट काव्यपूर्ण शैली मे लिखी गई है। यह अंश दुर्गा-सप्तशती से संबंधित है जिसमें ५३५ श्लोक १०८ अर्ध श्लोक और ५७ उवाच कुल मिलाकर ७०० की संख्या है। इसी सप्तशती के आधार पर गुरु गोविन्दसिंह ने चंडीचरित्र की रचना की है। इस तथ्य का उल्लेख उन्होंने ग्रंथ के अन्तिम दो छंदों में इस प्रकार किया है। इनमें उनकी गर्वोक्ति की भी झलक मिलती है।

> चंडी चरित्र कवित्तन में बरनयो सम ही रस रुद्रमई है।
> एक तै एक रसालि भयो नख ते सिख लौं उपमा सु नई है।
> कउतुक हेत करी कवि ने सतसै की कथा इह पुरी भई है।
> जाहि के निमित पड़ै सुनिहै नर सो निसचै करि ताहि दई है।

---

१. दि पोयट्री आफ् दशम ग्रंथ, पृष्ठ ५०

ग्रंथ सतसैया को करयो जा सम अवरु न कोई।
जिह नमित्त कविन कह्यो सुदेह चंडिका मोह ॥[१]

प्रत्येक अध्याय के अन्त में भी "इति श्री मारकडेय पुराणे श्री चंडीचरित्रे उक्ति विलासे"...का उल्लेख हुआ है। अतएव यह स्पष्ट है कि गुरु गोविन्दसिंह ने मारकडेय पुराण की दुर्गासप्तशती के आधार पर देवासुर संग्राम के प्रकरण को लेकर चंडी चरित्र उक्ति-विलास ग्रंथ का प्रणयन किया।

यह ग्रथ सात अध्यायों मे विभाजित है। पहले अध्याय के प्रारम्भ मे गुरु गोविंद-सिह ने अकाल पुरुष का स्मरण किया है, फिर देवी की वन्दना की है। तदनन्तर मधुकैटभ दैत्य के वध का वर्णन है। महिषासुर ने इन्द्र की सेना को पराजित किया और उनकी पुरी छीन ली। तब समस्त देव शिवपुरी गये और वहाँ देवी चंडिका की स्तुति और प्रार्थना की। तदनंतर देवी ने वहाँ पहुँच कर समस्त दैत्यों का विनाश किया और महिषासुर का वध किया। तीसरे अध्याय के आरम्भ में महिषासुर के वध और इन्द्र द्वारा देवपुरी के पुनः प्राप्त होने पर देवपुर मे नृत्य, गायन, वादन आदि का वर्णन है। तत्पश्चात् शुंभ और निशुंभ दो दैत्यों के साथ देवताओं के युद्ध का वर्णन है जिसमे देवता पराजित होते हैं और वे पुनः चंडिका से सहायता की विनती करते हैं। चडिका के रूप-सौदर्य से अभिभूत होकर निशुंभ मूर्छित हो जाता है और वह चंडिका को अपने भाई शुंभ के साथ विवाह करने के लिये कहता है। किन्तु देवी बिना युद्ध किये उसे नहीं वरेगी, यह कथन सुनकर वह अपने भाई शुंभ को चंडिका के रूप-सौदर्य का वर्णन करके उससे विवाह करने के लिये प्रेरित करता है। यहाँ पर चंडिका के नख-शिख का सुन्दर वर्णन हुआ है। शुभ पहले धूम्रलोचन को सेना के साथ चंडिका को पकड़ लाने के लिये भेजता है किन्तु देवी द्वारा उसका वध कर दिया जाता है।

चौथे अध्याय मे एक दैत्य उसके वध की सूचना शुंभ को देता है तो वह चंड और मुंड नामक दैत्यों को चंडी को पकड़ लाने के लिये भेजता है। घमासान युद्ध के उपरान्त चडी पहले मुंड का वध कर देती है फिर चंड के सिर को बर्छी से अलग कर देती है। पाँचवें अध्याय में शुंभ बड़ी आशा के साथ श्रौण-बिन्दु को देवी का संहार करने के लिये भेजता है। श्रौण-बिन्दु और देवी का घमासान युद्ध होता है और धरा पर उसके रक्त के बिन्दु के गिरने पर अनेक श्रौणबिन्दु उत्पन्न हो जाते हैं। तब चंडी उसका खून पीने के लिये काली की सहायंता लेती है। इस प्रकार देवी द्वारा श्रौणबिन्दु का वध होता है। छठे अध्याय में शुंभ और निशुंभ चंडिका से युद्ध करने के लिये स्वयं रणभूमि मे आते हैं और युद्ध होता है तब विष्णु, शक्ति को

---

१. चंडीचरित्र उक्ति-विलास, श्री गुरु दशम ग्रंथ साहब, खंड १, छंद संख्या २३३.

चंडी और काली की सहायता के लिये भेजते हैं। अंत में निशुंभ का वध हो जाता है। सातवें अध्याय में चंडी, काली और शक्ति की सहायता से घनघोर युद्ध के बाद शुंभ का वध कर देती है, तभी वह विजय की शंखध्वनि करती है और समस्त देवता अक्षत, कुंकुभ, चन्दन से देवी चंडिका और कालिका की अर्चना, वन्दना करते हैं। अन्त में गुरु गोविन्दसिंह ने शिवा से अपनी कर्तव्यपरायणता, शत्रु-विजय एवं युद्धपरायणता का वरदान मागा है।

ग्रंथ का प्रणयन कथात्मक चरित-काव्य के रूप मे हुआ है। इसमें देवासुर संग्राम तथा देवी चंडिका और दैत्यों का युद्ध विधिवत् वर्णित है। जैसा कि गुरु गोविन्दसिंह ने स्वयं लिखा है। ग्रंथ कवित्तों में लिखा गया है किन्तु इसमे कवित्त के अतिरिक्त सवैया, दोहरा, सोरठा, तोटक, रेखता, पुन्हो छंदों के भी प्रयोग हुए हैं। इसमें सवैया छंद का आधिक्य है। यहाँ गुरु जी ने कवित्त शब्द व्यापक अर्थ में प्रयुक्त किया है।

ग्रंथ की भाषा व्रज है। यत्रतत्र फारसी शब्दों का प्रयोग हुआ है। भाषा प्रौढ़ और परिमार्जित है। वर्ण्य-विषय और छंदों के अनुसार भाषा का प्रयोग कवि की विशेषता है। इसमे वीर रस और ओज गुण की प्रधानता मिलती है।

चंडीचरित्र

इस ग्रंथ का उल्लेख हस्तलिखित संग्रह ग्रंथों में चंडीचरित्र उक्ति-विलास के अनन्तर किया गया है। इसमे कुल २६२ छंद हैं। गुरु रामदास लाइब्रेरी, अमृतसर के ग्रथ संख्या ११८८, ११९३ मे १–२६२ छंद, रेफरेन्स लाइब्रेरी, अमृतसर के ग्रंथ संख्या ३७।७९९, ७२।१५७८, ९५।२०६५, १७३।२८८९ तथा पटियाला सेंट्रल लाइ-ब्रेरी के ग्रंथ सं० ७४८, ७४९, २१८६, २३९९ में भी २६२ छंद मिलते हैं।

इस ग्रंथ का कथानक भी चंडीचरित्र उक्ति-विलास के सदृश है, यद्यपि इसमें कथा का विस्तार उतने विशद रूप मे नहीं मिलता परन्तु मार्कण्डेय पुराण के दुर्गा-सप्तशती की कथा इसमे भी वर्णित है। पहले अध्याय मे महिषासुर के वध का उल्लेख है। महिषासुर के द्वारा जब देवताओं का पराभव हुआ तो वे सब जाकर देवी की अर्चना, वन्दना करते हैं और देवी शस्त्रों से सुसज्जित, सिंह पर सवार होकर रणस्थल में पहुँची और उसने दैत्य-दल का संहार करना आरम्भ कर दिया। बिडालाक्ष महादैत्य को मार डाला फिर महिषासुर अपनी चतुरंगिणी सेना और अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर स्वयं युद्ध-स्थल पर आया। दोनों ओर घमासान युद्ध हुआ और अन्त में देवी ने अपने कृपाण से महिषासुर का वध कर दिया। दूसरे अध्याय मे धूम्रनैन दैत्य के वध का वर्णन है। शुंभ और निशुंभ दैत्यों ने इन्द्रपुरी जीत ली थी और कुबेर का भंडार हस्तगत कर लिया था। देवताओं की प्रार्थना पर भवानी रणस्थल में पहुँची और तभी धूम्रनैन महादैत्य ने उसका मुकाबला किया। अन्त मे

वह भी मारा गया। तीसरे अध्याय में चंड-मुंड नामक दैत्यों का अपने दलबल के साथ देवी के साथ युद्ध और उनके वध का वर्णन है।

चौथे अध्याय में देवी का श्रौणबिन्दु के साथ युद्ध और उसके वध का वर्णन है। श्रौणबिन्दु के नगारा बजाते ही आकाश और पृथ्वी घबराने लगते हैं। भयंकर युद्ध होता है। रक्त की नदी उमड़ पड़ती है। योद्धाओं के अंग-प्रत्यंग कट-कट कर गिरने लगते हैं। श्रौणबिन्दु के रक्त का पान काली करती है और जब वह रक्तहीन हो जाता है तो देवी उसका वध कर देती है। पाँचवे अध्याय मे देवी द्वारा निशुंभ के वध का वर्णन है। निशुंभ के अपूर्व बल को नष्ट करने के लिये शिव ने देवी की सहायता के लिये शक्ति को भेजा। निशुंभ और उसका समस्त दैत्य-दल युद्ध में मारा गया। छठे अध्याय मे शुंभ के वध का वर्णन है। अपने छोटे भाई निशुंभ के वध को सुनकर शुंभ पूरे दलबल के साथ घोर नाद करता हुआ देवी पर आक्रमण करता है किन्तु काफी समय तक युद्ध करने के बाद देवी उसका भी वध कर देती है। इस प्रकार समस्त दानवों के नष्ट हो जाने पर देवपुरी मे हर्ष की लहर दौड़ जाती है। सातवें अध्याय मे देवी की स्तुति की गई है। अनेक-रूपा दुर्गा को उसके विविध गुणो के साथ स्मरण और बार-बार उसको नमस्कार किया गया है। इसमे देवी के विशेषणयुक्त नामों की पुनरुक्ति भी हो गई है। आठवें अध्याय मे चंडी की स्तुति और ग्रंथ का महात्म्य वर्णित है।

ग्रंथ खंड-काव्य के अंतर्गत रखा जा सकता है जिसमें देवासुर संग्राम का क्रमबद्ध वर्णन हुआ है। इसमें सर्वत्र ओजगुण प्रधान व्रज-भाषा का ही प्रयोग है। वीर भावों के निरूपण में तद्भव शब्दावली का व्यवहार किया गया है। यत्र तत्र निरर्थक शब्दों के प्रयोग वीर भाव वर्णन में सहायक हुए हैं। यथा-कागड़ दंग, तागडदंग, झागरदंग, नागडदंग, बागड़दंग, चागड़दंग, गागरदंग, भागरदंग, आदि।

ग्रंथ मे नराज, रसावल, दोहा, भुजंगप्रयात, त टक, चौपाई, मधुभार, रुआमल, रुआल, सोरठा, विजय, मनोहर, वेलिविद्रुम, संगीत, मधुरा, कुलक छन्दों के प्रयोग किये गये हैं। इनमे भुजंगप्रयात छन्द का आधिक्य है। शब्दावली और छन्दों के प्रयोग भावानुकूल हुए हैं। गुरुजी दुर्बल राष्ट्र में क्षत्रिय भावना भरना चाहते थे। वीर साहित्य की रचना का वे यही लक्ष्य मानते थे और चंडीचरित्र मे उन्होंने इसी लक्ष्य की सफल पूर्ति की है।[1]

---

१. Guru Govind Singh wanted to revive the ancient spirit of Kshatriyas and breathe valour into the reign of the old dying nations It was with the exalting nation of his national mission that he regarded heroic literature as a means to this noble end.

वार श्री भगवती जी दी

हस्त लिखित ग्रंथों मे चंडीचरित्र के अनन्तर वार श्री भगवती जी के ५५ छंदो का उल्लेख मिलता है। गुरु रामदास लाइब्रेरी के ग्रंथ संख्या ११८८ में चंडी चरित्र और ११९२ मे ज्ञानप्रबोध के अनन्तर १-५५ छंद, रेफरेंस लाइब्रेरी, अमृतसर के ग्रंथ संख्या ४७।११०६, ३७।७९९, ७२।१५७८, और सेन्ट्रल लाइब्रेरी पटियाला के ग्रंथ संख्या ७४८, ७४९, ७६८, २१८४, २३९९ में भी १-५५ छंद उपलब्ध होते हैं।

ग्रंथ का वर्ण्य विषय मार्कण्डेय पुराण के अन्तर्गत दुर्गा-सप्तशती पर आधारित चंडी कथा है। ग्रंथ के आरम्भ में भगवती स्मरण के अनन्तर गुरु गोविन्द सिंह ने अपने पूर्व के भी गुरुओं का ध्यान किया है। इन्द्र, दुर्गा के पास दैत्यों के उत्पात की सूचना भेजते हैं। देवी उन्हें ढाढ़स देती है और सिंह की सवारी कर युद्धस्थल में पहुँचती है। महिषासुर से घोर युद्ध होता है और अन्त में उसका वध हो जाता है। देवताओं का अपना राज्य वापिस मिला। किन्तु बाद में शुंभ-निशुंभ इन्द्रपुरी को जीत लेते हैं। देवी सूचना पाते ही पुनः युद्धस्थल में पहुँचती है और धूम्रलोचन नामक दैत्य को उसके दल के साथ वध कर डालती है। शुंभ फिर चंड-मुंड को दुर्गा को पकड़ लाने के लिये भेजता है। ढोल, नगाड़ों के साथ दोनों दलों का मुकाबला हुआ। दुर्गा ने चंड-मुंड का धनुष से वध कर दिया तब शुंभ-निशुभ ने सभा-मंत्रणा की और श्रौणबिन्दु को मुकाबले पर भेजा। दुर्गा ने उसे भी ललकारा और खून के परनाले बहने लगे। श्रौणबिन्दु का खून भूमि पर गिरने नहीं दिया और काली ने उसके साथ अगणित दैत्यों का संहार कर डाला। अन्त में दुर्गा ने शुंभ और निशुंभ दैत्यों का वध किया। इन्द्र को राज्यसिंहासन दिलाया और १४ लोकों मे दुर्गा का यश फैल गया।

इस ग्रंथ की गणना भी प्रबंधात्मक खंड-काव्य के अन्तर्गत की जा सकती है क्योंकि इसमें दुर्गा और देवासुर संग्राम का क्रमबद्ध वर्णन हुआ है। सम्पूर्ण ग्रंथ की भाषा पंजाबी है। गुरु गोविन्दसिंह की समस्त रचनाओं में केवल इसी ग्रंथ की भाषा पजाबी मिलती है। इसमें पंजाबी भाषा की सरल और ओजपूर्ण शब्दावली का व्यवहार हुआ है। यत्र-तत्र फारसी शब्दों के भी प्रयोग हुए हैं। रचना पजड़ी

It was in this material spirit that he regarded God as all steel and Shakti and gave expression on his learning desire for new Shakti in both his devotional and secular works and then founded the cult of Shakti

The Poetry of Dasam Granth, p. 53

छंद में लिखी गई है । दोहा, छंद का भी दो-एक स्थलों पर प्रयोग हुआ है ।

चौबीस अवतार

दशमेश जी ने परब्रह्म परमात्मा के चौबीस अवतारों का वर्णन किया है । वे समस्त अवतार ये हैं—मच्छ, कच्छ, नरनारायण, मोहिनी, वाराह, नरसिंह, बावन, परशुराम, ब्रह्मा, रुद्र, जलन्धर, विष्णु, कालपुरुष, अरहंतदेव, मनुराजा, धनवंतर, सूरज, चन्द्र, राम, कृष्ण, अर्जुन, बुध, कलिकी । किन्तु इसमें तीसरा और चौथा अवतार पुराण मे एक मिलता है । अतएव ये अवतार भी श्रीमद्भागवत मे उल्लिखित चौबीस अवतारों से कुछ भिन्नता रखते हैं । इसमे ईश्वर के इन चौबीस अवतारों का उल्लेख है—ब्रह्मा, सनत्कुमार, वाराह, नारद, नर-नारायण, कपिलदेव, अत्रि ऋषि के पुत्र, यज्ञ, ऋषभदेव, पृथु, मत्स्य, कच्छप, मोहिनी, नरसिंह, वामन, परशुराम, व्यास, राम, कृष्ण, बुद्ध, कल्कि ।

ऐसा जान पड़ता है कि पुराणों में २४ अवतारों की संख्या निश्चित नहीं है । इसी कारण गुरु गोविन्दसिंह ने अपने ढंग से इन अवतारो का वर्णन किया है । पुराण में वर्णित सनत्कुमार, नारद, कपिलदेव, अत्रि ऋषि के पुत्र, यज्ञ, ऋषभदेव, पृथु, व्यास आदि अवतारों का उन्होंने वर्णन नहीं किया । इनके अतिरिक्त जलन्धर, अरहंत-देव, धन्वन्तर, मनुराज, सूरज, चन्द्र, अर्जुन इन नये अवतारों का उन्होंने उल्लेख किया है । यहाँ पर इन चौबीस अवतारों का क्रम-बद्ध वर्णन प्रस्तुत किया जा रहा है ।

(१) मच्छ अवतार

गुरु रामदास लाइब्रेरी अमृतसर में उपलब्ध संग्रह ग्रंथ सं० ११८९, ११९३ में भूमिका के साथ मत्स्य अवतार १,—५४ छंदों में वर्णित है । रेफरेन्स लाइब्रेरी, अमृतसर के ग्रंथ संख्या ७२।१५०८, ०५।२०६५, १८७।३३९८ मे भी भूमिका सहित उक्त अवतार का वर्णन १—५४ छंदों मे हुआ है । सेन्ट्रल लाइब्रेरी, पटियाला के ग्रंथ संख्या ७४९, २२२४, २३९९ मे भी उक्त अवतार का वर्णन १—५४ छंदों में मिलता है । मत्स्य अवतार के ५४ छंदों मे आरम्भ के ३८ छंदों मे ब्रह्म के निराकार, सर्वव्यापक, समदर्शी आदि रूपों का वर्णन हुआ है । ईश्वर की प्राप्ति के लिये जंत्र-तंत्र, मंत्र, अन्धविश्वास आदि का खंडन किया गया है । ३९ से ५४ छंदों में भगवान का मत्स्य रूप धारण करके शंखासुर दानव के वध का वर्णन है । शंखासुर और मत्स्य भगवान के बीच युद्ध का वर्णन ओजपूर्ण शैलो में हुआ है । अन्त में उसका वध करके वेदों का उद्धार किया गया । श्रीमद्भागवत में शंखासुर के स्थान पर हयग्रीव[1] असुर का उल्लेख है जिसने वेदों का अपहरण कर लिया था और भगवान ने मत्स्य अवतार धारण करके उसका वध किया और वेदों का उद्धार किया ।

---

१. श्रीमद्भागवत, मत्स्य अवतार, द्वितीय खंड, अध्याय २४, पृष्ठ ७३,७८

भागवत पुराण पर आधारित यह रचना गुरु गोविन्दसिंह जी ने व्रजभाषा में लिखी है। कहीं-कहीं पर खड़ी बोली के शब्द भी प्रयुक्त हो गये हैं। ग्रंथ मुख्यतया चौपईछंद में है। साथ मे भुजंगप्रयात, रसावल, और अन्तिम छंद मे त्रिभंगी का प्रयोग हुआ है।

(२) कच्छ अवतार

गुरु रामदास लाइब्रेरी,अमृतसर के ग्रंथ संख्या ११८९ में इसका वर्णन १–५ छंदों मे हुआ है। रेफरेन्स लाइब्रेरी, अमृतसर के ग्रंथ संख्या ३७-७९९ में भी इसका वर्णन है। सेन्ट्रल लाइब्रेरी, पटियाला के ग्रंथ संख्या २२२४, २५६२, में उक्त अवतार का वर्णन क्रमशः २० छंदों मे हुआ है जो ५ छंदों में होना चाहिये। संभवतः समुद्र-मंथन इसमे सम्मिलित हो गया है। इसके अनन्तर समुद्रमंथन से प्राप्त १४ रत्नों का विवरण और वितरण १४ छदों मे वर्णित है।

कच्छ अवतार के पाँच छन्दों में समुद्रमंथन का प्रसग वर्णित है। विष्णु के परामर्श से मन्दराचल के चारों ओर नागराज को बाँधकर देवता और दैत्य समुद्र का मंथन करने लगे। देवताओं ने वासुकि के पूँछ का भाग और दैत्यों ने सिर का भाग पकड़ा किन्तु जब पर्वत की दीर्घता से देव और दैत्य दोनों काँपने लगे तब भगवान ने कच्छप अवतार धारण करके पर्वत को अपने ऊपर ले लिया। भागवत पुराण में इस अवतार का विस्तारपूर्वक वर्णन मिलता है।[1]

यह रचना व्रज-भाषा में है। दो-एक स्थलों पर अवधी शब्दों के प्रयोग हुए हैं। यह अवतार भुजगप्रयात छंद में वर्णित है।

(३, ४) नर-नारायण अवतार

इन अवतारो का वर्णन सेन्ट्रल लाइब्रेरी, पटियाला के ग्रंथ संख्या २५६२ में मिलता है। इस अवसर पर समुद्रमंथन से निकले हुए अमृत-घट की प्राप्ति के निमित्त देवासुर संग्राम मे प्रस्तुत संघर्ष के निवारणार्थ भगवान नर और नारायण दोनों स्वरूपों को धारण करते हैं। दोनों ओर घमासान युद्ध होता है जिसमें देवता पराजित होते हैं और असुर अमृत-घट को हस्तगत कर लेते हैं। भागवत पुराण में समुद्रमंथन प्रसंग का विस्तारपूर्वक वर्णन मिलता है किन्तु नर-नारायण अवतार का उल्लेख इस प्रसंग में नहीं हुआ है। श्रीमद्भागवत में २४ अवतारों के साथ नर-नारायण अवतार का उल्लेख किया गया है। भगवान ने धर्म की कला नामा स्त्री से जन्म लेकर नर-नारायण नामक ऋषि के रूप में संसार को सुख देने के लिये अत्यन्त कठिन तप किया।[2]

---

१. श्रीमद्भागवत, कच्छप अवतार, द्वितीय खंड, अध्याय ७, पृष्ठ १९,२०

२. श्रीमद्भागवत, प्रथम खंड, तीसरा अध्याय, पृष्ठ ७

गुरु गोविन्दसिंह द्वारा उक्त अवतार नर-नारायण, अलग-अलग रूप में वर्णित है। यह रचना बीस छंदों मे है। इसमें मुख्य रूप से तोटक और भुजंगप्रयात छंदों के प्रयोग हुए हैं। रचना की भाषा ब्रज है।

(५) मोहिनी अवतार

इस अवतार का वर्णन सेन्ट्रल लाइब्रेरी, पटियाला के ग्रंथ संख्या २२२४,२५६२ में उपलब्ध होता है। यह रचना कुल आठ छंदों में वर्णित है। श्रीमद्भागवत में उल्लेख है कि समुद्रमंथन मे प्राप्त अमृतघट को असुर देवों को पराजित करके जब अपने हाथ में ले लेते हैं तो आपस में अमृतपान के लिये लड़ने लगते हैं। तभी देवताओं को अमृत दिलाने के लिये भगवान मोहिनी रूप स्त्री का अवतार धारण करते हैं। समस्त दैत्य उसके रूप से आकृष्ट होकर अमृतघट उसी रमणी के हाथ में सौंप देते हैं और वह चतुरता से सम्पूर्ण अमृत का पान सुरों को करा देती है। दैत्य वचनबद्ध थे और उसके अतुलनीय रूप के आकर्षण के कारण चुप रहते हैं।[१] दशमेश जी ने चार छंदों मे मोहिनी के प्रेममय रूप का वर्णन किया है और शेष चार छंदों मे समुद्रमंथन से प्राप्त रत्नों का वितरण वर्णित है। कल्पवृक्ष, लक्ष्मी को स्वयं भगवान ने अपने लिये, विष को शिव ने, रंभा अप्सरा को सब लोगों ने और कामधेनु को ऋषियो ने ले लिया, अन्य सभी रत्नों को मोहिनी रूप भगवान ने बाँटकर देवों और दानवों को शान्त कर दिया। गुरुजी के इस अवतार में अमृतघट संबंधी संघर्ष का कोई उल्लेख नहीं मिलता।

इस रचना में मुख्य रूप से भुजंगप्रयात छंद का प्रयोग हुआ है। अन्य प्रयुक्त छंद, चौपाई और दोहा हैं। सभी छंद परिष्कृत व्रजभाषा मे हैं।

(६) वाराह अवतार

इस अवतार का वर्णन सेंट्रल लाइब्रेरी, पटियाला के ग्रथ संख्या २५६२ में मिलता है। यह कुल १४ छंदों में वर्णित है। भागवत तथा शिवपुराण में वारह अवतार के सम्बन्ध में उल्लेख मिलता है कि जब पृथ्वी रसातल को चली गई तो भगवान ने वाराह अवतार लेकर उसे वहाँ से बाहर निकाला और तभी हिरण्याक्ष नामक राक्षस ने उनसे युद्ध किया और मारा गया।[२] दशमेश जी ने इस अवतार-वर्णन में हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष दो राक्षसों का भगवान वाराह के साथ युद्ध का वर्णन किया है। दोनों वीर बडे तेजस्वी थे और आठ दिन, आठ रात भगवान वाराह के साथ वीरतापूर्वक युद्ध करते रहे और अन्त में मारे गये। भगवान पृथ्वी और वेदों को अपनी दाढ़ से पकड़ कर बाहर निकाल लाये।

---

१. श्रीमद्भागवत, द्वितीय खंड नवाँ अध्याय, पृष्ठ २७, २९

२. श्रीमद्भागवत, प्रथम खंड १३ वाँ अध्याय, पृष्ठ १४६, १५०

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि भागवत पुराण की अपेक्षा गुरु जी ने इस अवतार के वर्णन में कुछ नवीनता रखी है। सम्पूर्ण अवतार भुजंगप्रयात छंद में वर्णित है। सर्वत्र व्रजभाषा का प्रयोग है। युद्ध वर्णन मे ओजपूर्ण शैली का सफल निर्वाह है।

(७) नरसिंह अवतार

दशमेश जी रचित चौबीस अवतार के अन्तर्गत इस अवतार का वर्णन सेन्ट्रल लाइब्रेरी, पटियाला के संग्रह ग्रंथ संख्या २२२४ और २५६२ में मिलता है। यह अवतार कुल ४२ छंदों में वर्णित है।

श्रीमद्भागवत तथा विष्णुपुराण में इस अवतार का विस्तारपूर्वक वर्णन मिलता है। महादैत्य हिरण्यकश्यप अत्यन्त बलवान और तेजस्वी राजा था और अपने पुत्र प्रह्लाद को ईश्वर-भक्ति से विमुख करने के लिये उसको अनेक प्रकार से प्रताड़ित करने लगा। अन्त मे जब वह प्रह्लाद का वध करना चाहता है तभी भगवान ने नरसिंह का अवतार लेकर हिरण्यकश्यप का ही वध कर दिया।[1] गुरु जी ने इस अवतार का वर्णन पुराण की कथा के अनुसार ही किया है। राजा हिरण्यकश्यप अपने पुत्र प्रह्लाद द्वारा पाठशाला में भगवान के गोपाल नाम का उच्चारण सुनकर क्रुद्ध हो जाता है। बाद में जब उसका वध करने का उपक्रम होता है तो भगवान नरसिंह अवतरित होते हैं। सभी दानव डर कर भाग जाते हैं। केवल हिरण्यकश्यप हाथ में गदा लेकर उनका सामना करता है। दोनों में आठ दिन और आठ रात तक अनेक प्रकार से घनघोर युद्ध होता है और अन्त में वह पुराने कटे वृक्ष की भाँति पृथ्वी पर गिर पड़ता है। तदनन्तर प्रह्लाद को राजा बना और दुष्टों का हनन करके उनकी ज्योति महा-ज्योति में लीन हो जाती है।

इस रचना में भुजंगप्रयात, तोटक, पाधरी छंदों के अधिक प्रयोग हुए हैं। दोहा, चौपई, दोधक, तोमर, वेलि विद्रुम अन्य छंदों के भी यत्र तत्र प्रयोग हुए हैं। ओज-गुण प्रधान व्रजभाषा का सर्वत्र प्रयोग हुआ है।

(८) वामन अवतार

इस अवतार का वर्णन सेन्ट्रल लाइब्रेरी, पटियाला में उपलब्ध ग्रंथ संख्या २२२४ और २५६२ में मिलता है। सम्पूर्ण अवतार २७ छंदों में वर्णित है।

श्रीमद्भागवत में वामनावतार का सविस्तार उल्लेख हुआ है। दैत्यराज बलि के वैभव को समाप्त करने के लिये भगवान ने अदिति के गर्भ से उत्पन्न होकर 'वामन अवतार' धारण किया। तत्पश्चात् राजा बलि के पास पहुँच कर भिक्षा में उनसे तीन

---

१. वही, आठवाँ अध्याय, पृष्ठ ५२१, ५३६

डग पृथ्वी को दान में माँग लिया, फिर अपना विराट रूप धारण करके समस्त भूमंडल, आकाश मडल को दो ही डग में नाप कर बलि को वैभवहीन कर दिया।[1] गुरु गोविन्दसिंह ने इसी कथा को संक्षेप में कुछ मौलिक भिन्नता के साथ वर्णन किया है। राजा बलि ने जब इन्द्रपुरी को भी जीत लिया तो समस्त देवताओं ने भगवान की आराधना की। भगवान वामन अवतार धारण करके बलि की सभा में पहुँचते हैं। राजा बलि ने उनकी काफी सेवा-सुश्रुषा, अर्चना-वन्दना की और दान माँगने के लिये प्रेरित किया। वामन ने केवल अढ़ाई पैर भूमि माँगी, दैत्यों के पुरोहित शुक्राचार्य ने इस भेद को समझ लिया और राजा को ऐसा दान न देने के लिये आग्रह किया। किन्तु बलि ने यह कह कर कि भगवान जैसा भिक्षु फिर इस द्वार पर नहीं आयेगा, शुक्राचार्य के आग्रह की उपेक्षा कर दी। इस पर शुक्राचार्य लघु रूप धारण कर जल के कमंडल में बैठ गये और जब राजा ने संकल्प के लिये कमंडल से जल निकालना चाहा तो जल नहीं निकला। राजा ने एक तिनका कमंडल में डाला जिसके कारण शुक्राचार्य एक नेत्र-विहीन हो गये। नेत्र से जो जल निकला उसे अपने हाथ में लेकर नीचे नहीं गिरने दिया। फिर भगवान वामन ने अपना विराट् स्वरूप बढ़ा कर सब लोगों को विस्मित कर दिया। उन्होंने एक पैर से पाताल और दूसरे से आकाश नाप लिया। अन्त में अपूर्व दान से प्रसन्न होकर भगवान ने सदैव राजा बलि का द्वारपाल होना स्वीकार किया।

उक्त कथा में शुक्राचार्य का लघु रूप संबंधी प्रसंग का वर्णन पुराण में नहीं है। उसके अनुसार जब बलि राजा शुक्राचार्य की उपेक्षा करते हैं तो वे केवल उसे वैभव-हीनता का शाप देते हैं। संकल्प के जल में अवरोध उपस्थित करने की घटना संभवतः कवि के मस्तिष्क की मौलिक उपज जान पड़ती है।

इस रचना में नराज, भुजंगप्रयात, तोमर छंदों के अधिक प्रयोग हुए हैं। दोहा, चौपई, का भी यत्र तत्र प्रयोग है। रचना की ब्रजभाषा प्रसाद गुणयुक्त है।

(९) परशुराम अवतार

गुरु गोविन्दसिंह द्वारा वर्णित चौबीस अवतारों में इस अवतार का वर्णन सेंट्रल लाइब्रेरी, पटियाला के संग्रह ग्रंथ २२२४ और २५६२ में मिलता है। यह अवतार ३५ छदों में वर्णित है।

श्रीमद्भागवत पुराण में जमदग्नि ऋषि और रेणुका के पुत्र परशुराम और सहस्रार्जुन तथा अन्य युद्धों का वर्णन विस्तारपूर्वक मिलता है। राजा सहस्रार्जुन अपने काल का सबसे अधिक बलशाली राजा था। उसके अन्याय के प्रतिशोध के लिये परशुराम ने उसका वध कर दिया। उसके पुत्रों ने परशुराम के पिता जमदग्नि का

1. श्रीमद्भागवत, द्वितीय खंड, १८, १९ अध्याय, पृष्ठ ५५–७३

सिर काट लिया। इस कारण उन्होंने उन सबको मार कर इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रीयविहीन किया।[1] गुरु गोविंदसिंह ने परशुराम सहस्रार्जुन युद्ध की कथा को पुराण से कुछ भिन्न रूप में वर्णन किया है। इन्द्र आदि समस्त देवता राजा सहस्रार्जुन से पीड़ित होकर भगवान विष्णु के पास पहुँच कर उनकी आराधना करते हैं। भगवान, जमदग्नि ऋषि और रेणुका के पुत्र रूप में अवतार लेते हैं। सहस्रार्जुन ने जमदग्नि की गाय ले ली और उनका वध कर दिया। इस पर परशुराम, उससे युद्ध करने को तत्पर हुए। अत्यन्त घोर युद्ध किया। परशुराम ने सहस्रार्जुन का वध कर दिया। अन्त मे परशुराम ने अपने क्रोध के कारण इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रीयविहीन किया।

दशमेश जी ने उक्त अवतार-वर्णन मे सहस्रार्जुन द्वारा गाय के छीने जाने और जमदग्नि के वध के उपरोक्त परशुराम सहस्रार्जुन युद्ध का वर्णन किया है किन्तु भागवत में जैसा ऊपर स्पष्ट किया गया है परशुराम ने केवल गाय के छीनने पर ही सहस्रार्जुन का वध कर डाला और बाद में उसके पुत्रों द्वारा अपने पिता का वध किये जाने पर उनको मारा और इक्कीस बार पृथ्वी से समस्त क्षत्रियों का विनाश किया। पुराण और गुरु जी की इस कथा में यह भिन्नता द्रष्टव्य है।

इस रचना में रसावल, नराज, भुजंगप्रयात, चौपई छंदों के प्रयोग हुए हैं। रचना व्रजभाषा में है और युद्ध-वर्णन में ओज गुण की प्रधानता है। काव्य-शैली के अनुसार यह रचना खंड-काव्य के अन्तर्गत रखी जा सकती है जिसमें परशुराम-सहस्रार्जुन युद्ध का विधिवत वर्णन मिलता है।

(१०) ब्रह्मावतार

गुरु गोविन्द सिंह रचित ब्रह्मा-अवतार का वर्णन सेन्ट्रल लाइब्रेरी, पटियाला के हस्तलिखित संग्रह ग्रंथ संख्या २२२४ और २५६२ में मिलता है। यह अवतार ७ छंदों में वर्णित है।

श्रीमद्भागवत में उल्लेख मिलता है कि भगवान विष्णु की नाभि-कमल से ब्रह्मा उत्पन्न हुए। जिनके अगों से संसार का विस्तार हुआ। उनके असंख्य चरण, जंघायें, भुजाएँ और मुख हैं। असंख्य मस्तक, नेत्र, नासिकाएँ हैं और उस अद्भुत स्वरूप को योगी ज्ञान-दृष्टि से देखते हैं।[2] श्री दशमेश ने इस अवतार के प्रसंग में वर्णन किया है कि ब्रह्मा सिष्टिकर्ता है और जब जब वेद का नाश होता है भगवान ब्रह्मा के रूप में प्रकट होते हैं। उनके द्वारा वेद-शास्त्र, स्मृति, संसार के नाना पंथ आदि का

---

१. श्रीमद्भागवत, द्वितीय खंड, अध्याय १५, १६, पृष्ठ १२३, १२९

२. श्रीमद्भागवत, प्रथम खंड, अध्याय ३, पृष्ठ ७

काट कर उसे हवनकुंड में भस्म कर दिया। अन्त में ब्रह्मा आदि देवताओं ने शिवजी से दक्ष आदि के जीवन के लिये प्रार्थना की, तब शिवजी ने प्रसन्न होकर यज्ञ सम्पन्न करा दिया।[1]

इस अवतार के आरंभिक ३९ छंदों में तोटक, पाधर, रसावल, रुआमल छंदों की प्रधानता है और बाद के ५० छंदों में चौपई, दोहा, तोटक, नराज छन्दों के अधिक प्रयोग हुए हैं। दोनों ही प्रसंगों के वर्णनों में ओजगुण की प्रधानता है। कुछ स्थलों पर अवधी के शब्दों का प्रयोग हुआ है। काव्य-शैली के अनुसार यह रचना खंड काव्य के अन्तर्गत रखी जा सकती है जिसमें दक्षप्रजापति का प्रकरण मुख्य है।

(१२) जलन्धर अवतार

इस अवतार का वर्णन सेन्ट्रल लाइब्रेरी, पटियाला के हस्तलिखित संग्रह-ग्रंथ संख्या २२२४ और २५६२ में मिलता है। यह अवतार २८ छंदो में वर्णित है।

गुरुजी द्वारा वर्णित इस अवतार का वर्ण्य-विषय इस प्रकार है। पार्वतीजी ने पिता के यज्ञकुण्ड में भस्म होने के उपरान्त हिमगिरिराज के यहाँ पुनर्जन्म लिया और शिवजी की आराधना करने लगी। शिवजी जब सती को विवाह करके घर ले आये तो जालन्धर नामक दैत्यराज ने एक दूत भेजकर सती को अपने यहाँ भेजने अथवा युद्ध करने का सन्देश भेजा। इस प्रसंग में एक अवान्तर कथा वर्णित है कि भगवान विष्णु की पत्नी ने एक दिन बैंगन बनाया था तभी नारद आ गये और बैंगन खाने के लिये मागा किन्तु जूठा हो जाने के कारण उनको नहीं दिया। तब नारद ने उन्हें शाप दिया कि बृन्दा नामक राक्षसी का जन्म लेकर जलन्धर की पत्नी बने फिर उसने शाप के अनुरूप धूमकेश दानव के यहां जन्म लिया। वह जालन्धर दैत्यराज की पत्नी बनेगी इस कारण पतिव्रत-धर्म के रक्षार्थ भगवान ने जालन्धर का अवतार लिया। शिवजी ने जब इसी दैत्यराज को अपनी पत्नी नहीं भेजी तो कई महीने तक दोनों का परस्पर घोर युद्ध हुआ। शिव ने शक्ति का ध्यान किया और दैत्यराज का वध कर डाला। अन्त में कथा की भूल के लिये कवि ने कवि-समुदाय से हंसी न करने की प्रार्थना की है।

यह रचना दोहा, चौपई, तोटक, भुजंग प्रयात छंदों में वर्णित है। ब्रज भाषा का सर्वत्र प्रयोग हुआ है। युद्ध के वर्णन के प्रसंग की शब्दावली ओज-पूर्ण प्रधान है।

(१३) विष्णु अवतार

यह अवतार सेन्ट्रल लाइब्रेरी, पटियाला के हस्तलिखित संग्रह ग्रंथ सं० २२२४ और २५६२ में केवल ५ छंदों में वर्णित है।

---

१. श्रीमद्भागवत, प्रथम खंड, पृष्ठ २२७, २४८

इस अवतार का वर्ण्य-विषय संक्षेप में इस प्रकार है। पृथ्वी जब पापभार से व्याकुल हो गई तो उसने काल-पुरुष भगवान से पुकार की। तब समस्त देवों का अंश लेकर अदिति के गृह जाकर विष्णु ने अवतार धारण किया। उन्होंने असुरों का संहार किया और पृथ्वी को पाप के भार से मुक्त किया। अन्त में कवि ने स्वयं स्वीकार किया है कि सम्पूर्ण कथा के कहने में एक विष्णु-प्रबन्ध बन जायेगा इसलिये कथा का अति संक्षेप में वर्णन किया गया है। यह अवतार व्रजभाषा में चार चौपई और एक दोहा मे वर्णित है।

(१४) कालपुरुष अवतार

इस अवतार का वर्णन सेन्ट्रल लाइब्रेरी, पटियाला के हस्तलिखित संग्रह-ग्रंथ संख्या २२२४ और २५६२ में किया गया है। यह अवतार केवल सात छंदों में वर्णि.. है। गुरु गोविन्द सिंह ने काल-पुरुष को सर्वोपरि माना है और स्पष्ट किया है कि उन्हीं के शरीर में करोड़ों विष्णु, महेश, ब्रह्मा, इन्द्र आदि समाये हुए हैं। समुद्र के शेषनाग की शैया पर वही विष्णु शयन करते हैं और लक्ष्मी उनके पैर दबाती हैं। तभी, मधु-कैटभ नामक दो दैत्य उनके कान की मैल से उत्पन्न हुए और उनके वध के लिये भगवान पाँच हजार वर्षों तक युद्ध करते रहे। उस समय काल-पुरुष ने उनकी सहायता की और उन्होंने क्रोध करके दोनों दैत्यों का वध कर डाला। इस प्रकार विष्णु सन्त-समूह को सुख देने के लिये और दानवों के संहार के लिये अवतार धारण करते हैं। यह रचना तीन दोहों और चार चौपइयों मे वर्णित है। इसमें व्रज भाषा का प्रयोग हुआ है।

(१५) अरहंतदेव अवतार

यह अवतार सेण्ट्रल लाइब्रेरी, पटियाला के संग्रह ग्रंथ संख्या २२२४ और २५६२ में वर्णित है। सम्पूर्ण अवतार २० छंदों में लिपिबद्ध मिलता है।

कथा का वर्ण्य विषय इस प्रकार है। जब दानवों ने यज्ञ किया तो समस्त सुरपुर काँपने लगा और तभी भगवान विष्णु ने काल-पुरुष का ध्यान किया। उनकी आज्ञानुसार असुरों का संहार करने के लिये उन्होंने अरहंत देव का अवतार लिया और पृथ्वी पर श्रावक मत का प्रचार एवं असुरों को शिखाहीन कर दिया। जिसके कारण उन पर मन्त्रों का उल्टा प्रभाव पड़ता है। सबको हिंसा-मार्ग से हटा दिया क्योंकि बिना जीव-बलि के यज्ञ संभव नहीं। इसलिए यज्ञ होना बन्द हो गया। उन्होंने दस हजार वर्ष तक राज्य किया और संसार के सब धर्मों-कर्मों को मिटा दिया। अंत में असुरों की शक्ति क्षीण हो गई और देवराज का शोक मिट गया। इस प्रकार सबको धर्म से विरत करके वे अमरावती में जाकर विराजमान हुए।

यह रचना दोहा और चौपई छंदों में वर्णित है। व्रजभाषा का सर्वत्र प्रयोग हुआ है।

(१६) मनु अवतार

यह अवतार सेन्ट्रल लाइब्रेरी पटियाला के संग्रह-ग्रंथ संख्या २२२४ और २५६२ में वर्णित है। सम्पूर्ण अवतार केवल आठ छंदों में वर्णित है।

श्रावक धर्म की व्यापकता के कारण जब सब लोग धर्म-कर्म से विरत होकर हरि-भक्ति से विमुख हो गये तब काल-पुरुष की आज्ञा से भगवान ने मनु राजा का अवतार लिया और मनुस्मृति का संसार में प्रचार किया और लोगों को पापकर्म से हटाकर सन्मार्ग पर लगाया। लोगों में धर्म-कर्म के प्रति प्रेम उत्पन्न किया और श्रावक धर्म का नाश करके उन्होंने संसार में सुयश प्राप्त किया।

श्रीमद्भागवत पुराण में १४ मनुओं का वर्णन मिलता है। ये सभी मनुभगवान के आधीन रहकर संसार मे धर्म का प्रचार करते हैं।[1] यह रचना चौपई और दोहा छंदों में वर्णित है। इन छंदों मे व्रजभाषा का प्रयोग हुआ है। दो स्थलो पर अवधी बोली के शब्दों के प्रयोग हुए हैं।

(१७) धनवंतरि अवतार

इस अवतार का वर्णन सेन्ट्रल लाइब्रेरी, पटियाला के हस्तलिखित संग्रह-ग्रंथ संख्या २२२४ और २५६२ में मिलता है। यह अवतार भी केवल आठ छंदों में वर्णित है।

संसार में जब सभी लोग धनवान हो गये तो वे नाना प्रकार के पकवान आदि खाने से रोगी होने लगे। इस कारण प्रजा के शोकातुर होने पर भगवान विष्णु को काल-पुरुष ने धनवंतरि अवतार लेकर आयुर्वेद का प्रचार करने का आदेश दिया। तब देवों ने समुद्र-मंथन करके धनवंतरि को प्रजा के हित के लिये बाहर निकाला। उन्होंने आयुर्वेद का प्रचार करके रोगों का विनाश किया। अनेक प्रकार की औषधियों को बनाकर वैद्यकशास्त्र को प्रकट किया। अंत में अपना समय पूरा करके तक्षक द्वारा काटे जाने पर सुरपुर को चले गये।

उक्त अवतार में गुरु गोविन्दसिंह द्वारा वर्णित कथा का उल्लेख श्रीमद्भागवत पुराण में समुद्र-मंथन के प्रसंग में मिलता है। समुद्र-मंथन करते समय एक अद्भुत पुरुष प्रकट हुआ जिसकी भुजायें लम्बी तथा पुष्ट थीं। शंख के समान कंठ, अरुण नयन, श्याम वर्ण और तरुण अवस्था थी। वह माला पहने हुए सभी अलंकारों से सुसज्जित था। सिंह के समान उसका पराक्रम था। अमृत से भरा हुआ कलश लिये

---

१. श्रीमद्भागवत, द्वितीय खंड, १४ वाँ अध्याय, पृष्ठ ४४-४५

हुए था। ऐसा जान पड़ता था कि साक्षात विष्णु के अंश से प्रकट हुआ हो। उस महापुरुष का नाम धनवन्तरि है जिन्होंने वैद्यक का प्रचार किया।[1] अतः स्पष्ट है कि गुरुजी द्वारा वर्णित यह अवतार भागवत पुराण पर आधारित है। यह रचना ब्रजभाषा मे चौपई और दोहा छन्दों में वर्णित है।

(१८) सूरज अवतार

यह अवतार सेन्ट्रल लाइब्रेरी पटियाला के हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या २२२४ और २५६२ में २७ छन्दों में वर्णित है।

जब दिति के पुत्रों का बल अत्यधिक बढ़ गया तो काल-पुरुष की आज्ञानुसार भगवान विष्णु ने सूर्य-अवतार धारण किया। उन्होंने सब बलवान असुरों को मार डाला और पृथ्वी से अंधकार को दूर किया। लोग प्रातः उठ कर गायत्री, सन्ध्या का जाप करने लगे। यज्ञ, वेद, व्याकरण में लीन हुए और धर्म की स्थापना हुई। कालान्तर में असुरों का बल बढ़ा और उन्होंने उसका रथ रोक लिया। तब सूर्यदेव ने अत्यन्त क्रोध करके दलबल के साथ असुरों से युद्ध किया। घमासान युद्ध के अनन्तर उन्होंने समस्त दैत्य-सेना का संहार किया और असुरेश का वध कर दिया।

इस रचना मे निराज, अर्धनिराज, दोहा, चौपई, अड़िल, मधुरधुन, तोटक, केलिविद्रुम छंदों का प्रयोग हुआ है। इसमे अनुप्रास की छटा अनेक स्थलों पर मिलती है। सर्वत्र ब्रज भाषा का प्रयोग है। युद्ध-वर्णन के प्रसंग मे ओजगुण-प्रधान शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

(१९) चन्द्र अवतार—

यह अवतार सेन्ट्रल लाइब्रेरी पटियाला के हस्तलिखित ग्रंथ संख्या २२२४ और २५६२ मे १९ छंदों मे वर्णित है।

इस अवतार-वर्णन के आरम्भ में दशमेश जी ने पुरानी बात का वर्णन करके कवि-कुल को रिझाने का उल्लेख किया है। सूर्य के ताप के कारण किसी स्थान पर खेती न होने से लोग भूखों मरने लगे। पत्नी ने पति की सेवा करना बंद कर दिया और वह काम-विरत हो गई। गुरु की पूजा समाप्त हो गई। तब काल-पुरुष की आज्ञा से भगवान विष्णु ने चन्द्र का अवतार धारण किया। उन्होंने स्त्रियों को अपने काम-बाण से विह्वल किया और वे अपने पतियों की सेवा करने लगीं। सती होने लगी। लोग सुखी हो गये। जब चन्द्रदेव अपने अपार सौंदर्य के कारण गर्व मे भर गये और उन्होने गौतम और अम्बर ऋषियों की पत्नियों से प्रेम-संबंध स्थापित किया तब ऋषियों ने शाप देकर उन्हें कलङ्कित कर दिया और उनके शाप के कारण ही

1. श्रीमद्भागवत, द्वितीय खंड, आठवाँ अध्याय, पृष्ठ २६, २७

वह घटने-बढ़ने लगा। चन्द्रदेव अत्यन्त लज्जित हुए और उनका सब गर्व नष्ट हो गया। उन्होंने घोर तप किया और कालपुरुष ने द्रवीभूत होकर उनको शाप से मुक्त किया।

(२०) रामावतार—

राम-अवतार का वर्णन गुरु रामदास लाइब्रेरी, अमृतसर के हस्तलिखित संग्रह-ग्रंथ संख्या ११८९, सेन्ट्रल लाइब्रेरी, पटियाला के संग्रह-ग्रंथ संख्या ७४९, ७५६, २२२४ और २५६२ में मिलती है। सम्पूर्ण अवतार ८६४ छंदों में वर्णित है।

दशमेश जी ने रामावतार का वर्णन कई प्रकरणों में विभाजित किया है। आरम्भ में रामावतार के मूलभूत कारण को स्पष्ट किया है। असुरों का प्रभाव बढ़ने पर सब देवता क्षीरसिन्धु में ब्रह्मा के साथ विष्णु के पास गये और उनसे राम का अवतार लेने की प्रार्थना की। यहाँ पर रघुवंश का बहुत संक्षेप में कवि ने वर्णन किया है। रघु के अनन्तर अज और अज के बाद दशरथ ने अवध मे राज्य किया। तदनन्तर भगवान ने दशरथ का पुत्र राम बनकर अवतार लिया। राजा दशरथ का कौशल्या, सुमित्रा ने स्वयंवर में वरण किया किंतु उनसे कोई पुत्र न होने के कारण राजा दशरथ ने कैकेयी से विवाह किया, जिसने आरम्भ में ही देव-दानव-युद्ध में दशरथ के सारथी के मरने पर स्वयं रथ चला कर अपनी वीरता के उपलक्ष में राजा दशरथ से दो वर माँग लिये। एक बार मृगया में शिकार के भ्रम में, जल लेने के लिये आये हुए श्रवणकुमार पर दशरथ ने तीर चला दिया जिससे उसकी तत्काल मृत्यु हो गई और प्यासे अन्धे माता-पिता ने मरने के पूर्व दशरथ को शाप दिया कि हमारे सदृश तुम भी पुत्र-वियोग में प्राण छोड़ोगे। तदनन्तर दशरथ ने विरक्त होना चाहा किन्तु आकाशवाणी से रामावतार की सूचना पाकर कुछ स्वस्थ हुए और लौटकर यज्ञ किया। अन्त में यज्ञपुरुष के द्वारा खीर का पात्र मिला जिसे उन्होंने तीनों रानियों को खिलाया और तेरह महीने बाद उनसे राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न चार पुत्र हुए, जिनमें राम सबसे बड़े थे। राजा ने उन चारों को शस्त्र-अस्त्र की उत्तम शिक्षा दिलाई। तभी विश्वामित्र राम और लक्ष्मण को यज्ञ के रक्षार्थ साथ में ले गये। राम ने ताडका राक्षसी को मारा। बाद में मारीच और सुबाहु के साथ अनेक राक्षसों का भी वध किया।

दूसरा प्रकरण सीता-स्वयंवर का है। राम विश्वामित्र के साथ राजा जनक के यहाँ मिथिला पहुँचे। सीता उनके अपूर्व सौंदर्य को देखकर मोहित हो गई। राम ने सभी राजाओं के बीच उस धनुष के टुकड़े कर दिये जिसे कोई भी राजा उठा भी न सका था। राम, सीता को लेकर जब जाने लगे तो परशुराम ने आकर राम से मुठभेड़ की। दोनों ओर से घोर युद्ध हुआ। विवश होकर परशुराम को तब राम ने अपना बल दिखाया। फिर भी परशुराम न माने और धनुष देकर, प्रत्यंचा उतार कर पुनः

चढ़ाने को कहा। जब राम ने उसके दो टुकड़े कर दिये तब परशुराम को उनके अवतार होने का आभास हुआ और वह प्रेम पूर्वक मिले।

तीसरा प्रकरण अवधप्रवेश का है। राजा दशरथ राम की विजय का समाचार सुनकर अत्यन्त हर्षमग्न हो गये और उनका सजधज के साथ स्वागत किया। अन्य पुत्रों का भी विवाह उसी समय हो गया और सारे नगर में अत्यन्त उल्लास भर गया। राजा दशरथ ने अश्वमेध-यज्ञ को सफलतापूर्वक सम्पन्न किया। कालान्तर में राम के राज्याभिषेक की तैयारीआरम्भ हुई। तभी दासी मंथरा ने कैकेयी को उसके दो वरों का स्मरण कराया। फलस्वरूप कैकेयी ने राजा दशरथ से—भरतको राज्याभिषेक और राम को १४ वर्ष का वनवास संबंधी दो वर मांगे। इस पर दशरथ ने उसकी अनेक प्रकार से भर्त्सना की किन्तु विवश होकर राम के पास यह सूचना गुरु वशिष्ठ द्वारा भेजी। राम जब माताओं से बिदा लेकर वन गये तो सीता-लक्ष्मण भी उनके साथ वन चल दिये।

चौथा प्रकरण रामवनवास का है। आरम्भ में कौशल्या के विरह-वात्सल्य का वर्णन है। दशरथ ने प्राण त्याग दिया। भरत यह सूचना पाकर तुरन्त लौटे और कैकेयी को कटुवचनों द्वारा लज्जित किया। वे राम को लौटा लाने के लिये वन में गये किन्तु राम द्वारा अनेक प्रकार से मना किये जाने पर केवल उनकी खडाऊँ लेकर लौट आये और उन खड़ाऊँ को ही राजसिंहासन पर रख दिया। राम ने वन में सर्वप्रथम विराध राक्षस का अन्य राक्षसों के साथ वध किया।

पाँचवाँ प्रकरण वन-प्रवेश का है। विराध को मार कर राम अगस्त्य मुनि के आश्रम में गये जहाँ पर उन्हें बाणों की भेंट मिली और उन्होंने आश्रम के शत्रु-राक्षसों का वध किया। तभी शूर्पणखा राक्षसी राम के सौंदर्य पर मोहित हो गई और राम ने अपने को विवाहित बताकर उसे लक्ष्मण के पास भेज दिया। लक्ष्मण ने भी जब उसे नहीं वरा तो वह अपनी नाक कटाकर अर्थात अपमानित होकर लौट गई।

छठा प्रकरण खर-दूषण दैत्यों के युद्ध का है। शूर्पणखा ने जब अपने अपमान की सूचना रावण को दी तो उसने खर और दूषण नामक दो दैत्यों को प्रतिशोध के लिये भेजा परन्तु वे घोर युद्ध के उपरान्त राम और लक्ष्मण द्वारा मारे गये। सातवाँ प्रकरण सीता-हरण का है। रावण प्रतिशोध के कारण मारीच के घर गया और रावण के क्रोध करने पर वह विवश होकर सोने का मृग बनकर राम् की कुटी के सामने से निकला। सीता ने स्वर्णमृग के लिये आग्रह किया। राम ने उसे दानवीमाया बताई किन्तु सीता की लालसा देखकर उसे मारने के लिये उसके पीछे गये। वह माया-मृग जब राम को घने जंगल में ले गया तो लक्ष्मण का नाम लेकर जोर से चिल्लाया—'लक्ष्मण मुझे बचाओ'। लक्ष्मण, ने कुटी के चारों ओर एक रेखा खींची और सीता को उससे

बाहर न निकलने का आदेश देकर चले गये। तभी रावण ब्राह्मण का भेष धारण कर भिक्षा माँगने आया और रेखा से बँधी भिक्षा न लेने का बहाना करके उसने रेखा को सीता से मिटवा दिया और तुरन्त सीता को हस्तगत कर आकाशमार्ग में उड़ गया।

आठवाँ प्रकरण सीता-खोज का है। इसमें राम ने सीता के वियोग में अपनी व्यग्रता प्रकट की है। किन्तु लक्ष्मण ने उन्हें सान्त्वना दी। जटायु ने रावण को मार्ग में रोका और तुमुल युद्ध में अपने सब पंख कटवा दिये। जब राम जटायु से मिलता है तो उसने उन्हें रावण द्वारा आकाशमार्ग से सीता के हरे जाने की सूचना दी। तभी मार्ग मे हनुमान और सुग्रीव से मित्रता हुई और उन्होंने राम की सहायता का वचन दिया। फलस्वरूप राम ने सुग्रीव के दुष्ट भाई का वध किया।

नवाँ प्रकरण 'हनुमान द्वारा सीता की खोज' का है। हनुमान राम की अंगूठी लेकर लंका मे सीता के पास पहुँचे। उन्होंने लंका को जलाकर रावण के पुत्र अक्षय-कुमार का वध किया और अशोकवाटिका को नष्ट कर दिया। हनुमान ने लौटकर जब यह सूचना राम को दी तो उनके साथ एक बड़ी सेना सागर पार कर लंका मे पहुँची। रावण ने धूम्राक्ष, अकंपन और जाबमाली आदि के साथ राक्षसी सेना मुका-बले पर भेजी। किन्तु अंगद की सेना ने सबका नाश कर दिया। तब राम ने अंगद को दूत बनाकर रावण के पास सीता को लौटा देने का संदेश भेजा। जब रावण ने अपना गर्व स्थिर रखा तब अंगद ने उनकी सभा में अपना पैर जमा दिया और कोई योद्धा उनके पैर को न डिगा सका। अंगद रावण के भाई बिभीषण को लेकर राम के पास लौट आये। मन्दोदरी ने भी रावण को अनेक प्रकार से समझाया किन्तु रावण न माना। नारान्तक और देवान्तक दैत्यों ने घोर युद्ध किया परन्तु वे मारे गये।

दसवाँ प्रकरण प्रहस्त-युद्ध का है। रावण का मन्त्री प्रहस्त अनगिनत सेना लेकर युद्ध करने आया और नल द्वारा मारा गया। बाद मे रावणके दूतों ने कुंभकरण को जगाया। वह पानी की सात हजार गागरों से मुँह हाथ धो, मासादि खा और मदिरा पीकर युद्ध-भूमि में पहुँचा। घोर युद्ध हुआ और सुग्रीव ने एक पर्वत उठाकर उस पर पटक दिया जिससे उसकी जाँघे टूट गईं और राम ने तीरों की वर्षा करके उसे मार डाला। यह सूचना पाकर रावण ने अपना सिर धुन लिया।

ग्यारहवें प्रकरण में हनुमान् त्रिमुंड दैत्य की तलवार छीनकर उसे उसी की गर्दन में चुभोकर उसे मार डालते हैं। बारहवें प्रकरण में रावण के महोदर मंत्री को राम ने उसकी सेना सहित मार डाला। तेरहवें प्रकरण में इन्द्रजीत 'मेघनाद' ने सेना के साथ राम से युद्ध किया। उसने राम-लक्ष्मण को मूर्छित कर दिया। तब सीता ने नाग-मंत्र का पाठ करके नागपाश को काट दिया और राम-लक्ष्मण को जीवित कर

दिया। जब मेघनाद अपने शरीर का मांस काटकर यज्ञ कर रहा था तभी लक्ष्मण ने वहाँ पहुँचकर बाण से उसके दो टुकडे कर दिये।

चौदहवें प्रकरण मे अतिकाय दैत्य का वध वर्णित है। १५वें प्रकरण में राम ने मकराक्ष दैत्य के अंग-अंग काटकर उसे मार डाला। १६ वें प्रकरण में राम-रावण का युद्ध है। दोनों पक्षों में घमासान युद्ध हुआ। रावण की सेना का संहार हुआ किन्तु लक्ष्मण के मूर्छित होने पर राम का उत्साह-भग हो गया। तभी सुखेन वैद्य के आदेशानुसार हनुमान संजीवनी बूटी प्राप्त करने के लिये सम्पूर्ण पर्वत उठा लाये। लक्ष्मण की चेतना लौटने पर अपूर्व उत्साह हो गया। रावण अपने बीसों हाथों में अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर रथ पर आया किन्तु राम ने उसे रथ और सारथी विहीन करके नीचे उतार दिया और उसके मर्मस्थल को बाणों से छेद दिया। अन्त में उसकी बीसों भुजाएँ और दस सिर काट कर उसे शिवलोक भेज दिया। इस प्रकार अजय रावण का वध करके राम ने मानो दुबारा सीता का वरण किया। उन्होंने लंका का राज्य बिभीषण को दे दिया। हनुमान सीता को अशोकवाटिका से ले आये और आते ही वह राम के चरणों से लिपट गईं। राम ने सीता को अग्नि-परीक्षा के बाद अपना लिया।

१७ वें प्रकरण में माता-मिलन मे राम पुष्पक विमान पर जब सीता के साथ अयोध्या लौटे तो नगरवासी उनको देखने के लिये उमड़ पड़ते हैं। उनकी माताएँ भी उनसे मिलने के लिये आतुर हैं। १८ वे प्रकरण मे राम माताओं के चरणों पर गिर पड़े। भरत ने आकर राम के चरणों पर सिर रखा। तदनन्तर धूमधाम से राम का राज्याभिषेक हुआ और देश-देश के राजाओं ने उन्हें अनुपम उपहार भेंट किये। सभी मुनि और ऋषि इस अवसर पर राम से मिलने आये और राम ने उन सब का चरणोदक लिया। कालान्तर में एक ब्राह्मण अपने पुत्र की मृत्यु का समाचार लेकर राम के पास आया और उनसे उसको जीवित करने का अनुरोध किया क्योंकि पिता के जीवित रहते पुत्र की असामयिक मृत्यु नहीं होनी चाहिये थी। उत्तर दिशा में एक शूद्र नीचा सिर किए, कुएँ मे लटक कर तपस्या करने की अनधिकार चेष्टा कर रहा था। राम ने उसे मार डाला और ब्राह्मण का पुत्र जीवित हो गया।

१९ वें प्रकरण 'सीता-वनवास' मे सीता के गर्भवती होने पर राम ने उनकी इच्छानुसार उन्हे वन-भ्रमण के लिये भेज दिया। बिर्जन वन मे लक्ष्मण सीता को छोड़ कर जब लौट आये तो वह चीख मार कर रो पड़ीं। तभी महर्षि वाल्मीकि अपने आश्रम में ले गये और वहीं पर लव नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह ऋषि की देखरेख में बालक छोड़कर स्नान करने जाती थीं। एक दिन मुनि ध्यानमग्न थे तो सीता उन्हें अपने साथ ले गईं। मुनि ने देखा तो बालक पालने में नहीं था।

उन्होंने कुश हाथ में लेकर वैसे ही बालक की सृष्टि कर डाली। जब सीता लौटी तो उन्होंने लव के सदृश दूसरे बालक को देखा। वह दोनों बालकों का पोषण करने लगी। उधर राम ने अश्वमेध यज्ञ किया। सब राजाओं ने राम का स्वामित्व मान लिया। घोड़ा जब मुनि के आश्रम से निकला तो लव ने उसके मस्तक पर बँधे पत्र को पढ़कर उसे वृक्ष में बाँध दिया। फिर उन्होंने युद्ध में शत्रुघ्न, लक्ष्मण, भरत, राम तथा अनेक योद्धाओं को मार गिराया और सीता माता के पास सब शवों और घोड़ों के साथ पहुँचे।

२० वें प्रकरण के अनुसार सीता ने हाथ में जल लेकर सतीत्व बल से सबको जिला दिया। २१ वों प्रकरण राम-सीता लव-कुश के साथ अयोध्या लौटने का है। राम ने दस बार राजसूय, २१ प्रकार के अश्वमेध, ६ बार नागमेध यज्ञ किये। राम ने वैदिकधर्म का प्रचार करते हुए दस हजार वर्ष राज्य किया। कालातर में कौशिल्या, सुमित्रा, कैकेयी परलोक सिधार गई। सीता ने एक दिन स्त्रियों के कहने पर रावण का चित्र दीवाल पर बनाया जिसे राम ने देखकर उन पर सन्देह किया। तब सीता ने पृथ्वी से अपने सतीत्व की परीक्षा के लिये अपने भीतर ले लेने की प्रार्थना की। तभी पृथ्वी तुरन्त फट गई और सीता उसमें समा गई। इस पर राम ने लक्ष्मण को रक्षा का आदेश देकर अन्तःपुर में जाकर योगबल से प्राण-त्याग दिया। तदनन्तर भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न ने भी प्राण विसर्जन कर दिये। लव-कुश ने सबका दाह-संस्कार किया। लव ने राज्य सँभाला और कुश तथा भरत, लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न के पुत्रों ने चारों दिशाओं में अपने-अपने राज्य स्थापित किये।

उक्त रामावतार वर्णन में गुरु गोविन्दसिंह ने श्रीमद्भागवत के रामावतार से कई प्रसंगों मे भिन्नता रखी है। दशरथ द्वारा श्रवणकुमारवध, राजसूययज्ञ, राम के साथ सुबाहु, मारीच-युद्ध, सीता की अग्नि-परीक्षा, लवकुश युद्ध, कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी तथा राम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न के प्राण-त्याग का वर्णन भागवत में नहीं मिलता। भागवत में त्रिशिरा कबंध के वध का वर्णन है किन्तु दशमेश जी के रामावतार में इनका वर्णन नहीं है।[१] कुछ प्रसंगों के वर्णन में गुरुजी ने नवीनता लाने का प्रयत्न किया है। शूर्पणखा के प्रणय-निवेदन के ठुकराये जाने पर नाक काटे जाने का वर्णन उन्होंने मुहावरे के रूप में किया है। अंगद के सम्मुख रावण की गर्वोक्ति उसके चरित्र के अनुकूल वर्णित है। गुरुजी के अनुसार सीता स्वेच्छा से वन को जाती हैं किन्तु भागवत के अनुसार लोकापवाद के कारण राम सीता को वन भेज देते हैं। भागवत का कथन अधिक ठीक जान पड़ता है क्योंकि सीता यदि स्वेच्छा से वन जातीं तो फिर राम उन्हें लौटा लाने की व्यवस्था भी अवश्य करते।

---

१. श्रीमद्भागवत, द्वितीय खंड, पृष्ठ १०९–११६

इस रचना को प्रबन्धात्मक काव्य की कोटि में रखा जा सकता है। ब्रजभाषा का सर्वत्र प्रयोग हुआ है। काव्य में ओज, प्रसाद और माधुर्य गुण यथास्थान परिलक्षित होते हैं। इसमे अजबा, अनका, अनाद, अनूपनराय, अमृतगीत, अरूपा, अर्द्धनिराच, अर्धनराज, अर्धभुजगी, अलका, उगाध, उटकन, कलस, हुलास, उल्लास कुसुम विचित्रा, क्रीड़ा, गीत मालति, चाचरी, चौबोला, तिलकड़िया, तिलका, तोटक, त्रिभंगी, पद्धरि, पाधरी, बहड़, मकरा, मोदक, मोहिनी, यशोदा, रसावल, शशि, सुखदा, सुधि, दोहा, छंदों के प्रयोग हैं। चौबीस अवतारों में कृष्णावतार के सदृश ही यह दशमेश जी की उत्कृष्ट रचना है।

(२१) कृष्णावतार

गुरु गोविन्दसिंह रचित चौबीस अवतार के अन्तर्गत इस अवतार का वर्णन गुरु रामदास लाइब्रेरी के हस्तलिखित संग्रह-ग्रंथ संख्या ११८९, सेन्ट्रल लाइब्रेरी, पटियाला के हस्तलिखित ग्रंथ संख्या ७५०, ७६६, २५६२ मे मिलता है। इन पोथियों में क्रमशः २४९१, २४९०, २४८९ छंद संग्रहीत हैं। प्रकाशित ग्रंथ में २४९२ छन्द उपलब्ध होते हैं।

श्रीमद्भागवत मे कृष्ण-चरित अत्यन्त विस्तार से वर्णित है। स्वयं गुरु गोविन्दसिंह ने कृष्णावतार के आरम्भ और अन्त में अपनी इस कृति को भागवत के सदृश बताया है।[1] गुरु जी का यह अवतार-वर्णन विविध शीर्षकों में विभाजित है। इसमें भागवत के अनुसार कृष्ण के जन्म से लेकर भृगु-प्रसंग तक सम्पूर्ण कथा का विस्तार विधिपूर्वक मिलता है। पृथ्वी की प्रार्थनानुसार काल-पुरुष की आज्ञा से भगवान विष्णु मथुरा में कृष्णावतार धारण करते हैं। तदनन्तर कवि ने देवी की स्तुति की है। उग्रसेन की कन्या देवकी का विवाह वसुदेव से सम्पन्न होते ही, कंस को आकाशवाणी हुई कि देवकी का आठवाँ पुत्र तेरा काल होगा। इस पर कंस ने वसुदेव और देवकी को तलवार से मारना चाहा, तभी वसुदेव की इस प्रार्थना पर कि वह उस पुत्र का वध करवा देंगे, कंस ने उनको कारागार में डाल दिया। वह जब देवकी के छः पुत्रों की हत्या कर चुका तो सातवे पुत्र बलभद्र को मंत्रों के बल से रोहिणी ने गर्भ मे धारण दिया। आठवे पुत्र कृष्ण का जन्म हुआ तो भगवान के माया-जाल से सारे पहरेदार सो गये, नदी का जल कम हो गया और वसुदेव ने कृष्ण को व्रज में नन्द के पास पहुँचा दिया। ये यशोदा की नवजात कन्या योगमाया को लेकर कारागृह

---

१. रच्यो ग्रन्थ इह भागवत जो वह कृपा कराहि ॥
दशम कथा भागोत की भाषा करी बनाइ ॥
कृष्णावतार श्री दशम ग्रंथ, छंद संख्या २४९१

में लौट आए। कंस उसे पटकने को ही था कि वह आकाश में जाकर स्थित हो गई और सूचित किया कि हे मूढ़, तेरा शत्रु अन्यत्र जन्म ले चुका है। यह सुनकर कंस ने वसुदेव और देवकी को मुक्त कर दिया। उसने कृष्ण के वध के लिये पूतना, तृणावर्त, बकासुर, अघासुर, धेनुकासुर को भेजा किन्तु कृष्ण ने उन सबको मार डाला। काली नाग का भी उन्होंने दमन किया।

व्रज में कृष्ण ने गोपियों के साथ भाँति-भाँति की क्रीड़ाएँ कीं। उन्होंने कभी चीर-हरण, कभी रास की लीलाएँ कीं। कृष्ण और गोपियों में पारस्परिक रूपमाधुर्य के प्रभावस्वरूप काम-भावना का उदय हुआ और कृष्ण ने उनके साथ प्रेम-क्रीड़ाएँ भी कीं। इन्द्र की पूजा बन्द हो जाने के कारण उन्होंने रोष के कारण, व्रज पर अथाह जल-वृष्टि की किन्तु कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को उपर उठाकर व्रजवासियों को उसके नीचे करके उनकी रक्षा का प्रबन्ध कर दिया। वरुण से नन्द बाबा को छुड़ाया।

गोपियों ने लोक-मर्यादा का उलंघन करके कृष्ण के साथ निरन्तर रास-क्रीड़ा में भाग लिया। कवि बार-बार इस बात का स्मरण कराता चलता है कि वे भगवान कृष्ण अलौकिक पुरुष हैं, कोई लौकिक व्यक्ति नहीं हैं। ठीक इसी प्रकार, जैसे महात्मा सूरदास कृष्ण के प्रेम-क्रीड़ा वर्णन को लौकिक न कहकर उसके पारलौकिक रूप का बार-बार स्मरण कराते चलते हैं। कृष्ण ने कभी अन्तर्धान होकर गोपियों की विकलता को बढ़ा दिया और कभी संयोग सुख की अनुभूति कराई। कवि ने राधा और कृष्ण के प्रेम का अनूठा वर्णन किया है। राधा के मान की अभिव्यक्ति चित्ताकर्षक ढंग से हुई है। रास के बीच यक्ष द्वारा अपहरित गोपी को कृष्ण ने यक्ष का वध करके छुडाया। यहाँ पर कृष्ण-गोपी-प्रेम अत्यन्त मनोरम ढंग से वर्णित है। यह ३४० छंदों में वर्णित है और प्रेम-कथा का नाम रासमंडल सार्थक है।

कृष्ण ने वृषभासुर, केशी दैत्य, विश्वासुर का वध किया। तदनन्तर कंस के आदेश पर अक्रूर कृष्ण को मथुरा लिवा ले गये। कृष्ण के मथुरागमन पर यशोदा, गोपियाँ और ग्वाल आदि सबने अत्यन्त दुःख प्रकट किया। उसके वियोग में गोपियों ने योगिनी बनने की इच्छा प्रकट की। मथुरा में कृष्ण ने कुब्जा की अभिलाषा पूर्ण की। कुवलयापीड़ हाथी, चाणूर-मुष्टिक दैत्य आदि का वध किया। अंत में कृष्ण ने कंस को अन्य शत्रुओ के साथ मार डाला और उनके माता-पिता को मुक्त किया।

गोपी-विरह-वर्णन बारहमासा के रूप में वर्णित है। कृष्ण ने गोपियो को शान्त करने के हेतु ऊद्धव को व्रज में भेजा, किन्तु उनके निर्गुण ईश्वर का उपदेश गोपियो को नीरस लगा। राधा तथा अन्य गोपियो ने अपने प्रेम की अनन्यता और तन्मयता का परिचय दिया। उद्धव, राधा और गोपियों के प्रेम से अभिभूत हो गए

और उनको आश्वासन देकर मथुरा लौट गए। गोपियों, चन्द्रभागा और राधिका ने अपने-अपने विरह सन्देश उद्धव द्वारा कृष्ण के पास भेजे। उद्धव ने मथुरा पहुँच कर कृष्ण को व्रजवासियों का विरह-वर्णन तथा सबके सन्देशों को सुनाया। कालान्तर मे कृष्ण ने कुब्जा के घर पहुँच कर उसके साथ प्रेम-क्रीड़ा करके उसे सान्त्वना दी। फिर अक्रूर के निवास-स्थान पर पहुँच कर उन्हें सन्तोष प्रदान किया। अक्रूर को धृतराष्ट्र के पास हस्तिनापुर भेजकर पाडवों का समाचार मँगाया और राजा उग्रसेन को मथुरा-राज्य सौंप दिया। कस की वधू ने अपने पिता जरासिन्धु को अपने पतिवध की सूचना भेजी और जरासिंधु ने क्रोध करके सब देशों के राजाओं को एकत्र कर दलबल के साथ कृष्ण पर आक्रमण किया। इस युद्ध का वर्णन कवि ने सविस्तार किया है। जरासिन्धु के अनेक सेनापति—नरसिंह, हरिसिंह, धनसिंह, गजसिंह, अनधसिंह, अजबसिह, अमिट सिह, अजायबखाँ, गैरखाँ आदि वीर योद्धा मारे गए। पहले पाँच राजाओं का वर्ग एक साथ युद्ध करते दो अक्षौहिणी सेना के साथ, फिर बारह राजाओं का वर्ग तथा पाँच राजाओं का दूसरा वर्ग, फिर दस भूपों का वर्ग और पाँच भूपों का तीसरा वर्ग युद्ध मे मारा गया। असुरों की सेना का भी वध हो गया। शिव के गण भी पराजित हुए। पाडव भी कृष्ण की सहायता के लिये पहुँचे। म्लेच्छ सेना के मीर, सय्यद, शेख, पठानों की सेनाएँ मारी गईं। कौरवों ने जरासिन्धु की सहायता की। दुर्योधन सेना लेकर आया। जरासिन्धु के खड़गसिंह जैसे अजेय भूप का भी वध कर दिया गया। अन्त में जरासिन्धु से कृष्ण और चतुरंगिणी सेना से बलराम का युद्ध हुआ और उनको पराजित कर दिया गया। कृष्ण ने जरासिन्धु को जीत कर छोड़ दिया।

जरासिन्धु ने कालयवन को साथ लेकर म्लेच्छ-सेना सहित कृष्ण पर पुनः आक्रमण किया। कृष्ण कालयवन को मुचकुंद की गुफा मे ले गये और वहाँ उसके देखते ही कालयवन भस्म हो गया। तब जरासिंधु कृष्ण के शरणागत आया और सिर नीचा किये अपने धाम लौट गया। कालान्तर में बलराम ने रेवती नामक कन्या से विवाह किया। भीष्म ने अपनी कन्या को कृष्ण के साथ ब्याहना चाहा किन्तु रुक्म ने इसमें बाधा डाली। रुक्मिणी ने कृष्ण के वरने का दृढ़ निश्चय किया था। उसने कृष्ण को गुप्त पत्र भेजकर बुलवाया। वह मन्दिर में देवी की वन्दना कर, जब अपनी आत्महत्या करने को उद्यत हुई तभी कृष्ण ने रथ मे आकर उसको अपने साथ बैठा लिया। रुक्म युद्ध में पराजित हुआ। द्वारावती लौटकर कृष्ण ने विधिपूर्वक रुक्मिणी से विवाह किया और पुरवासियों को आनन्दित किया।

कालान्तर में कृष्ण का प्रद्युम्न नामक वीर पुत्र उत्पन्न हुआ। जब वह १० दिनों का था तभी शंबर राक्षस ने उसे ले जाकर समुद्र में फेंक दिया। उसे मच्छ ने निगल लिया और जब वह मच्छ शंबर की रसोई में भोजन के लिये पहुँचा तो उसकी स्त्री ने

पेट फाड़ते ही, सुन्दर बालक को देखकर उसका लालन-पोषण किया। युवा होने पर वह कथा प्रद्युम्न को बता दी। प्रद्युम्न और शंबर में घोर युद्ध हुआ। शंबरासुर मारा गया। प्रद्युम्न माता रुक्मिणी और कृष्ण से जाकर मिले और नारद ने सब कथा कृष्ण को स्पष्ट कर दी।

सत्राजित दानव ने सूर्य से स्यमन्तक मणि प्राप्त करके द्वारावती के एक मंदिर में स्थापित की। उस मणि को उसका भाई सेन शिकार में ले गया जिसे सिंह ने छीन लिया और सिंह को मारकर जाम्बवंत उसे अपनी गुफा में चुरा ले गया। कृष्ण ने उस गुफा में जाकर मणि को प्राप्त किया और जाम्बवंत ने कृष्ण को अपनी कन्या ब्याह दी। कृष्ण ने मणि सत्राजित को लौटा दी। इस पर सत्राजित ने अपनी कन्या सत्यभामा का विवाह विधिपूर्वक कृष्ण से कर दिया। फिर शतधन्वा ने सत्राजित का वध कर मणि ले ली और कृष्ण के भय से मणि अक्रूर के पास छोड़ गया, किन्तु कृष्ण· ने शतधन्वा का वध कर दिया और मणि अक्रूर के पास ही रहने दी। तदनन्तर कृष्ण ने यमुना, उज्जैन और अयोध्या की राजकन्याओं से विवाह किया। इन्द्र की प्राथना पर उन्होंने भौमासुर दैत्य का वध किया और भौमासुर के यहाँ बन्दी की हुई १६ हजार राजसुताओं से व्याह कर उन्हें अलग-अलग धाम दिये। कृष्ण इन्द्र को पराजित कर कल्पवृक्ष ले आये। यहाँ पर कृष्ण का रुक्मिणी से उपहास सरस ढंग से वर्णित है। बलराम ने रुक्म का गदा से वध कर दिया और अनिरुद्ध का विवाह उसकी सुता से कर लौट आये। कृष्ण ने बाणासुर को पराजित कर ऊषा का विवाह अनिरुद्ध से किया। तभी राजा नृग को गिरगिट की योनि से मुक्त किया। पौंड्रक और काशीनरेश का वध किया। कृष्ण ने सुदक्षिण और बलराम ने भौमासुर के मित्र द्विविध कपि का वध किया। कृष्ण की पत्नी जाम्बवंती का पुत्र 'जाब' दुर्योधन की कन्या को हर लाया। घोर युद्ध के बाद दुर्योधन ने स्वयं विधिपूर्वक उसका विवाह जाब से कर दिया।

युधिष्ठिर ने सब दिशाओं को जीतकर राजसूय यज्ञ की व्यवस्था की। तभी जरासिंधु को भीम ने गदा-युद्ध में मार डाला और कृष्ण ने सब बन्दी राजाओं को मुक्त कराया। युधिष्ठिर ने यज्ञ समाप्त कर कृष्ण की कुंकुम, अक्षत से पूजा की। शिशुपाल को यह सहन न हुआ और जब वह सौ बार गाली दे चुका तो कृष्ण ने चक्र सुदर्शन से उसका वध कर दिया। अन्त में युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ सम्पन्न हुआ। युधिष्ठिर की सभा में दुर्योधन जलाशय को पृथ्वी समझ कर गिर पड़ा। इस पर भीम ने व्यंग किया है कि अंधे का पुत्र अंधा ही होता है। दुर्योधन के मित्र. दंतवक्र विद्ररथ दैत्य ने कृष्ण पर आक्रमण किया, किन्तु कृष्ण ने उसका वध कर दिया। बलदेव ने जेवल्वल दैत्य का वध किया और नैमिषारण्य की तीर्थ-यात्रा पूरी की। कृष्ण ने अपने निर्धन ब्राह्मण मित्र सुदामा का दारिद्रय दूर कर उसे ऐश्वर्यशाली बना दिया। कुरुक्षेत्र मे

नन्द, यशोदा, राधा, चन्द्रभागा तथा अन्य गोपियाँ कृष्ण से मिलीं और उन्हें अनेक प्रकार के उलाहने दिये। कृष्ण ने उनको ज्ञान का उपदेश देकर द्वारका वापिस भेज दिया। अर्जुन का विवाह सुभद्रा से सम्पन्न हुआ। उन्होंने भस्मासुर और बकासुर का छल से वध किया। ऋषियों के परामर्शानुसार ब्रह्मा, विष्णु और महेश के बड़प्पन की परीक्षा हेतु भृगु, ब्रह्मा और शिव का अपमान करने पर उनके क्रोध का पात्र बने; किन्तु विष्णु को लात मारने पर भी विष्णु ने भृगु की भक्ति-पूर्ण सेवा-सुश्रूषा की। अंत में कृष्ण कथा के महात्म्य का वर्णन है और रचनाकाल का उल्लेख किया है।

जैसा कि आरम्भ में स्पष्ट किया गया है, गुरु गोविन्दसिंह ने श्रीमद्भागवत के अनुसार कृष्णावतार का वर्णन किया है। यत्र-तत्र कुछ अन्तर द्रष्टव्य है। कृष्ण द्वारा बकासुर, वृषभासुर, विस्वासुर आदि का वध भागवत में नहीं मिलता। उसमे उल्लिखित प्रलम्बासुर, शंखचूड़, व्योमासुर, अरिष्टासुर आदि के वध का वर्णन गुरु जी ने नहीं किया। कृष्ण-गोपी-प्रसंग में रास-क्रीड़ा, केलि, मुरली-माधुरी, रूप-सौंदर्य, विरह आदि इतने विस्तार से पुराण में वर्णित नहीं हैं। राधा का प्रेम-वर्णन, मान, विरह आदि का भागवत में कोई उल्लेख नही मिलता। गुरु जी द्वारा यह प्रसंग सविस्तार और सरल ढग से वर्णित है। भागवत मे कृष्ण द्वारा संदीपन मुनि के पास छः वेदाग, उपनिषद् आदि की शिक्षा-दीक्षा का वर्णन विस्तार से मिलता है, गुरु जी ने अति संक्षेप मे यह प्रसंग दिया है। दशमेश जी ने कृष्ण पर जरासिंधु के कई आक्रमणो और उसकी पराजय का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। पुराण में इनका उल्लेख नहीं मिलता। केवल अन्तिम युद्ध का वर्णन पुराणानुसार है जिसमें भीम गदा से जरासिंधु के दो टुकड़े कर देते हैं। अनेक स्थलों पर देवी की वन्दना और स्तुति सम्बन्धी उल्लेख गुरु जी की निजी आस्था के परिचायक हैं। डा० धर्मपाल आश्ता ने सम्पूर्ण कृष्णावतार को पाँच भागों में विभाजित किया है। पहले से कृष्ण का जन्म-काल जिसमें वात्सल्य रस, दूसरे में कृष्ण की प्रेम-क्रीड़ा, तीसरे में कृष्ण का विरह-वर्णन और मथुरागमन जिसमें श्रृंगार-रस, चौथे में कृष्ण का कंस-जरासिंधु आदि से युद्ध वर्णन, पाँचवे में कृष्ण की पारिवारिक घटना वर्णित है, जिनमें वीर-रस की प्रधानता मिलती है।[1]

चौबीस अवतारों मे कृष्णावतार का वर्णन दशमेश जी ने सबसे अधिक विस्तार में किया है। रचना, प्रबन्धात्मक-काव्य का उत्कृष्ट उदाहरण है। ब्रजभाषा का सर्वत्र प्रयोग है। यत्र-तत्र अवधी, खड़ीबोली, पंजाबी, फारसी, अरबी भाषाओं के शब्दों के प्रयोग द्रष्टव्य हैं। भाषा में ओज, प्रसाद, माधुर्य गुणों का यथोचित समन्वय मिलता

---

१. दि पोयट्री आफ् दशम ग्रंथ, पृष्ठ ६७, ६९

है। यह रचना, चौपाई, दोहा, कवित्त, सवैया, अड़िल, सोरठा, छप्पय, तोटक, विष्णु-पद, छंदों में वर्णित है जिसमें सवैया की प्रधानता है।

(२२) नर अवतार

इस अवतार का वर्णन गुरु रामदास लाइब्रेरी, अमृतसर के हस्तलिखित ग्रंथ संख्या ११८९ में मिलता है। यह अवतार ७ छंदों में वर्णित है।

इस अवतार-वर्णन में गुरु गोविन्दसिंह ने पांडु-पुत्र अर्जुन की वीरता का अत्यन्त संक्षेप में उल्लेख किया है। शिव के साथ युद्ध करने पर उन्होंने उनकी वीरता पर प्रसन्न होकर वरदान में पाशुपत अस्त्र दिया। अभिमानी कौरवों को पराजित कर उसने राज्य प्राप्त किया और भगवान कृष्ण का अनेक प्रकार से आभार-प्रदर्शन किया। इन्द्र के पिता का शोक दूर किया, अनेक अद्भुत कार्य किये और कुरुक्षेत्र के महायुद्ध में विजय प्राप्त की।

(२३) बुद्ध अवतार

इस अवतार का वर्णन गुरु रामदास लाइब्रेरी, अमृतसर के हस्तलिखित संग्रह-ग्रंथ ११८९ में मिलता है। यह अवतार केवल तीन दोहों में वर्णित है।

भगवान ने बुद्ध अवतार धारण किया जिसमें कोई नाम और स्थान का उल्लेख नहीं है। उन्होंने रूप-सौंदर्य को तुच्छ समझा। कलियुग में सम्पूर्ण पृथ्वी उनकी इस कथा को जानती है। उनका कोई स्वरूप, आकार नहीं है और सारा संसार बुद्ध अवतार को केवल शिला के रूप में जानता है। बुद्ध अवतार का उल्लेख पुराणों में वर्णित चौबीस अवतार के अंतर्गत मिलता है।[1]

(२४) कल्कि अवतार

इस अवतार का उल्लेख श्रीमद्भागवत में वर्णित चौबीस अवतारों के प्रसंग में हुआ है।[2] गुरु गोविन्दसिंह द्वारा रचित चौबीस अवतार के अंतर्गत यह अन्तिम अवतार ५८८ छंदों में वर्णित है।

गुरु जी ने आरम्भ में लोक-कुल की मर्यादा के उल्लंघन का विस्तृत वर्णन किया है जिसमें अमर्यादित प्रेम-सम्बन्ध, स्वकीया का पर-पुरुष से व्यभिचार, असत्य व्यवहार, वर्णशंकर, आदि का उल्लेख है। वेद-विहित धर्म का लोप, शास्त्र-स्मृति-पुराण में अविश्वास, अनेक मतमतान्तरों के संबंध में विवाद, धन का लोभ और उसकी प्राप्ति के लिये हत्या-अनाचार, शिष्य द्वारा गुरु की अवहेलना, अधार्मिक वार्ता में विशेष रुचि, काम में विशेष प्रवृत्ति आदि का सविस्तार उल्लेख हुआ है।

---

१. श्रीमद्भागवत, प्रथम खंड, प्रथम स्कंध, दूसरा अध्याय, पृष्ठ ८

२. वही, पृष्ठ ७, ८

सुवृत्तियों की निन्दा, कुवृत्तियों का आदर, कुमंत्रणा में रुचि, सुमंत्रणा की उपेक्षा; कुरान, पुराण, पुण्य की उपेक्षा, पाप में रुचि, देव-पितरों की अवहेलना, दुष्टों का मान, साधु सज्जनों का अपमान, संयमहीनता आदि कलियुग की विशेषताओं का विस्तृत वर्णन किया गया है। पृथ्वी जब इस प्रकार के अनेक पापों से आक्रान्त हो गई तो वह काल-पुरुष के पास पहुँच कर अपने इस भार को हल्का करने के लिये कल्कि अवतार धारण करने की प्रार्थना करती है। काल-पुरुष ने घोषित किया कि कलियुग के बाद सतयुग का उदय होगा और भगवान कल्कि का अवतार धारण कर समस्त पाप समूहों का विनाश कर, धर्म-कर्म की स्थापना करेंगे। वे दुष्टों और दानवों का वध कर, न्याय का पथ प्रशस्त करेंगे।

शूद्र राजा धूमलोचन के राज्य में एक ब्राह्मण था जिसकी स्त्री व्यभिचारिणी थी। उसके व्यभिचारों को ब्राह्मण ने एक बार देख लिया। ब्राह्मण देवी का भक्त था और उस स्त्री ने उसके इस कृत्य की भर्त्सना करते हुए राजा से ब्राह्मण की शिकायत की। राजा ने ब्राह्मण का वध करने के लिये सैनिकों को भेजा। विप्र ने काल-पुरुष का ध्यान किया और राजा के कर्मचारी जैसे ही उसे तलवार से मारने को उद्यत हुए, तभी भगवान कल्कि अवतार धारण किया। राजा की सेना के साथ घोर युद्ध हुआ और बीस अयुत सतरह योद्धा मारे गये। शूद्र राजा का भी वध कर दिया गया और शान्ति की स्थापना हुई। संसार में एक बार पुनः प्राचीन गौरव और आध्यात्मिक तत्त्वों का प्रसार हुआ।

गुरु गोविन्दसिंह विरचित चौबीस अवतार ग्रन्थ को महाकाव्य की कोटि में नहीं रखा जा सकता, क्योंकि महाकाव्य संबंधी लक्षणों का इसमें अभाव है।[1] प्रत्येक अवतार के विवेचन के प्रसंग में यथास्थान उसकी काव्य-शैली का भी निर्देश किया गया है। संपूर्ण ग्रंथ का प्रणयन महाकाव्य के रूप में प्रबंधात्मक काव्य के अनुरूप हुआ है। अतएव उसे इसी नाम से अभिहित करना अधिक उचित होगा।

मीर मेंहदी

दशमेश जी के चौबीस अवतार के अनन्तर इस रचना का उल्लेख मिलता है। इसकी प्रेरणा उन्हें सम्भवतः इस्लाम धर्म के शिया-संप्रदाय सम्बन्धी ग्रंथों से मिली।[2]

कलियुग के अन्त मे जब काल-पुरुष की उपासना बन्द हो गई तो उसने रुष्ट होकर 'मेंहदी मीर' नामक व्यक्ति को उत्पन्न किया। कल्कि की शक्ति अत्यधिक बढ़ गई थी और उसके सद्-असद् का विवेक बिल्कुल नहीं रह गया था। इस कारण

१. दि पोयट्री आफ दशम ग्रंथ, पृष्ठ ८४
२. दि पोयट्री आफ् दशम ग्रंथ, पृष्ठ ११४

मेंहदी मीर ने उसको नष्ट कर दिया और सतयुग पुनः आरम्भ हुआ। कालान्तर में मेंहदी मीर में भी गर्व बढ गया और वह अपने को ईश्वर के समकक्ष मानने लगा। उसकी सर्वशक्तिमत्ता का विनाश करने के लिये काल-पुरुष ने एक कीड़ा उत्पन्न किया जो मेंहदी मीर के कान में प्रवेश कर गया। उसके कारण उसे इतना अधिक दर्द हुआ कि उसी में उसकी मृत्यु हो गई।

यह रचना ब्रज भाषा में है और इसमे यत्र-तत्र फारसी शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। रचना कुल ग्यारह तोमर छंदों में वर्णित है।

ब्रह्मा अवतार

ब्रह्मा-अवतार के आरम्भ में दशमेश जी ने ईश्वर के नामों का स्मरण करते हुए उसमें अपनी आस्था प्रकट की है। वह संसार का रचयिता और संहारकर्ता है और उसकी उपासना से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। राम, कृष्ण, मुहम्मद आदि को उसी ने उत्पन्न किया। अतएव ईश्वर की उपासना करना उनका भी धर्म है। इसके पश्चात् ब्रह्मा के सात उप-अवतारो का वर्णन किया गया है।

वाल्मीकि अवतार

ब्रह्मा का पहला अवतार वाल्मीकि के नाम से हुआ। बचपन में वे बहरे थे; किन्तु बाद में राम की भक्ति से प्रेरित होकर उन्होंने अपना अमर काव्य लिखा जिसकी प्रशंसा आलोचकों और वैयाकरणों ने की है। यह अवतार केवल छः छंदों में वर्णित है।

कश्यप अवतार

ब्रह्मा के दूसरे अवतार ऋषि कश्यप हुए जिन्होंने वेदों की व्याख्या की। उनकी चार पत्नियाँ थीं जिनसे समस्त देवता और दानव उत्पन्न हुए। इनके युद्धों का वर्णन चौबीस अवतार में किया गया है। इस अवतार का वर्णन तीन छन्दों में ही हुआ है।

शुक्र अवतार

जब दानवों की शक्ति बढ़ गई तो उन्होंने अपने राज्य का संगठन किया और नये राजवंश चलाये। उनके सुधार, धर्म और नैतिक शिक्षा के लिये ब्रह्मा ने शुक्राचार्य का अवतार धारण किया। यह अवतार केवल २ छंदों में वर्णित है।

बृहस्पति अवतार

दानवों की शक्ति के बढ़ने पर देवता पीछे रह गये; किन्तु उन्होंने अपनी पूर्व स्थिति की प्राप्ति करने के लिये धर्म-निष्ठा का मार्ग अपनाया। ब्रह्मा ने उनकी स्थिति पर दया प्रकट की और उनके बीच शिक्षक बन कर रहे। उनकी आत्मिक शक्ति से प्रेरित होकर इन्द्र तथा अन्य देवताओं ने दानवों पर विजय प्राप्त की। यह अवतार भी केवल दो छंदों में दिया गया है।

व्यास अवतार

ब्रह्मा के पाँचवे अवतार व्यास जी हुए जो कृष्ण के समकालीन थे। उन्होंने अपने युग के राजाओं का विवरण लिखा। मनु इनमे से सबसे शक्तिशाली और योग्य राजा हुआ। वह कला, संस्कृति, धर्म का महान संरक्षक था और उसने शान्ति और समृद्धि की स्थापना की। दूसरा विवरण राजा पृथु और शकुन्तला का है जिसे संस्कृत कवि कालीदास ने अपनी लेखनी से अमर कर दिया है। राजा सगर के विवरण में अश्वमेध यज्ञ का उल्लेख है जिसमें वह और उसके पुत्र मुनि के क्रोध के कारण जलकर राख में परिणत हो गये। वेणु राजा और मान्धाता राजा की कथाओं के अतिरिक्त दिल्ली के दिलीप और रघु का विवरण है जिन्होंने रघुवंश को चलाया। अजराजा और इन्दुमती के स्वयम्बर तथा अन्य राजाओं का सजीव तथा चित्ताकर्षक वर्णन किया गया है।

षट्ऋषि अवतार

ब्रह्मा का यह छठा अवतार हुआ। पुराणों के रचने के बाद व्यास जी में आध्यात्मिक गर्व उत्पन्न हो गया। इस पर ईश्वर ने क्रुद्ध होकर उनके ६ अंश कर दिये और प्रत्येक अंश तत्काल ऋषि जन्म के रूप में परिणत हो गया। छः शास्त्रों का प्रणयन इन्ही छः ऋषियों ने किया। व्यास जी इनमें से अन्तिम थे जिन्होंने उनको सुधारा और सबकी व्याख्याएँ प्रस्तुत कीं। यह अवतार केवल ४ छंदों में वर्णित है।

कालिदास अवतार

ब्रह्मा के सातवें अवतार कालिदास हुए। वे कलियुग में वेद, पुराण, शास्त्र के लेखक के रूप में उत्पन्न हुए और विक्रमाजीत ने उन्हें संरक्षा दी। उन्होंने रघुवंश तथा संस्कृत की अन्य उत्कृष्ट कृतियों का प्रणयन किया। पूरा विवरण ४ छंदों में समाप्त हो गया है। ब्रह्मा के उपरोक्त सात अवतार प्रायः कोई विद्वान पुरुष, ऋषि और लेखकों के हुए जिन्होंने अपनी लेखनी से मानवता और देवत्व की रक्षा की। विष्णु के अवतार राजा और महाराजाओं के हुए जिन्होंने तलवार से मानवता की रक्षा की, यह इन दोनों कोटि के अवतारो में विशेष अन्तर है।[1]

इन समस्त अवतारों की भाषा ब्रज है जिसमे फारसी तथा विदेशी शब्दों का प्रभाव है। इनमें शांत-रस की प्रधानता है। अज-स्वयम्वर में शृंगार-रस मुख्य रूप से वर्णित है। इनमें कुल बीस प्रकार के छंदों का प्रयोग हुआ है जिनकी संख्या इस प्रकार है—तोमर ७०, नराज ८, पद्धरी ४०, संगीत पद्धरी २, हरिबोलमना २५, तोटक ३, रुआल २५, मधुमार ३४, सजुत ६, दोधक ५, अस्तर

1. दि पोयट्री आफ् दशम ग्रंथ, पृष्ठ ११९

२, मेडक ५, चौपई ५६, अर्द्धपद्धरी ५, उच्चल ९, मोहनी ११, भुजंगप्रयात २२, सवैया १३, दोहरा १ और कवित्त १ ।

इन छंदों के प्रयोग चौबीस अवतारो के सदृश ही हुए हैं। विषय-विवेचन के अनुसार इनका प्रयोग स्तुत्य है।

रुद्र अवतार

इस अवतार का विवरण पटियाला सेन्ट्रल लाइब्रेरी के हस्तलिखित सग्रह-ग्रंथ संख्या ७४७, ७४९ और २५६२ में मिलता है। इसमें कुल १४९८ छंद प्राप्त होते हैं।

रुद्र ने जब अत्यधिक योग-साधना कर ली तो उन्हें गर्व उत्पन्न हो गया। ब्रह्मा ने जब गर्व किया था तो उन्हें सात अवतार धारण करने पड़े थे। अतएव काल ने रुद्र को भी पृथ्वी पर मनुष्य अवतार के लिये भेज दिया। इधर पृथ्वी पर अत्रि मुनि ने जो चारों वेद और चौदहों विद्याओ के विद्वान थे, अत्यन्त तप करके रुद्र भगवान को प्रसन्न किया और उनसे उन्हीं के जैसे पुत्र का वरदान प्राप्त किया। कालान्तर में अत्रि ने एक सुन्दर कन्या अनुसूया से विवाह किया। गुरु जी ने उसके सौंदर्य का सविस्तार वर्णन किया है। उससे रुद्र का अवतार दत्त के रूप में हुआ। वह उच्चकोटि का विद्वान, योगी और संन्यासी था। किन्तु उसने किसी को अपना गुरु नहीं बनाया। इस पर आकाशवाणी हुई कि बिना गुरु के मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती। तब उसने इसमें मार्ग-निर्देशन के लिये तप किया। तत्पश्चात् पुनः आकाशवाणी हुई कि जिसे वह प्रेम करता हो उसे ही गुरु बना ले और हृदय से उसकी सेवा करे। इस पर दत्त ऋषि ने माता-पिता का साथ छोड़ दिया और उस परब्रह्म की उपासना करने के लिये वनो में चले गये। यहाँ दशमेश जी ने दत्त के द्वारा ईश्वर के सर्वव्यापक, निराकार स्वरूप का विस्तार-पूर्वक वर्णन कराया है। घोर तपस्या से उन्हें अकाल-पुरुष के परम ज्ञान की उपलब्धि हो गई और उन्होंने स्वयं ईश्वर और अपने मन दो को गुरु बनाया।

इसके पश्चात् दत्त ऋषि ने संसार से अलग होकर ब्रह्मचारी और सन्यास-जीवन आरंभ किया। उनकी विद्वत्ता, योग्यता समस्त देशों के राजाओं ने स्वीकार की और स्वयं भी संन्यासी बन गये और यौगिक क्रियाओं में प्रवृत्त हुए। यहाँ पर दत्त ऋषि के माहात्म्य का गुरु जी ने विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। वे जिस-जिस दिशा में गये उसी ओर उनके संग प्रजाजन भी चल दिये। उनकी साधना और रूप-सौंदर्य ने सभी को आकर्षित कर लिया। संसार के सभी देशों के लोग उनके शिष्य बन गये। अपनी दीर्घकालीन यात्राओं में उन्होने अनेकों को गुरु बनाया। जब उन्होंने एक मकड़ी को देखा जो अपने भीतर से ही जाला बना

कर अपने उसी सीमित क्षेत्र में मक्खियों के शिकार से सन्तुष्ट है तो उसकी आत्म-लीनता से इतने प्रभावित हुए कि उसे ही भावप्रेरक गुरु के तुल्य मान लिया। इसी प्रकार उन्होंने चौथा गुरु बगुले को, पाँचवाँ मछुए को और छठा बिडाल को बनाया क्योंकि अपने शिकार की प्राप्ति मे वे पूर्ण ध्यानावस्थित रहते हैं। इसी आधार पर उन्होंने सातवाँ गुरु एक धुनियाँ, आठवाँ गुरु एक चेरी और नवाँ गुरु एक बनजारे को माना क्योंकि ये सब भी अपने कार्य में एकनिष्ठ होकर संलग्न रहते हैं। दसवाँ गुरु एक काछिन को बनाया क्योंकि वह 'सोआचूक' कहती थी अर्थात जो सो गया उसने खो दिया। उनके ग्यारहवे गुरु राजा सुरथ हुए जो अत्यन्त आकर्षक व्यक्ति थे। युद्ध-विद्या में प्रवीण दुर्गा के उपासक होते हुए भी, मोह-माया से अलग संन्यासी तुल्य जीवन बिताते थे। दशमेश जी ने इस प्रकरण का विस्तार से उल्लेख किया है। बारहवाँ गुरु एक पतंग उड़ाती कन्या, तेरहवाँ एक पहरेदार भृत्य माना, चौदहवाँ एक सुन्दर पत्नी को जो केवल अपने पति मे ही अनुरक्त रहती है, माना। पन्द्रहवाँ गुरु एक बाण बनाने वाले को, सोलहवाँ एक चील को और सत्रहवाँ एक दुधीरा पक्षी को माना, जो सायंकाल को भी पानी पर मछली के शिकार मे लीन रहता है। अठारहवाँ गुरु एक मृग मारनेवाले को जिसने मृग के धोखे में दूर के ऋषियों को मार दिया और उन्नीसवाँ गुरु एक शुक को बनाया। शुक-प्रकरण अपेक्षाकृत विस्तार से दिया गया है। बीसवाँ गुरु एक शाह, इक्कीसवाँ एक शुक पढ़ानेवाले और बाईसवाँ, पति के लिये भोजन ले जाती हुई स्त्री को और अंतिम तेईसवाँ संगीत साधना में निर्मुक्त एक यक्ष-स्त्री को माना है।

इसके पश्चात् दत्त ऋषि, ईश्वरोपासना के लिये सुमेरु पर्वत पर चले गये। उन्होंने दस लाख बीस हजार वर्ष तक तप किया और अंतिम समय आया जान कर यौगिक क्रिया से अपने प्राण छोड़ दिये। उनकी ज्योति, परमज्योति में मिल गई। इस रचना के अन्त में गुरु जी ने संसार क्षणभंगुरता एवं निस्सारता का उल्लेख किया है।

इस प्रबन्धात्मक काव्य मे कुल २३ परिच्छेद हैं। इनकी छंद संख्या ४९८ है। ११६ छदों में दशमेश जी ने दत्त के माता-पिता और आरम्भिक जीवन का उल्लेख किया है। संपूर्ण रचना मे ईश्वर के गुणों के सम्बन्ध में काफी पुनरावृत्ति मिलती है। यत्र-तत्र कथा का विस्तार गुरु जी के वीर और शृंगार-रस में विशेष अभिरुचि रखने के कारण भी हो गया है। वीर-रस तो उनकी निजी भावना से प्रेरित है और शृंगार उस युग के प्रभाव-स्वरूप व्यक्त हुआ है। प्रस्तुत रचना में शृंगार-रस की अभिव्यक्ति के अवसर कवि को अधिक मिले हैं जैसा कि उक्त वर्णनों से स्पष्ट है। संपूर्ण रचना में शान्ति-रस की प्रधानता है। इसमें २१ प्रकार के छंदों का प्रयोग किया गया है

जिनकी संख्या इस प्रकार है—तोमर ४६, पद्धरी ४९, पद्धरी ७२, चौपई ४५, रसावल १७, तोटक ५१, विचित्र पद २, भुजंगप्रयात १७, मोहन ४ अनूपनराज १३, कुलक ८, तरक २, दोहरा १, मोहिनी १८, रुनझुन ३, रुआल १६, सवैया ८, श्रीभगवती ६०, मधुमार १५, चर्पट १९ और कृपाण २२।[1]

रुद्र अवतार की भाषा व्रज है। यत्र-तत्र अवधी के शब्द भी मिलते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि दशमेश जी की यह रचना भाषा और भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से उत्कृष्ट कोटि की है जिसमें उनके कथा-संयोजन की क्षमता का यथेष्ट प्रमाण मिल जाता है।

पारसनाथ अवतार

इस अवतार का विवरण पटियाला सेंट्रल लाइब्रेरी के हस्तलिखित संग्रह-ग्रंथ संख्या ७४७, ७४९ और २५६२ में मिलता है। इसमें छंद संख्या १३५८ मिलती हैं।

रुद्र अवतार के अनन्तर पारसनाथ अवतार का उल्लेख मिलता है। दत्त ऋषि की मृत्यु के एक लाख दस वर्ष के पश्चात् रोह देश में पारसनाथ नाम का बालक उत्पन्न हुआ। युवावस्था में पहुँचने पर उसकी योग्यता और प्रतिभा की प्रशंसा दूर-दूर स्थानों में होने लगी। राजा ने प्रभावित होकर उसे अपना दामाद बना लिया। दो वर्ष आठ महीने तक उसने दुर्गा की उपासना की जिन्होंने प्रसन्न होकर उसे धनुष, बाण और कुल्हाड़ी प्रदान की। पारसनाथ ने यज्ञ और वेदों पर विचार-विनिमय करने का निश्चय किया और इस हेतु उसने सभी देशों के योगियों, महात्माओं और विद्वानों को आमंत्रित किया। आयोजन के पश्चात् उन्हें दान देकर विदा किया गया। वह विश्व का सम्राट् बन गया और अभयपद की उपाधि से विभूषित हुआ। उसने संसार के राजाओं और योगियों की विराट् सभा की और उसमें उनसे आग्रह किया कि वे जटा न रखे और संन्यास लेने के बाद भी संसार को न त्यागें। अनेक राजाओं ने इस मत का विरोध किया और घोर युद्ध आरम्भ हुआ। विपक्षियों की पराजय हुई और इस प्रकार दत्त ऋषि के मत का अंत हुआ।

पारसनाथ ने एक हजार वर्ष तक राज्य किया और धन-वैभव से समृद्ध होने पर राजमेध यज्ञ का विचार किया। अपने मंत्री की सलाह से यज्ञ हेतु एक लाख हाथियो, एक लाख घोड़ों और प्रत्येक ब्राह्मण साधु को एक लाख सोने की मोहरों का दान दिया। इसके पश्चात् पारसनाथ ने पाँच लाख राजाओं की विराट् सभा की और उनसे पुराणों और स्मृतियों के आधार पर कोई एक सम्प्रदाय चलाने के सम्बन्ध में जिज्ञासा प्रकट की। एक राजा ने बताया कि मछिन्दर नाम का एक मुनि समुद्र में

---

१. दी पोयट्री आफ् दशम ग्रंथ, पृष्ठ १२३

एक बड़े मच्छ के भीतर रहता है। वह दत्त के वीर्य से उत्पन्न हुआ और वही आपको इसका सही उत्तर दे सकता है। इस पर पारसनाथ की सेना ने समुद्र के जीव-जन्तुओं को मारना आरम्भ किया। अत्यन्त दुखी होने पर सब प्राणी समुद्र देवता के पास गये और उनसे अपनी रक्षा की प्रार्थना की। वह ब्राह्मण के रूप में बहुमूल्य पदार्थ लेकर सम्राट के पास पहुँचा और निवेदन किया कि उस समुद्र में वह मच्छ नहीं रहता। सम्भवतः वह क्षीर सागर में रहता है। तत्पश्चात् राजा ने क्षीर सागर के जन्तुओं को जाल डाल कर पकड़ा; किन्तु वह मच्छ नहीं फँसा। अन्त में ज्ञान-जाल से वह पकड़ा गया। मच्छ का ऊपरी भाग अत्यधिक कठोर था। उसे विवेक चाकू से काटा गया जिसमें मुनि ध्यानावस्थित पाये गये। तब सात धातुओं का गुड्डा उनके नाक के नीचे रखा गया। उनके ध्यान के टूटने पर वह जल कर राख हो गया। जब मुनि का क्रोध शान्त हुआ तो पारसनाथ ने उनसे प्रश्न किया कि कौन ऐसा राजा, सैनिक और देश है जिसे वह अभी तक जीत नहीं सका है और उसने अपने को ईश्वर का अवतार बताया। मछिन्दरनाथ ने उत्तर दिया कि उसकी सारी विजय व्यर्थ है, क्योंकि उसका अपने मन पर अधिकार नहीं है और उसका सारा राज्य, सेना, संबंधी, स्त्री-बच्चे आदि सब नश्वर हैं तथा अविवेक और विवेक के अविहित होने की चर्चा की। अविवेक जिसका मंत्री कामदेव है और जिसने रावण, यादव, कौरव तथा बलराम, ब्रह्मा, कृष्ण, इन्द्र, महिषासुर आदि पर विजय प्राप्त की है। पारसनाथ ने तदनन्तर विवेक और अविवेक में अन्तर जानने की इच्छा प्रकट की। मछिन्दरनाथ ने स्पष्ट किया कि अविवेक काले रंग और काले सारथी द्वारा चलाये जाने वाले काले घोड़ों के रथ पर चढ़ने वाला है। उसकी ध्वजा, तलवार, धनुष, सब काले हैं और उसे पराजित करना कठिन है। उनके मंत्री कामदेव के पास फूलों का गुच्छा, मक्खी का तीर, मछली के प्रतीक का ध्वज होता है। उसे वाद्यों, संगीत और स्त्रियों से विशेष अनुराग होता है। केवल विवेक ही उसका सामना करने में समर्थ है।

कामदेव का पुत्र वसन्त है जो नृत्य करने वाली रमणियो और संगीत से घिरा रहता है। उसे सोरठ, सारंग, शुद्ध मल्हार, विभास, रामकली, हिन्डोल, गूजर आदि रागों से विशेष अनुराग है। विवेक ही इसका भी सामना कर सकता है। हुल्लास, कामदेव का दूसरा पुत्र है। उसके सम्पर्क में बिजली, मोर की आवाज, मेढ़कों की टर्र,, झिल्ली की झनझनाहट सुनाई पड़ती है। विवेक ही उसके क्रोध का सामना करने मे समर्थ है। उसका तीसरा पुत्र आनन्द, चौथा भ्रम और पाँचवाँ कलह है, जिन्हे विवेक से ही पराजित किया जा सकता है। उसके अनन्तर वैर, आलस्य, मद हैं जिन्हें क्रमशः शान्ति, उद्यम, विवेक से दूर किया जा सकता है। कुवृत्ति, अभिमान, अपमान, अत्याचार, निंदा, नरक, भूखप्यास, लोभ, मोह, क्रोध, अहंकार, द्रोह, झूठ, मिथ्या, चिन्ता, दरिद्रता, शंका, असन्तोष, हिंसा, कुमति, निर्लज्जता, व्यभिचार,

मित्रदोष, ईर्ष्या, वशीकरण, असत्यता, आपदा, वियोग, अपराध, खेद, कुक्रिया, ग्लानि, कष्ट, कर्म आदि सभी अविवेक के संगी-साथी हैं।

पारसनाथ ने अविवेक की पूरी जानकारी के पश्चात् विवेक और उसकी सेना के संबंध में प्रकाश डालने के लिए मछिन्दरनाथ से प्रार्थना की। मुनि ने गहन अध्ययन और विचार के पश्चात् विवेक का अविवेक के सदृश ही अन्योक्ति-रूप स्पष्ट किया। धीरज, संयम, दूरदृष्टि, विज्ञान, स्नान, भावना, योग, अर्चना, पूजा, अधिकार, विधा, लज्जा, संयोग, सुकृत, निर्मोह, अकाम, अक्रोध, निरहंकार, भक्ति, शान्ति, सुकर्म, सुशिक्षा, सुजग, प्रबोध, सत, संतोष, तप, जाप, नेम, प्रेम, ध्यान, प्राणायाम, धर्म, सदाचार, अनुमान, विक्रम (वीरता), समाधि, उद्यम, उपकार, सुविचार, यश, सत्संग, प्रीति, आदि सब विवेक के साथी हैं।

इसके पश्चात् विवेक और अविवेक की सेना में घोर युद्ध हुआ जिसका वर्णन दशमेश जी ने विस्तार से किया है। यह उनकी शैली के अनुकूल है। यह युद्ध बीस लाख और एक हजार वर्ष तक चलता रहा; किन्तु किसी की विजय-पराजय निश्चित न हो सकी। पारसनाथ ने मछिन्दरनाथ से यह दुःखपूर्ण गाथा कही, किन्तु वे बिना उत्तर दिये ही सदा के लिए शान्त हो गए। तभी चर्पटनाथ प्रकट हुए और उन्होंने बताया कि मोह और विवेक दोनो एक हैं। आदि पुरुष ने ओंकार का उच्चारण करके पृथ्वी और स्वर्ग की एक साथ रचना की। उसने दाहिने पक्ष से सत्य और बाये से असत्य को प्रकट किया। वही संसार के रहस्य को जानता है और उसी के नाम-जाप से कल्याण हो सकता है। पारसनाथ इस विचार से सहमत न हो सके और चिता तैयार कराई। चर्पटनाथ के चरण स्पर्श कर स्नान किया, नये वस्त्र धारण किये और चिता में जलकर अपना प्राणान्त कर दिया।

उपरोक्त विवरण मे विवेक और अविवेक सम्बन्धी कथन अन्योक्ति के ढंग से वर्णित है। गुरु जी का विवेक-अविवेक और उसके साथियों का विशद और सजीव वर्णन अत्यधिक चित्ताकर्षक है। मानसिक वृत्तियों को उन्होंने अपनी तूलिका से मूर्तिमान कर दिया है जो उनकी अनुपम काव्य-कुशलता का परिचायक है। इस रचना में वीर-रस की प्रधानता है। शृंगार और शान्त-रस का भी यथास्थान प्रयोग हुआ है। दत्त अवतार के सदृश ही इसकी व्रज भाषा भी ओज और माधुर्यगुण मिश्रित है। इसमें सोलह प्रकार के छंदों का प्रयोग हुआ है। अक्षर, सवैया, भगवती, नराज, भुजंगप्रयात, मोहिनी, रसावल, रुआमल, रुआल, विशनपद। इस रचना में कवि के शब्द और छंद-प्रयोग की विशेषता द्रष्टव्य है।[1]

---

१. दि पोयट्री आफ् दशम ग्रंथ, पृष्ठ १२८, १२९

गुरुगोविन्दसिंह के स्वरचित विचित्र नाटक के अनन्तर चंडीचरित्र उक्ति-विलास, चंडीचरित्र, चौबीस अवतार, (ब्रह्मा अवतार) रुद्र अवतार के अंत मे "इति श्री विचित्र नाटक ग्रंथे समाप्तमस्तु सुभमस्तु" लिखित मिलता है जिससे स्पष्ट है कि उक्त रचनाओं को भी विचित्र नाटक के अंतर्गत रखना गुरु जी को अभीष्ट था।

शस्त्र-नाम-माला

गुरु जी रचित शस्त्र-नाम-माला, गुरु रामदास लाइब्रेरी, अमृतसर के हस्तलिखित संग्रह ग्रंथ सं० ७९।१७० मे १३२० छंद और ग्रंथ संख्या ९३।१९७५ में पहले अध्याय के सम्पूर्ण छंद १–२७ प्राप्त होते हैं।

इस ग्रंथ मे विविध प्रकार के शस्त्रों की नामावली, जिनका प्रयोग उस युग के युद्धों में होता था, दी गई है। इस ग्रंथ की रचना संभवतः गुरु जी ने उस समय की थी जब पौराणिक पंडितों और विद्वानों ने उन्हें यवनों का बल नष्ट करने के हेतु देवी की आराधना करने के लिये कहा था। वे शस्त्रों को ही अपना गुरु और पैगम्बर मानते थे, तभी उन्होंने इस ग्रंथ के प्रारम्भ में ही इस प्रकार लिखा है।

अस कृपाण खंडो तड़ग तुपक तबर अरु तीर।
सैफ सरोही सैहथी यही हमारे पीर॥
तीर तुही सैथी तुही तुही तवर तरवार।
नाम तिहारे जो जपै भये सिंध भव पार॥[1]

उपरोक्त छंद में तलवार को गुरुजी ने साक्षात् ईश्वर का रूप मान कर उसकी आराधना की है। इस ग्रथ का विभाजन अध्यायों के रूप में हुआ है, किन्तु चार अध्यायों की समाप्ति के उल्लेख के पश्चात् अन्य अध्यायों की समाप्ति का निर्देश नहीं मिलता। यह पाँचवा अध्याय १३१८ वें छंद पर समाप्त हो जाता है; किन्तु उसकी समाप्ति का उल्लेख प्राचीन हस्तलिखित तथा प्रकाशित ग्रंथों में नहीं मिलता। इससे प्रतीत होता है कि यह ग्रंथ अधूरा ही उपलब्ध हो सका है।

पहले अध्याय में कवि ने शस्त्रों की स्तुति-वन्दना, साक्षात् परमेश्वर के रूप में की है। यह अध्याय २७ छंदों में वर्णित है। दूसरे अध्याय में २९ से ७४ छंदों का वर्णन किया गया है। इसमें कृपाण और सुदर्शन-चक्र शस्त्रों का उल्लेख किया गया है। तीसरे अध्याय में धनुष, बाण का वर्णन; ७५ से २५२ छंदों मे प्रस्तुत किया गया है। चौथा अध्याय २५३ से ४६० छदों मे वर्णित है जिसमे 'पाश' शस्त्र का सविस्तार वर्णन मिलता है। पाँचवे अध्याय का आरंभ 'अथ तुपक के नाम' छंद संख्या ४६१ से होता है और छंद संख्या १३१८ तक इसका विस्तार मिलता है।

---

१. श्रीदशम गुरु ग्रंथ, खंड २, पृष्ठ ७१७

किन्तु जैसा ऊपर कहा गया है इस अध्याय की समाप्ति का उल्लेख नहीं मिलता। तुपक शस्त्र का विवरण ८१८ छंदों मे प्राप्त होता है।

इस ग्रंथ में प्रत्येक शस्त्र का केवल साधारण वर्णन नहीं किया गया है, वरन् उस शस्त्र से सम्बन्धि प्राचीन कथा तथा उसके प्रयोग करने वाले देवताओं और राक्षसों से संबधित प्रकरणों के निर्देश भी किये गये हैं। सम्पूर्ण ग्रंथ की रचना दृष्टकूट शैली में की गई है। प्रत्येक शस्त्र की नामावली प्रायः इसी शैली में दी गई है। नामों के पर्याय सीधे ढंग से न देकर अनेक पौराणिक, धार्मिक कथाओं के संदर्भ में 'उलटवासी' रूप में दिये गये हैं, जिनमें कवि के तत्संबंधी विजय के गूढ़ ज्ञान का परिचय भी मिलता है। ग्रंथ-रचना में दशमेश जी का उद्देश्य, भाषा और शैली का चमत्कार-प्रदर्शन उतना नहीं मालूम पड़ता क्योंकि विषय और प्रतिकूल परिस्थितियों मे उनके पास इसके लिये इतना अवकाश ही नहीं था। उन्होंने विविध शस्त्रों का वर्णन संभवतः इसलिये किया क्योंकि इनसे ईश्वरीय शक्ति की उपासना के द्वारा धार्मिक युद्ध के हेतु शक्ति-संचय के ये मुख्य स्रोत हैं। अपने शिष्यों को उनकी उपयोगिता का उपदेश देने के लिये उन्हें पौराणिक तथा धार्मिक कथाओं से संबंधित कर दिया जिससे कि वे उन्हें शीघ्र ग्रहण कर सकें और उनमें इनके लिये पूर्ण अनुराग उत्पन्न हो जाए।[1] इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रकार की रचना का प्रभाव भी उनके मनोनुकूल ही पड़ा। धार्मिक युद्धों को करके आततायियों का वध करना खालसा का मुख्य लक्ष्य बन गया था। ग्रंथ उस युग की सर्वप्रचलित व्रज भाषा में लिखा गया है। इसमें फारसी शब्दों का प्रायः अभाव है। यह रचना सात प्रकार के छदों में वर्णित हैं—दोहरा ७१६, अरिल्ल २५३, चौपई ३८४, छंद साधारण ५, सोरठा २, रुआमल् २ और छंद वड्डा १।[2]

ग्रंथ में दशमेश जी ने परम्परागत साहित्य शैली का अनुसरण किया है और वह उस युग की साहित्यिक अभिरुचि के अनुकूल है। उनके पूर्व हिन्दी साहित्य के आरंभ काल से ही नाथपंथी और सहजयानी योगियों से लेकर चन्द, विद्यापति, कबीर, सूर आदि ने इस शैली में रचनाएँ प्रस्तुत की हैं।[3] इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि प्रस्तुत ग्रंथ हिन्दी साहित्य और भाषा दोनों ही दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। विविध शस्त्रों के पर्यायवाची नामों का मूल्यांकन शब्द-शास्त्र की दृष्टि से भी कम महत्त्व का नहीं है।

---

१. दि पोयट्री आफ् दशम ग्रंथ, पृष्ठ १४९

२. वही, पृष्ठ १४७

३. हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृष्ठ ३४, ३५

ज्ञान-प्रबोध

गुरु गोविन्दसिंह रचित इस ग्रंथ का वर्णन गुरु रामदास लाइब्रेरी, अमृतसर के हस्तलिखित संग्रह-ग्रंथ संख्या ११९३, रेफरेन्स लाइब्रेरी, अमृतसर के हस्तलिखित ग्रंथ संख्या ७२।१५७८, ९५।२०६५, १७३।२८२९, सेन्ट्रल लाइब्रेरी, पटियाला के हस्तलिखित संग्रह-ग्रंथ संख्या ७४८, ७४९, ७६८, २१८४, २३९९ में उपलब्ध होता है। इस रचना में कुल ३३६ छंद लिपिबद्ध मिलते हैं। ग्रंथ के अन्त मे उसकी समाप्ति का उल्लेख न होने के कारण कतिपय विद्वानों का अनुमान है कि इस रचना की छंद-संख्या काफी अधिक रही होगी; किन्तु गुरु जी का जीवन युद्धमय होने के कारण उसके पन्ने बिखर कर नष्ट हो गये। डा० धर्मपाल आश्ता ने भी प्रस्तुत ग्रंथ की अपूर्णता का उल्लेख किया है।[1]

गुरु जी ने इस ग्रंथ के आरम्भ में निराकार ईश्वर के गुणों का विवेचन, अकाल-स्तुति के सदृश किया है। परब्रह्म परमात्मा के अदृश्य, अनन्त, अभय, अताप, अकाम, अद्वैत, निरपेक्ष आदि गुणों का प्रकाशन किया है। वह सृष्टिकर्ता सर्वशक्तिमान और आनन्दस्वरूप है। वही पतितों का उद्धारक, अनाथों का नाथ, दुखों का हरणकर्ता और जीवों का पालनकर्ता है। वह काल, कर्म आदि से परे है। समस्त तीर्थाटन, योगासन, वैराग्य, संन्यास, संयम, व्रत सब उस एक परमात्मा के बिना व्यर्थ हैं। आत्मा के प्रश्न करने पर परमात्मा ने राजधर्म, दानधर्म, भोगधर्म, मोक्षधर्म इन चार धर्मों को प्रधान बताकर, उनका विवेचन महाभारत और उसके पश्चात की कथाओं के उदाहरण के साथ प्रस्तुत किया है।

कुरुक्षेत्र में विजय प्राप्त कर लेने के उपरांत युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया। अर्जुन को उत्तर, भीम को पूर्व, सहदेव को दक्षिण, नकुल को पश्चिम दिशाओं में राजाओं को परास्त करने के लिये भेजा। समस्त जम्बूद्वीप में एकाधिपत्य राज्य हो जाने पर ऋत्विजों, ब्राह्मणों को बुलाकर यज्ञ-सम्पन्न किया और उन्हें सोने, चाँदी, ताँबे, अन्न, वस्त्रादि का अतुलित दान किया। गुरुजी ने यज्ञ-शाला तथा यज्ञ-सामग्री का सविस्तार वर्णन किया है। इसमें कहीं-कहीं अत्युक्तिपूर्ण वर्णन भी मिलता है। राजसूय यज्ञ के काफी समय बाद अश्वमेध यज्ञ की तैयारी हुई।

इस रचना के दूसरे 'जग' में अनेक बाजों का उल्लेख है जो प्रत्येक दिशा में गये सरदारों के साथ बजते हैं। चारों दिशाओं को जीतकर यज्ञ सम्पन्न किया गया। ब्राह्मणों

1. From the name of this composition as well as the outline thereof as given by the poet after the introduction, it appears that either this work has not come down to us in full or the poet could not complete it due to his preoccupations.

   The Poetry of Dasam Granth, Page. 141.

को अपूर्व दान दिया गया। राजा से अर्जित धन का एक भाग विप्रों को, एक क्षत्रियों को, एक स्त्रियों को और चौथे अंश से यज्ञ आदि अनुष्ठान को पूरा किया। पाच सौ वर्ष राज्य करने के उपरान्त पाडवों के पश्चात् परीक्षित पृथ्वी पर महान दानी वीर राजा हुआ।

ग्रंथ के तीसरे 'जग' में वर्णित कथा के अनुसार राजा परीक्षित ने गजमेध का आयोजन किया और उससे आठ हजार ऋषियों और आठ लाख ब्राह्मणों को बुलाया और यज्ञ के बाद अनेक प्रकार के अपूर्व दान राजाओ को दिये। इन्होंने बहुत काल तक राज्य किया। एक दिन पर्वत पर आखेट के लिए गये और मृग के पीछे मुनिआश्रम में पहुँचे और तप में लीन मुनि ने राजा के प्रश्न का उत्तर नहीं दिया तो एक मरे साँप को मुनि की गर्दन में डालकर चले आये। आँख खोल सर्प को देख मुनि ने क्रोध में शाप दिया कि अनाचारी को सर्पराज काटे और वह सात दिनों में मृत्यु को प्राप्त हो। शाप के भय से राजा ने गंगा के बीच एक ऊँचा महल बनवाया और उसमे जाकर बैठे, किन्तु सर्पराज ने वहाँ भी उसे डस लिया। इस प्रकार वे साठ वर्ष दो महीने चार दिन राज्य करके मोक्ष को प्राप्त हुए।

श्रीमद्भागवतपुराण में उक्त कथा का वर्णन कुछ भिन्न रूप में मिलता है। इस कथा के अनुसार राजा परीक्षित ने मुनि से मृग के सम्बन्ध में न पूछकर जल माँगा किन्तु तप में लीन मुनि ने कुछ न सुना और राजा मरा सर्प उनके गले में डालकर नगर लौट गये। तभी मुनि के तेजस्वी पुत्र शृंगी ऋषि ने उन्हें तक्षक से सात दिन के भीतर मारे जाने का शाप दिया। शमीक मुनि ने नेत्र खोलने पर पुत्र को अत्यधिक फटकारा। उधर राजा परीक्षित ने नीच कर्म के लिये अपने को धिक्कारा और राजपाट अपने पुत्र जनमेजय को देकर गंगा तट पर शरीर त्यागने के लिये चले गये। वहाँ शुकदेव जी से भागवत उपदेश सुनकर योग के द्वारा अपना प्राण-विसर्जन कर दिया। पश्चात् सर्पराज ने उनके शरीर को काटा और उनका शरीर तत्काल भस्म हो गया।[1] अतः यह स्पष्ट है कि गुरु जी द्वारा वर्णित कथा का आधार श्रीभागवत पुराण है।

राजा जनमेजय ने पिता को सर्प द्वारा काटे जाने पर नागयज्ञ का विधान किया और मंत्रों के बल से आठ योजन तक के सर्प कुंड में आ-आकर भस्मीभूत होने लगे। तक्षक जो इन्द्रलोक की रक्षा के लिये गया था वह भी मंत्र-बल से इन्द्र के साथ पृथ्वी पर गिर पड़ा। अंत में ब्राह्मणों के कहने से राजा ने नाग-यज्ञ बन्द किया।[2]

---

१. श्री मद्भागवत पुराण, द्वितीय द्वादश स्कन्ध, अध्याय ६, पृष्ठ ६३६, ६३७

२. वही, पृष्ठ ६३७, ६३८

राजा ने काशीराज की दो कन्याओं की सुन्दरता का समाचार पाकर सेना सहित पूर्व की ओर प्रयाण किया। काशी-नरेश ने पराजित होने पर उनका विवाह राजा के साथ कर दिया और अनेक गुणवंती दासियाँ और हाथी, घोड़े आदि दान में दिये। उनके दो पुत्र हुए।

यहाँ पर गुरु गोविन्दसिंह ने एक दासी के रूप-सौंदर्य का वर्णन अलंकारिक ढंग से किया है। उसके अपार सौंदर्य और गुणों पर रीझ कर राजा ने राजकन्या को त्याग कर दासी से प्रेम बढ़ाया और उससे एक वीर पुत्र उत्पन्न हुआ। पहले दो पुत्रों का नाम अश्वमेध और अश्वमेधान और दासी पुत्र का नाम अजयसिंह रखा। राजा ने अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया। ब्राह्मणों को अत्यधिक दान दिया। रानी जब यह दृश्य देख रही थी, हवा से उसका ऊपर का वस्त्र उड़ गया और ब्राह्मण उसे नग्न देखकर हँसने लगे। इस पर राजा ने क्रुद्ध होकर ब्राह्मणों को दिवार में चुनवा कर उनके जीवन का अंत कर दिया। इस कारण राजा को कोढ़ हो गया। व्यास जी ने कोढ के निवारणार्थ उसे महाभारत की कथा सुनानी आरम्भ की।

यहाँ पर गुरु गोविन्दसिंह ने विस्तार से महाभारत की कथा का वर्णन किया है। अर्जुन ने पहले सेनापति भीष्म को सेना सहित मारकर उन्हें बाणशय्या पर लिटा दिया। दूसरे सेनापति द्रोणाचार्य को देवलोक भेज दिया, तीसरे सेनापति कर्ण को सेना सहित मार डाला, फिर शल्य सेनापति हुआ जो अत मे मारा गया। अन्त मे भीम और कौरवराज दुर्योधन का द्वन्द्व युद्ध हुआ। कवि ने दोनों वीरों का ओजपूर्ण ढंग से वर्णन किया है। भीम ने दुर्योधन को गिराकर उसका वध कर दिया और इस प्रकार पाडवों की विजय हुई। तभी राजा नाक तिरछी करके हँसा। इस प्रकार कोढ़ का नाश होने पर भी उसके नाक में कोढ़ रह गया जिसके कारण कालातर मे उसकी मृत्यु हा गई। जनमेजय ने कुल चौरासी वर्ष २७ दिन राज्य किया।

राजा जनमेजय ने मंत्रियों की सलाह से अश्वमेध को राज्य दिया, दूसरे पुत्र को अनेक द्रव्य दिये और दासी पुत्र को राज्य का सेनापति बनाया। इसके पश्चात् दोनों भाइयों ने मद मे प्रजा को सताना आरम्भ किया। तीनों में फिर पारस्परिक संघर्ष हुआ और बँटवारा हो गया। चौपड़ के खेल में स्पर्धा के कारण उनमें युद्ध आरम्भ हो गया और अश्वमेध पराजित हुआ। वहाँ पर सनोढी वंश का एक ब्राह्मण आया जो चारो वेदों, उपनिषदों, न्याय, मीमासा, तर्क-शास्त्र आदि समस्त भाषाओं, व्याकरणों मे पारंगत था। दासी-पुत्र से भयभीत दोनों भाइयों ने विप्र की शरण ली। विप्र ने उसे धर्म का उपदेश देकर आश्वासन दिया। अजयसिंह ने

क्रुद्ध होकर उन्हें पकड़ लाने के लिये दूत भेजे। ब्राह्मण ने राज्य सभा में जाकर राजा को सूचित किया कि दोनों भाई उसके पास नहीं आये। राजा ने तब उस विप्र को कच्चा भोजन खाने की शर्त रखी। ब्राह्मण ने लौटकर अन्य ब्राह्मणों से सलाह ली कि यदि वह राजपूतों को बंधवा देता है तो शरणागत की रक्षा नहीं होती और भोजन करने से धर्म का नाश होता है। ब्राह्मण के उपदेश से सबने अपना जनेऊ तोड़ डाला और ब्राह्मणधर्म को छोड़ कर उनमें से अनेक वाणिज्य करने लगे। जिन्होंने जनेऊ नहीं तोड़े उन्होने एक साथ भोजन किया। इस प्रकार उनमें भेद हो जाने पर राजा ने हठ करके सोढी ब्राह्मण को अपनी सुता दे दी और उनसे इस प्रकार सनोढी वंश उत्पन्न हुआ। राजा से जो मिल गये, उनकी सन्तानें राजपुत्र कहलाईं। इस प्रकार ८२ वर्ष ८ महीने २ दिन तक अजयसिंह ने राज्य किया।

इसके पश्चात् उद्योत राजा हुआ जिसने पशुमेध यज्ञ किया और ब्राह्मणों को यथेष्ट दान दिया। बाद में उसका राज्य भी खंड-खंड हो गया। तत्पश्चात् हितराय राजा हुआ और उसने सब शत्रुओं को पराजित कर एकछत्र राज्य स्थापित किया। अधिक समय तक राज्य करने के उपरान्त उसने ब्राह्मणो को बुलाकर यज्ञ करने का विचार किया। ब्राह्मणों ने राजा को सतयुग में चंडी द्वारा महिषासुर को मारकर देवों को अभयदान देने और ब्राह्मणों के महायज्ञ का अनुष्ठान करने की कथा सुनायी और कहा, उसी प्रकार हे राजन् आप भी देश के दुष्ट दानवों का हनन करके संतों को सुख दीजिये। जैसा कि प्रस्तुत रचना के आरम्भ में कहा गया है यह ग्रंथ अपूर्ण रूप में ही प्राप्त होता है। कवि ने चार प्रधान धर्मों का उल्लेख किया है जिनमें से केवल भूमिका और धर्म की पहली स्थिति का ही विस्तार ग्रंथ में उपलब्ध होता है। संभवतः विचित्र नाटक के सदृश ही इसका विस्तार भी दशमेश जी का लक्ष्य था जिसकी पूर्ति का कोई प्रमाण नहीं मिलता किन्तु उपलब्ध अंश ही दार्शनिक हिन्दी साहित्य की अमूल्य सामग्री है।[१]

दशमेश जी की इस कृति में कथा केवल यहीं पर समाप्त मिलती है। जैसा कि पहले कहा गया है। रचना के अन्त में समाप्ति का उल्लेख नहीं है और कथा भी

---

१. The only available part of the work is the introduction and one of the four stages of the evolution of religion which the poet wanted to discuss, it was probably intended to be another monumental work like the Vichitra Natak Granth. The available part alone is sufficient to rank it amongst the best metaphysical Poetry in Hindi literature.

The Poetry of Dasham Granth, p. 141

अधूरी जान पड़ती है। अतः सम्भव है इस रचना के अन्तिम छंद नष्ट हो गये हों। रचना प्रश्नोत्तर-शैली में लिखी मिलती है। इसमें त्रिभंगी, नराच, कलश, छप्पय, कवित्त, बहिरतवील, अर्द्धनराज, वृद्धनराच, रसावल, पाधड़ी, रुआल, भुजंगप्रयात, चौपई, दोहा, तोटक, तोमर छंदों के प्रयोग हुए हैं। यत्र-तत्र फारसी, पंजाबी, अवधी भाषा के शब्दों के प्रयोग मिलते हैं। सर्वत्र ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है। काव्य की दृष्टि से इस रचना को भी प्रबन्धात्मक काव्य की कोटि मे रखा जा सकता है।

पाख्यान चरित्र[1]

दशमेश जी विरचित इस ग्रंथ का वर्णन रेफरेन्स लाइब्रेरी, अमृतसर के हस्त-लिखित दो सग्रह-ग्रंथों में संख्या ४६।११०५, १९८।३९१४ तथा सेन्ट्रल लाइब्रेरी, पटियाला के हस्तलिखित ग्रंथ संख्या २७२४ में सम्पूर्ण ४०४ चरित्र वर्णित मिलते हैं।

प्रस्तुत ग्रंथ की रचना के सम्बन्ध में एक कथा का उल्लेख मिलता है कि जब गुरु जी आनन्दपुर में अनेक सिद्धों, संन्यासियों, साधुओं, वैरागियों की परख कर रहे थे तो उस समय छजिया, रामजनी, अनूपकौर जैसी अपूर्व सुन्दर रानियाँ भी वहाँ गईं। वे गुरु जी की ओर आकृष्ट हो गईं किन्तु गुरु जी ने उन्हें उपदेशों द्वारा सुमति दी और सिक्खों को 'त्रिया-चरित्र' से बचाने के लिये तथा उनके मार्ग-प्रदर्शनार्थ इस ग्रंथ की रचना की।[2] इसी तथ्य का प्रकाशन दशमेश जी ने निम्नलिखित छंद में किया है।

> अर्घ, गर्भ, नृप, त्रियन को, भेद न पायो जाइ।
> तो तिहारी कृपा ते, कछु-कछु कहो बनाइ ॥[3]

---

१. यह संस्कृत का उपाख्यान शब्द है जिसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है—

उप + आ + ख्या + ल्युट् अन भावे।

गुरु गोविंदसिंह के इस शब्द में आदि स्वर उ का लोप मिलता है जो कि भाषा-विकास की प्राकृतकालीन प्रवृत्ति के अनुसार है। स्वर-ध्वनि केवल हीन होने पर संस्कृत शब्द के आदि स्वर का प्रायः लोप हो जाता है। यथा—

सं० उदक–प्रा० दग, सं० उपानहौ–प्रा० पाहणओ

संस्कृत में आख्यान शब्द कोई ऐतिहासिक कहानी या पौराणिक कथा के लिये प्रयुक्त मिलता है। हिन्दी में भी यह प्रायः प्राचीन कथानक या वृत्तान्त के अर्थ में प्रयुक्त होता है। हिन्दी साहित्य कोश, पृष्ठ ८८।

गुरु जी ने इसका प्रयोग कोई पूर्व प्रचलित वृत्तांत, पौराणिक या ऐतिहासिक कथा अथवा लोकगाथा के अर्थ में किया है।

२. शब्द मूरति, रणधीरसिंह, पृष्ठ २१

३. पाख्यान चरित्र छं० सं० ४४ श्री दशम गुरु ग्रंथ, पृष्ठ ८१२

पाख्यान-चरित्र में वर्णित कथाओं के मूल स्रोत संस्कृत के सर्वप्रचलित ग्रंथ महाभारत, रामायण, पुराण, पंचतंत्र, हितोपदेश आदि, फारसी के प्रसिद्ध ग्रंथ बागोबहार, चहारदर्वेश, पंजाब के जनप्रचलित प्रेमाख्यान तथा पठान और मुगलकाल के अनैतिक आचरण, व्यवहार, सामाजिक अन्धविश्वास आदि से सम्बन्धित लोक-साहित्य आदि को माना जा सकता है।[1] धर्मपाल आश्ता और रणधीरसिंह आदि विद्वानों ने इस रचना में कुल ४०४ उपाख्यानों का निर्देश किया है। हस्तलिखित तथा प्रकाशित संग्रह-ग्रंथों में भी कुल ४०४ उपाख्यानों का ही संकलन मिलता है। किन्तु ग्रंथ के अन्त में अन्तिम चरित्र की संख्या ४०५ के अंकित होने के कारण भ्रम होता है कि इसमें ४०५ कथाएँ हैं। सभी ग्रंथों में ३२५ वें छंद की संख्या लिखी नहीं मिलती। ३२४ संख्या के बाद ३२६ संख्या का उल्लेख किया गया है। इन कथाओं की निम्नलिखित कोटियाँ[2] निर्धारित की जा सकती हैं।

(क) धार्मिक

भक्ति, स्तुति, वन्दना से सम्बन्धित जिसमें स्वयं कवि के द्वारा देवी, कालपुरुष आदि की स्तुति अथवा कथा में प्रयुक्त पात्रों के द्वारा शिव, विष्णु, देवी आदि की भक्ति और उपासना वर्णित है।

(ख) पौराणिक

इसके अंतर्गत कृष्ण-चरित, समुद्र-मंथन, देवासुर-संग्राम आदि से सम्बन्धित कथाओं का वर्णन है।

(ग) ऐतिहासिक

ऐतिहासिक पात्रों से सम्बंधित उपाख्यानों में मुगल बादशाहों, हिन्दू राजाओं और राजपूत स्त्रियों की वीरता आदि की कथाएँ दी गई हैं।

(घ) शृंगारिक

इनमें अनेक उपाख्यान विवाह-प्रसंग से सम्बन्धित हैं जिनमें कोई राजकुमारी अथवा रमणी प्रेमी के साथ प्रेम-क्रीड़ा के उपरान्त अपने बुद्धि-चातुर्य से किसी राजकुमार अथवा युवक के साथ प्रणय-सूत्र में बँध जाती है। हिन्दू-मुसलमान-प्रेमाख्यानो में नल-दमयन्ती, ढोलामारु, सोहनी-महीवाल, हीर-राझा, रत्नसेन-पद्मिनी आदि की कथाएँ काव्यबद्ध मिलती हैं। परकीया प्रेम से सम्बन्धित कथाओं में रानियाँ तथा

---

१. दी पोयट्री आफ् दशम ग्रंथ, पृष्ठ १५०, १५१

२. डा० धर्मपाल आश्ता ने इनको तीन वर्गों में विभाजित किया है—वीरता सम्बन्धी कथाएँ, प्रतिष्ठा के लिये आत्मत्याग की कथाएँ तथा शृंगारपरक कथाएँ।

सामान्य वर्ग की स्त्रियाँ अपने पतियो को छल कर पर-पुरुष से प्रेम सम्बन्ध रखती हैं अथवा साम, दाम, दंड, भेद से उन्हें वैसा करने के लिये विवश कर देती हैं। सामान्य स्त्री से सम्बन्धित कथाओं मे चतुरता से राजा को वश में करना तथा राजा की हत्या आदि वर्णित है।

(ङ) सामाजिक

सामाजिक व्यवस्था तथा लोक-मर्यादा के प्रतिकूल आचरण से सम्बन्धित कथाओं में, प्रेम-व्यापार, धन और राज्य के लोभ से स्त्रियों द्वारा पुरुषों का वध, बहु-विवाह सम्बन्धी कथाओं में सौत की ईर्ष्या, सौत द्वारा प्रतिकूल पति और पुत्र की हत्या आदि, अनमेल विवाह के परिणामस्वरूप युवारानी द्वारा वृद्ध पति और सुन्दर रानी द्वारा अपने कुरूप पति की हत्या आदि का वर्णन किया गया है।

(च) विविध

यहाँ पर उपरोक्त कोटियों से संबंधित प्रमुख उपाख्यानों की महत्त्वपूर्ण विशेषताओं का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर लेना समीचीन होगा। यह स्पष्ट कर देना अनुचित न होगा कि अनेक उपाख्यानों की कथावस्तु, सत्य पर आधारित नहीं है। अनेक पात्रों के नाम, नगर, घटनाएँ आदि काल्पनिक हैं। जिनका उक्त कोटियों से सम्बन्धित अनेक उपाख्यानों में बराबर प्रयोग किया गया है। इन विविध चरित्रों के वर्णन में दशमेश जी का उद्देश्य केवल यथार्थ रूप का नग्न चित्रण करके लोगों को आदर्श-मार्ग की ओर प्रेरित करना था।

(क) धार्मिक

इस कोटि के अन्तर्गत २५ उपाख्यान मिलते हैं। पहला उपाख्यान २७ छंदों में है, जिसमें दोहा, तोटक, भुजंग, सवैया, आदि मुख्य छंद हैं। इसमें विविध प्रकार से देवी की स्तुति की गई है। देवी की शक्ति तथा उसके अनेक गुणों और क्रियाओं के गान के अनन्तर अन्त में कवि ने देवी से अपना सेवक-भाव प्रकट किया है। संख्या ८१ के उपाख्यान में राजा सिंह शिरोमणि और जोगी रंगनाथ के बीच ईश्वर की सर्वव्यापकता कथोपकथन की शैली मे वर्णित है। राजा योगी के उपदेश से संन्यास लेने के लिए तत्पर होता है किन्तु रानी राजा को सासारिक मोह का पाठ पढ़ाती है। वह एक अन्य व्यक्ति को योगी का वेष धारण कराकर उसके द्वारा मिथ्या उपदेश दिलाकर राजा को छल लेती है और राजा संन्यासी बनने का विचार त्याग देता है। इसमें कुल ९८ छंद हैं जिनमें कवित्त, सवैया, दोहा, चौपई, अड़िल छन्द मुख्य हैं। उपाख्यान १३० में रानी सुमति कुँवर और राजा विशनसिंह में शिव और कृष्ण के माहात्म्य के सम्बन्ध मे वाद-विवाद छिड़ जाता है। रानी रात मे सोये हुये राजा की शैया को उलट कर उसे शिव का चमत्कार कहती है और मूर्ख राजा को शिव का

भक्त बनाती है। इसमें कुल १२ छंद हैं। चौपई, दोहा और छप्पय मुख्य हैं। उपाख्यान १६५ में देवी का माहात्म्य वर्णित है। राजा विचित्रसिंह को मृत्यु से बचाने के लिये ब्राह्मण द्विजबल सिंह आकाशवाणी के फलस्वरूप अपने सात बच्चों की बलि चढ़ाता है और पति-पत्नी भी अपनी बलि चढ़ा देते हैं। अन्त में राजा इस दुःखद घटना से स्वयं अपने को मारना चाहता है। तभी आकाशवाणी द्वारा देवी ने राजा को दीर्घायु होने का आशीर्वाद दिया और ब्राह्मण परिवार को जीवित कर दिया। इसमें कुल १९ छंद हैं, दोहा, चौपई, अड़िल मुख्य हैं।

उपाख्यान २०९ में प्रसिद्ध राजा भर्तृहरि की कथा का वर्णन है। रानी पिंगला की मृत्यु के अनन्तर राजा अति शोकातुर होता है। तभी गोरखनाथ उसे जीवित कर देते हैं। एक ब्राह्मण ने दुर्गा की पूजा करके अमर फल प्राप्त किया जो उसने राजा को दे दिया। राजा ने वह फल अपनी रानी भानुमती को दिया जिसे रानी ने अपने चंडाल प्रेमी को दे दिया। उस प्रेमी ने वही फल वेश्या को दिया। वेश्या ने पुनः उसी फल को राजा को दिया। राजा तभी रानी की दुश्चरित्रता के कारण योगी होकर गोरखनाथ का शिष्य बन गया। गोरखनाथ द्वारा जीवन की असारता और काल-महिमा का उपदेश लेकर अध्यात्म-मार्ग में प्रविष्ट हुआ। इसमें कुछ ७८ छंद हैं। दोहा, चौपई, सोरठा, सवैया, अड़िल आदि मुख्य हैं। उपाख्यान २१३ मे राजा रुद्रकेतु की प्रगाढ़ शिवभक्ति और शिव-पूजा का उल्लेख है। इसमे कुल २२ छंद हैं जिनमें चौपई, दोहा, अड़िल मुख्य हैं। उपाख्यान संख्या २६६ में राजा सुमतिसेन की कन्या रनखंभकला अपने और अपने चारों भाइयों के गुरु को मूर्तिपूजा करते देख कर अपने गुरु से ईश्वर की सर्वव्यापकता का उल्लेख करते हुए विविध तर्कों से मूर्ति-पूजा का खंडन करती है और गुरु को भी उपदेश देती है। इसका प्रभाव गुरु पर पड़ता है और वह मूर्ति-पूजा त्याग देता है। ये १२५ छंद दोहा, सवैया, कवित्त, अड़िल, चौपई, विजय आदि में वर्णित हैं।

उपाख्यान ३४० में अलुराता नगरी का राजा भूपभद्र शिव-भक्त था। किन्तु अपनी कुरूप रानी रत्नमती की उपेक्षा करता है। तब रानी शिव का रूप धारण कर राजा को शिव द्वारा उपदेश दिलाकर अपनी ओर आकृष्ट करती है। इसमें कुल १३ छंद चौपई में वर्णित हैं। उपाख्यान ४०५ में सतयुग के राजा सतिसंधि का वर्णन है। दीर्घदाढ़ दानव ने दस हजार अक्षौहिणी सेना के साथ राजा पर आक्रमण किया। देवता बीस हजार अक्षौहिणी सेना लेकर उसकी सहायता करने आये। सूर्य, चन्द्रमा, कार्तिकेय ने सेनाओं का संचालन किया। दोनों ओर की सारी सेना नष्ट हो गई। तभी रणज्वाला में से एक बाला हल्हादेई उत्पन्न हुई। उसे देवी द्वारा निरंकार के साथ वरे जाने का वरदान मिला। स्वासवीर्य दानव से तब घोर युद्ध हुआ। बाला ने

महाकाल की स्तुति की। ब्रह्मा-विष्णु भी भयभीत होकर महाकाल की शरण में गये। काल ने प्रकट होकर युद्ध में दानवों का संहार करना प्रारम्भ किया। इसमें काल-पुरुष की व्यापकता का विशद वर्णन किया गया है। दैत्यों से पठान, मुगल, सैयद, शेख, म्लेच्छ उत्पन्न होकर युद्ध मे सम्मिलित हुए। घोर युद्ध हुआ। अंत में देवों की विजय हुई। कवि ने काल-पुरुष से दुष्टों के दलन और सिक्खों के अभ्युदय की प्रार्थना की है। कालपुरुष के माहात्म्य और निराकार स्वरूप का वर्णन किया गया है। इसमें कुल ४८५ छन्द हैं जिनमें अड़िल, चौपई मुख्य हैं।

(ल) पौराणिक

श्रीमद्भागवत पुराण से संबंधित कई उपाख्यान भी इसमें वर्णित मिलते हैं। उपाख्यान संख्या १२ में राधा और कृष्ण की प्रेम-लीला, रूप-सौंदर्य, आदि का वर्णन है। इसमें कुल ३० छंद हैं जिनमें दोहा, सवैया मुख्य हैं। उपाख्यान १०२ मे अयोध्या नरेश राजा दशरथ दैत्यों के विरुद्ध युद्ध में देवताओं की सहायता के लिये कैकेयी के साथ जाते हैं। सारथी के मारे जाने से कैकेयी स्वयं ही रथ का अपूर्व संचालन करती है और दशरथ दैत्यों को पराजित करने में सफल होते हैं। इसमें कुल ३४ छंद हैं। दोहा, चौपई का प्रयोग हुआ है। उपाख्यान १०८ में रम्भा अप्सरा कपिलमुनि के प्रेमासक्ति के फलस्वरूप शशि कन्या को जन्म देकर उसे नदी में बहा देती है। सिन्धु के राजा ब्रह्मदत्त के यहाँ पोषित होने के पश्चात् युवा होने पर पुन्नू से उसका विवाह हुआ। उसकी सौत, ईर्ष्यावश राजा की हत्या करवा देती है। शशि भी राजा के साथ सती हो जाती है। इसमें ५१ छंद हैं जिनमें सवैया, कवित्त, चौपई का प्रयोग विशेष रूप से किया गया है। उपाख्यान ११५ में गौतम ऋषि की पत्नी, अहिल्या इन्द्र पर मोहित हो जाती है और उसे एक सखी द्वारा बुलाकर उसके साथ प्रेम-क्रीडा करती है। तभी ऋषि के आ जाने पर इन्द्र चारपाई के नीचे छिप जाता है और अहिल्या उसे 'बिल्ला' बताकर ऋषि को टालती है। ऋषि को बाद में जब मालूम हुआ तो उसने अहिल्या को पत्थर होने का शाप दिया। इसमें कुल २२ छंद हैं जो दोहा और सवैया मे वर्णित हैं। उपाख्यान ११६ मे शुम्भ और अशुम्भ दैत्यों का पारस्परिक युद्ध तिलोत्तमा को वरने के लिये हुआ। दोनों ही युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए और स्त्री ब्रह्मपुरी चली गई। इसमें कुल २१ छंद हैं जो भुजंगप्रयात, सवैया, दोहा में वर्णित हैं। उपाख्यान ११७ मे दैत्यो और देवो का तुमुल युद्ध हुआ जिसमें दैत्यों ने इन्द्रपुरी को जीत लिया। इन्द्र ने शचि को अपनी पत्नी बनाना चाहा। तब शचि ने अपनी पालकी को ऋषियों द्वारा उठाये जाने की शर्त रखी। ऐसे करने पर उदालक ऋषि ने शाप दिया और इन्द्र की सारी प्रतिष्ठा समाप्त हो गई। इसमें कुल १४ छंद चौपई, दोहा में मुख्यरूप से वर्णित हैं।

उपाख्यान १२० में जलन्धर राक्षस, शिव से पार्वती को माँगता है। इस पर शिव से उसका युद्ध होता है किन्तु उसकी स्त्री व्रिन्दा पति-परायणा है। विष्णु ने उसके सतीत्व को भंग किया तब शिव जालन्धर को मारने में समर्थ हुए। इसमें ३० छंद चौपई, भुजंग आदि वर्णित हैं। उपाख्यान १२३ में सागर-मंथन की कथा वर्णित है। देव और दैत्य १४ रत्न निकालते हैं और उन रत्नों के लिये परस्पर झगड़ा करते हैं। तभी एक महासुन्दरी उपस्थित होकर देवताओं को अमृत और दैत्यों को सुरा पिला देती है। शिव को विष और 'धनवन्तरि संसार को देती है। इसमें कुल २६ छंद हैं जो चौपई, दोहा में वर्णित हैं। उपाख्यान १३७ में द्रौपदी-स्वयंवर वर्णित है। राजा द्रुपद ने जल में देखकर मत्स्य वध करने वाले के साथ कन्या का विवाह करने का प्रण किया। अर्जुन इसमें सफल हुए और द्रौपदी का विवाह उससे हो गया। अर्जुन का सभी उपस्थित राजाओं से युद्ध हुआ। द्रौपदी ने भी योद्धाओं को मारा। योद्धाओं को पराजित कर अर्जुन द्रौपदी को अपने गृह में ले आये। इसमें कुल ४३ छंद हैं जो दोहा, चौपई, भुजंग, सवैया, अड़िल आदि में वर्णित हैं।

उपाख्यान १४१ में भस्मागंध दैत्य का वर्णन है। रुद्र का पीछा करके वह उन्हें भस्म कर पार्वती को वरना चाहता है। तभी पार्वती उसकी शक्ति को परखने के लिये उसे स्वयं अपने सिर पर हाथ रखने को कहती हैं। ऐसा करने पर वह स्वयं ही भस्म हो जाता है। इसमें कुल ११ छंद हैं जो दोहा, चौपई में वर्णित हैं। उपाख्यान १४२ में बाणासुर की कन्या ऊषा, अनिरुद्ध के प्रेम की पीर से व्याकुल होकर चित्ररेखा सखी द्वारा उसे बुलवा लेती है। उसे प्रेम-क्रीड़ा करते देख कर बाणासुर और अनिरुद्ध में युद्ध हुआ, जब अनिरुद्ध बन्दी हो गया तो ऊषा सखी के द्वारा कृष्ण के पास सूचना भेजती है। कृष्ण आकर बाणासुर के रथियों का वध कर देते हैं। तत्पश्चात् बाणासुर ऊषा का विवाह अनिरुद्ध से कर देता है। इसमें कुल ७३ छंद हैं। कथा दोहा, चौपई, भुजंग, नराज़, अड़िल, सवैया आदि छंदों में वर्णित है।

उपाख्यान १८४ में कौरव-पाडव की कथा वर्णित है। पाडव जब अज्ञातवास में रहते हैं तो राजा कीचक द्रौपदी से काम का प्रस्ताव करता है तो पांडव के सुझाव से द्रौपदी उसे निश्चित समय पर बुलाती है। तभी भीम उसका वध कर देते हैं। कुल १४ छंद चौपई, दोहा में वर्णित हैं। उपाख्यान २०३ में राजा नरकासुर एक लाख राजाओं को बन्दी बना लेता है और सोलह हज़ार राजकुमारियों से विवाह करता है। कृष्ण को ~~जब यह~~ सूचना मिलती है तो वह नरकासुर का वध कर राजाओं को मुक्त करते हैं और राजकुमारियों का वह स्वयं वरण कर लेते हैं। इसमें कुल २३ छंद हैं जो दोहा, चौपई, अड़िल भुजंग में वर्णित हैं। उपाख्यान ३१९ में व्रतनाम मुनि की पत्नी ने ब्रह्मा द्वारा सिर पर पानी मंगा कर अपने पैर धुलवाने के अनन्तर

समुद्र-मंथन की सफलता की बात स्पष्ट किया। ब्रह्मा ने वैसा ही किया। इसमें कुल ६ छंद चौपई में वर्णित हैं।

उपाख्यान ३२० में कृष्ण द्वारा रुक्मिणी-हरण का वर्णन हुआ है। रुक्मिणी कृष्ण को सन्देश भेजकर विवाह के पूर्व गौरी पूजन के समय उन्हें बुलवाती है। कृष्ण उस समय वहाँ पहुँच कर उसे रथ में बैठा लेते हैं। तभी राजा रुक्म की सेना के साथ युद्ध होता है। कृष्ण ने जरासिन्धु, शिशुपाल आदि सबको पराजित किया। इसमें कुल ३१ छंद हैं। दोहा, चौपई, भुजंग मुख्य छंद हैं जिनमें कथा का वर्णन किया है। उपाख्यान ३२१ में दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य की कन्या देवयानी को देवताओं के गुरु कचवर ने अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। दैत्यों ने उसे मार कर नदी मे डाल दिया। देवयानी ने पिता से कह कर उसे पुनः जीवित कराया। राक्षसों ने उसे दुबारा मार दिया और देवयानी के कहने पर शुक्राचार्य ने उसे अपने पेट से निकाल कर पुनः जीवित कर दिया। देवयानी ने उससे प्रेम का प्रस्ताव किया और कचके ऐसा न करने पर देवयानी ने अपने पिता से कहकर उसे मरवा दिया। इसमें कुल १६ छंद चौपई मे वर्णित है।

ऐसे कई उपाख्यान हैं जिसमें धार्मिक अन्धविश्वास, योगी, संन्यासी आदि के अनैतिक आचरण का उल्लेख मिलता है। सं० ३४ के उपाख्यान में एक योगी स्वर्ग-नाथ, भानमती नामक स्त्री के साथ प्रेम करते हुए उसके पति के द्वारा जब पकड़ा गया तो स्त्री ने यह बहाना बनाकर उसे बचा लिया कि उस युवा योगी को उसका गुरु मार रहा था तो उसने उसे अपने यहाँ शरण दे दी, योगी के प्रति अन्धविश्वास के कारण ही वह गृहस्थ छला जाता है। कुल ११ छंद चौपई, दोहा में वर्णित हैं। उपाख्यान ९९ में बिन्दो नामक जाट की कन्या राजा की दासियों से झगड़ा होने पर स्वयं राजा के महल के पीछे टोना करती है और उसका दोष दासी के सिर मढ़ती है। राजा उस दासी को विष देकर मरवा देता है। कथा कुल ७ चौपई छंद में वर्णित है। उपाख्यान १०० में राजा रोपेश्वर की रानी चित्रकुँवरि पर देवराज दैत्य आकर्षित होकर उसके पास रहने लगता है। मुल्ला आदि को भी वह दैत्य पछाड़ देता है। अन्त में एक दासी मंत्र द्वारा उसे भस्म कर देती है। यह कुल १३ छद चौपई, दोहा में वर्णित हैं। उपाख्यान १३५ मे अब्दुल नामक मौलाना जत्र-मंत्र से भूतों, परियों को बुलाता था। लालपरी से सुनकर उसने एक कलाकुँवरि राजकुमारी को दैत्य से बुलाकर और प्रतिदिन उसके साथ प्रेम-क्रीड़ा करके वापिस करा देता है। वह दिल्ली देखने के बहाने जाती है और एक पत्र शाह के पुत्र चित्रदेव को फेंक देती है और राज-कुमार काजी को जंत्र-मंत्र से मरवा देता है। तदनन्तर राजकुमारी से विवाह कर लेता है। इसमें कुल २२ छंद दोहा, चौपई में वर्णित हैं।

उपाख्यान २७१ में राजा समरसेन की रानी बिलसदेई भद्रदेश के संन्यासी से उसके चमत्कार-प्रदर्शन के बाद, प्रेम-क्रीड़ा करती है। राजा अन्धविश्वास के कारण रानी के भेद नहीं जान पाता। इसमें कुल १४ छंद दोहा, चौपई में हैं। उपाख्यान २७२ में गंधागिरी का राजा सुगन्धसेन अपनी रानी गंधमती को ब्राह्मण छद्मवेशधारी वीर कर्णशाह को दान में दे देता है। इसमें कुल ११ छंद दोहा, चौपई में हैं। इस कथा के सभी पात्र कल्पित जान पड़ते हैं। उपाख्यान ३७४ में दौलताबाद के राजा विकटसिंह, भीमसेन शाह की स्त्री आफताबदई की ओर, जिसने जगतमाता करके अपने को प्रसिद्ध कर दिया था, आकृष्ट हो जाता है। आमंत्रित करने पर मौलवी, मुल्ला, पंडित कोई करामात नहीं दिखा सके। तदनन्तर उसने निराकार ईश्वर का उपदेश देकर अंधविश्वास का खंडन किया। इसमें कुल २४ छंद चौपई, अड़िल, दोहा में वर्णित हैं।

(ग) ऐतिहासिक

इसके अन्तर्गत वे उपाख्यान वर्णित हैं जिनमें केवल ऐतिहासिक पात्रों का ही उल्लेख है। घटनाएँ इतिहाससम्मत नहीं जान पड़तीं क्योंकि उनका कोई उल्लेख ऐतिहासिक ग्रंथों में नहीं मिलता है। इन उपाख्यानों की संख्या १५ है। उपाख्यान ३९ में शाहजहाँ के यहाँ एक चोर चोरी करके अपहृत धन और आभूषण अपनी प्रेमिका को दे देता है। उपाख्यान ४० में जहाँगीर और नूरजहाँ के साथ अन्य रानियों का आखेट वर्णित है। उपाख्यान ८२ में शाहजहाँ ने दरियाखाँ को मारने के अनेक उपाय किये किन्तु अन्त में उसकी बेगम उसे प्रेम क्रीड़ा के बहाने बुलाकर उसका वध करा देती है। उपाख्यान ९६ में बैरम खाँ की ओर से उसकी पठान स्त्री शत्रुओं को मार भगाती है। उपाख्यान १९७ में स्यालकोट के राजा शोलवाहन की स्त्री देवी की पूजा कर सेना-निर्माण का वरदान प्राप्त करती है और इस प्रकार शालिवाहन राजा विक्रम को घोर युद्ध करके पराजित करता है। राजा शालिवाहन का पुत्र रसालू चौपट खेलते हुए सिरकप राजा को हरा देता है और उसकी लड़की से विवाह करता है। रानी कोकिला पर-पुरुष से प्रेम करती है। रसालू उसके प्रेमी को मारकर उसका मास रानी को खिलाता है। इसमें ७३ छंद दोहा चौपई में वर्णित हैं।

उपाख्यान १६४ में शाहजहाँ की बेगम उदयपुरी किसी पर-पुरुष पर आसक्त होकर उसे खाने और देगों के भीतर बुलाकर प्रेम-क्रीड़ा करती है। तत्पश्चात् उसे उसी प्रकार बाहर भेज देती है। उस पुरुष की स्त्री द्वारा शोर करने पर उदयपुरी छल से उसे जलवा देती है। कुल १८ छन्द, दोहा, चौपई, अड़िल में वर्णित हैं। उपाख्यान १६५ में मारवाड़ के राजा जसवंतसिंह को औरंगजेब ने काबुल के दर्रे पर

बुलाया। वहाँ पठानों से युद्ध किया और वहीं उसकी मृत्यु हो गई और उसकी रानियाँ सती हो गईं। भानुमती गर्भवती होने के कारण सती नहीं हुई। उसने पुरुषों का वेष धारण कर खानपुलाद से युद्ध किया। युद्ध में कई योद्धा मारे गये। इस प्रकार रानी ने पठानों से अपने पति का बदला लिया। इसमें चौपई, दोहा, अड़िल में वर्णित कुल २९ छंद हैं। उपाख्यान २०४ में एक रानी शाहजहाँ के सिपाहियों से युद्ध करती है और सं० २०७ में एक रानी अकबर शाह के सिपाहियों को पराजित करती है।

उपाख्यान २१५ में संभापुर नगर के संभानामक वीर राजा की कथा वर्णित है। औरंगजेब से वह सदैव युद्ध करता रहता था। उसके नगर में एक प्रसिद्ध कवि था जिसकी पुत्री बहुत सुन्दर थी। राजा संभा उस पर प्रेमासक्त हो गया। उसने राजा को शराब पिलाकर धोखे से मार दिया। कुल १३ छंद दोहा, चौपई में वर्णित हैं। उपाख्यान २२२ में वर्णित कथा के अनुसार अकबर बादशाह अपनी स्त्री भोगमती को साथ लेकर काबुल गया। वहाँ पर वह शाह के पुत्र गुल महिहर पर आसक्त हो गई और राजा को धोखा देकर अपने प्रेमी के पास चली गई। कुल १६ छंद, दोहा, चौपई अड़िल में वर्णित हैं। उपाख्यान २४६ में पूर्व देश के तिलक नामक राजा की कथा का वर्णन है। उसके लड़के से शाह की लड़की का प्रेम हो गया। उसने शाहजादी से शाहजहाँ के यहाँ दो सुन्दर घोडे लाने की शर्त रखी। वह जमादारिन का भेष बनाकर शेरशाह के महलों में गई और आधी रात को दोनों घोड़े झरोखे में से निकाल कर ले आई। शेरशाह को आश्चर्य हुआ और झरोखे मे से घोड़े निकाल कर ले जाने वाले को बीस सहस्र अशर्फी देने की घोषणा की। तब वह पुरुष भेष बनाकर शाहजहाँ से बीस सहस्र अशर्फी ले आई। इसमें चौपई, दोहा, अड़िल मे वर्णित कुल २७ छंद हैं। उपाख्यान २७८ के अनुसार शाहजहाँ की पुत्री रोशनारा जो जहानाबाद मे रहती थी उसका प्रेम सैफदीन पीर से हो गया। वह ओरंगजेब को धोखे मे रखकर उस पीर के पास चली जाती है। इसमें कुल ७ छंद चौपई में वर्णित हैं।

उपाख्यान ३३६ मे सरोही शहर मे विक्रुतकरण के पुत्र वीरमदेव की प्रेम कथा का वर्णन है। शाहजैन अलवदीन नवाब की पुत्री वीरमदेव पर आसक्त हो गई। किन्तु वीरमदेव ने उससे मिलने से इंकार कर दिया। इस पर नवाब ने उसको मरवा दिया। इसमें कुल ४७ छन्द हैं जो दोहा, चौपई, अड़िल मे वर्णित हैं। उपाख्यान ३७५ में बीजापुर नगर के आदिलशाह नवाब की लड़की का धुमकेतु नामक शाह के पुत्र से प्रेम का वर्णन है। कुल २१ चौपई हैं। इसमें अवधी भाषा का भी प्रयोग हुआ है। उपाख्यान सं० ३९० के अनुसार सुबह सेन राजा की स्त्री मकरध्वज

का प्रेम अकबर बादशाह से हो गया। उसने अपने पति को अकबर से युद्ध करने के लिये तैयार किया। उसका पति युद्ध में मारा गया और वह अकबर के पास चली गई। इसमे कुल १६ चौपई छन्द हैं।

इन उपाख्यानों से स्पष्ट है कि ये कथाएँ काल्पनिक प्रेम-वर्णनों से पूर्ण हैं क्योंकि मुगल बादशाह या उनकी वेगमें या राजा-रानियाँ आदि इतने सरल रूप में अमर्यादित स्वच्छंद प्रेम-क्रीड़ा करते रहे हों यह संदेहास्पद है। ऐसा जान पड़ता है कि साधारण वर्ग की प्रेमक्रीड़ा को अधिक महत्व देने के लिये उनसे ऐतिहासिक पुरुषों के नाम से बद्ध कर दिये गये हैं।

(घ) श्रृंगारिक

पाख्यान-चरित में श्रृंगारिक कथाएँ तो अनेक हैं जो अधिकांशतः काल्पनिक हैं किंतु इनमें कई पौराणिक तथा प्राचीन प्रेमाख्यानों का भी वर्णन किया गया है जिन्हें निराधार नहीं कहा जा सकता है। प्रेमाख्यान की अत्यन्त प्राचीन परम्परा मिलती है। यह मानव-जीवन में आदि काल से स्वाभाविक प्रवृत्ति के रूप मे विकसित मिलता है। इसका सम्बन्ध किसी सुन्दर स्त्री का सुन्दर पुरुष पर और सुन्दर पुरुष का सुन्दरी स्त्री पर प्रेमासक्त हो जाना है। यह प्रत्यक्ष दर्शन, चित्र-दर्शन, स्वप्न-दर्शन अथवा गुण-श्रवण के द्वारा आरम्भ होता है और इसमें प्रेमी-प्रेमिका की परस्पर मिलने की तीव्र उत्कंठा, चेष्टा, क्रियाशीलता प्रकट होती है। यह विशेषता पाख्यान चरित्र की प्रायः अधिकांश कथाओं मे मिलती है। किन्तु प्रेम की वह एकाग्रता, एक-निष्ठता और तन्मयता जो प्रेमाख्यानों में उपलब्ध हैं, वह इनमें नहीं प्राप्त होती। इसलिये पाख्यान चरित की प्रेम सम्बन्धी सभी श्रृंगारी रचनाओं को प्रेमाख्यान की कोटि में नहीं रखा जा सकता। प्रेमाख्यान सभी जातियों, धर्मों और देशों में पाये जाते हैं। हिन्दू-मुसलमानों के अनेक प्रेमाख्यान गुरु गोविन्द सिंह के पाख्यान-चरित्र के अन्तर्गत मिलते हैं। ऐसे ११ उपाख्यानों में कृष्ण-रुक्मिणी, रत्नसिंह-पद्मावती, ढोलामारू, माधवानल, कामकंदला आदि हिन्दू वीर सोहनी-महीवाल, हीर-राँझा, लैला-मजनू, शीरी-फरहाद, युसफ-जुलेखा आदि मुसलमान प्रेमाख्यानों का वर्णन हुआ है।

उपाख्यान ८० में राधा-कृष्ण, ९१ में माधवानल-कामकन्दला, ९८ में हीर-राँझा १०१ में सोहणी-महीवाल, १२९ में मिर्जा साहिबा, १५७ में नल-दमयन्ती, १६१ में ढोला-मारू, १९९ में रत्नसेन और पद्मावती, २०१ में युसफ-जुलेखा आदि का वर्णन है।

इनमें से कई प्रेमाख्यानों को विशेष रूप से सूफी कवियों ने आध्यात्मिक आवरण देकर अपनाया है। पाख्यान-चरित में रचना-काल के प्रभाव के कारण प्रेम की

उभयपक्षी अभिव्यंजना के साथ-साथ इनमें श्रृंगार का विशेष पुट मिलता है। कृष्णावतार के प्रसंग में राधा के प्रेम की अभिव्यंजना हुई है। उपाख्यान ८० में राधा-कृष्ण का प्रेम-वर्णन पुनरुक्ति के रूप में आया है। उपाख्यान ९१ मे वर्णित माधवानल-कामकन्दला का प्रेम लोक-गाथा से सम्बन्धित है। यह कथा हिन्दी के अतिरिक्त गुजराती मे भी मिलती है और गुरुजी ने गुजराती कथा के सदृश ही अपने कथानक को रचा है।[1]

हिन्दी कथा में माधवानल, राजा कामसेन के यहाँ से निकाले जाने पर राजा विक्रम के पास जाता है और उसकी सहायता से राजा कामसेन को पराजित कर वेश्या कामकन्दला को प्राप्त करता है। इन दोनों के प्रेम परीक्षा के फलस्वरूप वे चेतनाहीन हो जाते हैं। बाद मे वेताल द्वारा अमृत छिड़कने पर दोनों जीवित होकर सुखपूर्वक जीवनयापन करते हैं। इसमे प्रेम के विरह-वर्णन की विशद अभिव्यंजना हुई है।

उपाख्यान ९८ मे हीर-राँझा की कथा वर्णित है। पंजाबी प्रेमाख्यानों मे इसका मुख्य स्थान है। गुरुगोविन्द सिह ने इसमे हीर-राँझा के पूर्व जन्म का भी उल्लेख किया है। उनका यह वर्णन काल्पनिक ही है। हीर पूर्व जन्म में मेनका अप्सरा थी। कपिल मुनि के शाप से मृत्युलोक मे स्यालों के जाट चूचक के घर मे उसने जन्म लिया जिसका नाम हीर रखा गया। राँझा चित्रदेवी रानी का पुत्र था। राज्य मे दुर्भिक्ष के कारण सबकी मृत्यु हो गई। किन्तु राँझा जीवित रहा जिसका पालन-पोषण एक जाट ने किया। राँझा को प्रायः सभी जाट का पुत्र मानते थे जिसका वर्णन पंजाबी लोक-कथा में मिलता है। दशमेश जी ने संक्षेप मे इस प्रेमाख्यान का वर्णन किया है। कतिपय विद्वानों ने हीर-राझा की प्रेमकथा का मूल आधार ऐतिहासिक बातों को भी माना है।[2] पंजाबी प्रेमाख्यान मे सोहनी महीवाल और मिर्जा साहिब का भी प्रसिद्ध प्रेमाख्यान है। सोहनी-महीवाल का वर्णन उपाख्यान १०१ में और मिर्जा साहिबा का १२९ में मिलता है। सोहनी महिवाल की कथा का वर्णन बहुत संक्षेप में उनकी अंतिम प्रेम-कथा के साथ हुआ है किन्तु मिर्जा साहिबा की कथा विस्तार से वर्णित है। उसमें प्रेम की गहरी अनुभूति मिलती है। पहले दो में स्त्री के प्रेम की गंभीरता और दुखान्तता और तीसरे में पुरुष के प्रेम की तीव्रता की झलक मिलती है।

उपाख्यान १२७ मे वर्णित नल-दमयन्ती की कथा का सर्वप्रथम उल्लेख महाभारत में नलोपाख्यान के रूप में मिलता है। सोमदेव रचित कथासरित्सागर मे भी

---

१. भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा, परशुराम चतुर्वेदी, पृ० ७८, ७९

२. भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा, श्री परशुराम चतुर्वेदी, पृष्ठ ८३

यह वर्णित है ।[1] गुरु गोविन्दसिंह ने कथासरित्सागर के अनुसार इसमें घटनाओं का वर्णन किया है। कथा पूर्ण रूप में मिलती है। इसमें दमयन्ती का विरह-वर्णन सुन्दर ढंग से व्यक्त किया गया है।

उपाख्यान १६१ में ढोलामारू का वर्णन है। यह राजस्थान की लोक-गाथा से संबंधित प्रसिद्ध कथा है किन्तु व्रज, छत्तीसगढ़ी आदि बोलियों में यह कथा कुछ भिन्न रूप में मिलती है। ढोला का पिता नरवर का राजा वीरसेन था और मारू का पिता नवकोटि मरवार का सुरसेन बताया गया है किन्तु राजस्थानी गाथा में ढोला कछुआ वंश के राजा नल का पुत्र और मारू पुंगल राजा की कन्या मानी गई है।[2] कथा का आरम्भ दोनों के पूर्व उनकी माताओं के द्वारा विवाह-सूत्र में बाँधे जाने से होता है। जब कि राजस्थानी में अनेक विवाह के समय उनकी अवस्था तीन और डेढ़ वर्ष की कही गई है। गुरुजी ने ढोला और मारू की प्रेम-क्रीड़ा का भी वर्णन किया जो रीतिकाल की श्रृंगारी प्रवृत्ति का प्रभाव कहा जा सकता है।

उपाख्यान १९९ में रत्नसेन और पद्मावती के प्रेम का वर्णन है। चित्तौर के राजा रत्नसेन की कथा का अन्त दुखान्त न होकर सुखान्त है। गोरा, बादल आदि वीर रत्नसेन को अलाऊद्दीन की कैद से छुड़ा लाते हैं और पद्मावती का प्रेम रत्नसेन से और भी दृढ़ हो जाता है। कथा का पूर्ण वर्णन नहीं हुआ क्योंकि रत्नसेन अन्त में युद्ध करते हुए मारा जाता है और उसकी रानियाँ सती होती हैं। इस घटना का वर्णन गुरु जी ने संभवतः इसलिये नहीं किया क्योंकि उनका उद्देश्य केवल प्रेम सम्बन्ध को ही प्रकट करना था।

यूसफ-जुलेखा प्रेम-कहानी जिस प्रकार से मूल रूप में मिलती है उससे कुछ भिन्न रूप मे गुरु गोविन्द सिंह ने इसका वर्णन उपाख्यान २०१ में लिया है। जुलेखा का विवाह मिश्र के वजीर के साथ होता है। वह यूसफ को अपने पति द्वारा मोल ले लेती है। जुलेखा यूसफ के रूप-सौंदय पर आकृष्ट होती है और उसका पति उसका परित्याग कर देता है। गुरु जी ने इस घटना को केवल जुलेखा और यूसफ के विषयासक्त प्रेम का वर्णन किया है। अन्त में मूल कथा के अनुसार उसका विवाह न दिखाकर केवल उनकी प्रेमक्रीड़ा दिखाकर कथा समाप्त कर दी गई है।

इन प्रेमाख्यानों की यह मुख्य विशेषता है कि कहीं भी विरह और संयोगप्रेम का अवसर दशमेश जी को मिला उन्होंने वहाँ पर ऐंद्रिय प्रेम को ही अधिक प्रधानता दी है। रूप, सौन्दर्य और विरह की तीव्रता भी यत्र-तत्र द्रष्टव्य है।

---

१. वही, पृष्ठ १३, १४
२. वही, पृष्ठ ५४

शृङ्गार के अन्तर्गत दूसरी कोटि ऐसे चरित्रों की है जिनमें प्रेम विवाह में परिणित हो जाता है। विवाह सम्बन्धी उपाख्यानों की संख्या २२ है जिनमें किसी साधारण स्त्री या राजकुमारी का प्रेम किसी साधारण पुरुष या राजकुमार से आरम्भ होकर विवाह में परिणत हो गया है। संख्या ८३, १११, ११९, २१३, २२५, २१२, २८६, २९९, ३३८ के उपाख्यानों में कोई राजकुमार मृगया करते समय मार्ग मे भटक जाने पर या साधारण अवस्था में किसी दूसरे राजा के राज्य में पहुँचने पर वहाँ की राजकुमारी पर प्रेमासक्त हो जाता है। एक उपाख्यान में जाट की स्त्री किसी चोर से प्रेम करती है और बाद में उससे विवाह भी कर लेती है।

संख्या १७४, २११, ३२२, ३३७, ३५०, ३९५, ३९८ के उपाख्यानों में कामविह्वल राजकुमारी आक्रमणकारी शत्रु राजा से प्रेम करने लगती है और अपने पिता का वध कर अथवा उसे अंधा करके प्रेमी से विवाह कर लेती है। संख्या २६४ में परी के द्वारा राजकुमारी के रूप-सौंदर्य का वर्णन सुनकर राजकुमार उस पर आसक्त हो जाता है और शाह परी की सहायता से उससे विवाह कर लेता है। संख्या ३२२ मे एक राजकुमार का शाह की पुत्री के साथ प्रेम वर्णित है। संख्या ३४४ के उपाख्यान में दो राजकुमारियाँ एक ही राजकुमार पर प्रेमासक्त होकर उसके साथ पलायन कर जाती हैं और फिर दोनों ही उससे विवाह कर लेती हैं। उस काल में बहु विवाह की प्रथा थी इसलिये कथा की वर्ण्य-वस्तु अस्वाभाविक नहीं कही जा सकती। संख्या ३५२, ३५६ में क्रमशः काजी की लड़की और एक राजकुमारी, राजकुमारों से प्रेम करती हैं और उन्हें स्त्री-वेष में अपने घर पर रखकर बाद में उनके साथ भाग जाती हैं और अन्त में वे प्रेमी-प्रेमिकाएँ विवाह के सूत्र मे बँध जाते हैं। संख्या ३९६ में एक राजकुमारी का छल से किसी राजकुमार को घर पर ले आना और उससे विवाह कर लेना वर्णित है।

इन सभी उपाख्यानों मे प्रेम की तीव्र भावना कभी नायक में, कभी नायिका मे और कभी उभय पक्ष में उदय होती है। अधिकांश उपाख्यानों में वे एक दूसरे के साथ मिलने पर प्रेम-क्रीड़ा के उपरान्त परिणय-सूत्र में बँध जाते हैं। इनमें कहीं-कहीं उत्कृष्ट विरह-वर्णन, रूप-सौदर्य तथा बाह्य-दृश्य-चित्रण की भी झलक मिलती है।

शृंगारिक चरित्र के अन्तर्गत एक तीसरी कोटि भी है जिसमें नायिका किसी पर-पुरुष से स्वच्छन्द प्रेम का सम्बन्ध रखती है। परकीय प्रेम-संबंधी उपाख्यानों में सबसे अधिक संख्या ऐसे ही उपाख्यानों की है। इनमें परकीया का स्वच्छन्द प्रेम परपुरुष के साथ वर्णित है। स्वकीया और अन्य स्त्रियों का भी क्रमशः परपुरुष अथवा अनेक पुरुषों से प्रेम दिखाया गया है। कतिपय विद्वानों के मतानुसार स्वकीया अपने पति के साथ-प्रेम-क्रीड़ा के अतिरिक्त परपुरुष से प्रेम की स्वाभाविक आकांक्षा

रखती है। यही मनोदशा पुरुष की अपनी स्त्री के अतिरिक्त अन्य स्त्री के प्रेम-क्रीड़ा की होती है। गुरुजी की अनेक रचनाओं में प्रेम-क्रीड़ा का यह रूप देखने को मिलता है। चौबीस अवतार के अंतर्गत कृष्णावतार में यह क्रीड़ा कई स्थलों पर वर्णित है। इस प्रसंग के कुल उपाख्यानों की संख्या १७६ है। इनमें सभी वर्णों की विवाहित स्त्रियों का प्रेम विभिन्न वर्गों के परपुरुषों से दिखाया गया है। इनमें उनके गुण-चातुरी, प्रत्युत्पन्न मति, कला-कौशल के उदाहरण बराबर मिलते हैं। अनेक स्थलों पर इनमें काव्य का उत्कृष्ट रूप वर्णित है। इनमें प्रेम-संबंधी विविध अनुभूतियों का सुन्दर रूप प्रकट हुआ है। संयोग और विप्रलंभ शृंगार की अनेक अवस्थाओं, वीर और रौद्र के अनेक दृश्य, शान्त और करुण के भावपूर्ण स्थल इन उपाख्यानो में भरे पडे हैं। बाह्य दृश्य चित्रण में कवि की कुशलता निरन्तर मिलती है। इनमें संवाद-शैली का भी प्रयोग हुआ है। व्रजभाषा के प्राजल और ललित प्रयोग के साथ कतिपय स्थलों पर पूर्वी हिन्दी के शब्दों के भी प्रयोग मिलते हैं। अतएव भाषा और भाव दोनों ही दृष्टि से पाख्यान-चरित्र का यह प्रसंग उत्कृष्ट कहा जा सकता है।

इन उपाख्यानों से स्पष्ट जान पड़ता है कि गुरु गोविन्द सिंह ने तत्कालीन सामाजिक जीवन का सूक्ष्म निरीक्षण किया था। उनके जीवन में आप बीती कुछ ऐसी घटनाएँ घटी जिन्होंने उनको सम्भवतः ऐसा अध्ययन करने के लिये विवश कर दिया। उस विशालमय युग का प्रभाव न केवल राजदरबारों पर ही पड़ा, वरन् जनसाधारण का जीवन भी उससे प्रभावित हुआ। जैसा पहले कहा जा चुका है, इन उपाख्यानों में परकीय प्रेम और स्वच्छंद प्रेमक्रीड़ा के अनेक स्थल मिलते हैं। प्रेम का मार्ग सब के लिये सन्मुख है। इसमें ऊँच-नीच का कोई भेद नहीं मिलता। साधारण स्त्री हो अथवा रानी, दोनों ही राजा, राजकुमार, ब्राह्मण, क्षत्री, शाह, साधु, पीर, जाट, सौदागर, काजी, मुगल, अहीर, योगी, संन्यासी,वैरागी, नट, चोर, पठान, चरवाहा, बढ़ई, गवैया, भिखारी, गुलाम, सैनिक के रूप-सौंदर्य या गुणों से आकृष्ट होकर या पुत्र के अभाव अथवा वृद्ध पति की दुर्बलता या कुरूपता या अन्ध विश्वास से प्रेरित मोक्ष की लालसा में उनके साथ प्रेमक्रीड़ा मे संलग्न होती है। कई ऐसी भी स्त्रियों का वर्णन है जो विवाहित होने पर सामान्या की तरह जीवद व्यतीत करती हैं। कई काज़ी, मुगल या साधारण मुसलमानों की स्त्रियाँ भी परपुरुष में आसक्त दिखाई पड़ती हैं। इनमें से अधिकांश उपाख्यानो में प्रायः रानियों का ही ऐसा चरित्र वर्णित है। साधारण स्त्रियों की अपेक्षा उनमें कामवासना का प्रकाशन अधिक किया गया है। कुछ ऐतिहासिक नगर के राजाओ की रानियों के चरित्र भी इसी प्रकार के दिखाए गए हैं। जैसे ओरछा की रानी, मालवा और जूनागढ़ की रानियाँ यहाँ तक कि शाहजहाँ की रानी प्राणमती परपुरुषों से ऐसा व्यवहार करती है। साथ ही ऐसे

काल्पनिक नगरों, राजा और रानियों के आनुप्रासिक नामों का भी उल्लेख हुआ है; जैसे उपाख्यान २८४ में दक्षिण का राजा दक्षिणसेन और रानी दक्षिणावती, सं० २९१ मे पश्चिमावती का राजा पश्चिमसेन और रानी पश्चिमदेइ, स० २९४ मे आनन्दवतीनगर का राजा आनन्दसेन और उसकी रानी आनन्दवती, सं० ३९१ मे इच्छावती नगर का राजा इच्छसेन और रानी इष्टमती, सं० ३९९ मे सुन्दरवती नगर का राजा सुन्दरसिंह और रानी सुन्दर देवी आदि।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, इन उपाख्यानों में विशेषरूप से वर्गविशेष की स्त्रियों के वैयक्तिक और पारिवारिक जीवन की झलक अधिक मात्रा में मिलती है। मुगलकालीन विलासपूर्ण जीवन की झाँकी प्रस्तुत करना इन उपाख्यानों की मुख्य विशेषता है। पुरुषवर्गों मे राजा, शाह, क्षत्री, सौदागर, खान, पठान, ब्राह्मण, योगी, वैरागी, संन्यासी, साधू, पीर आदि के वैयक्तिक और जातीय रूपों का इनमें यथेष्ट परिचय मिलता है।

सामान्या नायिका से सम्बन्धित १० उपाख्यानों मे उनके द्वारा साधू की तपस्या भंग करना, एक राजा द्वारा दूसरे राजा को पराजित करने और हत्या करने के लिये सहायता देने आदि का उल्लेख हुआ है। इस रचना मे ऐसे १९ उपाख्यानों का उल्लेख मिलता है जिनमें कोई राजकुमारी या शाह की पुत्री अन्य राजकुमार, राजा या शाही सौदागर आदि के रूप-सौंदर्य पर आसक्त होकर उनके साथ केवल मनो-रंजनार्थ प्रेमक्रीड़ा करती है। उनका यह सम्बन्ध केवल स्वच्छन्द प्रेम की कोटि मे रखा जा सकता है।

(ङ) सामाजिक

जैसा कि पहले कहा जा चुका है इसके अन्तर्गत अनैतिक आचरण, धन आदि का लोभ, अनमेल विवाह का दुष्परिणाम, सौत की ईर्ष्या आदि से सम्बन्धित उपाख्यान वर्णित हैं। संख्या २, ५, १४३, १८३, २१२, २५९ के उपाख्यानों में अनैतिक आचरण का सविस्तार उल्लेख किया गया है। संख्या ५ मे एक संन्यासी शाह की पुत्री को अपनी ओर आकृष्ट कर उसे भगा ले जाता है। इसमे १९ छंद दोहा, चौपई में वर्णित हैं। संख्या १४३ में एक रानी एक साधू पर प्रेमासक्त होकर उसे बहाने से अपने महल मे रख लेती है। बाद में राजा को मूर्ख बनाकर साधू के चमत्कार से राजा को प्रेरित कर जीवनपर्यंत साधू की सेवा करने के बहाने उसके साथ चली जाती है। इसके ३१ छंदों में दोहा, चौपई, अड़िल के प्रयोग हुए हैं। उपाख्यान सख्या १८३ में एक पठान मदांध होकर अपनी पुत्री के साथ प्रेम-क्रीड़ा करता है। इसमे कुल १९ छंद चौपई, कवित्त, दोहा में वर्णित हैं। संख्या २१२ में एक शाह की पुत्री अपने भाई की सुन्दरता पर आकृष्ट हो कर उसके साथ प्रेम-क्रीड़ा

की आकांक्षा से स्वयं वेश्या का रूप धारण कर भाई के साथ प्रेम-क्रीड़ा करती है। इसमें कुल २४ छंदों का वर्णन चौपई, दोहा, सोरठा मे हुआ है। संख्या २५९ में माता अपने पुत्र की सुन्दरता पर प्रेमासक्त हो कर छद्म वेश में उसके साथ प्रेम-क्रीड़ा करती है। इसमें अड़िल, चौपाई, दोहा मुख्य छंद हैं।

उपाख्यान २५, ३८, ६३, १८९, २३९, २८१, २८७, ३२७, ३८६, में ऐसी स्त्रियों की कथा वर्णित है जो धन-वैभव की इच्छा से पति और पुत्र दोनों का वध करा देती हैं। उपाख्यान संख्या २५ में एक रानी निस्संतान होने के कारण किसी अन्य को पुत्र बना कर राजा की मृत्यु के पश्चात् राज्य पर अधिकार करती है। इसके कुल ११ छंद दोहा, चौपई में हैं। उपाख्यान संख्या ३८ में एक स्त्री चोर और ठग दोनों से प्रेम करती है। अंत में जिसने सबसे अधिक धन दिया उसी के साथ उसने विवाह कर लिया। यह दोहा, चौपई २९ छंदों में वर्णित है। उपाख्यान ६३ में एक रानी एक साधारण पुरुष पर प्रेमासक्त थी। अवसर पाकर राजा का वध कराकर उसने अपने प्रेमी को राज्य दिला दिया। इसमे कुल १७ छंद दोहा, चौपई में वर्णित हैं। उपाख्यान १८९ में एक ठग स्त्री का वर्णन है जो धोखे से एक नकली हीरे को मिश्र का असली हीरा बता कर शाहजहाँ से तीस हजार रुपया ठग लेती है। यह कथा १० छंदों मे वर्णित है जिसमें दोहा, चौपई मुख्य हैं। उपाख्यान २८१ में एक रानी की कथा वर्णित है जो पुत्र को राज्य देने के लोभ वश राजा का वध करवा देनी है। इसमें कथा कुल १३ छंदों में वर्णित है। उपाख्यान २८७ मे धन के लोभ से बहन अपने भाई का वध करवा देती है। यह दोहा, चौपई, १० छंदों में वर्णित है। उपाख्यान ३२७ में एक शाह की पुत्री धन की लालच में एक व्यापारी की हत्या कर देती है। यह कथा १० छंदों में वर्णित है। उपाख्यान ३८६ मे एक राजकुमारी किसी शाह के पुत्र पर प्रेमासक्त होकर उसके साथ प्रेमक्रीड़ा करती है। राजा और रानी को जब इसका ज्ञान होता है तो वह माता-पिता दोनों के गले में फाँसी डाल कर वध कर देती है और सबसे घोषणा कर देती है कि राजा-रानी ने बारह वर्ष तक योग-साधना करने का निश्चय किया है और तब तक वह स्वयं राज्य करेगी। इस प्रकार माता-पिता का वध कर वह राज्य पर अधिकार करती है। कथा कुल ११ छंदों में वर्णित है।

उपाख्यान संख्या ५४, २३२, ३०९, ३६७, ३७१, ३८९, ३९२, ३९९, ४०० में अनमेल विवाह के दुष्परिणामों का वर्णन मिलता है। उपाख्यान ५४ में एक स्त्री अपने पति के काने होने के कारण दूसरे से प्रेम-क्रीड़ा करती है। इसमें ८ छंद दोहा, चौपई में हैं। उपाख्यान २३२ तथा ३७१ में युवा रानियों, राजाओं की वृद्धता के कारण पर-पुरुषों से प्रेम-क्रीड़ाएँ करती हैं। ये कथाएँ चौपई आदि छंदों में वर्णित हैं। उपाख्यान ३०९, ३९१ में सुन्दर रानियाँ, राजाओं की कुरूपता के कारण पर-

पुरुषों पर प्रेमासक्त होकर प्रेम क्रीड़ाएँ करती हैं। यह भेद खुल जाने पर राजाओं का वध करा देती हैं। ये कथाएँ दोहा, चौपई छन्दों में वर्णित हैं। उपाख्यान ३६७ में कुरूप पति के कारण रानी अपने पूर्व प्रेमी के साथ भाग जाती है। यह कथा सवैया, चौपई ३० छंदों में वर्णित है। उपाख्यान ३९२, ३९९, ४०० में सुन्दर स्त्रियाँ अपने कुरूप पतियों का वध कर देती हैं। ये कथाएँ दोहा, चौपई, अड़िल छंदों में वर्णित हैं।

उपाख्यान ११३, १२४, १५९, १६८, १७८, १८१, १८२, १९८, २००, २३३, २४०, २४२, २४४, ३०५, ३२८, ३७३, ३७९ में सौत की ईर्ष्या का उल्लेख मिलता है। उपाख्यान ११३ में सौत की ईर्ष्या के कारण एक रानी राजा का वध करवा देती है। इसमें २८ छन्द दोहा मे वर्णित हैं। उपाख्यान १२४ में एक रानी ईर्ष्या से प्रेरित होकर अपने सौत को छल द्वारा मन्दिर में ले जाती है। जब वह शिवजी की मूर्ति के आगे झुकती है तभी रानी ईर्ष्यावश उसका सर काट देती है। यह दोहा, चौपई १५ छंदों में वर्णित है। उपाख्यान १८१ मे एक रानी राजा को सौत के विरुद्ध भड़का कर अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। कुल १५ छंद, दोहा, चौपई, अड़िल में वर्णित है। उपाख्यान १८८ मे रानी सौत के पुत्र के राज्य के उत्तराधिकारी बनने की ईर्ष्यावश राजा का वध स्वयं करके अपनी सौत पर राजा के वध का कलंक लगा कर अपने पुत्र को राज्य दिला देती है। यह कथा दोहा, चौपई दस छंदों में वर्णित है। उपाख्यान २४० में रानी ईर्ष्यावश सौत को जीवित जला देती है। इसमें कुल १२ छंद हैं जिनमे दोहा, चौपई, मुख्य हैं। उपरोक्त अन्य उपाख्यानों में भी इसी प्रकार राज्यलिप्सा तथा पतिप्रेम की लालसा के कारण सहपत्नियों मे उत्पन्न ईर्ष्या-का वर्णन मिलता है। इस प्रकार उस काल में पापाचार और अनैतिक व्यापार का बोलबाला था। पर्दे की आड़ में अनेक कुकर्म होते थे। मंदिर और शिवालय प्रेमी और प्रेमिकाओं के मिलने के केन्द्र बन गये थे। अतएव यह स्पष्ट है कि तद्युगीन अंधविश्वास, विलासिता आदि से प्रेरित होकर ही विभिन्न वर्गों के स्त्री-पुरुष अनैतिक आचरण संबंधी हीन-भावना का प्रदर्शन करते हैं।

(च) विविध (आत्मचारित्रिक)

उपाख्यान २१, २२, २३ और ७१ मे गुरु गोविन्द सिंह से संबंधित कथाओं का वर्णन मिलता है। संख्या २१, २२, २३ के उपाख्यानों में रानी अनूप कौर की कथा वर्णित है। नृप कुंवरि नाम की अत्यन्त सुन्दर और धनवान रानी ने गुरु गोविन्दसिंह पर प्रेमासक्त होकर उनको अपने घर में आमंत्रित किया। गुरु जी सद्भावना के कारण उसके घर चले गये किन्तु वहाँ पर, उसने उनसे प्रेम-क्रीड़ा का प्रस्ताव किया। गुरुजीने जब उसकी प्रार्थना स्वीकार न की तो उसने त्रिया-चरित्र का रूप ग्रहण किया और चोर-चोर कह कर शोर मचाने लगी। गुरुजी ने आचरण की पवित्रता के

सामने अपनी मान-मर्यादा की कुछ भी परवाह न की और वहाँ से निर्भयतापूर्वक चले आये। किन्तु उनके पाँव का एक जूता वहीं रह गया जिसे उन्होंने दूसरे दिन दीवान में मंगवाया और सबके सामने नृप कुवरि से जूते का वृत्तात सुनाने को कहा। वह उनकी इस स्पष्टता के कारण अत्यधिक लज्जित हुई। उपाख्यान २१ में ६० छंद, २२ में ९ छंद और २३ में १२ छंद वर्णित हैं। इनमें चौपई, दोहा, अड़िल, भुजंग छंद मुख्य हैं जिनमें कथा का विस्तार मिलता है।

उपाख्यान ७१ में वर्णित कथा उस समय की है जब गुरु जी पाँवटा मे रह रहे थे। उस समय उनकी सेना में अनेक सिक्ख सम्मिलित हो गये थे। उनके पास पगड़ियाँ नहीं थीं। गुरु जी ने सबको आज्ञा दी कि जो भी यमुना के किनारे लघु-शंकाके लिये जाये उसकी पगड़ी उतार ली जाय। इस प्रकार उन्होंने सिक्खों के लिये आठ सौ पगड़ियाँ एकत्र कर लीं और उन्हें सिक्खों में बाँट दी। इसमें १० छंद चौपई, दोहा में वर्णित हैं। धार्मिक प्रकरण के अंतर्गत ऐसे अनेक उपाख्यानों का विवरण पहले दिया जा चुका है जिनमें गुरुजी के धार्मिक विश्वासों और मान्यताओं का उल्लेख मिलता है।

रचना का उद्देश्य

दशमेश जी द्वारा प्रस्तुत ग्रंथ के प्रणयन का उद्देश्य उस काल के लोगों के भ्रष्ट आचरण की भर्त्सना और उचित नैतिक मूल्यों की पुनर्स्थापना करना ही था। इसमें यथातथ्य चरित्रों के दिग्दर्शन द्वारा उन्होंने सर्वसाधारण को आदर्श स्वरूप की ओर प्रवृत्त करने का सफल प्रयत्न किया है। अन्तिम कथा में उन्होंने स्पष्ट कर दिया है कि इसके सुनने से गूंगे को भी आनन्द और मूढ़ को चतुरता की प्राप्ति होती है।[1] उस युग में नारी-अपहरण, दुराचार, दुर्व्यवहार, व्यभिचार, असत्य व्यवहार आदि साधारण घटनाएँ थीं जिनका नग्न चित्रण गुरु ने पद्यबद्ध रूप में प्रस्तुत किया है। इस प्रकार के चित्रण द्वारा उन्होंने विविध वर्गों के स्त्री-पुरुषों की दुर्बलताओं को प्रकट कर मानवमात्र को सदाचार, सद्व्यवहार, संयम के आदर्श मार्ग को अपनाने की प्रेरणा दी है। पाख्यान चरित का विस्तारपूर्वक वर्णन करके पुरुष और स्त्री दोनों वर्गों को सचेत किया है। त्रिया-चरित में इसका प्रकाशन विशेष रूप से किया गया है क्योंकि वे स्वयं भी उनके चंगुल से बड़ी कठिनाई से निकल सके थे। इसीलिये उन्होंने अनेक कथाओं में स्वकीया और परकीया दोनों कोटि की नायिकाओं के विश्वासघात, व्यभिचार, दुराचरण आदि का नग्न रूप प्रस्तुत किया है। साथ ही

---

१. सुनै गुंग जो यहि सु रसना पावई ॥
सुनै मूढ़ चित लाइ चतुरता आवई ॥
पाख्यान चरित्र, श्री दशम गुरु ग्रंथ चरित्र, सं० ४०५

पद्मिनी कोटि की आदर्श नायिकाओं का भी चित्रण किया है जिन्होंने अपने प्राणों की आहुति देकर अपने सतीत्व की रक्षा की। द्रौपदी, पार्वती, तिलोत्तमा, लक्ष्मी आदि की वीरता के ज्वलंत उदाहरण भी प्रस्तुत किए हैं। धर्मपाल आश्ता ने भी स्पष्ट किया है कि प्रस्तुत ग्रंथ में गुरुजी का उद्देश्य कथाओं द्वारा सर्वसाधारण को नैतिक आचरण के उत्थान की ओर प्रेरित तथा दुष्कृतियों से सावधान करना है।[1]

संपूर्ण ग्रंथ की छंद संख्या ७५५८ है जिनमें सोलह प्रकार के छंदों का प्रयोग हुआ है, चौपई ४४२३, दोहा १८३०, अड़िल ६९०, सवैया १८५, भुजंग २२१, कवित्त २५, सोरठा २६, छंद २४, छप्पय ५, रुआल २, तोमर ६, रुआमल १, भुजंग प्रयात ६६, नराज १, विजय १६, तोटक १८। प्रत्येक कथा में एक प्रकार के छंद से लेकर आठ प्रकार के छंदों तक का प्रयोग हुआ है। धर्मपाल आश्ता ने इन छंदों का विस्तृत वर्णन दिया है।[2] छंदों का वैविध्य कवि की काव्य-कुशलता का परिचायक है। काव्य की शुष्कता के निवारणार्थ तथा उसे आकर्षक बनाने के लिये ही प्रायः नवीन छंदों का आश्रय लिया गया है।

पाख्यान-चरित में विषय-वैविध्य इतना अधिक है कि मानव-जीवन का शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र हो जो कवि के मस्तिष्क से ओझल हुआ हो। उसी के अनुसार इसमे शृंगार, वीर, शान्त, हास्य आदि प्रायः सभी रसों का निर्वाह हो गया है। विषय-विवेचन के अनुसार श्रृङ्गाररस की प्रधानता अवश्य है। रचना का उद्देश्य, उसके प्रभाव की एकात्मकता, कथा में घटनाओं का संयोजन, विविध कोटि के पात्रों के चरित्र-चित्रण आदि सभी का सम्मिलित मणिकांचन संयोग के सदृश है। इसमें सन्देह नहीं कि दशमेश जी की यह रचना हिन्दी के उपाख्यान-साहित्य में अपना विशेष स्थान रखती है। यदि यह ग्रंथ पद्यबद्ध न होकर गद्यबद्ध होता तो कथा-साहित्य के विकास में इसकी अनुपम देन होती।

शब्द हजारे

गुरु रामदास लाइब्रेरी अमृतसर तथा सेन्ट्रल लाइब्रेरी पटियाला की अधिकांश प्रतियों में ये शब्द संग्रहीत मिलते हैं। प्रायः रुद्रअवतार अथवा पाख्यान-चरित के अनन्तर ये लिपिबद्ध मिलते हैं। इन शब्दों की कुल संख्या १० है।

---

1. The aim of pakhyan Charitra therefore seems to be ethical to raise the moral standard of the readers by examples both good & bad, which may inspire them to a nobler conduct or warn them against the wiles of the perverse and the unscrupulous.

   The poetry of Dasan Granth, Page 150

2. Ibid, Page 163-165

गुरु जी की स्फुट रचनाओं में शब्दों का विशेष साहित्यिक महत्त्व है क्योंकि इनकी रचना रागों के आधार पर हुई है। इनको सांगीतिक पदों के अन्तर्गत रखा गया है जिनमें रामकली, सोरठ, कल्याण, बिलावल, देवगन्धार, ख्याल, तिलंग, काफी रागों का प्रयोग हुआ है। प्रायः सिद्ध-सन्तों में यह परम्परा मिलती है कि उन्होंने भक्ति का गान रागबद्ध रूप में प्रस्तुत किया है। संत कबीरदास, महाकवि सूरदास, तुलसीदास की रचनाएँ रागबद्ध मिलती हैं।

रचना का नाम 'शब्द हजारे' अथवा 'हजारे के शब्द' के सम्बन्ध में विद्वानों के अलग-अलग मत हैं। कनिघम के अनुसार आरम्भ में शब्द की हजार पंक्तियों को काव्यगत करने के मूल विचार से प्रेरित यह नाम रखा गया है। कुछ के अनुसार पश्चिमोत्तर प्रांत में हजारा से गुरु-दर्शनार्थ आये हुए सिक्ख-संगत के सम्मुख उच्चरित होने के कारण इसका यह नाम पड़ा। एक मत के अनुसार गुरुजी ने चमकौर के युद्ध में अपने प्रिय पुत्रों के दिवंगत होने पर विरह, हिजेर, की अवस्था मे उनका प्रणयन किया। यह भी सम्भव है कि हजारा का अर्थ 'फव्वारा' भी हो और इन शब्दों का उच्चारण गुरुजी के मुख से अपने शिष्यों के लिये आध्यात्मिक फव्वारा से निकले जल-बिन्दु के सदृश ज्ञान-पिपासा को शान्त करने में सहायक सिद्ध हुआ हो। किन्तु अभी तक इस सम्बन्ध में कोई निश्चित निष्कर्ष नहीं निकाला जा सका है।[1]

इन शब्दों में दशमेश जी ने संन्यास, योग, ईश्वर-भक्ति तथा काल-पुरुष के नाम-स्मरण आदि की चर्चा की है। 'जापु' और 'अकाल स्तुति' के सदृश ही इसमें निराकार परब्रह्म परमात्मा के गुण और उसकी सर्वव्यापकता का वर्णन हुआ है। परमपुरुष की प्राप्ति के लिये आत्म-तत्त्व का दर्शन आवश्यक है जिसके लिये व्रत, नियम, ज्ञान, दया, प्रेम, क्षमा, शील की अपेक्षा होती है। केवल योग-साधना से काल कभी नहीं पास आ सकता। इसके लिये संसार की सारी विषय-वासना मोह, माया आदि को त्यागना पड़ता है। ईश्वर की अनुभूति दुष्कर कार्य है। सिद्ध, ज्ञानी, पुरुष भी ध्यान तथा समाधि अवस्था में भी इसके दर्शन नहीं कर पाते। किन्तु उसके नामस्मरण का अत्यन्त माहात्म्य है। एक शब्द में गुरुजी ने ईश्वर के नीलकंठ, नरहरि, नारायण, माधव, मुरारि, निर्विकार, त्रिकालदर्शी, कृपा-सिन्धु, निरंकार आदि रूपों का स्मरण करते हुए अपनी मतिमंदता और प्रभु की शरणागत-वत्सलता का उल्लेख किया है।

इनमें से छठा शब्द विशेष महत्त्व का है। अन्य शब्दों की भाषा व्रज है किन्तु इसकी भाषा पंजाबी है। इसकी रचना 'ख्याल' में हुई है जिसमें भाषा और भाव दोनों का सुन्दर सम्मिश्रण मिलता है। इस शब्द के द्वारा गुरुजी ने अपनी गहन

१. दि पोयट्री आफ् दशम ग्रंथ, पृष्ठ १४४

व्यथा को प्रकट किया है। धर्म की वेदी पर एक साथ जिसके चारों पुत्रों का बलि-दान हो गया हो और प्रिय मित्र मृत्यु के घाट उतार दिये गए हों उसकी आंतरिक वेदना अकथ्य है। उसकी अनुमतिमात्र से हृदय दहल उठता है। गुरुजी ने संभवतः ऐसी ही विषम परिस्थिति मे इस शब्द के द्वारा अपना सन्देश ईश्वर के पास भेजा है— "मित्र पियारे न हाल मुरीदां दा कहणा।" इसमें शान्त के साथ करुण की झाँकी भी द्रष्टव्य है। दशमेश जी ने इसमें अनुपम छंद-योजना का सुन्दर विधान किया है। इसमें सन्देह नहीं कि इम शब्दों की संख्या अत्यन्त है किन्तु काव्य-कला की दृष्टि से उनका महत्त्व अत्यधिक है। संगीत, भाव-गाभीर्य और रचना-कौशल की दृष्टि से ये अनूठे हैं और हिन्दी सन्त-काव्य के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

श्री मुखवाक पातशाही १० सवैया

दशमेश जी की स्फुट रचनाओं के अंतर्गत १–३२ सवैया गुरु रामदास लाइब्रेरी, अमृतसर तथा सेन्ट्रल लाइब्रेरी, पटियाला के अधिकाश हस्तलिखित संग्रह-ग्रंथों में मिलते हैं। प्रकाशित ग्रंथों में १–३३ संख्या उपलब्ध होती है। पहला सवैया हस्त-लिखित ग्रंथों में प्राप्त नहीं होता। धर्मपाल आश्ता तथा रणधीर सिंह ने इनकी संख्या ३२ ही निश्चित की है।

इस मुक्तक रचना में गुरु जी ने अकाल स्तुति और शब्द हजारे के सदृश ही ईश्वर के स्वरूप महिमा का गुणगान किया है। आरम्भिक सवैयों मे तीर्थ, मठों, कब्र आदि की उपासना की अवहेलना की गई है क्योंकि इनके पूजने से ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती। उस ईश्वर के भेद को वेद, पुराण और कुराण भी नहीं पा सके। वह सर्वव्यापक और सर्वान्तरयामी है। उसने प्रह्लाद, अजामिल, गणिका आदि सबका उद्धार किया। भगवान राम, कृष्ण, शिव को ईश्वर सदृश नहीं माना जा सकता क्योंकि उन्होंने साधारण मनुष्यों की तरह ही संसार में जन्म लिया और कुकृत्य सुकृत्य सभी में अपना योगदान दिया। अतएव उनकी उपासना ईश्वरीय धर्म के अंतर्गत स्थान नहीं पा सकती। बाद के सवैयों मे योगी, संन्यासी, मूर्ति-पूजा आदि का खंडन किया गया है। विविध आडम्बरों एवं पाखंडों से ईश्वर प्राप्त नहीं हो सकता। जड़ वस्तु किसी को कोई वरदान नहीं दे सकती। जोगी, संन्यासी, साधू, मसनद सबने द्रव्यों को लेना ही सीखा है किन्तु ईश्वर की जानकारी उन्हें भी नहीं है और वे ईश्वरीय ज्ञान भी नही दे सकते। गुरु जी ने सिक्ख धर्म के उपासक मसनद जो गृहस्थों से धन लाने के लिये पाँचवे गुरु अर्जुनदेव के द्वारा नियुक्त किये गये थे, निन्दा दो सवैयों में की है। अन्तिम सवैया में शरीर की क्षणभंगुरता और नश्वरता का उल्लेख करके मानव-मन को सचेत किया गया है कि मृत्यु के समय पुत्र, कलत्र, सुमित्र, सखा सब विमुख हो जायेंगे। धन, जायदाद सब बेगानी हो जायगी और अन्त समय मनुष्य को

अकेला ही इस संसार से बिदा होना पड़ेगा। समस्त सासारिक ऐश्वर्य पीछे छूट जायेंगे।

दशमेश जी की इस स्फुट रचना में काव्यकला का सुन्दर प्रस्फुटन मिलता है। भाषा और भाव में चित्ताकर्षक सामंजस्य है। इसमे सर्वत्र प्रवाहपूर्ण ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है। भक्ति-भावना के लिये प्रयुक्त सवैया छन्द मे कवि की अद्भुत काव्य-कुशलता प्रकट होती है।

सवैया जो किछु लेखु लिखियो विधना

हस्तलिखित तथा प्रकाशित ग्रंथों में तीन सवैये और एक दोहा भी प्राप्त होता है जिसमे दशमेश जी ने खालसा की महिमा का वर्णन किया है। अनुमान किया जाता है कि इसकी रचना गुरु जी ने पंडित केशोदत्त को आवश्यक संदेश भेजने के लिये की थी। नैनादेवी में यज्ञ सम्पन्न होने के पश्चात् गुरु जी ने यज्ञ का विविध दान निम्नजातीय वर्ग के सिक्खों को दिया और ब्राह्मणों को इससे वञ्चित रखा जिसका विरोध उक्त पंडित ने किया। उसी को सान्त्वना देने के लिये दशमेश जी ने इन सवैयों मे स्पष्ट किया कि उन्हें भी आज ही वस्त्र और बिस्तर आदि भेज दिये जायेंगे। उनसे इन सिक्खों पर दया रखने की याचना की है और बताया है कि उनकी सारी विजय और सम्पन्नता उसी दलित वर्ग पर निर्भर करती है। उन्हीं के प्रसाद से सारे शत्रुओं का विनाश हुआ और उन्हें सुख और वैभव की प्राप्ति हुई। अतएव उन्हीं की सेवा करना उनका कर्त्तव्य है। उन्हीं को दान देना सर्वोत्तम है, अन्य को देने में कोई परोपकार नहीं। उनका गृह, शरीर, मन, धन सब कुछ उन्हीं का है। वह पढकर ब्राह्मण अत्यन्त क्रोध से भर गया और सूखी घास की तरह जलने लगा। भविष्य के लिये एक नई प्रथा आरम्भ हुई, इस कारण वह रोने लगा।

इस रचना से गुरु जी के हृदय में निम्न और दलित वर्ग के लिये अगाध स्नेह और उदारता की भावना प्रकट होती है। दशमेश जी की खालसा में कितनी अपार श्रद्धा थी, यह इस रचना से भली प्रकार स्पष्ट हो जाता है।

ज़फरनामा

गुरु गोविन्दसिंह की इस रचना का वर्णन रेफ़्रेन्स लाइब्रेरी, अमृतसर के हस्तलिखित ग्रंथ संख्या २७|७६७, ७९|१७०१ और सेन्ट्रल लाइब्रेरी, पटियाला के हस्तलिखित संग्रह-ग्रंथ संख्या ५७५|७५१, ७५८, ७६२, २५७६ में मिलता है।

यह एक पत्र के रूप में है जिसे गुरु जी का अन्तिम ग्रंथ माना जाता है। कुछ विद्वानों ने इसका रचनाकाल संवत् १७६३ के लगभग माना है।[1] दशमेश जी

---

१. शब्दमूरति, रणधीर सिंह, पृष्ठ ३५

ने एक पत्र मुगल बादशाह औरंगजेब के पास भेजा था जिसका उल्लेख वंशावली-नामा और सरकारी पत्रों मे मिलता है। औरंगजेब के खास मुंशी मिर्जा अनायत उल्ला खान इसमी के सम्पादित किये अहकामी-आलमगिरी की एक प्रति उत्तर प्रदेश के रामपुर के राजकीय पुस्तकालय मे सुरक्षित है, जिसमें इसका उल्लेख मिलता है।[1] कवि सेनापति ने जो गुरु जी के दरबारी कवि थे उल्लेख किया है कि मुक्तसर के युद्ध के बाद गुरु जी ने औरंगजेब को यह पत्र भेजा था। यह समय लगभग वैसाख २१ के बाद जेठ या आषाढ़, संवत् १७६३ का है।[2]

चमकौर के युद्ध के पश्चात् जब औरंगजेब ने गुरुजी को आमंत्रित किया तो दीना से उन्होंने उसे यह पत्र लिखा था। जब गुरु जी औरंगजेब और पहाड़ी राजाओं की शपथ पर विश्वास करके आनन्दपुर छोड़ कर बाहर आ गये तो औरंगजेब की सेना ने उन पर आकस्मिक आक्रमण किया और उनकी अपार क्षति हुई, तभी गुरुजी ने भाई दयासिंह और भाई धर्मसिंह द्वारा बादशाह के अन्याय का उल्लेख करते हुए यह पत्र उसके पास भेजा। हस्तलिखित ग्रंथों में 'जफरनामा' के साथ ग्यारह हिकायतें भी एक साथ लिपिबद्ध मिलती हैं और प्रकाशित ग्रंथों में भी इस रचना को जफरनामा का अंग माना जाता है किन्तु कतिपय विद्वानों ने हिकायतों का जफरनामा से कोई भी सम्बन्ध नहीं माना है क्योंकि उनकी दृष्टि में दोनों का विषय-विवेचन एक दूसरे से भिन्न है और इनमें कोई पूर्वापर सम्बन्ध नहीं मिलता।[3] किन्तु प्रत्येक हिकायत के अन्त में औरंगजेब को उस कथा से शिक्षा लेने का उपदेश दिया गया है जिससे स्पष्ट होता है कि जफरनामा से संबद्ध रूप में हिकायतों को भी रखना समीचीन होगा।

जफरनामा फारसी भाषा की रचना है। यह दो भागों में विभाजित है जिसमें कुल १११ बैंत–छंद–मिलते हैं। पहले भाग में ईश्वर की सर्वव्यापकता और उसके विविध गुणों के स्मरण का उपदेश है। दूसरे भाग में दास्तान है जिसमें गुरु जी ने औरंगजेब से उसके अन्याय और अत्याचार का निर्देश युद्ध की घटनाओं द्वारा किया है। औरंगजेब की वीरता, धार्मिक कट्टरता आदि का उल्लेख करने के पश्चात् उसकी भर्त्सना की गई है कि तेरे द्वारा कुरान की शपथ लिये जाने पर भी तेरा तुर्क सरदार नाहनखाँ पठान, अन्य सरदार और दो शाहजादों ने आक्रमण किया किन्तु युद्ध करने के कारण वे मारे गये। तुझे न खुदा और न मुहम्मद पर विश्वास है। तूने अपने पिता, भाइयों की हत्या की और हिन्दुओं को मुसलमान

---

१. वही, पृष्ठ २२, २३

२. वही, पृष्ठ ३५

३. दि पोयट्री आफ दशम ग्रंथ, पृष्ठ १६८

बनाया। तू मुझसे मिलना चाहे तो कागड़ा के गाँव में आकर मिल तभी हम लोग तुझसे सन्धि की बातचीत करेंगे। तू अपनी प्रजा के साथ न्याय और उदारता का व्यवहार करके ईश्वर में विश्वास कर। तूने मेरे चार पुत्रों का वध करा दिया तो कोई बात नहीं, अभी तो मै तेरा वध करने के लिये जीवित हूँ। तू अभिमान को त्याग कर प्रजा की सेवा कर और ईश्वर को सर्वोपरि मान, वही तेरी रक्षा करने वाला है। जफरनामा की भाषा फारसी है। यद्यपि हिन्दी, संस्कृत के शब्दों का भी यत्र-तत्र प्रयोग हुआ है। दशमेश जी की इस रचना से फारसी भाषा के मुहावरों, शब्दों के प्रयोग हुए हैं। इस भाषा पर पूर्ण अधिकार होने के कारण ही गुरुजी ने इसमें पत्र लिखा और वह भी पद्य मे ही जो कि साधारण व्यक्ति के लिये संभव नहीं है। इसकी छंद-योजना, मसनवी लेखक फिरदौसी निजामी के द्वारा प्रयुक्त चौबोला छंद (फाकुलन) में हुई है। यह रचना यद्यपि फारसी में है किन्तु दशमेश जी की पत्र-शैली में लिखी महत्त्वपूर्ण कृति है।

हिकायतें

इसमें कुल ११ हिकायते वर्णित हैं। पहली हिकायत में ६१ बेत हैं और इसमें गुरु जी ने पौराणिक तथा अन्य कथाओं के वर्णन द्वारा औरंगजेब को उपदेश दिया है। राजा दिलीप छत्रपति राजा था और उसके चार पुत्र थे। चारों को उसने सोने की कुर्सियों पर बैठाया और अपने मंत्रियों से पूछा इनमें राज्य के योग्य कौन हैं। मंत्रियों ने इसमें अपनी असमर्थता प्रकट की। इस पर उसने एक पुत्र को दस हजार मस्त हाथी दिये। दूसरे को पाँच लाख घोडे, तीसरे को तीन लाख चाँदी और सोने से भरे ऊँट दिये। चौथे पुत्र को केवल मूंग और चने का एक एक दाना दिया। चौथा लड़का बुद्धिमान था उसने दोनो दानों को मिट्टी में बो दिया। दस वर्ष तक वह खेती करता रहा और उससे उसने अपार धन-संग्रह कर लिया। उसने दस हजार हाथी, पाँच लाख घोडे और सोने चाँदी से लदे तीन लाख ऊँट खरीद लिये और उन्हीं दोनों के नाम पर देहली, मुंगेर और पटना नगर बसाये। राजा ने जब अपने पुत्रों को बुलाकर उनसे हिसाब पूछा तो तीनों पुत्र खाली हाथ राजा के पास आये। चौथे पुत्र ने अपार धन, हाथी, घोड़े आदि राजा को भेट दिये। राजा ने तीनों पुत्रों को अपने राज्य से निकाल दिया और चौथे बुद्धिमान लड़के को राज्य का उत्तराधिकारी बनाया। अतः हे औरंगजेब, इस राजा की तरह तू भी बुद्धिमत्ता से व्यवहार कर।

दूसरी हिकायत में ५७ बेंत हैं। इसमें दशमेश जी ने चीन के एक राजा की कथा का वर्णन करके औरंगजेब को शिक्षा दी है। जब वह राजा मरणासन्न हुआ तो उसने मंत्रियों से कहा कि जो वीर, न्यायी, सच्चा, चरित्रमान, निर्भय व्यक्ति होगा

उसे ही राज्य का उत्तराधिकारी बना देना। इस पर उसके चारों पुत्रों को आश्चर्य हुआ। औरंगजेब, तुझे भी ऐसा ही उत्तराधिकारी बनना और बनाना चाहिये।

तीसरी हिकायत १४० बैंतों में वर्णित है। आरम्भ के चार बैंतों में ईश्वर-स्तुति है। इसमें एक राजकुमारी का वर्णन है जिसे उसके पिता ने स्वयंवर चुनने का अधिकार दिया। उसे एक राजा सुभट सिंह पसन्द आया किन्तु सुभट सिंह की स्त्री अत्यन्त सुन्दर थी इसलिये उसने उस राजकुमारी से विवाह करना अस्वीकार किया। इस पर उस राजकुमारी ने दृढ़ निश्चय किया कि वह उसी से विवाह करेगी जो उसे युद्ध में पराजित करेगा। राजा रणसिंह, राजा गजसिंह, जोधपुर, अम्बेर, और बूंदी आदि के राजा रणक्षेत्र मे आये किन्तु वहीं मारे गये। फिरंगी, अंग्रेज, चीन, हब्शी, पिलंद देश के राजा भी आये किन्तु मारे गये। केवल सुभटसिंह ही शेष रहा। उसने चार दिनों तक घमासान युद्ध किया। अन्त में राजकुमारी के तीर से अचेत हो कर गिर पड़ा। राजकुमारी उसे अचेत अवस्था में अपने महल में ले गई और होश आने पर उससे विवाह कर लिया। हे औरंगजेब ! तू भी सचेत हो जा, अन्यथा सुभटसिंह की तरह तेरी भी दशा होगी।

चौथी हिकायत में ५१ बैंत हैं। उसमें एक काजी की स्त्री की कथा का वर्णन है। वह अनुपम सुन्दरी थी। उसने एक युवराज सबलसिंह से विवाह करने की इच्छा प्रकट की। युवराज ने उसे काजी का सिर काट कर लाने की शर्त रखी और स्त्री ने वैसा ही किया किन्तु राजा ने उससे विवाह नहीं किया और कहा कि यदि तू अपने पति के साथ ऐसा विश्वासघात कर सकती है तो प्रेमी की भी यही दशा हो सकती है। इस पर युवराज से बदला लेने के लिये वह स्त्री काज़ी के पास जाकर सो गई और चिल्लाकर युवराज को पति का घातक बताया। उसे पकड़ कर जहाँगीर ने उस राजा को स्त्री के सिपुर्द कर दिया। जब जल्लाद उसे मारने लगे तो उसने उस स्त्री की बात मान ली। स्त्री सब सामान लेकर कावा के बहाने जाकर युवराज के साथ रहने लगी। हे औरंगजेब तुझ पर मुझे अफसोस नहीं है क्योंकि तेरे पूर्वज भी तेरी तरह ही अन्यायकारी रहे हैं।

पाँचवीं हिकायत ४२ बैंतों में वर्णित है। उत्तर और दक्षिण के दो बादशाह एक साथ शिकार को गये। दोनों में युद्ध हो गया। उत्तर के बादशाह की विजय हुई और वह दक्षिण के बादशाह को पकड़ कर अपने साथ ले गया। दक्षिण के राजा के मंत्री की पुत्री शाही पोशाक पहन कर उत्तर के बादशाह के पास गई और अकाल पुरुष की सहायता से उसे बादशाह के कारावास से मुक्त कर अपने साथ दक्षिण में ले आई। हे औरंगजेब ! तू भी उस अकाल पुरुष पर विश्वास कर और सत्संग कर।

छठी हिकायत में ४९ बैंत हैं। एक राजा अपना राज्य एक ब्राह्मण को दे गया। ब्राह्मण ने मृत्यु के समय वही राज्य उसी राजा की पुत्री को सौंप दिया। राजकुमारी

का एक जौहरी से प्रेम था। वह गर्भवती हुई। नवजात शिशु को एक बक्स में बन्द कर साथ में हीरे जवाहरात रख कर उसे नदी में बहा दिया। निस्सन्तान धोबी ने उसका पालन-पोषण किया। एक दिन धोबी की लड़की उसे रानी के महल में ले गई। रानी ने उसे पहचान लिया और उसे अपना राज्य सौंप दिया। वह दारा था और उसका बेटा दारा ईरान का बादशाह हुआ। हे औरंगजेब! तू भी सोच ले, तू किसकी सन्तान है। ईरान मे तो पिता-पुत्री का विवाह हो जाता है। वहाँ का इतिहास इस बात का साक्षी है।

सातवीं हिकायत में ४७ बेत हैं। इसमे बादशाह अजूम की कथा वर्णित है। उसकी सुन्दर स्त्री किसी पर-पुरुष पर आसक्त हो गई और उसने अपने दो युवा पुत्रों को शराब पिला कर उनका वध किया और रोती चिल्लाती शिव जी के पास पहुँची। शिव ने उसकी व्यथा सुनकर उसे युवती बनने और प्रेमी के देश पहुँचने का वर दिया। वह युवती होकर अपने प्रेमी की पटरानी बन गई और उसके अपराध को कोई जान न सका। हे औरंगजेब! तूने भी इसी प्रकार पिता, भाई और पुत्रों को कैद करके उनका वध किया है।

आठवीं हिकायत में ४४ बेत हैं। एक फिरंगी बादशाह की रानी जौहरी के पुत्र पर आसक्त हुई और उसे स्त्री वेष में प्रतिदिन घर बुला लेती थी। एक दिन बादशाह उसे देख कर मोहित हो गया और दासी को उसका पता करने के लिये भेजा। राजा उसे रानी के साथ सोया हुआ देखकर लौट गया। अपना भेद खुल जाने के भय से रानी से कुछ नहीं पूछा। हे औरंगजेब। तू भी इसी तरह मूर्ख है।

नवीं हिकायत में १७९ बेत हैं। इसमें बादशाह मायद्रा के पुत्र और उसके वजीर की पुत्र की कथा वर्णित है। दोनों मौलाना सूम के पास पढ़ते थे और वहीं प्रेम-बन्धन में बंध गये। बादशाह ने दोनों को नावों पर बैठाकर नदी के गहरे पानी में बहा दिया। वे हब्श देश में पहुँच गये। वहाँ के बादशाह ने उसे अपना मंत्री बनाया। तत्पश्चात् वज़ीर की पुत्री सेना सहित राजा मयद्र के राज्य में गई और वजीर को मारकर बादशाह को कैद करके अपने संग ले गई। बजीर की बेटी रानी और शहजादा राजा हुआ। उन निकम्मों ने इस प्रकार राज्य प्राप्त किया। हे औरंगजेब, इससे सीख ले कि ईश्वर की कृपा से निकम्मे भी राज्य प्राप्त कर लेते हैं।

दसवीं हिकायत ६० बैतों में वर्णित है। इसमें कालिंजर के राजा के पुत्र और साहूकार की पुत्री के प्रेम का वर्णन है। राजकुमार ने कहा कि यदि तू बादशाह शेरशाह के अस्तबल से दो घोड़े ले आए तो वह तुझसे विवाह कर लेगा। वह लड़की चतुरता से किले में पहुँच गई और सात पहरेदारों को मारकर वहाँ से दो घोड़े ले आई। शेरशाह ने घोड़े लौटाने वाले के लिये इनाम घोषित किया। लड़की

ने दुबारा 'वैसा ही कृत्य किया और बहुत धन प्राप्त किया। हे औरंगजेब! तू तो स्त्रियों से भी गया गुजरा है क्योंकि अपने प्रण का पालन नहीं कर सका।

अन्तिम हिकायत ग्यारहवीं २१ बैंतों में वर्णित है। इसमें अफगान रहीम खाँ की स्त्री अफगान हसनखान पर मुग्ध होकर उसे घर में कई महीने तक छिपा कर रखती है। रहीम खाँ को पता चलने पर स्त्री ने हसन खाँ का वध करके उसका मास रहीम खाँ को खिलाया। जिसने इसकी सूचना दी उसे भी मरवा दिया। इस प्रकार दो हत्याएँ कीं। हे औरंगजेब तू जो इतना अत्याचार कर रहा है तो तेरा क्या होगा?

पहले कहा जा चुका है कि वह पत्र गुरुजी ने दीना से दयासिंह और भाई धर्मसिंह द्वारा औरंगजेब के पास भेजा था और उन्हीं के हाथ ये ग्यारह हिकायतें भी भेजी थीं। हिकायतों के विवरण से यह भी स्पष्ट है कि गुरुजी ने राजाओं के विश्वासघात और त्रिया-चरित्र आदि के उदाहरण देकर औरंगजेब को सत्य-मार्ग अपनाने का उपदेश दिया है। इसमें कुछ हिकायतें पाख्यान चरित्र से ली गई हैं। इनकी भाषा व्रज और फारसी मिश्रित हैं; जैसे सच्चे पातशाह, जबदेन, अकाल आदि। इससे ज्ञात होता है कि गुरुजी ने दोनों भाषाओं का सम्मिलित प्रयोग करके दोनों धर्मों के भेद-भाव को मिटाने का सफल प्रयत्न किया है।

इस प्रकार दशमेशजी की रचनाएँ न केवल विषय-वैविध्य वरन् शैलीगत सौंदर्य की दृष्टि से भी हिन्दी-साहित्य में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। उस सामन्ती वातावरण में जब केवल शासकों की विलासिता को उद्दीप्त करने के लिये कवियों की सारी रचनाएँ मुक्तक के रूप में प्रकट हो रही थीं या आचार्यत्व की कोरी प्रवंचना में रीति की रूढ़ियों में जकड़ी हुई थीं, दशमेशजी की प्रबंधात्मक, नीति-उपदेशपरक एवं मुक्तक रचनाएँ स्वान्तःसुखाय ही नहीं वरन् जन-हिताय भी, अपने महान् दायित्व को वहन करने में सर्वथा समर्थ सिद्ध होती हैं। उनमें शृङ्गार के उज्ज्वल स्वरूप, भक्ति-भाव विह्वल स्थिति, वीरत्व के ओजपूर्ण चित्रण एवं उपाख्यानों की उदात्त उपदेशपरक परिणति का इतने सुन्दर रूप में संयोजन हुआ है जिसका अन्यत्र मिलना कठिन ही है। साथ ही, वे परम्परा की पुष्टता एवं अज्ञान-विनाशिनी प्रवृत्तियों का सम्यक् प्रतिनिधित्व भी करती हैं।

चतुर्थ अध्याय

काव्य-कला

प्रतिपाद्य वस्तु

पिछले अध्याय में गुरु गोविन्दसिंह की विविध विषय की रचनाओं का काल-क्रमानुसार संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इन रचनाओं के वर्ण्य-विषय का विभाजन निम्नलिखित दृष्टियों से किया जा सकता है—

१. भक्ति तथा आध्यात्मिक भावना

२. शृङ्गार तथा प्रेम

३. वीर तथा अन्य सहकारी रस

४. नीति-उपदेश

५. बाह्य दृश्य-चित्रण

गुरु गोविन्दसिंह की रचनाएँ तद्युगीन राजनीतिक एवं धार्मिक परिस्थितियों से प्रेरित थीं, यह पहले कहा जा चुका है। उन्होंने धार्मिक आवरण देकर खालसा-पंथ की स्थापना की थी तथा विधर्मियों एवं आततायियों से प्रसादित हिन्दू-धर्म के रक्षार्थ अनेक युद्ध किये थे। परिणामस्वरूप उनकी रचनाओं में भी भक्ति-भावना के साथ-साथ वीर-भावना की अभिव्यक्ति यथेष्ट रूप में मिलना स्वाभाविक है। राजनीतिक युद्धों का संक्षिप्त वर्णन विचित्र नाटक में मिलता है। चौबीस अवतार, चंडी-चरित्र, चंडी दी वार, पाख्यानचरित्र में अनेक स्थलों पर पौराणिक युद्धों के वर्णन आये हैं। शस्त्रनाममाला में युद्धादि के विविध शस्त्रों का, उनके गुणों सहित दृष्टिकूट शैली में वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

सिक्ख गुरु-परम्परा में अंतिम गुरु के पद पर अधिष्ठित होने के कारण गुरु गोविन्द सिंह सिख-धर्माचरण के प्रतिकूल कैसे जाते? अतः उनकी रचनाएँ धार्मिक भावों से ओतप्रोत हैं। उनकी निर्गुण ईश्वर-भक्ति का निरूपण जापु, अकाल-स्तुति, ज्ञानप्रबोध, हजारे दे शब्द, सवैये में विशद रूप में हुआ है। पौराणिक ग्रंथों में चंडी-चरित्र, चंडी दी वार, वार श्री भगवती की एवं चौबीस अवतारों में धार्मिक भावों की प्रधानता मिलती है। गुरुजी ने अपनी रचनाओं का विषय ही ऐसा चुना जिसमें भक्ति और वीर-भावों की अभिव्यक्ति अत्यन्त स्वाभाविक थी। चंडीचरित्र के तीनों ग्रंथों में शक्ति-उपासना

और वीर-भावना की अभिव्यक्ति स्वतः ही हो गई है। इसी प्रकार भगवान राम, कृष्ण आदि ईश्वरावतारों के वर्णन में भी वीर-भाव, मधुर-भाव, भक्ति-भाव आदि का सम्मिश्रण स्वाभाविक ही है। पाख्यान-चरित्र में भी अनेक कथाएँ धार्मिक एवं वीर-भावों से प्रेरित हैं।

ईश्वर, जीव, जगत, प्रकृति, मोक्ष आदि से सम्बन्धित दार्शनिक-भावों की अभिव्यक्ति जापु, अकाल-स्तुति, ज्ञान-प्रबोध, हजारे के शब्द, सवैया में मुख्य रूप से तथा चौबीस अवतार, चंडी चरित्र, विचित्र नाटक, पाख्यान-चरित आदि में भी अनेक स्थलों पर हुई है। गुरु गोविंदसिंह ने जहाँ पर, परमात्मा के निराकार रूप का विस्तृत विवेचन किया है, वहाँ उन्होंने चौबीस अवतार ग्रंथ में ईश्वर के साकार रूप का मी यथेष्ट गान किया है, यद्यपि इसमें उनकी निजी आस्था प्रकट नहीं होती।

प्रेमाख्यानो का वर्णन चौबीस अवतार और पाख्यान चरित में मिलता है। इसमे हिन्दू तथा मुसलमान दोनों के ही प्रेमाख्यान वर्णित हैं। राधा-कृष्ण, उषा-अनिरुद्ध, नल-दमयन्ती, युसुफ जुलेखा, सोहनी-महीवात आदि प्रेमाख्यानों में प्रेम का विशद वर्णन मिलता है। पाख्यान चरित मे प्रेम-क्रीड़ा सम्बन्धी सैकड़ों कल्पित पाख्यान भी मिलते हैं। अनेक स्थलों पर तो नगर, राजा तथा रानी के नाम सानुप्रासिक ढंग से दिये गये हैं जिनमें कल्पित नाम स्वतः ही स्पष्ट हो जाते हैं।

नीति-उपदेश के सोदाहरण उल्लेख गुरु जी के फारसी के ग्रंथ जफरनामा में मिलते हैं। इसमें उन्होंने कई कल्पित और पौराणिक कथाओं को प्रस्तुत करके, औरंगजेब की कुटिल नीति का खंडन और इसे सन्मार्ग पर चलने के लिये प्रेरित किया है। पाख्यानचरित्र मे भी दुष्टास्त्रियों के चरित्रों का वर्णन करके उनसे बचने के लिये नीति-उपदेश संबंधी बातों का स्थल-स्थल पर संकेत किया गया है। अन्यत्र भी सवैये, कवित्त, पद आदि में उपदेश दिये गये हैं।

गुरु गोविन्दसिंह की विविध रचनाएँ प्रबन्धात्मक तथा मुक्तक कोटियों में विभाजित की जा सकती हैं जिसका उल्लेख पिछले अध्याय मे हो चुका है। इसके पूर्व कि इन रचनाओं का विभाजन और विवेचन इन रूपों में किया जाय, इन कोटियों के लक्षण और विशेषताओं पर विचार कर लेना समीचीन होगा।

यदि काव्य की परिभाषाओं का विहंगावलोकन किया जाय तो भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों की भिन्नता एवं विविधता की वास्तविक स्थिति ज्ञात हो जाती है। इसलिये यहाँ उन पर संक्षिप्त विचार करना सर्वथा उचित होगा।

सर्वप्रथम भरतमुनि ने रस-तत्त्व को प्रमुखता प्रदान की और विभाव, अनुभाव,

व्यभिचारी के संयोग से रस-निष्पत्ति स्वीकार की।[१] इसी रस-तत्त्व का समर्थन करते हुए रुद्रट ने रस परिवार में प्रेयस और शान्त दो और रसों को सम्मिलित किया।[२] अभिनवगुप्त एवं आचार्य विश्वनाथ भी काव्य में रस-तत्त्व को प्रमुखता देते हैं।[3] कतिपय आलोचकों ने जिनमें भामह, उद्भट और दंडी का विशेष स्थान है, काव्य मे अलंकार-तत्त्व को प्रधान पद प्रदान किया।[४] आचार्य वामन ने रीति को काव्य की आत्मा घोषित किया[५], जबकि आचार्य कुंतक ने वक्रोक्ति अर्थात् कथन के चमत्कार पूर्ण ढंग को ही काव्य का 'जीवित' प्रमाणित किया।[६] आचार्य आनन्दवर्धन ने ध्वनि को काव्य की आत्मा[७] का पद प्रदान किया पर उनके ध्वनि सिद्धान्त तथा उससे संबद्ध रस, रीति, अलंकार आदि का विवेचन एवं ध्वनि प्रकारों में रस, ध्वनि की प्रमुखता[८] का निर्णय समझ लेने पर, इसमें संदेह नहीं रह जाता कि ध्वनि-सिद्धात के माध्यम से वे रस को ही पुनः प्रतिष्ठित करनेवाले थे। पंडितराज जगन्नाथ ने रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द को काव्य की संज्ञा प्रदान करके[९] रस को ही प्राधान्य दिया।

---

१. विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः,
भरत नाट्यशास्त्र, अध्याय ६, श्लोक ३२५, पृष्ठ २७२

२. हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास, डा० भगीरथ मिश्र, पृष्ठ २०

३. वाक्यं रसात्मकं काव्यम् ॥
डा० विश्वनाथ, साहित्य दर्पण, पृष्ठ २३

४. काव्यशोभाकरान् धर्मानलंकारान् प्रचक्षते।
आ० दंडी, काव्यादर्श, परिच्छेद २, श्लोक १, पृष्ठ ४४

५. रीतिरात्मा काव्यस्य। विशिष्ट पदरचना रीतिः। विशेषो गुणात्मा।
आ० वामन० काव्यालंकार, सूत्रवृत्ति, अधिकरण १, अध्याय २,
सूत्र ६, ७, ८, पृष्ठ १८, १९

६. वक्रोक्ति जीवितम,
आ० कुंतक, हिन्दी वक्रोक्ति जीवित ५, पृष्ठ १

७. काव्यस्यात्माध्वनिरिति···।
आनंदवर्धन, ध्वन्यालोक, प्रथम उद्योत, कारिका १, पृष्ठ ५

८. तदित्थं रसभावाद्यान्तर्येण काव्यार्थानामनंत्यम्...।
आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक, चतुर्थ उद्योत, पृष्ठ ४६१

९. रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्।
पंडितराज जगन्नाथ, रसगंगाधर, पृष्ठ ४

इसके अनन्तर केवल इन्हीं रस, रीति अलंकार, गुण प्रभृति तत्त्वों के विषय में प्रायः पिष्टपेषण ही चलता रहा और अद्यावधि किसी न किसी रूप में काव्यगत रस को प्रधान स्थान प्राप्त है। वस्तुतः भारतीय दृष्टि के अनुसार रस, काव्य की आत्मा तथा गुण, रीति, अलंकार, छंद आदि उसके बाहरी आवरण मात्र हैं।

पृथक् मत रखते हुए भी, पाश्चात्य विद्वानों ने काव्य के अंतरंग एवं बहिरंग पर सम्यक् ध्यान केन्द्रित किया है। मेथ्यू आर्नोल्ड ने काव्य को जीवन की समीक्षा माना[1] जबकि सेमुअल जान्सन ने उसे तर्काश्रित कल्पना के सहारे, सत्य से आनंद को संयोजित करने वाली कला घोषित किया।[2] यदि विलियम वर्ड्सवर्थ ने काव्य को सबल अनुभूतियों का स्वाभाविक उद्रेक माना है जिसका स्रोत स्थिरता के समय में स्मृत मनोवेगों से टूटता है[3] तो ले हंट ने कल्पनामय चित्रांकन तथा भाषागत ऐक्य में वैविध्य के संयोजन की विशिष्टता से संयुक्त उस वितृष्णा के कथन को काव्य बतलाया है जो सत्य, सुन्दरता और बल के लिए हो।[4] इसी प्रकार, सत्य, सौन्दर्य, आनन्द तथा यथार्थ आदि विविध तत्त्वों को काव्य मे समाविष्ट करने के पाश्चात्य प्रयत्न अनवरत चलते रहे हैं।

इन सभी प्रयत्नों के बावजूद पाश्चात्य दृष्टिकोण भारतीय परम्परा की सुदीर्घता के सामने बौना दिखायी पड़ता है। वस्तुतः पाश्चात्य और भारतीय परंपराएँ मूलभूत रूप से प्रायः समान हैं। अंतर इतना ही है कि पाश्चात्य विचारधारा का प्रासाद केवल कल्पना के स्तंभ पर टिका हुआ है जबकि भारतीय विचारधारा को जाने कितने नये और पुराने स्तंभ युगों से रोके हुए हैं। दूसरी बात, भारतीय परिवेश में कवि के व्यक्तित्व अथवा वैयक्तिकता को विशेष महत्त्व न देकर, समष्टिगत

1. Poetry is at bottom a criticism of life

   Mathew Arnold: Essays in criticism, writers on writing, P- 21

2 Poetry is the art of uniting pleasure with truth, by calling imagination to the help of reason.

   Samuel Johnson Life of Milton, writers on writing p. 17.

3 Poetry is the spontaneous overflow of powerful feelings, it takes its origin from emotion recollected in tranquility .

   Willam Wordsworth : Preface to lyrical Ballads, writers on, writing, page 18.

4. Poetry is the utterance of a passion for truth, beauty and power, embodying and illustrating its conception by imagination and fancy and modulating its language on the principle of variety in unity. Leigh Hunt.

काव्य-शास्त्र, डा० भगीरथ मिश्र, पृष्ठ ११

स्थिति को पसंद किया गया, जबकि पाश्चात्य परिवेश वैयक्तिकता को ही प्रमुख बल देता है। सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर यह बात प्रकट हो जाती है कि संस्कृत-काव्य-शास्त्र के विषयों के अंतर्गत सभी बाते आ जाती हैं। इनमें काव्य की आत्मा, स्वरूप, प्रयोजन, कारण, गुण, अलंकार, रस, ध्वनि, रीति, दोष, भाषा तथा कवि-शिक्षा का वर्णन है।[१]

प्राचीन हिन्दी-काव्य में महाकवि चन्द का काव्यादर्श निम्नलिखित छंद में द्रष्टव्य है—

उक्ति धर्म विसालस्य, राजनीति नवं रसं।
षट्भाषा पुराणं च, कुरानं कथितं मया॥[२]

राजनीति, धर्म तथा नवरसों का विशद वर्णन रासो की विशेषता बताई गई है। भाषावैविध्य भी उसका एक प्रमुख गुण है। इसमें तद्युगीन रीति-नीति आदि का विशद् समुच्चय उस युग की लोक-भाषा में प्राप्त होता है। गुरु गोविन्दसिंह की रचनाओं में भी उक्त काव्यादर्श भरपूर रूप में मिलता है। उन्होंने काव्य के अंतरंग और बहिरंग दोनों पदों पर समान दृष्टि रखी है। जीवन का शायद ही कोई ऐसा पक्ष हो जो उनके काव्य में न आया हो। संस्कृत, फारसी, पंजाबी, व्रजमिश्रित अलंकृत भाषा-शैली ओर विविध छंदानुबंध रचनाएँ उनकी स्वानुभूति की परिचायक हैं।

काव्य के मुख्य दो भेद मान्य हैं—प्रबन्ध-काव्य और मुक्तक-काव्य। प्रबन्ध-काव्य के दो प्रमुख भेद—महाकाव्य और खंडकाव्य हैं तथा मुक्तक के दो भेद प्रगीत मुक्तक और प्रकीर्णक किये गये है। प्रबन्ध-काव्य के अंतर्गत एक और भेद एकार्थ-काव्य दिया जाता है जो प्रबन्ध और खंड के बीच की कड़ी है।[३] महाकाव्य किसी महापुरुष का पूर्ण जीवन आठ या अधिक सर्गों मे प्राकृतिक दृश्यो एवं कथानक की सुश्रृंखलित धारा के साथ वर्णित होता है। इसमें किसी एक रस को प्रधान और अन्य रसों को गौण रूप में अपना कर प्रायः एक सर्ग मे एक ही छंद का प्रयोग करके वर्णित किया जाता है। आधुनिककालीन समीक्षा में सर्गों की संख्या और छंद सम्बन्धो कोई निश्चित और कठोर नियम नहीं है। इसके कथानक में विविधता, विस्तार, पूर्णता और सुसंगठन होना चाहिए।[४] खडकाव्य ऐसा पद्यबद्ध कथा-काव्य है जिसके कथानक में इस प्रकार की एकात्मक अन्विति हो

१. हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास, डा० भगीरथ मिश्र, पृष्ठ ३३
२. संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो, सं० पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी, आदि पर्व, छंद सं० २५
३. वाङ्मय विमर्श, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृष्ठ ८
४. हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास, पृष्ठ ४२१

कि उसमें अप्रासंगिक कथाएँ सामान्यतया अन्तर्मुक्त न हो सकें। कथा में एकदेशीयता हो और कथा-विन्यास में क्रम आरम्भ, विकास, चरम सीमा और निश्चित उद्देश्य में परिणति हो।[1] अतः खंडकाव्य के आकार में लघुता स्वाभाविक है। खंडकाव्य का प्रतिपाद्य कोई चरित्र, घटना-प्रसंग, परिस्थिति विशेष या कोई सामयिक अथवा जीवन-दर्शन संबंधी सत्य होता है।[2] इसका कथानक पौराणिक, ऐतिहासिक, कल्पित, प्रतीकात्मक कोटि का भी हो सकता है। इसमें छंदों और सर्गों की विविधता नहीं होती है। मुक्तक-काव्य में कथा का धारा-प्रवाह रूप नहीं मिलता। इसका प्रत्येक छंद या पद स्वच्छंद और पूर्ण होता है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है दो भेद, प्रगीत मुक्तक और प्रकीर्णक होते हैं। प्रगीत मुक्तक में गेय रूप और वैयक्तिकता की प्रधानता होती है। इसीलिये इसे गीतकाव्य भी कहते हैं। प्रकीर्णक में कवि भाव-वर्णन या वस्तु-वर्णन निजी रूप में न करके दर्शक के रूप में करता है और ये गेय भी होते हैं। छन्दबद्ध अगेय प्रकीर्णक का प्रचलित नाम कवित्त है जिसमें सवैया, दोहा, छप्पय आदि छन्द आते हैं।[3]

गुरु गोविन्दसिंह का काव्य उपरोक्त सभी कोटियों का प्रतिनिधित्व करता है। चंडीचरित्र उक्ति-विलास, चंडाचरित्र, वार श्री भगवती जी की, चौबीस अवतार के अन्तर्गत रामावतार, कृष्णावतार, विचित्र नाटक को प्रबन्ध-काव्य की कोटि में नहीं रखा जा सकता है। क्योंकि इनमें प्रबन्ध-काव्य के समस्त लक्षणों की उपलब्धि नहीं होती, यद्यपि कथा का विस्तार पूर्ण एवं सुसम्बद्ध रूप में प्राप्त होता है। अतएव इन्हें प्रबन्धात्मक कोटि का काव्य कहना अधिक उचित होगा। जापु, अकाल स्तुति, ज्ञान-प्रबोध, हजारे के शब्द, सवैया, पद आदि रचनाएँ मुक्त-काव्य के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

पहले कहा जा चुका है कि गुरु गोविन्दसिंह के पूर्व हिन्दी-साहित्य का रीतिकाल अपने पूर्ण उत्कर्ष पर पहुँच गया था। रीतियुगीन सभी आचार्यों ने काव्य में संस्कृत आचार्यों के अनुसार रस, अलंकार, ध्वनि, गुण, रीति आदि की विशेषताओं का उल्लेख किया था। इनमे से कई तो आचार्य और कवि दोनों ही थे और उन्होंने रीतिबद्ध पद्धति के अनुसार अपना काव्य प्रस्तुत किया था। उन्होंने अपनी रचनाओं में रस, ध्वनि, अलंकार का विस्तृत विवेचन किया है। महाकवि देव की रचनाओं मे रस, अलंकार, ध्वनि, गुण, रीति आदि का भी एक साथ विवेचन मिलता है। उस काल के कवियों ने श्रृंगाररस को प्रधान और वीर, शान्त आदि

---

१. हिन्दी साहित्य कोश, पृष्ठ २४८

२. वही, पृष्ठ २४८

३. हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास, पृष्ठ ४२१।

को गौणरूप में अपनाया है। गुरु गोविन्दसिंह के काव्य में वीर और शान्त रस की प्रधानता मिलती है; किन्तु तत्कालीन प्रभाव के फलस्वरूप श्रृंगाररस का भी यथेष्ट वर्णन हो गया है। भक्ति सम्बन्धी रचनाओं में वीर और श्रृंगार दोनों भावों की सफल अभिव्यक्ति हुई है। वह शान्त, वीर और श्रृंगार की त्रिवेणी है। नीति-उपदेश सम्बन्धी काव्य मे भी श्रृंगार का स्फुट रूप मिलता है। यदि यह कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी कि गुरु गोविन्दसिंह को अपनी रचनाओं में जहाँ कहीं भी अवसर मिला है, उन्होंने श्रृंगार का वर्णन त्याज्य नहीं समझा। पंथ-विशेष के भक्त-कवि होते हुए भी उन्होंने अपने को सम्प्रदाय की सीमा में बाँधा नहीं। वे अपनी काव्य-उदारता और व्यापक दृष्टिकोण का परिचय बराबर देते चलते हैं। काव्य की उपरोक्त सभी विशेषताएँ उनकी रचनाओं में द्रष्टव्य हैं। उनमें काव्य-कला उत्कृष्ट रूप में निखरी है। उनकी प्रबन्ध-पटुता, भावगाम्भीर्य, भाषा-लालित्य, अलंकार-योजना, छन्द-वैविध्य स्पृहणीय है। यहाँ पर संक्षेप में इनका विवेचन प्रस्तुत किया जायेगा। दशमेश जी की भक्ति एवं आध्यात्मिक भावना का विस्तृत विवेचन इस प्रबन्ध के अन्तिम अध्याय कवि की दार्शनिक तथा आध्यात्मिक भावना के अन्तर्गत प्रस्तुत किया गया है। यहाँ पर उसका निरूपण पिष्टपेषण ही होगा। अतएव उस युग की सर्वप्रधान प्रवृत्ति के अनुसार श्रृंगार का विवेचन पहले दिया जा रहा है।

श्रृंगार-रस

श्रृंगार को रसराज की उपाधि दी गई है क्योंकि इसका स्थायीभाव 'रति' विश्व में व्याप्त मिलता है। आचार्य भरतमुनि तो लोक में जो भी पवित्र, मेध्य, उज्ज्वल और दर्शनीय है, उसे श्रृंगार में परिगणित करते हैं।[1] श्रृंगार के स्वरूप के विषय में आचार्य विश्वनाथ का अभिमत है कि 'श्रृंग' कामाविर्भाव और 'श्रृंगार' ऐसे 'कामाविर्भाव से संभूत होना' है। इसके आलंबन प्रायः उत्तम प्रकृति के प्रेमीजन ही होते हैं।[2]

इसी प्रकार अन्य संस्कृत-आलोचकों एवं हिन्दी के रस-मर्मज्ञ-आचार्यों के अभिमतों पर विचार किया जाय तो स्पष्ट हो जायगा कि श्रृंगार की महत्ता अत्यधिक

---

१. यत्किंचिल्लोके शुचि मेध्यमुज्ज्वलं दर्शनीयं वा तच्छृङ्गारेणोपनीयते।

नाट्यशास्त्र, अध्याय ६, पृष्ठ ३००।

२. श्रृंगं हि मन्मथोद्भेदस्तदागमनहेतुकः।
उत्तमप्रकृतिप्रायोरसः श्रृंगार इष्यते॥

साहित्यदर्पण, परिच्छेद ३५, श्लोक १८३, पृष्ठ २३०।

व्यापक है। हिन्दी के आचार्य देव का तो कहना है कि नौ रसों का कथन करना तो प्रमाद है, क्योंकि शृंगार ही सकल रसों का मूल है।[1] इसकी महिमामयी सत्ता भी अन्य रसों की अपेक्षा न केवल विस्तृत वरन् उच्च धरातलवाली भी है। नायक-नायिका के रूप-सौंदर्य, नखशिख, प्रेम के मानसिक उद्योगों, संयोग, विप्रलंभ की विविध अवस्थाओं, मान आदि के वर्णन शृंगार के अन्तर्गत विशद रूप में मिलते हैं।

रूप-सौंदर्य

गुरु गोविन्दसिंह ने नायक-नायिका के नखशिख का कोई शास्त्रीय वर्णन नहीं किया है। केवल नायक-नायिका के कतिपय अंगों के सौंदर्य को आलंकारिक ढंग से चित्रित कर दिया। चंडीचरित्र, कृष्णावतार, रामावतार, पाख्यान-चरित में रूप-वर्णन के अनेक स्थल कवि की सौंदर्यानुभूति के परिचायक हैं।

चंडीचरित्र जैसी वीर-रस-प्रधान रचना में चंडिका के रूप-सौंदर्य का वर्णन करके दशमेश जी ने अपनी काव्य-कुशलता का परिचय दिया है :

> कांचन सो तन खंजन से द्रिग कंजन की सुखमा संकुची है।
> लै करतार सुधाकर में मदमूरत सी अंग अंग रची है॥
> आनन की सर को सस नाहिन और कछू उपमा न बची है।
> सृंग सुमेर के चंड विराजत मानो सिंहासन बैठि सची है॥

चंडिका की रूप-माधुरी के तीव्र प्रभाव से दैत्य भी मूर्छित हो जाता है :

> किसी काज को दैत्य इकु आयो है तिह ठाइ।
> निरख रूप दुर चंडिको गयो मूर्छा खाइ॥

वही दैत्य जाकर चंडिका के नखशिख का वर्णन शुंभ से इस प्रकार करता है :

> मीन मुरझाने कंज खंजन खिसाने अलिफिरत दीवाने होले जित तित ही।
> कीर औ कपोत बिंब कोकला कलापी बन लूटै फूटै फिरै मन पैनहुन कितही।
> दारप चटक गयो पेख दसननि पांति रूप ही की कांति जग फैल रही सितही।
> ऐसी गुन सागर उज्जागर सुनागर है लीनो मन मेरो हरि नैन कोर चितही॥

यहाँ पर कवि ने चंडिका के सौंदर्य का वर्णन परंपरागत रूप में किया है। मीन, कंज, खंजन, कीर, कपोत, बिम्ब, कोकिला, दाड़िम चंडिका के अंगों की रूप-माधुरी के समक्ष दीन-हीन दिखाई पड़ते हैं। चंडी-चरित्र में अन्य भी सौंदर्य की ऐसी ही विशद व्यंजना मिलती है।

---

१. (अ) हिन्दी साहित्य-कोश, पृष्ठ ७७२।
(आ) भूलि कहत नवरस सुकवि, सकल मूल सिंगार।
भवानी विलास, प्रथम विलास ५।

ज्ञान प्रबोध में राजा जनमेजय के दासी-प्रेम के प्रसंग में दासी के रूप-सौंदर्य का कवि ने आलंकारिक ढंग से सुंदर वर्णन किया है :

> किधौं राग माला रची रंग रूप,
> किधौं स्त्री राजा रची भूप भूप।
> किधौं नाग कन्या किधौं बासवी है,
> किधौं संख की चित्रनी पद्मनी है ॥[1]

कृष्णावतार के अन्तर्गत पूतना की कृत्रिम रूप छटा की कवि की दृष्टि से ओझल नहीं हुई है :

> काजर नैन दिये मन मोहत इंगुर की बिन्दी जु बिराजै।
> टांड भुजान बनी कटि केहरि पायन नूपुर की धुनि बाजै।
> हार गरे मुक्ताहल के गई नन्द दुआरे कंस के काजै।
> बास सुबास बसी सब ही तन आनन में ससि कोटिक लाजै ॥[2]

कृष्णावतार में विशेषतया राधा और कृष्ण की रूप-छटा ही अनेक स्थलों पर वर्णित है। कृष्ण की रूप-माधुरी और मधुर वाणी से समस्त गोपियाँ मोहित होकर किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाती हैं :

> कमल सो अंग कुरंग ताके बारे नैन कटि,
> सम केहरी मिनाल वाहे ऐन है।
> कोकिल सो कंठ कीर नासका धनुख भउहैं,
> बानी सुरसर जाहि लागे नही चैन है।
> त्रीअन को मोहति फिरति ग्राम आस पास,
> बिरहन के दाहवे को जैसे पतरैन है।
> पुन मंद मति लोग कछु जानत न भेद याको,
> ऐते पर कहे चारवारो स्याम छेन है ॥[3]

कृष्ण ज्यों-ज्यों बड़े होते हैं उनका रूप-सौदर्य और निखरता है और ब्रज-बालाएँ उनके आकर्षक रूप को देखकर काम-विह्वल हो जाती हैं :

> काम के रूप कलानिधि से मुख कीर से नाक कुरंग से नैनन।
> कंचन सो तन दारन दाँत कपोत से कंठ सुकोकल बैनन ॥

---

१. ज्ञान प्रबोध, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छंद संख्या १९१।

२. कृष्णावतार, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छंद संख्या ८४।

३. वही, छंद संख्या १९०।

कान्ह लग्यो कहने तिन सो हसि के कवि स्याम सहायक नैनन।
मोहि लियो सबही मन मेरो सुभौंह नचाइ तुम्हें संग सैनन ।।[1]

कवि ने शुक्लाभिसारिका राधा की छवि का वर्णन भी चित्ताकर्षक ढंग से किया है :

सेत धरे सारी वृखभान की कुमारी जस ही को,
मनोवारी ऐसी रची है न को दई।
रंभा उर्वसी और सची सु मंदोदरी पै,
ऐसी प्रभा काकी जग बीच न कछु भई।
मोतिन के हार गरे हार रुच सो सुधार,
कानजू पै चली कवि स्याम रस लई।
से तै साज साज चली सावरें की प्रीत काज,
चाँदनी में राधा मानों चाँदनी सी ह्वै गई ।।[2]

राधा के चन्द्रिका के बीच तिरोहित हो जाने की उपमा द्वारा उसके रूप-सौंदर्य को कवि ने पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया है। न केवल राधिका वरन् समस्त गोपियों की रूप-छटा अवलोकनीय है :

लोचन है जिनके सु प्रभा घर आनन है जिनको सम मैना।
कै कै कटाछ चुराए लयो मन तिनको जोऊ रच्छक धैना।
केहरि सी जिनकी कट है सुकपोत सुकंठ सुकोकिल बैना।
ताहि लियो हरि के हरिको मन भौंह नचाइ नचाइकै नैना ।।[3]

राम-अवतार में गुरु गोविन्दसिंह ने सीता के रूप-सौंदर्य की बड़ी सुष्ठु कल्पना की है। सीता-स्वयम्बर के बाद जब राम ने उनका वरण कर लिया, उस समय सीता की रूप छटा का वर्णन द्रष्टव्य है।

छकै प्रेम दोनों लगे नैन ऐसे,
मनो फॉद फॉदे मृगराज जैसे।
विधवाक् बैनी कट देश छीण।
रंगो रंग राम सुनेन प्रवीण ।।[4]

राम से पराजित होने पर परशुराम ने जब उन्हें दोनों भुजाओं मे आलिंगित कर लिया

---

१. कृष्णावतार, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छंद स० २७३।
२. वही, छंद संख्या ५३९।
३. वही, छंद संख्या ५९८।
४. गोविन्द रामायण, पृष्ठ २५

तो उस समय राम की सुन्दर छवि और मोहक रूप का वर्णन कवि ने सुन्दर ढंग से किया है—

> भेंट भुजा भर अंक भले भरि नैन दोऊ निरखै रघुराई।
> गुंजत मृग कपोलन ऊपर नाग लवंग रहे लव लाई॥
> कंज कुरंग कलानिधि केहरि कोकिल हेर हिये हहराई।
> बाल लखै छवि खाट परै नहि, बाट चलै निरखैं अधिकाई॥[१]

वनवास होने पर सीता जब राम के साथ वन में पहुँचती हैं तो कवि ने प्राकृतिक सौन्दर्य के बीच प्रभावोत्पादक रूप-वर्णन में सुन्दर कल्पना की है—

> चन्द को अंश चकोरन कै करि, मोरन विद्युल्लता अनुमानी।
> मत्त गयंदन इन्द्रवधू भिनुसार छटा रवि की जिय जानी॥
> देवन दोषन की हरता अरि देवन काल क्रिया कर मानी।
> देशन सिन्धु दिशेशन विंध्य जोगेशन गंग कै रंग पछानी॥[२]

एक स्थान पर दशमेश जी ने सीता के नेत्रों की मादकता और उसके व्यापार का चित्ताकर्षक वर्णन फारसी, हिन्दी-मिश्रित शैली में किया है—

> रंगे रंग राते मयमत्त माते मकबूल गुलाब के फूल सोहैं।
> नरागिस में देखकै नाक ऐंठा मृगी राज के देखतै मान मोहैं॥
> शबो रोज़ शराब ने शीर लाया प्रजा आम जाहान के पेखवारे॥
> भवें तान कमान की भांति प्यारी निकामान ही नैन के बाण मारे॥[३]

राम-रावण-युद्ध के प्रसंग में अप्सराओं की रूप-माधुरी का वर्णन भी द्रष्टव्य है। उनकी सुन्दरता साक्षात कामदेव को भी मोहित कर लेने वाली है—

> सुन्दर मृगनैनी सुर पिक बैनी चित हर लैनी गज गैनं।
> मधुर विधु वदनी सुबुधिन सदनी कुमहीन कदनी छवि मैनं॥
> अंगिका सुरंगी नटवर रंगी झांझ उतंगी पग धारं।
> बेसर गज रारं पहुँचि अपारं कच घुंघरारं आहरं॥[४]

रावण को पराजित करके राम जब अयोध्या लौटते हैं तो उस समय नगर की स्त्रियाँ उनसे मिलने के लिये विह्वल हैं। इस प्रसंग में कवि ने उनके उद्गारों का वर्णन फारसी हिन्दी-मिश्रित शब्दावली में किया है—

---

१. वही, पृष्ठ २५
२. वही, पृष्ठ ३४
३. वही, पृष्ठ ६७
४. गोविन्द रामायण, पृष्ठ १६४

जुल्फैं अनूप जाकी नागिन सी स्याह बांकी।
अद्भुत अदाय तांकी ऐसो ढोलन कहाँ है॥
जालिम अदाय लीनै जानहु शराब पीने।
रूखसार जहाँ ताबा वह गुलबदन कहाँ है॥[1]

काली नागिन के सदृश उनकी लटें हैं और उनके कपोल संसार को प्रकाशित करने वाले हैं। दशमेश जी ने तद्युगीन प्रभाव के फलस्वरूप ही इस प्रकार की उपमान-योजना प्रस्तुत की है।

इन्दुमती-स्वयंवर में, इन्दुमती की रूप-माधुरी अनुपम है। स्वयंवर में आये समस्त राजा उसकी रूपासक्ति से विमोहित हैं। उसके नखशिख का वर्णन करने में सरस्वती भी असमर्थ हैं—

नैनन बान चहुँ दिसि मारत घाइल कै पुर वासन हारी।
सरस्वती न सकै कहि रूप शृंगार कहे मति कौन विचारी॥
कोकिल कंठ हरिओ नृत्य नाइ छीन कपोत की ग्रीव अनियारी।
रीझ गिरे नर नार धरा पर घूमति है जनु घाइल मारी॥[2]

आलंकारिक शैली में ही इन्दुमती के रूप-सौंदर्य का वर्णन कवि ने अन्य छन्दों में भी किया है।

रुद्र अवतार वर्णन मे अनुसूया की रूप-छटा भी द्रष्टव्य है। प्रकृति के सभी उपमान उसके सौंदर्य से हतप्रभ हो जाते हैं :

निस नाथ देख आनन रिसान, जल जाइ नैन लहि रोस मान।
तम निरख केसकी अनीच डीठ छपि रहा जान गिर है पीठ॥
कंठहि कपोत लखि कोयकीन नासा निहार वनि कीर लीन।
रोमावल हरे जमुना रिसान लज्जा मारत सागर डुबान॥[3]

रुद्रावतार के अन्तर्गत दत्तात्रेय के गुरु-प्रसंग में कवि ने १४वे गुरुभक्त स्त्री के रूप-सौंदर्य का विशद वर्णन भी आलंकारिक ढंग से प्रस्तुत किया है। कवि ने उसके वर्णन में नारी के प्रायः सभी परम्परागत उपमानों का प्रयोग कर दिया है :

जुव्वनमय मंती सुबाली। मुख नूरं पूरं उज्जाली।
मृग नैनी बैणी कोकला। सीस आभा सोभा चंचला॥
गज गामं वामं सुगैणी। मृदुहासं वासं विधु बैणी॥
चख चारं हारं निर्मला। लखि आभा लज्जी चंचला॥

---

१. वही पृष्ठ १६८

२. ब्रह्मा अवतार अज राजा कथनं, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छंद संख्या ८२

३. ब्रह्मा अवतार अज राजा कथनं, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छंद संख्या ८३।८५

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि गुरु गोविन्दसिंह ने नायक-नायिका के रूप-सौंदर्य का वर्णन परम्परागत रूप में आलंकारिक शैली मे किया है। जिस किसी प्रसंग में भी उन्हें रूप-चित्रण का अवसर मिला, उसकी उन्होंने उपेक्षा नहीं की। पाख्यान-चरित में भी अनेक स्थलों पर पुरुषों और स्त्रियों के रूप-सौंदर्य की सुन्दर अभिव्यंजना हुई है।

संयोग-शृंगार

गुरु गोविन्दसिंह ने अपनी रचनाओं में शृंगार के संयोग और विप्रलम्भ दोनों पक्षों का सविस्तार वर्णन किया है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है रीतिकाल की शृंगारी प्रवृत्ति का प्रभाव उनकी रचनाओं पर भी यथेष्ट रूप में पड़ा, यही कारण है कि उनका यह वर्णन यत्र-तत्र मर्यादा की सीमा का भी उल्लंघन कर जाता है। उन्होंने शृंगार के नग्न रूप का जहाँ चित्रण किया है वह केवल आदर्श रूप की महत्ता प्रदर्शित करने के लिये ही किया हो, ऐसा नहीं है। शृङ्गार के अमर्यादित रूप का सर्वत्र खंडन भी नहीं किया गया है। चौबीस अवतार, पाख्यान चरित आदि ग्रंथों में संयोग-शृङ्गार के ऐसे वर्णन अनेक स्थलों पर तद्युगीन प्रवृत्ति के स्पष्ट परिचायक हैं।

कृष्ण की मुरली का प्रभाव इतना मोहक है कि गोपियाँ अपने घर की सुध-बुध भूल जाती हैं और कृष्ण के रंग में ही रंग जाती है :

> सुत नन्द बजावत हैं मुरली उपमा तिहकी कवि श्याम गनो।
> तिनकी धुनि को सुन मोहि रहे मन रीझत हैं सुजनों॥
> तिन काम भरी गुपियाँ सबहीं मुखते इह भांतिन जवाव मनो।
> मुख कान्ह गुलाब के फूल भयो इह नाल गुलाब चुआत मनो॥[1]

कृष्ण गोपियों के प्रति इतना अधिक आकृष्ट हो जाते हैं कि उनके साथ प्रेम-क्रीड़ा आदि करने में कोई संकोच नहीं करते और गोपियाँ भी उनकी रूप-माधुरी से इतनी अधिक काम-विह्वल हो गई हैं कि उनके सभी उचित-अनुचित प्रस्तावों को स्वीकार कर लेती है—

> होहि प्रसन्न सबै गुपियाँ मिल मान लई जो कान्ह कही है।
> जोर हुलास चढ्यो जीअ में गिनती सरिता मग नेह वही है॥
> संक छुटि हुईके मन ते हसिके हरि तो इह बात कही हैं।
> बात सुनहु हमरी तुम्हूँ हमको निधि आनन्द आज लही है॥[2]

रास-क्रीड़ा में भी संयोग-शृङ्गार के उत्कृष्ट रूप का वर्णन मिलता है। समस्त

---

१. कृष्णावतार, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छन्द सं० २३५

२. वही, छन्द सं० २८०

गोप-गोपिकाएँ कृष्ण के साथ रास-क्रीड़ा में निमग्न होकर अपने को बेसुध कर देती हैं और तभी कृष्ण के अन्तर्धान होने पर प्रेम-पीड़ित गोपियों की मनोदशा द्रष्टव्य है :

गोपिनको तन की छुटगी सुधि डोलत है बन में जन बौरी ।
एक उठे इक भूमि गिरे व्रज की महरी इक आवत दौरी ॥
आतुर है अति ढूंढत है तिनके सिर की गिरगी सु पिछौरी ।
कान्ह को ध्यान बस्यो मन में सोऊ जान गई पुन रूखन कौरी ॥[1]

उनकी आतुरता, विह्वलता के कारण कृष्ण तुरन्त ही प्रकट हो जाते हैं और पुनः रास-क्रीड़ा के विधान द्वारा उनको अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं :

गावत सारंग सुद्ध मलार विभास विलावल अऊ पुन गउरी ।
जा सुर श्रोनन में सुन के सुर भामन धावत डार पिछउरी ॥
सो सुनके सब ग्वारनीयाँ रस के संग होई गई जन बऊरी ।
त्याग कै कानन ता सुनके मृग लौ मृगनी चल आवत दऊरी ॥[2]

राधा और उसकी सखियाँ इस रास-क्रीडा में इतनी अधिक मग्न हो गई हैं कि वे लोक-लाज को तिलाजलि दे देती हैं :

स्याम सो सुन्दर खेलत है कवि स्याम कहे अति ही रंग राची ।
रूप खची अरु पैरत की मन में कर प्रीत सो खेलत साची ॥
रास की खेल तटै जमुना रजनी अरु धोस बेधरक माची ।
चन्द्रभगा अरु चन्द्रमुखी ब्रिखभानु सुता तज लाजहि नाची ॥[3]

दशमेश जी के ग्रंथों में अनेक स्थलों पर संयोग-श्रृंगार के अंतर्गत नायक-नायिका के स्वच्छंद प्रेम-क्रीड़ा का नग्न चित्रण भी मिलता है। विशेष रूप से चौबीस अवतार और पाख्यान-चरित्र मे अवसरानुकूल ऐसे ही उन्मुक्त प्रेम की झाँकी मिलती है। काव्य-कला की दृष्टि से इसकी अभिव्यंजना स्पृहणीय नहीं कही जा सकती।

मान

प्रेम-प्रसंग में मान का भी अत्यधिक महत्व है। इसके द्वारा नायक-नायिका के प्रेम की परख होती है। वह प्रेम-रस की अभिवृद्धिकरता है। नायिका-नायक को प्रेम एकाधिपत्य चाहती है। रसराज कृष्ण राधा से प्रेम-क्रीड़ा करने के बाद परिहास में ही उसकी सभी चन्द्रमा से अपना प्रेम प्रदर्शित करते हैं जिसे देखते ही राधाकृष्ण से मान करने लगती है और उसका मान-खंडन करने के लिये कृष्ण द्वारा भेजी

---

१. कृष्णावतार, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छन्द सं०
२. वही, छन्द सं० ५२१
३. वही, छन्द सं० ६१८

गई अनेक सखियाँ उससे अनुनय-विनय करती हैं किन्तु उस पर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। दूती राधा के पैरो तक पड़ती है और कृष्णद्वारा प्रेषित चन्द्रमा के प्रेम के त्याग का सन्देश भी देती है। साथ ही कृष्ण की विकलता का वर्णन और उसके यौवन की क्षणभंगुरता का भी संकेत करती है। इस पर राधा रोष-भरा उत्तर इस प्रकार देती है—

सुन के रह ग्वारन की बतियां बृखभान सुता अति रोस भरी।
नैननचाइ कै चढाइकै मोहन पै मन में संग क्रोध जरी।
जोऊ आई मनावन ग्वारन की तिह सो बतियाँ हम पै उचरी।
सखी काहे को हौ हरि पास चलों हरि की कुछ भी परवाह नहीं ॥[1]

किन्तु दूती साहस नही छोड़ती और कृष्ण की आतुरता और उनके एकनिष्ठ प्रेम का पुनः वर्णन करती है। अन्त में राधा विवश होकर उससे अपने मान का कारण स्पष्ट करती है—

यों सुन कै वृखभान सुता तिह ग्वारनि को हम उत्तर दीनो।
प्रीत करी हरि चन्द्रभगा संग तो हमहूँ अस मान सु कीनो।
तऊ सजनी कहियो रुठ रही अति क्रोध चढ़ियो हमरे जब जीनो।
तोरे कहे बिन री हरि आगे हूँ मोहू से नेह विदा कर दीनो ॥[2]

यह उत्तर पाकर मैनप्रभा कृष्ण के पास लौटकर राधा मान का वर्णन करती है। तदनंतर कृष्ण स्वयं राधा के पास पहुँचते हैं। उन्हें देखते ही राधा का मान दोलायमान होने लगता है किन्तु प्रत्यक्ष रूप में उन्हें उपालंभ ही देती है—

और न ग्वारनि कोऊ पठि चलिकै हरि तब आप ही आयो।
ताही को रूप निहारत ही वृखभान सुता मन में सुख पायो।
पायो घनोसुख पै मन में अति ऊपर मान सो बोल सुनायो।
चन्द्र भगा हु सो केल करो इह ठौर कहा तजि लाजहि आयो ॥[3]

राधा कृष्ण को उपालम्भ देती है कि उनके प्रेम में उसने लोक-लाज को छोड़ा, लोगों का उपहास सहा और उन्होंने उसका इस प्रकार से तिरस्कार कर दिया। कृष्ण अनेक प्रकार से राधा की अनुनय-विनय करते हैं किन्तु वह फिर भी अपना मान नहीं छोड़ती, अन्त में कृष्ण वचनबद्ध होने पर वह मान त्याग करती है। इसमें संदेह नहीं कि काव्यकला की दृष्टि से कृष्ण और राधा का मान-प्रसंग अत्यन्त मनोरम और सरस है।

---

१. कृष्णावतार, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छंद संख्या ७१०
२. वही, छंद संख्या ७२४
३. कृष्णावतार, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छंद संख्या ७२९

राधा मान को त्याग कर पुनः कृष्ण के प्रेम में ंग जाती है और उनके साथ संयोग सुख प्राप्त करती है एवं कुंज-गलियों में विहार तथा जल-क्रीड़ा के लिये प्रस्तुत हो जाती है—

वृखभान सुता कवि श्याम कहे अति जो हरिके रस भीतर भीनी।
बीच हुलास बढ्यो मन के जब कान्ह की बात सबै मन लीनी।
कुंज गली में खेलहिंगे हरि के तिन संग कह्यो सुकीनी।
यो हसि बात निसंग कह्यो मन की दुचिताई सब ही तजि दीनी ॥[1]

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि संयोग-श्रृंगार के अन्तर्गत मधुर प्रेम की अभिव्यंजना परम्परागत रूप में ही हुई है किन्तु उसमें कवि का काव्य-कौशल स्पृहणीय है।

विप्रलंभ-श्रृंगार

काव्य-शास्त्र में विरह की दश दशाएँ कही गई हैं—अभिलाषा, चिन्ता, गुण-कथन, स्मृति, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता तथा मरण। इन दश दशाओं के अतिरिक्त इनमें से कुछ से मिलती हुई प्रवास-विरह की दश स्थितियाँ काव्यशास्त्र में और बताई गई हैं; जैसे असौष्ठव अथवा मलिनता, सन्ताप, पांडुता अथवा विवृति, कृशता, अरुचि, अधृति अथवा चित्त की अस्थिरता, विवशता अथवा अनावलम्ब, तन्मयता, उन्माद तथा मूर्छा।[2] गुरुगोविन्द सिंह ने विशेष रूप से गोपी-विरह के अन्तर्गत उपरोक्त अनेक दशाओं और स्थितियों का सजीव और संवेदनापूर्ण वर्णन किया है। संयोग-श्रृंगार की अपेक्षा विप्रलम्भ-श्रृंगार में कवि की दृष्टि अधिक रमी है। सम्भवतः इसीलिये कि वियोग-वर्णन प्रेम की कसौटी एवं अधिक प्रभावोत्पादक होता है। राम-अवतार में गुरुगोविन्द सिंह ने सीता-हरण के अनन्तर भगवान राम की वियोग-दशा का भी मानवीय ढंग का वर्णन किया है। राम सीता के वियोग मे मूर्छित होकर गिर पड़ते हैं :

उठि ठाढ़ भये पुनि भूम गिरे पहरे कक लौं फिर प्राण फिरे ज्यों।
तन चेत सुचेत उठे हरि यों रण मंडल मध्य गिर्‌यो भर ज्यों ॥[3]

प्रकृति के विविध उपादान जो आनन्ददायक और उल्लासपूर्ण प्रतीत होते हैं, वे ही वियोग में अपना विपरीत प्रभाव डालते हैं और विरहताप से भस्मीभूत दृष्टिगत होते हैं :

---

१. वही, छंद सं० ७४८
२. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, पृ० ७२३
३. गोविन्द रामायण, पृष्ठ ९८।

विरही जिस ओर सुदृष्टि परै। फल फूल पलास अकास जरै॥
कर सौं घर जौन छुअत भई। कच बासन ज्यो पक फूट गई॥[1]

राम की विरहाग्नि के प्रभाव से फल, फूल, आकाश सभी जलने लगते हैं। हाथ के स्पर्श से पृथ्वी कच्चे बर्तन के समान फूट जाती है। विरह का यह अत्युक्तिपूर्ण वर्णन विप्रलम्भ भाव की तीव्रता प्रदर्शित करने के लिये ही हुआ है।

सीता-वनवास के प्रसंग में केवल एक स्थल पर सीता की विप्रलम्भ अवस्था का वर्णन हुआ है। सीता जी का प्रलाप, मूर्छा अत्यंत मर्मस्पर्शी और हृदयविदारक है :

वन निर्जन देख कै अपारं। बनवास जान्यो दियो रावणारं।
सरोद सुर पातंत प्राणं। रणे जेम वीरं लगे मर्म बाणं॥[2]

सीता निर्जन वन को देखकर राम द्वारा अपने को वनवास दिया हुआ समझती हैं। यह स्मरण करते ही वे उच्च स्वर में रोने लगीं और बेहोश होकर वह इस प्रकार गिर पड़ीं जैसे युद्ध में मर्मघातक बाण लगने पर कोई शूरबीर गिरता है।

कृष्णावतार में गुरु गोविन्दसिंह ने अनेक स्थलों पर विप्रलंभ शृङ्गार के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। इसके आलम्बन और आश्रय भगवान कृष्ण और उनकी प्रेयसी राधा और गोपियाँ हैं। वियोग का अवसर तो उस समय आता है जब कि अक्रूर कृष्ण को व्रज से लेकर मथुरा चले जाते हैं। जिन गोपियों ने कृष्ण के सयोग-सुख का आनन्द लिया था वे ही विरह की अवस्था में अति विकल हो जाती हैं। कवि ने उनकी इस विरह-विकलता का वर्णन बारहमासा के अंतर्गत किया है। संयोग-अवस्था में प्रत्येक ऋतुविशेष संबधी आनन्द और उल्लास तथा आनन्द के अन्य उपादान अब विरहा-वस्था मे दुखदायी प्रतीत होने लगते हैं। एक गोपी दूसरी गोपी से प्रत्येक महीने में पूर्वसुख की 'स्मृति' से अपने दुःख का वर्णन करती है। यह बारहमासा फागुन महीने से आरम्भ होकर माघ के महीने में समाप्त होता है। कृष्ण ने प्रत्येक महीने में गोपियों के साथ जितनी अधिक प्रेम-क्रीड़ाएँ की थीं, उन सबका वे स्मरण करके अब उतनी ही अधिक दुखी होती हैं। ग्रीष्म में जब किंसुक फूल रहा था, मन्द पवन बह रहा था, भौंरे गुंजायमान हो रहे थे, कृष्ण की मुरली बज उठी, सुर-मंडल भी जिसे सुन कर रीझ रहे थे, वह समय कितना सुखदायक था और आज वही ऋतु दुखदायी हो गई है :

एक समय रहे किसुक फूलि सखी लह पौन बहै सुखदाई।
भौंर गुंजारत इतते उतते मुरली नन्दलाल बजाई।

---

१. वही, पृष्ठ ९९।
२. वही, पृष्ठ २०५।

रीझ रह्यो सुनकै सुर-मंडल ता छविको वरन्यो नहीं जाई।
तऊनं समैं सुखदायक थी रित औसर यहि भई दुखदाई ॥[१]

पावस ऋतु भी इसी प्रकार उनके लिये अब दुख का संदेश ही लाती है—

जोर घटा घन आए जहाँ सखी बूंदन मेघ भला छवि पाई।
बोलत चात्रिक दादुर अऊ घन मोरन पै घनघोर लगाई।
ताहि समैं हम कान्हर के संग खेलत थी अति प्रेम बढाई।
तौन समैं सुखदायक थी रित औसर याहि भई दुखदाई ॥[२]

शीतकाल के संयोग सुख की स्मृति भी अब उनके लिये अत्यन्त दुखदायी हो गई है—

मघर समै सब स्याम के संग हुइ खेलत थी मन आनन्द पाई।
सीत लगै तब दूर करै हम स्याम के अंग सो अंग मिलाइ।
फूल चमेली के फूल रहे जिहनीर घट्यो जमुना जीअ आई।
तौन समैं सुखदायक थी रितु औसर पाहि भई दुखदाई ॥[३]

इसी प्रकार तीनों ऋतुओं के अन्तर्गत बारह महीनों का वर्णन विरह की तीव्रता का परिचायक है। राधा की विरह-व्यंजना उक्त बारहमासा की अपेक्षा अधिक भावपूर्ण है। इसमें राधा की विषम परिस्थति और उनके गहन प्रेम का परिचय मिलता है। यहाँ पर दो-एक उदाहरण पर्याप्त होंगे :

सावन में सरिताएँ जलपूरित होकर समुद्र से मिलती हैं। सभी वियुक्त प्रेमी अपनी प्रेमिकाओं से मिल जाते हैं, किन्तु उसके प्रेमी कृष्ण उसे नहीं मिले। राधा की यह चिन्ता उद्वेग में परिणत हो गई है—

ताल भरे जल पूरन सों अस सिन्ध मिली सरिता सब जाई।
तैसे घटान छटान मिली अति ही पपिहा पीय टेर लगाई।
सावन माहि लग्यो बरसावन भावन नाही हटाघर माई।
लाग रह्यो पुर भामन टसक्यो कनहीयो कसक्यो न कसाई।[४]

कार्तिक में दीवाली के अवसर पर सर्वत्र दिये प्रकाशमान हो रहे हैं और घर-बाहर सभी उज्ज्वल दिखाई देते हैं। सभी नर-नारी खेल मगन हैं, किन्तु उसके मनभावन प्रिय लौटे नहीं :—

---

१. कृष्णावतार, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छंद सं० ८६९

२ कृष्णावतार, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छंद संख्या ८७२

३. वही, छंद सं० ८७६

४. वही, छंद सं० ९१८

थे, उनके प्रेम से अभिभूत हो जाते हैं और वे उन्हें कृष्ण को लौटा लाने का आश्वासन देते हैं। चलते समय गोपियाँ और राधा उन्हें अपने सन्देश देती हैं। राधा उद्धव से कहती हैं कि उसने एक बार कृष्ण से मान किया था और अब क्या कृष्ण उसी मान का बदला उससे ले रहे हैं? राधा के इस कथन मे दैन्य की पराकाष्ठा है :

ऊधव को वृखभान सुता बचना इह भांत सो उचर्‍यो है।
त्याग दई जब और कथा मन जो संग स्याम के प्रेम भर्‍यो है।
ता संग सोऊ कहाँ बतीयाँ बन में हमरे जोऊ संग अर्‍यो है।
मैं तुमरे संग मान कर्‍यो तुमहु हमरे संग मान कर्‍यो है॥[1]

उद्धव मथुरा पहुँच कर राधा का विरह-सन्देश तथा दीनदशा का वर्णन कृष्ण से इस प्रकार करते हैं :

और कही तुमसो हरिजू वृखभान सुता तुमको जोऊ प्यारी।
जा दिन ते ब्रज त्याग गये दिन ताकी नहीं हमहूँ हैं संभारी॥
आपहु त्याग अबै मथुरा तुमरे जिनगी अब होय विचारी।
मैं तुमसों हरि मान कर्‍यो तज आवहु मान अबैं हम हारी॥[2]

ऊद्धव का व्रज का विरह-सम्बन्धी सन्देश भी अत्यन्त मार्मिक है :

स्याम कह्यो संग है तुमरे जो हुती तुमको बृज बीच प्यारी।
कान्ह रचे पुरखासन सो कबहों न हिये बृजनारि चितारी।
पंथ निहारत नैनन की कवि स्याम कहै पुतरी दोऊ हारी।
ऊधव स्याम सों यों कहियो तुमरे बिन भई सब ग्वार विचारी।[3]

यहाँ विरहावस्था का वर्णन अत्यन्त भावपूर्ण और हृदयस्पर्शी है। सम्भवतः किसी अन्य कवि के द्वारा इस विरह-सन्देश का वर्णन इतने विस्तार से नहीं किया गया है। इससे स्पष्ट है कि उद्धव स्वय गोपियों और राधा की प्रेमाभक्ति से प्रभावित हो गये थे और वे भी उन्हीं के स्वर में अपना स्वर मिला लेते हैं। उनका ज्ञान-मार्ग ब्रजवासियें के विरह की अश्रुधारा में बह जाता है। विरह-भाव की अनुभूति प्रेम की चार अवस्थाओं में होती है। पूर्व राग, मान, प्रवास तथा करुणात्मक स्थिति।[4] गुरु गोविन्दसिंह की रचनाओं में पहली तीन अवस्थाओं के वर्णन हैं। इनमें से मान और प्रवास का विस्तृत परिचय ऊपर दिया जा चुका है। पूर्व राग की चित्ताकर्षक अभिव्यक्ति की है। रुक्मिणी कृष्ण के प्रेम में अभिभूत होकर उन्हें निजहरण के

---

१. वही, छन्द संख्या ९४३।
२. वही, छन्द संख्या ९६३।
३. कृष्णावतार, श्री दशम गुरु ग्रन्थ, छंद संख्या ९६५
४. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, पृष्ठ ७२०

लिये आमन्त्रित करती है और अपनी विरहावस्था का निम्नलिखित शब्दों में वर्णन करती है :—

औ यदुवीर सो यों कहियो तुमरे बिन देख निसा डर आवै ।
बारही बार अति आतुर ह्वै तन त्याग कह्यो जीय मोर परावै ॥
प्राची प्रत्यक्ष भयो सस पूर्ण सो हमको अति से करि तावै ।
मैन मनो मुख आरन के तुमरे बिनु आय हमों डरपावै ॥[1]

उषा-अनिरुद्ध-प्रेम-प्रसंग मे भी कवि ने पूर्वराग के अन्तर्गत उषा की विरह-विकलता की अभिव्यंजना की है। उसने अनिरुद्ध को प्रत्यक्ष देखा भी नहीं था, किन्तु केवल स्वप्न-दर्शन में ही वह उसके प्रति आकृष्ट हो जाती है। कवि ने उसकी तीव्र वेदना और मूर्छा का प्रभावपूर्ण वर्णन किया है :—

ऐती ही कै बतीयां मुख ते गिर भू पै परी सब सुध भुलाई।
यों बिसमार परी धरनी कवि स्याम भनै मनो नागिन खाई ॥
मानहु अंत समय पहुँच्यो इह दै गयो प्रीतम मीत दिखाई।
तौं लगि चित्ररेखा जु हुती सु सखा इह की इहके ढिग आई ॥[2]

अतएव उक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि गुरु गोविन्दसिंह ने श्रृंगार के दोनों पक्षों-संयोग और विप्रलंभ की प्रायः सभी स्थितियों का चित्ताकर्षक एवं हृदयग्राही वर्णन किया है। जैसा कि पहले कहा गया है कि उनके संयोग-वर्णन में प्रेम-क्रीड़ा आदि का स्पष्ट वर्णन तत्कालीन श्रृंगारिक प्रवृत्ति का परिचायक है। विप्रलंभ के अन्तर्गत मान, बारहमासा आदि का वर्णन कवि की तीव्र भावानुभूति और काव्य-कुशलता को प्रकट करता है।

कवि की रचनाओं मे वात्सल्य के संयोग और वियोग रूपों के भी अनेक स्थलों पर वर्णन मिलते हैं। ये वर्णन विशेष रूप से दशमेश जी के रामावतार और कृष्णावतार ग्रंथों में उपलब्ध होते हैं।

वात्सल्य : संयोग

आचार्यों ने वात्सल्य-भाव को भी रस-कोटि मे स्थान दिया है। नव प्रमुख रसों के अतिरिक्त वात्सल्य दसवाँ रस माना गया हैं।[3] इसके स्थायी वात्सल्य और आलंबन पुत्रादि होते हैं।[4] श्रृंगार के सदृश वात्सल्य के भी संयोग और विप्रलंभ दोनों पक्षों का

---

१. कृष्णावतार, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छंद सख्या १९७८
२. कृष्णावतार, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छंद संख्या २१९४
३. हिन्दी साहित्य कोश, पृष्ठ ७०८
४. स्थायी वत्सलतास्नेह : पुत्राद्यालंबनं मतम् ॥
साहित्यदर्पण, श्लोक २५१, परिच्छेद ८३ पृष्ठ २६६

वर्णन कवियों ने किया है। महाकवि सूरदास तथा अन्य अष्टछापी भक्त-कवियों की रचनाएँ इसकी अनुपम उदाहरण हैं। दशमेश जी ने रामावतार और कृष्णावतार के अंतर्गत राम, लक्ष्मण, कृष्ण आदि के बाल और युवा-रूपों से संबद्ध वात्सल्य भाव के दोनों पक्षों की झाँकी प्रस्तुत की है। राम और लक्ष्मण जब रावण को मार कर वन से लौटते हैं तो उनकी माताओं और बन्धुबान्धवों में प्रेम उमड़ पड़ता है। माताएँ उनको गले से लगा लेती हैं :

कऊं चीर ढारै। कऊं पान रटवारे॥
पर मात पाय। लिये कंठ लाय॥[१]

उनके नेत्रों से प्रेम के आँसू बहने लगते हैं और वे अपने पुत्रों के वीर कृत्यों के सुनने में निमग्न रहती हैं :

मिलै कंठ रोवैं। मनों शोक धोवैं।
करैं वीर बातैं। सुने सर्व मातैं॥[२]

कृष्णावतार में वात्सल्य भाव विशद रूप में वर्णित मिलता है। कृष्ण की बाल-क्रीड़ा तथा उनके प्रति यशोदा और नन्द के आकर्षण और प्रेम का कवि ने सुन्दर ढंग से वर्णन किया है। कृष्ण का बाल रूप यशोदा के लिये अत्यन्त मोहक और चित्ता-कर्षक है :

बालक रूप धरै हरि जी पलना पर झूलत हैं तब कैसे।
मात लजावत हैं तिह कौ औ झुलावत हैं करि मोहित कैसे॥
ता छवि की उपमा अति ही कवि स्याम कही मुख ते पुनि ऐसे।
भूमि दुखी मन में अति ही जनु पालत है रिपु दैतन जैसे॥[३]

गोपियाँ यशोदा के पास कृष्ण की माखन-चोरी का उलाहना लेकर पहुँचती हैं और तभी कृष्ण भी आ जाते हैं। बालक कृष्ण और यशोदा की यह बातचीत काफी सरस और मन मोहक है :

बात सुनी जब गोपन की जसुधा तब ही मन माहि खीझी है।
आय गयो हरि जी तबही पिख पुत्रहि को मन मांहि रीझी है।
बोल उठे नन्दलाल तबै इह गवाह खिझावन मोहि जीझी है।
मात कहा दधि दोस लगावत मार विन इह नाहि सीझी है॥[४]

---

१. गोविन्द रामायण, पृष्ठ १८८

२. गोविन्द रामायण, पृष्ठ १८८

३. कृष्णावतार, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छंद संख्या १०२

४. वही, छंद संख्या १२६

ब्रज के गोपी, ग्वाल, नन्द, यशोदा आदि कृष्ण से कुरुक्षेत्र में एक लम्बी विरह-अवधि के उपरान्त मिलते हैं। संयोग-वात्सल्य का यहाँ पर सुन्दर दृश्य उपस्थित होता है। यशोदा कृष्ण को उनकी बाल-क्रीड़ाओं का स्मरण कराते हुए अपनी प्रेम-व्यथा को करुणापूर्ण वाणी में व्यक्त करती हैं :

> प्रीत बढ़ाई जसोमत यों ब्रजभूखन सो इक बैन उचारो।
> पाल करिए जब पूत बढ़े तुम देख्यो तबै तुम हेत तुम्हारो।
> तो कह दोस लगाऊं हों क्यो हरि है सम ही पुन दोस हमारो।
> ऊखल सो तुहि बांध कै मार्यो है जानत हौं सोऊ वेर चितारो ॥[1]

वात्सल्य : वियोग

विप्रलंभ श्रृंगार के सदृश ही वियोग वात्सल्य के वर्णन में विरह की अनेक दशाओं का चित्रण मिलता है। राम पिता दशरथ की आज्ञानुसार सीता लक्ष्मण के साथ जब वन के लिये प्रयाण करते हैं तो एक अपूर्व करुण दृश्य आ उपस्थित होता है। कौशल्या का पुत्र-विरह अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है और वे भी राजकुल को छोड़ कर संन्यास लेने का निश्चय करती हैं और राम के साथ ही जाना चाहती हैं :

> कारे कारे करि वेश राजा जू को छोरि देश,
> तापसी को कै कै भेष साथ ही सिधारिहौं।
> कुलहूँ की लाज छोरूँ राजसी के साज तोरूँ,
> संग तै न मोरू मुख ऐसो कै विचारिहौं।
> मुद्रा कान धारूं सारे मुख पै भभूत डारूँ,
> हठि को न हारुं पूत। राज साज जारिहौं।
> जुगिया को कीनो वेश कौसल को छोरि क्लेश,
> राजा रामचन्द्र जू कै संग ही सिधारिहौं ॥[2]

कृष्ण ब्रज से जब मथुरा के लिये अक्रूर के साथ प्रयाण करते हैं तो यशोदा भी अत्यन्त शोक-मग्न होकर हृदय की दुःखानुभूति को आँसुओं के द्वारा प्रकट करती हुई मूर्छित हो जाती हैं :

> रोवन लाग जबै जसुधा अपने मुखि तै इह भातं सो भाखे।
> को है हितू हमरो बृज में चलते हरि को बृज में फिरि राखे ॥
> ऐसो को ढीठ करै जिय यो नृप सामुहि जा बतिया इह भाखे।
> सोक भरी मुरझाय गिरी धरनी पर सो बतिया नहिं भाखे ॥[3]

---

१. कृष्णावतार, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छंद संख्या २४१८

२. गोविंद रामायण, पृष्ठ ५८

३. कृष्णावतार, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छंद सं० ७९४

कृष्ण उद्धव को व्रजवासियों को सान्त्वना देने के लिये भेजते हैं। उद्धव के व्रज पहुँचने पर नन्द अपनी शोकावस्था को उनसे प्रकट करते हुए प्रलाप करने लगते हैं।

स्याम गये तजि कै ब्रज को बृज लोगन की अति ही दुख दीनो।
ऊधव बात सुनो हमरी तिह के बिनु भयो हमरो पुर हीनो।
दै विधि ने हमरे गृह बालक पाप बिना हमते फिर छीनो।
यों कहि सीस झुकाय रह्यो बहु सोक बढ्यो अति रोदन कीनो।[1]

ऊधव मथुरा पहुँच कर कृष्ण को बृजवासियों के सन्देश-वर्णन में यशोदा की विरह-विकलता का भी वर्णन करते हैं :

जसुधा इह भांति करी विनती विनती कहियो संग पूत कन्हैये।
ऊधव ता संग यू कहिये बहुरो फिर आइके माखन खइये ॥[2]

मक्खन कृष्ण को अत्यधिक प्रिय था। यशोदा कृष्ण को इसी तथ्य का स्मरण दिलाकर उन्हें व्रज लौट आने के लिये प्रेरित करती हैं।

गुरु गोविन्दसिंह की दृष्टि काल-प्रभावानुसार मधुर प्रेम-भाव के वर्णन में जितनी रमी है उतनी वीर भाव के अतिरिक्त अन्य किसी भाव में नहीं। उन्होंने वात्सल्य का निर्वाह विशेष कथा के प्रसंगानुसार ही किया है। उसमें भावों की गहनता, विविधता एवं सरसता का प्रायः अभाव मिलता है।

वीर-रस

वीर रस के चार प्रकार माने गये हैं—युद्धवीर, कर्मवीर, दयावीर, धर्मवीर।[3] गुरु गोविन्दसिंह ने युद्धवीर का ही सविस्तार वर्णन किया है। अन्य प्रकारों के वर्णन स्फुट रूप मे प्रायः यत्र-तत्र मिल जाते हैं। गुरुजी ने ही सिक्खों को वीर सेनानी बना कर खालसा-पंथ को सगठित किया था, यह पहले कहा जा चुका है। मुगल-सेना और विरोधी राजाओं की सेनाओं का उन्होंने एक बार नहीं अनेक बार मुकाबला किया और उन्हें यथाशक्ति पराजित भी किया था। तद्युगीन परिस्थितियों में विवश होकर धर्म के आवरण में उन्होंने वीर-भाव को ही प्रधानता दी। इसी कारण अपनी रचनाओं में वीर भाव का वर्णन दशमेश जी ने बडे मनोयोग से किया है। वे वीर रस का वर्णन करने के लिये कथा के बीच कोई न कोई अवसर निकाल

---

१. वही, छंद संख्या ८९६

२. वही, छंद संख्या ९५९

३. सर्वदानधर्म, युद्धैर्दयया च समन्वितश्चतुर्धास्यात् ॥
साहित्य दर्पण, श्लोक २३४, परिच्छेद ३, पृष्ठ २५७

ही लेते हैं। पौराणिक अथवा ऐतिहासिक युद्धों अथवा कल्पित या लोकप्रचलित आख्यानों में भी उन्होंने वीर रस का यथेष्ट चित्रण प्रस्तुत किया है। इस प्रकार के वर्णनों में उनके व्यक्तित्व की छाप बराबर मिलती है। चंडी-चरित्र, विचित्रनाटक, चौबीस अवतार, पाख्यान चरित्र आदि ग्रंथों में वीरभाव के चित्रण स्थान-स्थान पर भरे पड़े हैं। चंडी-चरित्र में महिषासुर और यही की अतुलित वीरता का वर्णन कवि ने ओजपूर्ण शैली में किया है—

> जूझ परी सभ सैन लखी तखी तब तौ महिषासुर खग्ग संभाऱ्यो।
> चंड प्रचंड को सामुहि जाई भयानक भालक जिऊ भय काऱ्यो।
> मुग्दर लै अपने करि चंड सु कै चारि बातन ऊपर हाऱ्यो।
> जिऊँ हनुमान उखार पहार कै रावन के उर भीतर माऱ्यो॥[1]

धूम्रलोचन राक्षस पर चंडिका के प्रहार का वर्णन कवि ने आलंकारिक ढंग से सुन्दर रूप में किया है :

> कोप के चंड प्रचंड चढ़ी इत क्रोध के धुम्र चढै उत सैनी।
> बान कृपानन मार मची तब देवी लई बरछी कर पैनी।
> दौर दई अर के मुख मैं कटि ओंठ दये जिमु लोहकै छैनी।
> दंत गंगा जमुना तन स्याम सो लोहू बह्यो बह्यो तिह माहि त्रिवेनी॥[2]

संपूर्ण चंडीचरित्र उक्ति विलास में वीररस का प्राधान्य है। इस वीररसात्मक वर्णन की प्रभावमत्ता अनुपम है। गुरु जी का दूसरा चंडीचरित्र भी वीररस-प्रधान है, किन्तु उसकी भाषा पहले चंडीचरित्र की भाषा के सदृश ललित एवं मधुर नहीं है। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, कथा-विस्तार की दृष्टि से दोनों चरित्रों में पूर्ण साम्य है। निशुंभ बध-प्रसंग में शिव अपनी शक्ति को देवताओं की ओर से युद्ध करने के लिये भेजते हैं—

> चली शक्त शीघ्र सी कृपाणि पाणि धारके।
> उठे सुग्रिध ग्रिध डौर डाकनी डकार कै।
> हसे सुकंक बंकपं कबंध अंध उठही।
> बिसेख देवतास वीर बाणधार तुठही॥[3]

शुंभ राक्षस के घोर नाद से गर्भिणी स्त्रियों के गर्भ भी गिर जाते हैं :

---

१. चंडीचरित्र उक्ति विलास, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छंद संख्या ४६

२. वही, छंद संख्या ९७

३. चंडीचरित्र उक्ति विलास, श्री दशम गुरु ग्रन्थ, छंद संख्या १४७

सज्यो सैण सुंभ कीयो नाद उच्चं।
सुणे गर्भणी आनके गर्भ मुच्चं।
परियो क्रोहं उठी शस्त्र झारं।
चवी चावडा डाकणीय डकारं॥[१]

युद्ध-स्थल में भूत, प्रेत, बैताल नाचते हैं; तुरही, ढोल, नगाड़े आदि बज रहे हैं। उनसे योद्धागण प्रोत्साहित होकर और जोर से गर्जन करते हैं :

चमकी तहां असन की धारा। नाचै भूत प्रेत बैतारा।
फरके अंध कबंध अचेता। मिभरे भैरव भीम अनेका।
तुरही ढोल नगारे बाजै। भाँत भाँत जोधा रण गाजै।
ठडिड उभरन डुगडुगी धनी। नाइ नफीरी जातन गनी॥[२]

गुरु गोविन्दसिंह रचित चंडी दी वार में भी वीरभाव की प्रधानता मिलती है। कथा का विस्तार वैसा ही है, किन्तु पंजाबी भाषा में वीरभाव की अभिव्यंजना कवि की काव्य-कुशलता की द्योतक है।

श्रोतबिन्दु राक्षस और दुर्गा के युद्ध-वर्णन सम्बन्धी निम्नलिखित छंद द्रष्टव्य हैं :

अगणत दाणो मारे होए लो हुआ।
जोधे जैहु मुनारे अंदरि खेत दै।
दुर्गा जो ललकारे आवण सामणे।
दुर्गा सब संघारे राकस आवदे।
रतु दे परनाले तिन तै भुइ पए।
उठे कार निआरे राकस हड हड़ाए॥[३]

पार्वती के सती होने के उपरान्त, दक्ष प्रजापति और शिव के मध्य होनेवाले रण का वर्णन ओजपूर्ण प्रणाली में प्रस्तुत किया गया है :

खंड खंड रण गिरे अखंडा। कांप्यो खंडन के ब्रह्मण्डा।
छाडि छाडि असि गिरे नरेसा। मच्यो जुद्ध सुयम्बर जैसा॥[४]

अंत में जिस प्रकार से वज्रपात होने से पर्वत गिर जाता है, वैसे ही दक्ष प्रजापति भी संग्राम मे परास्त होकर धराशायी हो जाते हैं :

---

१. वही, छंद संख्या १५९
२. वही, छंद संख्या २००
३. चण्डी दी वार, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छन्द सं० ३८
४. दच्छ वध रुद्र महात्म्य, श्री दशम गुरु ग्रन्थ, चौबीस अवतार, छन्द सं० ३०

गिर्‍यो जान कूट स्थली ब्रिछ मूलं।
गिर्‍यो दृच्छ तैसे कट्यो सीस सूलं।
पर्‍यो राज राजं भयोदेह घातं।
हन्यो जान वज्रं भयो पञ्च पातं॥[1]

गुरु गोविन्दसिंह की रचनाओं मे वीर-भावों की प्रधानता मिलती है। उन्होंने यथा-अवसर वीर भावों का चित्रण किया है। रामावतार के वर्णन में ऐसे अनेक स्थल आये हैं जहाँ युद्ध-वर्णन के प्रसंग में वीर भाव का प्रकाशन उत्कृष्ट रूप से हुआ है। राम और लक्ष्मण अपने बाल्यकाल से ही निशाचरों का वध करना आरम्भ कर देते हैं। विश्वामित्र के साथ तपोवन में पहुँच कर उन्होंने ताड़का राक्षसी, मारीच, सुबाहु आदि अनेक राक्षसो का तत्काल वध कर दिया और ऋषियों के यज्ञों को निर्विघ्न संपादित होने दिया :

भयो युद्ध दूँ जुद्धं, भर्‍यो राम क्रुद्धं।
कटी दुष्ट बाहं, संहार्‍यो सुबाहं।
त्रसे दैत भाजै, रणं राम गाजै।
भुवं भार तार्‍यो, ऋषीशं उबार्‍यो।
भयो जग्य पूरं, गए पाप दूरं।
सुरं सर्व हरषे, घनं धार बरखे॥[2]

सीता-स्वयंवर के अनन्तर होने वाले राम और परशुराम के संवाद में वीर-भाव ओतप्रोत है। राम ने अपने बल की परीक्षा अपने हाथों परशुराम का धनुष तोड़ कर, उत्तीर्ण कर ली :

श्रीरघुवीर शिरोमणि शूर कुबड लियो कर में हंसि हंसि कै।
लिये चाप चटाक चढ़ाय बली खट टूक कियो छिन में कसि कसि कै।
नभ की गति ताहि हरी शरसों अधबीच ही बात रही बसि बसि कै।
न बिसात कछू नट कै वटु जिऊंभव पाशनि संग रहे फसि फसि कै॥[3]

पल भर में ही धनुष-भंग कर देना, राम के शौर्य का ज्वलंत प्रमाण है।

बनवास की अवधि में राम और लक्ष्मण को अपने विक्रम-प्रदर्शन के अनेक अवसर मिले। उन्होंने विघ्नकर्ता दुष्ट राक्षसों का कई बार संहार किया। ऐसे

---

१. वही, वही, छन्द सं० ४६
२. गोविंद रामायण, पृष्ठ १९
३. वही, पृष्ठ ३३

अवसर गुरु जी की वीर भावाभिव्यक्ति के सबल साधन बने हैं। विराध-वध के अवसर पर राम की वीरता और राक्षसों की दीनता देखते ही बनती है :

भजन्त धीर वीरनं चलन्त मान प्राण लै।
दलन्त पंत दन्तियं भजन्त हार मान कै।
मिलन्त दन्त घास लै ररच्छ शब्द उच्चरं।
विराध दानवं जुझो सुहात्थि राम निर्मलं ॥[1]

राम-अवतार में गुरु जी की चित्तवृत्ति युद्धजनित वीर रस की अभिव्यंजना में बहुत अधिक रमी है। इसका कारण यह है कि वीरता-पूर्ण प्रसंग पर्याप्त संख्या में मिलते हैं। अनेक राक्षसों तथा सपरिवार रावण से युद्ध करके, उन्हें पूर्णतया नष्ट करने में राम ने जिस शक्तिमत्ता का उदाहरण प्रस्तुत किया, उसका वर्णन दशमेश जी ने विस्तृत रूप से चौबीस अवतार में किया है। राम के सामने रावण की गर्वोक्ति जिस असीम वीर भावना का परिचय देती है, उसे निम्न पंक्तियों में देखिए :

जानत हौं अवलोकि मुहैं हठि एक बली नहीं ठाढ़ रहैंगे।
गह्यो जिनकै तृण दांतन तेन कहा रण आज गहैंगे।
बंब बजे रण खंभ गहै गहि हाथ हथ्यार कहूं उमहैंगे।
भूमि अकास पताल दुरैबै को राम कहो कहं ठाम लहैंगे ॥[2]

रावण के सभी वीर सेनानियों का जब युद्ध में वध कर दिया गया तो अन्त में वह स्वयं राम से द्वन्द्व युद्ध के लिये आया। उसके भीषण प्रहार से चारों दिशाएँ, पृथ्वी, आकाश सभी कंपायमान हो गए किन्तु राम ने उसके छत्र, ध्वजा, अश्व, रथ आदि को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया :—

रावण रोष भर्‍यो रण भोगहि बीसहुं बाँहि हथियार प्रहारे।
भूमि अकास दिशा विदिशा चकि चार सकै नहि जात निहारे।
फोकन तै फल तै मातैं अघ तै वध कै रण मंडल हारे।
छत्र ध्वजा वर वाजि रथी रथ काट सबै रघुराज उतारै ॥[3]

दशमेश जी ने रामावतार में वीरभाव की अभिव्यंजना के लिये न केवल हिन्दी, वरन पंजाबी का भी सफल प्रयोग किया है। युद्ध में दोनों पक्षों के शूर वीरों की उन्मत्तावस्था का परिचय निम्न पंक्तियाँ देती हैं :

---

१. वही पृष्ठ ८६

२. गोविंद रामायण, पृष्ठ ३१

३. वही, पृष्ठ १७५

वज्जे संगनियाले हाठा जुट्टियां।
खेत बहै मुच्छाले कहर ततारवे।
डिग्गे वीर जुकारे हुग्गा फुट्टियां।
बके जानु मतवाले भंगा पीइके ॥[१]

बड़े-बडे सांकल वाले धौसों के बजने पर दोनों ओर की सेनाएँ एक दूसरे से मिल गईं। मरते समय भी वीर हुंकार करते जा रहे थे। वे वीर रस से अभिभूत होकर मदान्ध हो गये। राम के साथ लव-कुश का युद्ध भी उनकी वीरता और उत्साह का अद्वितीय उदाहरण है। लडते समय शस्त्रों से आग निकलती थी और रणभूमि में रुंड-मुंड लुढ़कते थे :

भली भांति मारे पछारे सु शूरं।
गिरे जुद्ध जोद्धा रही धूर पूरं।
उठी शस्त्र झारं अपारंत वीरं।
भ्रमे रुंड मुंडं तन तच्छ तीरं॥[२]

राम-अवतार के सदृश कृष्णावतार में भी वीर भाव के चित्रणों का अभाव नहीं है। महाराज कृष्ण ने भी अनेक आततायी और दुष्ट राजाओं का वध स्वयं किया था। राजा जरासिंध के साथ किये गये युद्ध का गुरु जी ने अत्युक्तिपूर्ण वर्णन किया है। पठान, शेख, यवन आदि की सेनाएँ जरासिंधु की ओर से युद्ध करती हैं। अतएव दशमेश जी ने यहाँ पर वीर रस की सविस्तार अभिव्यंजना की है। वीर रस सम्बन्धी निम्नलिखित कवित्त द्रष्टव्य है:—

केते वीर भाजे केते गाजे पुनि आय, आय धाय हरिजू सो जुद्ध वे करत हैं।
केते भूमि गिरे केते भिरे गजमत्तन सिंह लरे, तो मृतक होइके छित पै परत हैं।
और दौर परे मार मार ही उचरे, हथियारन उधरे पग एक न टरत हैं।
श्रोणत उदध नीह आंच बडवानल सी, पौन बात चले वीर तृन ज्यों जरत हैं॥[३]

जरासिंधु को अपनी वीरता और क्षत्रीय प्रसूत होने का अत्यधिक अभिमान था। परिणाम स्वरूप उसने गुर्जर नरेश के समक्ष अपनी वीरोक्ति निम्नलिखित शब्दों मे प्रकट की :

का भयो जो मघवा बलवंड है आज हीं ताही सो जुद्ध मचैहौं।
भानु प्रचंड कहावत है हनी ताही को हीं जम धाम पठैहौं।

---

१. गोविन्द रामायण, पृष्ठ १३४
२. वही, पृष्ठ २०९
३. कृष्णावतार, चौबीस अवतार, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छंद सं० ११४१

औजु कहा सिव मैं चलुहे मरिहै पल मैं जब कोप बढैहौं।
पौरख राखत हों इतनो कहा भूप है गूजर ते भजि जैहौं ॥[१]

जरासिन्धु ने जब इस प्रकार कृष्ण को गंवार कहकर अपना गर्व प्रकट किया तो वह शान्त न रह सके और उन्होंने तत्काल उसे मुंह तोड़ उत्तर दिया :

छत्री कहावत आपन को भजिओ तब ही जब जुद्ध मचैहौं।
धीर तबै लखिहौं तुमको जब भीर परै इक तीर चलैहौं।
मूढ़ हुवै अवही छित में गिरिहों नहीं स्यंदन में ठहरैहौं।
एकन बान लगे हमरो नभ मंडल पै अवही उड़ जैहौं ॥[२]

कृष्णावतार में श्रीकृष्ण की अतुलित वीरता का जहाँ चित्रण है, वहाँ उनकी दया वीरता की भी एक स्थल पर भावपूर्ण व्यंजना हुई है। अपने प्रतिद्वन्द्वी हलायुध द्वारा शस्त्र त्याग करते ही कृष्ण का सारा क्रोध तत्काल समाप्त हो जाता है। शरणागत की भावना से उनका हृदय परिप्लावित हो गया और वे स्वयं अपने को ही शत्रु द्वारा विजित मानने लगते हैं :

करुनानिधि देख दसा तिहकी करुणारस को चित बीच बढ़ायो।
कोपहि छाड दयो हरिजू दुहू नैनन भीतर नीर बहायो।
वीरा हलायुध ठाढ़ो हुतो तिह को कहिकै इह बैन सुनायो।
छाडि दे जो हम जीतन आयो हों सो हम जीत लयो बिलखायो ॥[३]

पाख्यान चरित्र मे गुरु गोविन्दसिंह ने स्त्रियों की दुर्बलताओं के चित्रण के साथ साथ उनकी अपूर्व वीरता भी अनेक स्थलों पर सुन्दर रसात्मक अभिव्यक्ति के माध्यम से प्रकट की है। एक राजकुमारी ने अपने वरण के लिये युद्ध में वर द्वारा विजित होने की शर्त रखी जिसके अनुसार सुभट सिंह के साथ उसका घोर युद्ध हुआ। अन्त में विजय उसी के हाथ रही :

जिह विचित्र दे बान लगावै। वहै सुभट मृत लोक सिधावै।
जापर तमक तेग की झारै। ताको मुंड काटि ही डारै॥
काहूं सिमटि सैहथी हनै। एक सुभट मन माहि न गनै।
देखें सुर विमान चढ़ि सारे चटपट सुभट विकट करि हारै॥
हैं गे रथ बाजी घने जोद्धा हने अनेक।
जीत सुयम्बर रण रही भूपति बचा न एक ॥[४]

---

१. कृष्णावतार, चौबीस अतवार, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छंद सं० १८२६
२. वही, छंद सं० १८२९
३. वही, छंद सं० १८८१
४. पाख्यान चरित्र, श्री दशम गुरु ग्रन्थ, चं० सं० ५२, छंद संख्या ८८०

अन्यत्र एक वीर बाला अपने बन्दी पति फतेहखाँ को पुरुष वेश में मुहम्मद सैयद खाँ की सेना के साथ युद्ध करके उसे मुक्त करा लाती है। गुरुजी ने इस रमणी की वीरता का उत्साहवर्द्धक वर्णन किया है :

केते विकट सुभट कटि हारे। केते करि हने मतवारे।
दल पैदल केते रन धाए। जियत बचै लै प्राण पराए॥
सूरवीर बहु भाँति संघारे। खेदि खेत ते खान निकारे।
निजु मरतहि कुरवाइ लयाइ। भाँत-भाँत सो बजी बधाई॥[1]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वीर रस के निरूपण में दशमेश जी यथेष्ट सफल हुए हैं। प्रायः सभी स्थलों पर जहाँ भी उन्होंने वीर रस का चित्रण किया, उसका अच्छा परिपाक हुआ है। जैसा कि पहले कहा गया है, गुरुजी की दृष्टि शृंगार और वीर दोनों रसों में समान रूप से रही है। वीर के सहकारी रसों में रौद्र, भयानक, बीभत्स, अद्भुत आदि का भी निरूपण उनकी रचनाओं में अनेक स्थलों पर मिलता है।

रौद्र

बानासुर की ओर से जब स्वयं रुद्र कृष्ण के साथ युद्ध करने के लिये आते हैं तो युद्ध की भीषणता के कारण कोई शूरवीर युद्ध-भूमि में उनके समक्ष टिक नहीं पाता।

रुद्र हूँ रुद्र जबै रन में कवि स्याम भने दिस नाद बजायो।
सूरन काहू ते नेकु टिक्यो गयो भाज गये रतीकु बिढायो॥
सत्रन के दुहू सत्रन संग लै रोख हली सु सोऊ डस पायो।
श्रीवृजनाथ सो श्याम भने जबही सिव आय के जुद्ध मचायो॥[2]

भयानक

युद्ध के घोर नाद के कारण गर्भिणी स्त्रियों के गर्भ तक गिर जाते हैं :

भऱ्यो रोस संखासुर देख सैणं।
तपे वीर वक्त्रं कीए रक्त नैणं॥
भुजा ठोक भूपं कऱ्यो नाद उच्चं।
सुने गर्भणी आण के गरभ मुच्चं॥[3]

— वीर-बालाओं की अपूर्व वीरताजनित भय के कारण शूरवीर युद्ध-क्षेत्र छोड़कर भागने

१. वही, च० संख्या १४७, छंद संख्या १०३२
२. कृष्णावतार, चौबीस अवतार, श्री दशम गुरु ग्रन्थ, छंद सं० २२२०
३. चौबीस अवतार, श्री दशम गुरु ग्रन्थ, शंखासुर वध, छंद सं० ४८

लगते हैं । हाथी-घोड़े आदि सभी नष्ट हो जाते हैं । नगारों के नाद से शत्रु पक्ष में भय का संचार हो जाता है ।

> ताज परे कहुँ साज गिरे कहुँ बाज मरे गजराज संघारे ।
> गावत वीर बितात फिरे कहुँ नाचत भूत भयानक भारे ।।
> मीत भजे लखि भीर परी अति त्रास भरे सुनि नाद नगारे ।
> काँपति है यह भाँत मनो गन गौरव के जनु डरन मारे ।।[1]

बीभत्स

भयानक के अतिरिक्त बीभत्स रस का चित्रण दशमेश जी ने परंपरागत रूप में अनेक स्थलों पर किया है । युद्ध के अनन्तर अथवा युद्ध के बीच ही श्वान, गिद्ध, योगनियाँ आदि वहाँ पहुँचकर रुधिर-पान तथा माँस आदि का भक्षण करते हैं । युद्ध-भूमि का यह दृश्य अत्यन्त बीभत्स होता है जिसका चित्रण उन्होंने प्रायः प्रत्येक युद्ध के अवसर पर किया है । शंखासुर और मत्स्यागर के मध्य घोर युद्ध हुआ है । इस प्रसंग में बीभत्स का दृश्य निम्नलिखित छन्द में द्रष्टव्य है :

> भयो दुदं जुद्धं रणं संख मच्छं ।
> मनो दो गिरं जुद्धं जुटै सपछं ।।
> फटै मास टुकं भखे गिधि विधं ।
> हंसी जोगणी चऊसठा सूर सूधं ।।[2]

राम और विराध राक्षस के युद्ध-प्रसंग में भी कवि द्वारा बीभत्स की सफल अभिव्यंजना हुई है :

> पिवंत शोण खप्परी भखंत मास चावड़ं ।
> हंकार वीर संभिड़ैं लुझार धार दुद्धरं ।।
> पुकार मार कै परे सहंत अंग मारयं ।
> बिहार देव मंदलं कटंत खग्ग धारयं ।।[3]

पाख्यान-चरित्र में वर्णित अनेक युद्धों के वर्णन में भी गुरु जी ने परम्परागत बीभत्स भाव की अभिव्यंजना की है । युद्ध को देखकर गिद्धों के मन में आनन्द हुआ, क्योंकि उन्हें मनुष्यों का माँस खाने को मिलेगा । योगिनियाँ खप्पर लेकर दायें-बायें रुधिर-पान करने के लिए खड़ी हो गईं । ऊपर गिद्ध मँडराने लगे :

---

१. पाख्यान चरित, श्री दशम गुरु ग्रन्थ, सं० १२८, पृष्ठ ९९९
२. मत्स्य अवतार, चौबीस अवतार, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छंद सं० ५२
३. गोविन्द रामायण, पृष्ठ ८२

गीधन के मन भयो आनन्द।
आज भखें मानुस के अंग॥
दाहिने बाये जोगनि खड़ी।
लै पात्र श्रोणत वह अड़ी॥
ऊपर गीध साल मंडराहीं।
तरै सूरमा जुद्ध मचाहीं॥[1]

पाख्यान-चरित्र में अन्यत्र भी युद्ध के प्रसंगों में इस रस का वर्णन मिलता है। योगिनी, दैत्य सभी अत्यन्त प्रसन्न हैं और भूत-प्रेत नाचते-गाते हैं। रुद्र डमरू बजाते हैं। डाकिनियाँ रुधिर-पान और काक अभक्ष्य का भक्षण करते हैं। जंबुक, गीध माँस ले जा रहे हैं और वैताल युद्ध का गान करता है। तलवारें चमकती हैं एवं युद्ध-भूमि में रुंड-मुंड भयंकर प्रतीत होते हैं :

जुगुनि दैत अधिक हरखाने। गीत सिवा धिकरहि अभिमानै।
भूतप्रेत नाचहि अस गावहि। कहूं रुद्र डमरू डमकावहि।
अचि रुधर डाकनी डहकाहि। भखि भखि अमिख काक कहुँ कहकहि।
जंबुक गीध मासु लै जाहीं। कछू कछू सबद बिताल सुनाहीं।
झमकै कहूं असिन की धारा। भभकहि रुंड मुंड विकरारा॥[2]

अद्भुत एवं हास्य

दशमेश जी ने अद्भुत और हास्य रस की भी सफल अभिव्यंजना कतिपय स्थलों पर की है। किन्तु उनके उदाहरण अत्यल्प ही हैं। अद्भुत भाव का वर्णन प्रायः युद्ध प्रसंगों में भी विशेष रूप से मिलता है। चंडी-चरित्र में श्रौतबिन्दु दैत्य की रुधिर की जितनी बूँदे पृथ्वीतल पर गिरती हैं, उतने ही श्रौतबिन्दु और उत्पन्न हो जाते हैं। इस प्रकार श्रौतबिन्दुओं का समूह बढ़ता जाता है। यह एक अपूर्व सृष्टि है जो मानव-मस्तिष्क को विस्मय से अभिभूत कर देती है। इसका निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य है :

जैतक श्रोण की बूंद गिरे रन तैतक श्रौनत बिन्द ह्वै आई।
मारहि मार पुकार हकार कै चंडिका चंड ह्वै सामुहि धाई।
पेखि के कौतिक ता छिन मैं कवि ने मन मैं उपमा ठहराई।
मानहु सीस महल के बीच सुमूरत एक अनेक की छाई॥[3]

---

१. पाख्यान-चरित्र, श्री दशम गुरु ग्रंथ, च० सं० ५२, छंद सं० २७, २८
२. पाख्यान चरित्र, श्री दशम गुरु ग्रंथ, च० सं० २००, छंद सं० १०९२
३. चंडीचरित्र उक्ति-विलास, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छंद सं० १५६

राम-अवतार में कुम्भकरण का व्यक्तित्व भी कम विस्मयकारी नहीं है। रावण की पूरी सेना उसे जगाने के लिये गई, कई सैनिक तो उसकी नाक में घुस गये, कई हाथी-घोड़ों के साथ उसके कानों में घुस गये और उसके भीतर ही जाकर अनेक प्रकार के बाजे बजाये गये, किन्तु उसकी निद्रा फिर भी भंग न हुई :

रथी पाइकं दंत पंती अनंतं। चले परखरे बाजि राजं सुमंतं।
धंसै नासिका श्रोण मज्झं सुवीरं। बजे कान्हरे डंक डौरू नफीरं ॥[१]

अन्त मे कुम्भकरण की नींद देव-कन्याओं के मधुर गान से भंग हुई। जगने पर उसने पानी की सात हज़ार गागरों से मुँह हाथ धोकर माँस खाया और मदिरा पीकर फिर अभिमानपूर्वक गदा लेकर उठ खड़ा हुआ :

जलं गागरी सप्त साहस्र पूरं। मुखं पूछं त्यो कुंभकर्णं करूरं।
कियो मांस हारं महामद्य पानं। उठ्यो लै गदा को भज्यो वीर मानं ॥[२]

पहले कहा जा चुका है कि दशमेश जी का धार्मिक जीवन वीरभावों से ओत-प्रोत था। उनके व्यक्तित्व मे शान्त और वीर-रसों का अद्भुत समन्वय मिलता है। हास्य का उसमे स्थान तक न था, किन्तु दो-एक स्थलों पर हास्यभाव की अभिव्यक्ति से गुरू जी की विनोदी प्रकृति का यत्किंचित् आभास लगता है। राम के अप्रतिम सौंदर्य से आकृष्ट होकर शूर्पणखा अपना वेश-परिवर्तन करके उनके भाई लक्ष्मण जहाँ हैं वहाँ वह जाये और वे उसे देख कर अवश्य रीझेंगे, क्योंकि उनके साथ तो किशोरी सीता है जो उनमें अनुरक्त होकर माता-पिता को छोड़ वन में घूम रही है :

जाहु तहाॅ जहं भ्रात हमारे। वै रिझहैं लख नैन तिहारे ॥
संग सिया अविलोक कृशोदरी। कैसेक राख सकैं तुमको घरी ॥
मात पिता कहं मोहि तज्यो मन। संग फिरी हमरे बनही बन ॥
ताहि तजो कसकै सुनि सुन्दरि। जाहु तहाॅ जहँ भ्रात कृशोदरी ॥[३]

राम का सुर्पणखा के साथ यह परिहास शिष्ट और मनोमुग्धकारी है, किन्तु ऐसे स्थल दशमेश जी की रचनाओं मे प्रायः राम ही मिलते हैं, क्योंकि संभवतः यह उनके व्यक्तित्व के अनुकूल न था।

अतएव उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गुरुजी ने शान्त, वीर, रौद्र, शृङ्गार, वात्सल्य, बीभत्स, अद्भुत, भयानक, हास्य-रसों की सफल और चित्ताकर्षक अभि-

१. गोविन्द रामायण, पृष्ठ १२२.
२. वही, पृष्ठ १९३
३. वही, पृष्ठ ८९

व्यंजना की है। यह अवश्य है कि व्यक्तित्व और युग के अनुरूप शान्त, वीर और शृङ्गार में उनकी दृष्टि अधिक रमी है।

प्रकृति-चित्रण

प्रकृति और मनुष्य में घनिष्ट सम्बन्ध है। दोनों का साहचर्य मानव-सृष्टि के आरम्भकाल से ही माना गया है। प्रकृति का रम्य वातावरण मनुष्य के मन को आह्लादित करता है और मानव भी अपने सुख-दुःख की झाँकी प्रकृति के नाना रूपों मे देखता है। मनुष्य के सदृश प्रकृति की स्वतन्त्र सत्ता भी है। अतएव कवियों ने जहाँ एक ओर प्रकृति का चित्रण मानव-मनोवेगों से रंजित करके किया है, वहीं दूसरी ओर प्रकृति के स्वतन्त्र चित्र भी अंकित किये हैं। पहले को उद्दीपन और दूसरे को अविलम्बन रूप कहा गया है। कवियों ने भावोद्दीपन की तीव्रता और प्रभावात्मक्ता प्रदर्शित करने के लिये प्रकृति के विविध उपकरणों का आश्रय लिया है। मनुष्य की सुख की स्थिति में प्रकृति भी उल्लसित और दुःख में दुःखी दिखाई पड़ती है। प्रकृति-वर्णन का एक तीसरा रूप भी कवियों ने प्रस्तुत किया है। इसमें प्रकृति के विविध उपकरणों का उपयोग अप्रस्तुत-योजना के अंतर्गत अलंकार-विधान के लिये होता है।

संस्कृत और प्राकृत काव्यों में प्रकृति के इन सभी रूपों का वर्णन मिलता है। अधिकता प्रायः उद्दीपन रूप की ही है। इसमे प्रकृति के मनोरम स्थल जैसे वन, उपवन, सरोवर, नदी आदि एवं ऋतुवर्णन के अंतर्गत षट्ऋतु और बारहमासा विशेष रूप से मिलते हैं। स्वतंत्र प्रकृति के वर्णन का कुछ अभाव सा है। प्राचीन हिन्दी-काव्य में प्रकृति-वर्णन के संबंध में इसी परम्परा का निर्वाह मिलता है। गुरु गोविन्दसिंह की रचनाओं में भी प्रकृतिचित्रण परम्परायुक्त ही है किन्तु कतिपय स्थलों पर प्रकृति का स्वतन्त्र वर्णन भी मिलता है। राम-वनवास के प्रसंग मे दशमेश जी ने वन का चित्ताकर्षक वर्णन किया है। वहाँ ऊँचे-ऊँचे शाल, बड़ और ताल के वृक्ष हैं। उसकी शोभा के सामने खांडव वन और नंदन वन की शोभा फीकी पड़ जाती है। वह वन इतना घना है कि आकाश और नक्षत्र रंचमात्र भी दिखाई नहीं देते। सूर्य और चन्द्र का प्रकाश भी वहाँ प्रवेश नहीं कर सकता। वह देव, दानव, पक्षी, पिपीलिका आदि सभी जीवों की पहुँच के बाहर है :

> ऊँचे द्रुम साल जहाँ लांचे वट ताल तहाँ,
> ऐसी ठौर-तप को पधारे ऐसो कौन है।
> जाकी छबि देख दुति खांडव की फीकी लागे,
> आभा ताकी नन्दन बिलोकै भजे भौन है।

तारन की कहा नेक नभ न निहार्‍यो जाय,
सूरज की जोति तहाँ चन्द्र की जौन है।
देव न निहार्‍यो कोऊ दैत न निहार्‍यो तहाँ,
पंछी का न गमन जहाँ चींटी को न गौन है॥[1]

यहाँ पर गुरु जी ने प्रकृति का आलंबन रूप में मनोरम चित्रण किया है।

कृष्णावतार में ब्रज की प्राकृतिक शोभा का वर्णन भी एक स्थल पर हुआ है। गोकुल छोड़कर ब्रज चलने के लिये एक गोप-गोपी उद्यत हैं। नन्द, यशोदा, अन्य वृद्ध इस संबंध में विचार-विनिमय करते हैं तभी ग्वाल-बाल ब्रज की छटा का वर्णन नन्द से करते हैं। पेड़ों की वहाँ घनी छाँह है, यमुना का तट वहाँ निकट है, अनेक झरने बह रहे हैं। कोयल और मोर की मधुर ध्वनि से वह स्थान बराबर गुंजरित होता रहता है।

घास भलो द्रुम छांह भली जमुना ढिग है नग है तट जाके।
कोटि झरे झरना तिहं ते जग में समतुलि नहीं कछु ताके।
बोलत हैं पिव कोकिल मोर किधौं घन में चहुँ ओरन वाके।
वेग चलो तुम गोकुल को तजपुन हजार अब तुम गा के॥[2]

पाख्यान चरित्र में आखेट-प्रसंग में वन का वर्णन करते हुए कवि ने साल, तमाल, वट, निम्बु, कदंब, नारंगी, पीपल, तार, जामुन, नारियल आदि अनेक वृक्षों और नरगिस, गुलाब आदि पुष्प-पौधों का उल्लेख किया है। वहाँ सरिताएँ और निर्झर अपनी नैसर्गिक आभा बिखेरते दृष्टिगत होते हैं।

साल तमाल जहाँ द्रुम भारे। निम्बु कदम्ब सुबंट जटियारे॥
नारंगी मीठा बहु लागे। विविध प्रकार रसन सो पागे॥
पीपर तार खजूरे जाहाँ। सेंवन सार सिरारी तहाँ॥
जुगल जामनू जहाँ विराजै। नारियर नार नारंगी राजै॥

नरगिस और गुलाब के फूल फुले जिहँ ठौर।
नन्दन वन सौं निरखिये जासम कोऊ न और॥
सरिता बहुत बहत जिहँ वन में। झरना चलत लगत सुख मन में।
सोभा अधिक न बरनी जावै। निरखे ही आभा बनि आवै॥[3]

प्रकृति के आलम्बन रूप के उपरोक्त वर्णन गुरु जी के सूक्ष्म पर्यवेक्षण के परिचायक

---

१. गोविन्द रामायण, पृष्ठ ७८

२. कृष्णावतार, चौबीस अवतार, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छंद संख्या १५०

३. पाख्यान चरित्र, श्री दशम गुरु ग्रंथ, सं० २५६, छन्द संख्या ५.९

हैं। किन्तु ऐसे चित्रण उनकी रचनाओं मे अधिक नहीं आ सके हैं। जैसा ऊपर कहा गया है, प्रकृति के अधिकाश वर्णन उद्दीपन रूप से ही सबधित हैं। बारहमासा के अन्तर्गत दशमेश जी ने विप्रलभ भावना की तीव्रता प्रदर्शित करने के लिये प्रकृति के विविध उपकरणों का भी उल्लेख कर दिया। सयोग अवस्था का चित्रण भी ऋतु और महीने के अनुसार हुआ है, परन्तु उसमे प्रकृति के दृश्यो का उल्लेख नहीं है। कृष्ण और गोपियों की सयोगावस्था की क्रीडाएँ भी मनमोहक हैं। माघ के बीतने पर फाल्गुन महीना आ गया, समस्त गोपियाँ कृष्ण के साथ होली खेलने मे मग्न हैं। उसका एक दृश्य देखिए

माघ बितीत भयो रुत फागुन आइ गई सब खेलत होरी।
गावत गीत बजावत ताल कहे मुखते भरुआ मिलि जोरी।
डारत है अलता बनिता छटका सग भारत ऐसन थोरी।
खेलत स्याम धमार अनूप महा मिलि सुदरि सावल गोरी ॥[1]

ग्रीष्म, पावस एव शरद ऋतु सबधी क्रीडाओं का भी वर्णन किया गया है। पावस ऋतु गोप-गोपी, कृष्ण सभी के लिये सुखकारी है और उसमें कृष्ण उन्मुक्त होकर विचरण करते हैं

अन्त भये रुत ग्रीखम की रुतपावस आइ गई सुखदाई।
कान्ह फिरै वन वीथिन मै सगि लै बछरे तिनकी अरु माई।
बैठ तबै फिर मय गुणा गिर गावत गीत सभै मनु भाई।
ता छवि की अति ही उपमा कवि ने मुख तै इम भाख सुनाई ॥[2]

इसी प्रसग मे श्री दशमेश जी द्वारा वर्णित शीतकाल का उल्लेख भी द्रष्टव्य है

सीत भई रुत कातक की मुनदेव चढ्यो जल ह्वै गयो थोरी।
कान्ह कनीरे के फूल धरे अरु गावत बैन बजावत भोरी।
स्याम किधौ उपमा तिहकी मन मधि विचारु कवित्त सु जोरी।
मैन उठ्यो जगि के तिनकै तन लेत है पेच मनो अहि तोरी ॥[3]

उपर्युक्त छदों मे केवल ऋतु अथवा मास का ही उल्लेख है। उनसे सबधित विविध प्रकृति उपकरणो का इनमें कोई समावेश न होने के कारण प्रकृति चित्रण की दृष्टि से इनका अधिक महत्त्व नही कहा जा सकता। गोपियों और राधा की विप्रलभ अवस्था से सबधित बारह मासा के वर्णनों में प्राकृतिक दृश्यों के विविध रूपों का सयोजन मिलता है।

---

१ कृष्णावतार, चौबीस अवतार, श्रीदशम गुरु ग्रन्थ, छद सख्या २२५

२ कृष्णावतार, चौबीस अवतार, श्री दशम गुरु ग्रन्थ, छद सख्या २३०

३ वही, छद सख्या २३३

कृष्णावतार मे गोपियों और राधा की विरह भावना बारहमासा के रूप में अलग-अलग चित्रित है। दोनों में ही प्रत्येक मास की निजी विशेषता का सजीव वर्णन किया गया है। यहाँ पर पहले गोपियों के विरह सम्बन्धित बारहमासा का विवेचन किया जा रहा है।

प्रत्येक महीने में संयोग-अवस्था की दशाओं का स्मरण कर उनकी विरहानुभूति और अधिक तीव्र हो जाती है और उनका जीवन दुखमय बन जाता है। अपनी पूर्व अवस्था का स्मरण करती हुई वे कहती हैं :

> एक समैं रहे किसंक फूलि सखी तह पौन बहे सुखदाई।
> भौंर गुंजारत इतते उतते मुरली नन्दलाल बजाई।
> रीझ रह्यो सुनके सुर मंडल ता छवि को बरन्यो नहीं जाई।
> तऊन समैं सुख दाइक थी रित औसर यहि भई दुखदाई॥[1]

सयोग-अवस्था में सावन की घोर घटाएँ, जिनकी वे लालसा करती थीं, मेघों की वे बूँदे जो उनमें प्रेम-रस का संचार करती थीं, चातक, दादुर, मोर आदि के मधुर स्वर जो उनके कर्ण-कुहरों में प्रवेश कर प्रेमवर्धन करते थे, अब सभी उनके हृदय को दुःखदायी लग रहे हैं :

> घोर घटा घन आए जहाँ सखी बूँदन मेघ भली छबि पाई।
> बोलत चात्रिक दादुर अरु घन मोरन पै घनघोर लगाई।
> ताही समैं हम कान्हर के संग खेलत थीं अति प्रेम बढ़ाई।
> तऊन समैं सुखदायक थी, रित औसर बहि भई दुखदाई॥[2]

राधा की विरह-विकलता बारहमासा के रूप में अत्यन्त भावगर्भित रूप में चित्रित की गयी है। वे प्रिय-मिलन की प्रतीक्षा निरन्तर करती रहीं; किन्तु कृष्ण ब्रज मे नही आये। उनकी समस्त आशाएँ निराशा में परिणत हो गईं। संयोगावस्था में कृष्ण के साथ घटित प्रेम-क्रियाओं का स्मरण कर वह प्रत्येक महीने के आगमन पर खिन्न हो जाती हैं।

वैसाख में सुवासित मलयज समीर, अपना मकरन्द समस्त पृथ्वी-तल और आकाश में बिखेर रहा है; किन्तु कृष्ण-वियोगानल में दग्ध विरहिणी राधा के लिये वह दुःख का कारण बन गया है :

> बास सुबास अकाल मिली घर बासत भूमि महा छबि पाई।
> सीतल मंद सुगन्ध समीर बहै मकरन्द निसंक मिलाई।

---

१. वही, छंद संख्या ८६९

२. कृष्णावतार, चौबीस अवतार, श्री दशम गुरु ग्रन्थ, छंद सं० ८७२

पैर पराग रही है वैसाख सबै ब्रज-लोगनि की दुखदाई ।
मालन लै बकरो रस को टसक्यो न ही यो कसक्यो न कसाई ।।[१]

सावन के आगमन पर सूखे ताल जल से परिपूर्ण हो गये, सरिताएँ जाकर समुद्र में मिल गई, आकाश में घटाओं को देख पपीहे की पी-पी की टेर सार्थक हो गई किन्तु उसके प्रिय कृष्ण नहीं लौटे :

ताल भरे जल पूरन सों अरु सिन्ध मिली सरता सम जाई ।
तैसे घटान छटान मिली अतिही पपीहा पीय टेर लगाई ।
सावन माहि लगिउ बरसावन भावन नही इहा घर भाई ।
लाग रह्यो पुर भामन सों टसक्यो न ही यो कसक्यो न कसाई ।[२]

उपर्युक्त छंद में दशमेश जी ने प्रकृति के विविध उपकरणों द्वारा राधा की विरह-विजड़ित स्थिति की ओर मार्मिक संकेत किया है ।

भादों में घोर घटाएँ चारों दिशाओं में घिर गई, बिजली चमकने लगी, मूसलाधार पानी बरसने लगा, रात और दिन में किसी प्रकार का अन्तर शेष नहीं रह गया; किन्तु विरहिणी राधा की स्थिति कृष्ण की अनुपस्थिति में अत्यन्त भयावह हो गयी और वे अपने प्रियतम को 'कसाई' कहकर मर्मस्पर्शी दशा प्रकट करने लगीं :

भादव माहिं चढ्यो बिन नाहि, दसो दिस माहिं घटा घहराई ।
द्योस निस निहि जान परे तम, बिज्जु छटा रवि की छवि पाई ।
मूसलधार छूटे नभि ते अवनी सगरी जल पूरनि छाई ।
ऐसे समय तजि गयो हमकों, टसक्यो न ही यो कसक्यो न कसाई ।।[३]

माघ महीने में सरोवरों में सुगन्धित सरोज खिल रहे हैं, सरिताओं का जल कम हो गया है, हंस किलोल कर रहे हैं; किन्तु कृष्ण के विना राधा को अहर्निशि चैन नहीं मिलता और उसका दारुण क्लेश बढ़ता जाता है :

वारिज फूल रहे सर पुंज सुगन्ध सने सरितान घटाई ।
कुंजत कंत बिना कुल हंस कलेश बढ़े सुनि के तिह भाई ।
वासर रैन न चैन कहूं छिन मघर मांस आयो न कनाई ।
जातन ही तिन सो मसक्यो टसक्यो न ही यो कसक्यो न कसाई ।।[४]

संयोग की सुखदायी वस्तुएँ विरह में दुखदाई हो जाती हैं । नायिका के सारे

१. वही, छंद सं० ९१५
२. कृष्णावतार, चौबीस अवतार, श्री दशम गुरु ग्रंथ छंद सं० ९१८
३. वही, छंद सं० ८१९
४. श्री कृष्णावतार, चौबीस अवतार, श्री दशम गुरु ग्रन्थ, छंद सं० ८२२

सजे-सँवरे श्रृंगार-प्रसाधन दुःख के प्रतीक बन जाते हैं। अपने दुख के कारण राधा को प्रकृति के उपकरण भी उदास और शोकग्रस्त मालूम पड़ते हैं। पूस के वर्णन में कवि ने विरहिणी की ऐसी ही उद्वेगमयी दशा का परिचय दिया है :

भूम अकास अवास सुवास उदास बढ़ी अति सीतलताई।
कूल दुकूल ते सूल उठे सम तेल तमोल लगे दुखदाई।
पोख सन्तोख न होत कछू तन सोखत जिऊ कुमुदी मुरझाई।
लोभ रह्यो उन प्रेम गह्यो टसक्यो न ही यों कसक्यो न कसाई ॥[१]

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट प्रकट होता है कि गुरु जी द्वारा किया हुआ उद्दीपन रूप में प्रकृति-चित्रण किसी भी तत्कालीन महाकवि के समकक्ष रखा जा सकता है। उनकी काव्य-कला ने जिस रूप में निसर्ग-वातावरण का समुचित उपयोग किया है। वह अन्य परंपरा-वादियों से उन्हें ऊँचा और महान बना देता है।

अप्रस्तुत-योजना में प्राकृतिक वस्तुओं का उपयोग कवि परम्परा से करते आये हैं। गुरुजी ने भी अलंकार-विधान में प्रकृति का अनेक स्थलों पर उपयोग किया है। दशमेश जी की प्रायः सभी रचनाओं मे ऐसे उपयोग उपलब्ध होते हैं जिनमें उपमा और उत्प्रेक्षा के प्रयोगों का विशेष महत्त्व है।

राजा इन्द्र के क्रोध करने पर सभी दैत्य इस प्रकार एकत्र हो गये जैसे सूर्य को घनघोर काली घटाओं ने घेर लिया हो। इन्द्र के बाण शत्रुओं के हृदय में इस प्रकार लग रहे थे मानों पर्वत के करार में सारक शिशु चोंच फैला रहे हों :

राज पुरन्दर कोप कियो इत जुद्ध को दैत्य जुरे इत कैसे।
स्याम घटा घुमरी घन घोर कै घेरि लियो हरि को रवि तैसे।
सक्र कमान के बान लगै सर कोकलसै अरि के उर ऐसे।
मानो पहार करार में चोंच पसार रहे सिसु सारक जैसे ॥[२]

उत्प्रेक्षा के द्वारा कवि ने प्राकृतिक छटा की सुन्दर झाँकी उक्त छंद में प्रस्तुत की है।

भगवान को प्रसन्न करने के लिए भक्त कवि ने सुन्दर रूपक-विधान किया है। समस्त द्वीपों का कागज, सातों समुद्रों की स्याही, सारी वनस्पतियों की कलम, सरस्वती को वक्ता और एक करोड़ गणेशों के हाथ से अपनी ईश्वर-विनय लिखवाने का उपक्रम कवि की अद्भुत कल्पना का परिचायक है :

---

१. वही, वही, छंद संख्या ९२३

२. चंडी चरित उक्ति-विलास, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छंद सं० ६५

कागद दीप समै करिकै, अरु सात समुन्द्रन की मसु कैहों।
काट बनास पती सगरी, लिखबै हूं के लेखन काज बनैहों।
सारसुती बकता करिकै, जुगि कोटि गणेस के हाथ लिखैहौं।
काल कृपान बिना विनती न, तऊ तुमको प्रभु नैक रिझैहौं।[१]

दशमेश जी की रचनाओं में अत्युक्तिपूर्ण शैली के अद्भुत एवं अलौकिक चित्रण प्रायः अपवाद रूप में ही प्राप्त होते हैं।

महाराज रघु के अपूर्व व्यक्तित्व की प्रशंसा करते हुए कवि कहता है कि उन्हें मयूरों ने मेघ, चकवी ने सूर्य, चकोरों ने चन्द्र तथा सीपों ने स्वाति-बिन्दु के सदृश जाना। कोयल ने उनमे वसंत और चातक ने स्वाति बूँद के समान आभास पाया :

मोरन महा मेघ करि मानिआ। दिनकर चित्र चकवी जानिआ॥
चन्द्र सरूप चकोरन सूझा। स्वाति बूंद सीपन कर बूझा॥
मास वसन्त कोकला जाना। स्वाति बूंद चातक अनुमाना॥
साधन सिद्ध रूप करि देखा। राजन महाराज अवरेखा॥[२]

अलंकार-विधान के लिये प्राकृतिक उपकरणों के प्रयोग के कई उदाहरण दिये जा सकते हैं परन्तु उनका यहाँ सविस्तार वर्णन पिष्टपेषण ही होगा। उपर्युक्त विवेचन से यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि गुरु जी ने प्रकृति-चित्रण से मुँह नहीं मोडा है वरन् यथावसर ऐसे चित्रणों में अपने को भली-भाँति रमा दिया है। प्रकृति के स्वतंत्र-चित्रण उन्होंने जहाँ कहीं भी लिये हैं वे उनकी नैसर्गिक प्रतिभा के द्योतक हैं। धर्मपाल आश्ता के कथनानुसार निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि गुरु गोविन्दसिंह का प्रकृति संबंधी दृष्टिकोण अत्यन्त व्यापक था। उन्होंने भावोद्दीपन, वस्तुओं की परिगणन शैली एवं उदाहरणों में प्रकृति के विविध उपकरणों का सुन्दर उपयोग किया है। उनकी कोई भी ऐसी रचना नहीं जिसमें प्रकृति का चित्रण न हुआ हो।[3]

प्रकृति से इतर दृश्य वर्णन

गुरु गोविन्दसिंह जी की सूक्ष्मपर्यवेक्षण-वृत्ति केवल प्राकृतिक परिवेश में ही नहीं, वरन् अन्य बाह्य दृश्यों में भी रमी है। यदि एक ओर उन्होंने प्रकृति का अक्षय वैभव पूरी उदारता के साथ काव्य-उपवन में वितरित किया है तो दूसरी ओर वीर,

---

१. विचित्र नाटक, वही, छंद संख्या १०१, पृष्ठ १७
२. रुद्र अवतार, चौबीस अवतार, वही, छंद संख्या १४९, १५०
३. दि पोयट्री आफ् दशम ग्रन्थ पृष्ठ २०३

श्रृंगार आदि रसमयी भूमियों पर मनोमुग्धकारी, अतिशय आह्लादक एवं यथातथ्य सुनियोजित वर्णनों की अनुपम छटा भी बिखेरी है।

श्रीकृष्ण और रुक्मिणी के विवाह-उत्सव के अवसर पर सारे नगरवासियों में उल्लास छाया हुआ है। उनके हृदय की प्रसन्नता नृत्य, गायन, वादन के रूप में प्रकट हो रही है। इसका एक दृश्य देखिए :

एक बजावत बैन सखी इक हाथ लिए सखी ताल बजावैं।
नाचत एक भली विधि सुन्दर सुन्दर एक भली विधि गावैं।
झांझर एक मृदंग के बाजत आये भले इक हाव दिखावैं।
भाय करै इक आय तवै चितकेर नवारन मोद बढ़ावैं ॥[1]

कृष्ण और गोपियों की रास-क्रीड़ा के प्रसंग में ऐसे ही अनेक दृश्यों की योजना कवि ने प्रस्तुत की है। एक अन्य दृश्य देखिए :

एक नचै इक गावत गीत बजावत ताल दिखावत भावन।
रास विखै अति ही रस सो सुरिझावन काज सबै मन भावन।
चान्दनी सुन्दर रात दिखै कवि स्याम कहे सुत्रिसे रुत सावन।
ग्वारनियाँ तजिकै पुर को मिलि खेलि करै रस नीकनि ठावन ॥[2]

कृष्ण की मुरली-माधुरी के प्रसंग में रागों और उसके सम्यक् प्रभाव का वर्णन भी निम्नलिखित छंदों में द्रष्टव्य है :

सोरठ सारंग औ गुजरी ललता अरु भैरव दीपत गावै।
टोडी औ मेघ मल्हार अलापत गौड और सुध मल्हार सुनावे।
जैतश्री और मौलश्री औ पर जसुराग श्री ठट पावै।
स्याम कहै हरि जी रीझकै मुरली संग कोटक राग बजावै ॥[3]

ललत धनसिरी बजावै संगि बांसुरी किदारा औ मालवा विहागड़ा औ गुजरी।
मारु औ परज और कानड़ा कलिआनी सुभ कुकम खिलावनु सुने ते आवे मूजरी
भैरव पलासी भीम दीपक सु गीरी नट ठांटो दुम छाय मैं सुगावैं कान्ह पूजरी।
ताते ग्रिह तिआगि ताकी सुनि धुनि श्रोनन में मृग नैनी फिरत सुजन बन ऊजरी।[4]

उपर्युक्त छंदों से कवि के शास्त्रीय संगीत के उचित परिज्ञान का स्पष्ट परिचय मिल जाता है।

---

१. कृष्णावतार, चौबीस अवतार, दशम गुरु ग्रन्थ, छंद सं० २०११
२. वही, छंद सं० ५२८
३. वही, छंद सं० २३१
४. वही, छंद सं० २३२

भक्त कवि ने कई स्थलों पर राजसभा का मनोरम वर्णन किया है। स्वयं दशमेश जी का अपना राजदरबार था। अतएव राजा अज की राजशोभा का वर्णन जो उन्होंने इन्दुमती-स्वयंवर के प्रसंग मे किया है, अत्यन्त स्वाभाविक है:—

सोमंत सूर। लोभंत दूर॥
अछरी अपार। रिझी सुधार॥
गावत गीत। मोहत चीत॥
मिल दे असीस। जुग चारि जीस॥
बाजत तार। डारै धमार॥
देवन नार। पेखत अपार॥
कै वेद रीत। गावत गीत॥
सोभा अनूप। सोमंत भूप॥[1]

इन्दुमती के स्वयम्बर में दूर-दूर के स्थानों से आये हुए राजा एकत्र हैं। सब अपने-अपने स्थानों पर विराजमान हैं और एक से एक सुन्दर तथा शक्तिशाली हैं। एक महीने तक नाचरंग हुआ फिर सरस्वती सखी के साथ इन्दुमती राजसभा के बीच पहुँचती है। जिससे वह मुड़कर बात करती है, वही अपने को धन्य समझता है; जिसे छोड़कर आगे बढ़ती है वह अपने को अपमानित समझने लगता है। कई राजा अपनी सेना और साज-सज्जा से सुसज्जित सभा में उपस्थित हैं:

आगन बसंत जनु भयो आजा। इह भांत सब देखे समाजा॥
राजाधिराज बनि बैठ ऐस। तिनके समान नही इन्द्र हैस॥
इक मास लाग तहं भइउ नाच। बिन पीए कैक कोऊ न बाच॥
जहं तहं बिलोक आभा अपार। तहं तहं सुराज राजन कुमार॥
ले संग तास सरस्वती आप। जिह को जपत सब जगत जाप।
निरखो कुमार इह सिंघ राज। जाकी समान नहीं इन्द्र साज॥
अविलोक सिंध राजकुमार। नही तास चित्र कीनो सुमार।
तिह छाड़ि पाछ आगे चलीस। जनु सत सोभ को लील लीस॥[2]

नृप पेखि रीझ। सुर नर खीझ।
चढ़ि तास जान। घट अपमान॥
देखो नरेन्द्र। ठाढ़े महेन्द्र।
मुलतान राज। राजान राज॥

---

१. रुद्र अवतार, चौबीस अवतार, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छं० संख्या ११.१४

२. ब्रह्म रुद्र अवतार, चौबीस अवतार श्री दशम गुरु ग्रंथ छंद सं० ३८,४१

चली छोड़ि ताको त्रीय राज ऐसे।
मनो पांडु पुत्र श्रीराम जैसे॥
रवरी मद्धि राजिस थली ऐस सोहै।
मनो ज्वाल माळा महा मोतियो है॥
कहै बैन सरस्वती देखि बाळा।
लड़ो नैन काढ़े सभै भूप आळा॥
रुचे चित्र जाने सुई नाथ कीजै।
सुनी प्राण प्यारी इहै मानि लीजै॥
सबै भूप ठाढ़े जहाँ राज कन्या।
बिखै भूतलं रूप जाके न अन्या॥
बड़े छत्रधारी बड़े गरब कीने।
वहाँ आन ठाढ़े बड़ी सैन लीनै॥[1]

उपर्युक्त वर्णन द्वारा स्वयम्वर का साक्षात् दृश्य सामने उपस्थित हो जाता है। इन्दुमती की मनोदशा तथा राजाओं की उत्सुकता, आतुरता आदि का इसमें स्वाभाविक चित्रण हुआ है।

दशमेश जी ने नायिका के नखसिख का वर्णन भी जापु, अकाल स्तुति, विचित्र नाटक के अतिरिक्त अपनी सभी रचनाओं में किया है जिसका विस्तृत विवेचन शृङ्गार के अंतर्गत रूप-सौंदर्य प्रसंग में किया जा चुका है। भक्त-कवि का यह वर्णन आलंकारिक शैली मे परम्परायुक्त ही है।

गुरु गोविन्दसिंह ने अपनी रचनाओं में अधिकाश स्थानों पर वीर रसों के अन्तर्गत उभय पक्ष की सेना, युद्ध-स्थल और युद्धों का स्वाभाविक और यथातथ्य बर्णन किया है जिसका उल्लेख पहले वीर रसात्मक विवेचन के अन्तर्गत हो चुका है। गुरुजी ने स्वयं अनेक युद्धों का संचालन किया और उनमें सक्रिय भाग लिया था इसलिये उनके तत्सम्बन्धी वर्णन पूर्णतया स्वाभाविक हैं।

गुरु जी ने कृष्ण और अर्जुन का आखेट-वर्णन भी अत्यन्त मनोरम और चित्ताकर्षक शैली में प्रस्तुत किया है। निम्नलिखित छंद इसके उदाहरण हैं।

सोध सिकार की ले हरिजू सुघनो जह को तिह ओर सिधारे।
गोहन सूकर रीछ बड़े बहु चीतरु और ससे बहु मारे।
गंडे हने महितास के मन करी अरु सिंघन मुंडहि झारे।
नेकु संभार रही न परे विसंभार जिनो सर स्याम प्रहारे।[2]

---

1. वही ४९–५१

२. कृष्णावतार, चौबीस अवतार, श्री दशम गुरु ग्रन्थ, छन्द सं० २०८८

पारथ को संग ले प्रभु जू वन मो धसि के बहुते मृग घाए।
एक हने कर वारन सो तकि एकन के तन बान लगाए।
अस्वन को द्वराय भजाय के कूकर तेउ हने गुपराए।
श्री ब्रजनाथ के अग्रज जे उठ भाजत ये तेऊ जान न पाए॥[१]
पारथ एक हने मृगथा एक आपहि श्री ब्रजनायक घाए।
जो उठ भाजत भे वन में सोऊ कूकर हार सबै गहवाए।
तीतर जे उडिके नभ उर गये तिनको प्रभु बाज चलाए।
चीतन एक मृगा गहिकै कवि स्याम कहें जमलोक पठाए॥[२]

गुरु जी ने स्वयं अनेक शिकार किये थे जिनका उल्लेख उनकी जीवनी-प्रसंग में हो चुका है। इससे स्पष्ट है कि शिकार के प्रति उनकी निजी अभिरुचि थी, इसलिये अनेक पशु, पक्षियों एवं उनके मारने की विधि से वे भलीभाँति अवगत थे। अतएव उपर्युक्त शिकार-वर्णन कवि की निजी अनुभूति का परिचायक है।

नीति-उपदेश

भारतीय काव्य-साहित्य में सदा से ही नीति-विषयक कथनों का विशिष्ट स्थान रहा है। अन्य प्रमुख काव्य-धाराओं के साथ नीति-उपदेश-कथन भी यहाँ के कवियों की मुख्य विशेषता रही है। प्रत्येक कवि अपनी काव्य-रचनाओं में नीति व उपदेश संबंधी चर्चा करना प्रायः अपना पुनीत कर्त्तव्य समझता आया है। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश-काव्य ऐसे नीति उपदेशों से भरा पड़ा है। हिन्दी में भक्ति-काल के कवियों ने नीति और उपदेश को विशेष रूप से अपने काव्य में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। नीति-उपदेश संबंधी प्रत्येक कथन कवि की गहन अनुभूति का परिणाम होता है। इसी कारण उसमें भविष्य के मार्ग-प्रदर्शन की भी क्षमता होती है। कबीर, गुरु नानक आदि सन्तों की वाणियों में ऐसे कथनों का आधिक्य मिलता है। गोस्वामी तुलसी, रहीम, वृन्द, दीनदयाल, गिरि, गिरधर आदि के नीति-वचन जनसाधारण में अत्यधिक प्रचलित मिलते हैं। लोकोपकारिता का गुण इनमें प्रधान है। इसलिये ये कथन शीघ्र ही लोकप्रिय बन जाते हैं।

पहले कहा जा चुका है कि गुरु गोविन्द सिंह की रचनाएँ अधिकांश रूप में भक्तिपरक हैं। इस कारण जगत, आत्मा, परमात्मा आदि की चर्चा करते समय अनेक प्रकार के उपदेशों का आ जाना स्वाभाविक ही था। इन्हीं प्रसंगों में नीति संबंधी कथन भी यत्रतत्र आ गये हैं। गुरु जी की जीवन संबंधी स्वानुभूति अत्यन्त

---

१. वही, छंद सं० २०८९
२. वही, छंद सं० २०९०

गहन थी। उन्हें जीवन की ऊँच-नीच, भली-बुरी, सरल विकट, सभी परिस्थितियों का तीव्र अनुभव था, अतएव उनकी अभिव्यक्ति भी काव्य में सरल-सीधी किन्तु अभिव्यञ्जनापूर्ण ढंग से हुई है।

यह संसार नश्वर है। यहाँ तक कि उसमें रहने वाले समस्त प्राणी, उसकी सारी वस्तुएँ भी नाशवान हैं। किन्तु मनुष्य इस क्षणभंगुरता का अनुभव न करता हुआ, उसे स्थायी समझता है और अपने उपक्रम से उसे दीर्घजीवी बनाने की भी चेष्टा करता है। वह टूटी वस्तुओं को अनेक उपायों से जोड़ने में समर्थ भी हो जाता है; किन्तु ऐसी भी वस्तुएँ हैं जो एक बार टूटने पर फिर नहीं जोड़ी जा सकतीं। भक्त कवि इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए कहता है कि शीशा और मनुष्य का मन एक बार टूटने से दुबारा नहीं जोड़े जा सकते :

सब कुछ टूटे जुरत है जानि लेहु मन मित्त।
एक दुबै टूटे न जुरहि एक सीस अरु चित्त ॥[1]

संसार मे स्वार्थी मनुष्यों की कमी नहीं है। स्वार्थपूर्ति के लिये अपने प्रति किये गये उपकारों को वे तिलांजलि दे देते हैं। उपकार का बदला चुकाना तो दूर रहा स्वयं उपकार करने वाले के साथ ही कृतघ्नता और असत्यता का व्यवहार करने लगते हैं। गुरु जी ने ऐसे ही अपकारियों को उपदेश देते हुए कहा है :

जाको लोभ खैये ताको छोरि कबहूं न जैये।
जाको लोभ खैये ताके आगे ह्वै कै जूझिये।
जाको लोभ खैये ताको दगा कबहूं न दैये।
साची सुन लैये तासो साचहूं को बूझिये ॥[2]

चाकरी साधारण काम नहीं है। उसमें क्रोध, मोह, लोभ आदि का परित्याग आवश्यक है। केवल वही सफल चाकरी कर सकता है जो अपनी समस्त दुर्बलताओं का संवरण कर सके। इस संबंध में दशमेश जी का कथन द्रष्टव्य है :

चोरी न कमैये आपु देवे सो भी बाँट खैये।
झूठ न बनैये कछु लेवे को रुझिये।
रोस न बढ़ैये बुरी भाखे सो भी मान लैये।
चाकरी कमैये नाल मोरी बात बूझिये ॥[3]

---

१. पाख्यान चरित, श्री दशम गुरु ग्रंथ, सं० ४२, छंद सं० ४२
२. वही, सं० ७३, छंद सं० ६
३. वही, सं० ७३, छंद सं० ६

उपकृत होने पर यदि चाकर और स्त्री दोनों ही विश्वासघाती सिद्ध हों तो उनकी सर्वाधिक सजा यही है कि मारने की अपेक्षा उनका मन से बिल्कुल परित्याग कर देना चाहिये। किसी अन्य प्रकार से दंडित करना उतना स्थायी एवं प्रभावोत्पादक नहीं हो सकता :

चाकर की अरु नारि की एकै बड़ी सजाई।
जियत कबहूं न मारियहि मन ते मिलहि भुलाई ॥[1]

एक अन्य स्थल पर गुरुजी ने स्वानुभूति जन्य तथ्यों का निरूपण सुंदर ढंग से किया है :

जैसे कोऊ औसद के बल कवि स्याम कहै,
दूरि करे सतिवैद रोग सनपात को।
जैसे कोऊ सुकवि कुकवि कै कवित्त सुनि,
सभा बीच दुखकरि मानत न बात को।
जैसे सिंह नाग को हनत जल आग को,
असुर सुर राग को संचित नर गात को।
तैसे तत्काल हरि वीर मार डारयो जैसे,
लोभहूं ते महा गुनि नासे तम प्रात को ॥[2]

उपर्युक्त कवित्त में दशमेश जी का विविध विषयक ज्ञान स्पष्ट रूप से प्रतिभासित हो रहा है।

दशमेश जी ने यथावसर संसार की क्षणभंगुरता, समस्त राज्य-वैभव, धन-ऐश्वर्य आदि की अस्थिरता, पुत्र-कलत्र, बंधु-बाँधवों के विछोह के वर्णन द्वारा मन-प्रबोधन किया है। इस प्रसंग में निम्नलिखित छंद द्रष्टव्य है :

राज के साज को कौन गुमान निदान जु आपन संग न जैहै।
मौन भंडार भरे घर बार सु एक ही बार बिगान कहैहैं।
पुत्र कलत्र सु मित्र सखा कोई अंत समै तुहि साथ न दैहै।
चेत रे चेत अचेत महा पसु संग बीयो जो भी संग न जैहैं ॥[3]

इसी प्रसंग में पारसनाथ का प्रबोधन करते हुए मत्स्येन्द्रनाथ कहते हैं कि समस्त ऐश्वर्य व्यर्थ है। यदि मन ही विचित्र न हो सका। इस कारण लोक और परलोक दोनों ही नष्ट हो गये :

---

१. पाख्यान चरित्र, श्री दशम गुरु ग्रंथ, संख्या ३३, छंद सं० ४२
२. कृष्णावतार, चौबीस अवतार, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छंद सं० १२९५
३. पारसनाथ अवतार, चौबीस अवतार, श्री दशम गुरु ग्रन्थ, छंद० सं० १६१

कहा भयो जो सभ ही जगजीत सु लोगन को बहु त्रास बितायो।
और कहा-जु पे देस विदेसन महि भले गज गाहि बधायो।
जो मन जीतत है सब देस बहै तुम्हरे नृप हाथ न आयो।
लाज गई कछू काज सऱ्यो नहीं लोक गयो परलोक न पायो ॥[१]

गुरु जी ने कई सवैयों में इसी प्रकार मन को संसार के माया-मोह-जाल से निकल कर सच्ची अराधना करने का उपदेश दिया है :

तो तन त्यागत ही सुन रे जड, प्रेत बखान त्रिया भजि जैहैं।
पुत्र कलत्र सुमित्र सखा इह, वेग निकारहु आइसु देहैं।
भवन भंडार धरा गढ़ जैतक, छाड़त प्रान विगान कहैहैं।
चेत रे चेत अचेत महा पसु, अन्त की बार अकेलोई जैहैं ॥[२]

मनुष्य जीवनपर्यंत अपनी विविध अवस्थाओं में इतना अधिक स्वार्थ-लीन रहता है कि उसे परलोक की सुधि भी नहीं रहती। वह समझता है कि यह अमर रहने वाला प्राणी है; किन्तु उसे क्या मालूम कि प्राणियों का नाश निश्चित है :

प्राणी जनम प्रथम जब आवै। बालापन में जनमु गवावै ॥
तरुणापन तिरियन कै कीनो। कबहूं न मुख तत को चीनो ॥
बिरध समै तनु कापई नामु न जपियो जाई।
बिना भजन भगवान के पाप ग्रिहत तन आई।
मिरतु लोक में आइके बाल वृद्ध कोऊ होइ।
उच्च-नीच राजा प्रजा जियत न रहसी कोइ ॥[३]

भोग-विलास का परित्याग ही श्रेयस्कर है क्योंकि जितने भी भोग के स्थान हैं, सभी अस्वच्छ हैं :

जननि जठर महि आइ पुरुख बहुतो दुख पावहि।
मूत्र धाम को पाइ कहत हम भोग कमावहि।
थूक त्रिया को चाटि कहत अधरामृत पायो।
वृथा जगत में जनम बिना जगदीश गवायो ॥[४]

आशा भी मृगतृष्णा के सदृश ही है क्योंकि उसके कारण मनुष्य पुरुषार्थहीन और ईश्वर-विमुख हो जाता है। उसे त्यागने का उपदेश देते हुए गुरु जी कहते हैं :

---

१. पारसनाथ अवतार, श्री दशम गुरु ग्रन्थ, छन्द संख्या १५९
२. सवैये, सं० ३३ पृष्ठ २१
३. पाख्यान चरित्र, श्री दशम गुरु ग्रंथ, सं० ८१, छंद सं० ४३, ४४
४. वही, सं० ८१, छंद संख्या ४९

आसा करत सकल जग मरई। कौन पुरख आसा परि हरई॥
जो नर कोऊ आस को तिआगे। सो हरि पाइन सो लागे।
आसा की आसा पुरख जो कोऊ तजत बनाई।
पाप पुण्य सरतरि तुरत परम पुरी कह जाई॥[1]

मादक पेय-पदार्थ की निन्दा भी गुरु जी ने अनेक स्थानों पर की है। निम्नलिखित छन्द में एक शाह को उसकी स्त्री भाग-सेवन के कुपरिणामों का निर्देशन करती है :

अमल पियत जो पुरख परे दिन रैन उघावत॥
अमल जु घरी पियहि ताप तिन कहँ चढ़ि आवत॥
अमल पुरख जो पीये किस कारज के नाहीं।
अमल खाइ जड़ मृतक हुवे घर माहीं॥[2]

उपर्युक्त विवेचन के अनन्तर यह कहा जा सकता है कि भाषा-प्रयोग की विविधता, शैलियों की गरिमा, वीर, शृंगार, शान्त, करुण प्रभृति रसों के समस्त पक्षों की महत्ता, समग्र जीवन-व्यापिनी प्रबंधात्मकता, उन्मुक्त निर्झरिणीवत् मुक्तक भावमत्ता, नीति उपदेश संवलित स्फुट सरसता और साहित्य के मंजुल उपादानों से परिपूर्ण काव्य-कला के सबल साधक के रूप में दशमेश जी अनुपम एवं अद्वितीय हैं। उनकी काव्य-कला दार्शनिक जटिल जातों से सर्वथा मुक्त और सत्य, शिव एवं सुन्दर की पावन त्रिपथगा है। उसमें आदर्श एवं यथार्थ का सुन्दर समन्वय है, काव्य के बहिरंग और अंतरंग का सुष्ठु सामंजस्य है। वह सशक्त, प्राजल एवं साहित्य की उज्ज्वलता से ओतप्रोत है।

काव्य-शैली

विद्वानों के मतानुसार विषयवस्तु तथा उसकी अभिव्यंजना-प्रणाली में कोई तात्त्विक भेद नहीं है। क्योंकि कवि की सृजनात्मक प्रक्रिया में दोनों नीर-क्षीर के मिश्रण की भाँति अभिन्न हो जाती है।[3] साहित्यानुशीलन से ज्ञात होता है कि एक ही विषयवस्तु ग्रहण करने पर भी उसकी अभिव्यंजना कविगण विविध प्रकार से करते हैं। इसका आधार उनकी व्यक्तिगत अनुभूति होती है। जिसकी अनुभूति किसी विषय मे जितनी अधिक गहरी होती है अथवा जिसमें उसकी वृत्ति जितनी अधिक रमती है उसी अनुपात से अनुभूति और अभिव्यंजना में भी उत्कृष्टता आ जाती है। राम के कथानक की कथावस्तु एक होते हुए भी उसमें अनेक कवियों ने अपना

---

१. वही, संख्या २०९, छंद संख्या ५४, ५८
२. पाख्यान चरित्र श्री दशम गुरु ग्रन्थ, सं० २४५, छंद सं० ११
३. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास, षष्ठ भाग, पृ० २२७

रचना-कौशल प्रस्तुत किया है और सबका पृथक्-पृथक् महत्त्व है। यह कवि ही है जो अपने ज्ञान, निपुणता और पांडित्य के द्वारा अपनी अभिव्यंजना-पद्धति अथवा शैली को प्रभावोत्पादक बना देता है। इसी को हम दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि कवि की अभिव्यंजना-शैली में उसके व्यक्तित्व का समावेश हो जाना स्वाभाविक है।

शैली में रचनाकार का संपूर्ण व्यक्तित्व जाने-अनजाने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में सहज ही झलकता रहता है। यही कारण है कि कुछ लोगों ने शैली को ही व्यक्तित्व माना है।[1] इसी को हम इस प्रकार भी कह सकते हैं—"कविता की आत्मा उसके भाव और विचार हैं तथा शैली उसका शरीर है। दंडी ने काव्य में दोनों का महत्त्व स्वीकार किया है। यही दोनों कवि के भावपक्ष और कलापक्ष कहलाते हैं।"[2] वह अपनी अनुभूतियों को सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान करने अथवा मूर्त रूप में प्रस्तुत करने के लिये तदनुकूल भाषा, शब्द, छन्द, विशेषणों, मुहावरों, लोकोक्तियों आदि का चुनाव करता है। इनका समावेश, भावावेश की स्थिति में कभी सहज भाव में हो जाया करता है, कभी उसे परिश्रम भी करना पड़ता है। इन सबके आयोजन द्वारा पाठक के समक्ष ऐसा वातावरण तैयार हो जाता है जिससे वह भी भावानुभूति से विभोर हो उठता है। भावानुभूति कराने के लिये विविध चित्रों, रंगों, रेखाओं और उनके विश्लेषण की भी आवश्यकता होती है। ये ही सब आधार हैं जिनसे हम कवियों की वैयक्तिक अभिरुचि, काव्य-क्षमता और उसके समकालीन वातावरण तथा कवि पर उसके प्रभाव आदि को भलीभाँति समझ सकते हैं।

वीर तथा अन्य रक्षात्मक शैलियाँ

वीर

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गुरुगोविन्द सिंह की रचनाओं की शैलीगत विशेषताओं में उनके व्यक्तित्व और वातावरण की स्पष्ट झलक होगी। जैसा कि पहले उल्लेख हो चुका है, गुरुजी के समय में देश में अनेक प्रकार की परस्पर विरोधी प्रवृत्तियाँ चल रहीं थीं। मध्यकालीन भारतीय वातावरण में विशेष रूप से औरंगजेब शासन-काल में मानवता की हत्या हो रही थी।[3] यह पहले बताया जा चुका है कि दारा को संरक्षण प्रदान करने एवं उसका समर्थन करने के कारण गुरु गोविन्दसिंह औरंगजेब के कोप-भाजन बन चुके थे। पहाड़ी राजाओं से मतभेद और

---

१. स्टाइल इज़ दि मेन-काव्य के रूप, पृष्ठ २३२
२. सूर सौरभ, पृष्ठ ३७९, ३८०
३. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षष्ठ भाग, पृष्ठ ६

पजाब के आतरिक शत्रुओं से अपनी रक्षा करने मे ही उनका सारा जीवन बीता। इन सघर्षों के कारण उनकी शैली मे ओज, प्रखरता, तीव्रता और अपूर्व उत्साह का सन्निवेश स्वाभाविक ही है। वीरगाथा काल की सी फडकती भाषा की आवश्यकता पुन हुई। जहाँ एक ओर महाराष्ट्र में महाकवि भूषण अपनी वीर रक्षात्मक रचनाओं से उत्साह और स्फूर्ति का सचार कर रहे थे, वहाँ दूसरी ओर लाल और सूदन बुदेलखड में वीरोत्साहपूर्ण छदों द्वारा जन जीवन मे चेतना उत्पन्न कर रहे थे। गुरु गोविन्दसिंह के सामने एक तो वीर गाथाओं की विस्तृत विरासत परम्परा से प्राप्त थी, दूसरी ओर समकालीन वातावरण मे एक ऐसी शैली का आधार लेना था जिससे वे अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करके साहसपूर्वक कह सकते—हाँ! मैने चिडियों को बाज बना लिया।[1] इसके लिये सर्वाधिक उपयोगी वीर गीतों, छदों, शब्दों, मुहावरों, लोकोक्तियों से युक्त प्रचलित भाषा में ओजपूर्ण शैली ही उपयुक्त थी। यही कारण है कि उनका एक भी ग्रथ ऐसा नहीं है जिसमें उन्होंने युद्धों का वर्णन न किया हो। जहाँ उन्हें जरा भी अवसर मिला उसका वे आवश्यकता से अधिक लाभ उठाने की ही चेष्टा करते दिखाई देते हैं। यहाँ तक कि कहीं-कहीं उनका आवेश भक्ति भावना से परिपूर्ण छदों तक मे इतना बढ जाता है कि पाठक गण यह निर्णय नहीं कर पाता कि वह भक्तिपूर्ण छद पढ रहा है या कोई वीर रक्षात्मक रचना।[2]

अस्त्रों शस्त्रों का नाम स्मरण उन्होंने परमात्मा के पर्यायवाची नामों के सदृश किया है। रामावतार में युद्धों की भरमार है। कबध राम से अकेला लडा था, परन्तु गुरुजी ने वहाँ अपार सेना का जमघट लगाकर भयकर युद्ध का चित्रण किया है। चौबीस अवतारों की लीला मे कृष्णावतार के कुछ अशों को छोडकर शेष युद्ध प्रधान ही हैं। इनके युद्ध-वर्णन और वीरगाथाकालीन तथा उनके समकालीन वीर-रस के कवियों के युद्ध वर्णनों मे अतर है। गुरु गोविन्दसिंह इतिहास प्रसिद्ध हैं—आजीवन सैनिक जीवन व्यतीत करने वाले। वीररस के अन्य कविगणों मे बहुत कम को युद्धों का प्रत्यक्ष व्यावहारिक ज्ञान था। अन्य कवि सुनकर दूर के निरीक्षण अथवा काव्यों के

---

१ जब चिड़ियों से बाज तुड़ाऊ।
तब गोविन्दसिंह नाम कहाऊँ॥

जीवन कथा श्री गुरुगोविन्द सिह, पृष्ठ ४५१

२ कृपाण पाण धारिय। करोर पाप टारिय॥
गदा गृष्ट पाणिय। कमाण बाण ताणिय॥
सबद सख बज्जिय। घणकि घुघु गज्जिय॥*

अकाल स्तुति, छन्द सख्या ४८।

अध्ययन पर निर्भर रहते थे। इसके अतिरिक्त एक अन्य विशेषता वीर कवियों से गुरु जी को बिल्कुल अलग खडा कर देती है। वह है सभी वीर कवि दरबारों, राजसभाओं के आश्रित होते थे; किन्तु गुरु जी स्वयं आश्रयदाता और शासक थे। जहाँ वीररस के आश्रित कवि आश्रयदाता को चाटुकारिता द्वारा प्रसन्न रखने के लिये अथवा प्रशस्तिगान द्वारा उनका उत्साह बढाने के लिए कभी-कभी मिथ्या प्रशंसा भी कर दिया करते थे, उसकी गुरुजी को आवश्यकता ही नहीं पड़ती थी जिससे उनकी वीररसात्मक शैली में अटूट सच्चाई और गाम्भीर्य तथा ओज आ गया है। वीररस के साथ ही अन्य भयानक, रौद्र, बीभत्स, अद्भुत रसों का भी समावेश उनकी रचनाओं में हो गया है।

शान्त

जैसा कि पहले इंगित किया जा चुका है मध्यकालीन धार्मिक साधना में भक्ति, आन्दोलन के व्यापक प्रभाव मे साधारण से साधारण और उच्च से उच्च व्यक्ति भी नहीं बच सका। मुगलकालीन विलासी वातावरण में श्रृंगारिक प्रवृति के बढ़ने और भक्ति के क्षेत्र में सूर, तुलसी सदृश क्रान्तिदर्शी महात्माओं के अभाव के कारण ही भक्ति रसात्मक काव्य की धारा धीरे-धीरे क्षीण पडने लगी थी, यद्यपि इसका एकदम लोप नहीं हुआ था। तत्कालीन सगुण, निर्गुण भक्ति सबंधी विवेचन केवल परम्परा मुक्त और पिष्टपेषणमात्र था। प्रभावशाली धार्मिक नेतृत्व के अभाव में, अस्त-व्यस्त होने पर भी सिक्ख संप्रदाय का जो संगठित प्रयास, दमन के विरोध में चल रहा था, उसे गुरु गोविंदसिंह ने और भी अधिक शक्तिमत्ता प्रदान की। साथ ही उन्होंने राम-कृष्णपरक शौर्यमयी भक्ति-भावना से प्रेरणा ग्रहण की। इसीलिये सर्वाधिक प्रतिभासंपन्न होने के कारण वीररसात्मक शैली के साथ-साथ भक्तिमूलक-शैली का भी सुंदर रूप प्रस्तुत किया। यह सच है कि उनका संबंध एक धार्मिक पंथ-विशेष से था। और उन्होंने भक्ति पर जो स्वतंत्र ग्रन्थ रचे हैं उनमें निर्गुणोपासना पर बल, अंधविश्वास और अवतारवाद का खंडन आदि सिद्धान्तों का प्रायः मंडन किया गया है; फिर भी उनकी भक्ति केवल खंडन-मंडनात्मक न होकर, जन-जागरण का प्रमुख उपादान बन कर आई है। उसमें भक्त कवियों की शैली और भाषागत समस्त विशेषताएँ सर्वांगीण मात्रा में आ गई हैं और तुलसी के अतिरिक्त अन्य कवियों की भक्ति-भावना से विशिष्ट, अधिक उपादेय और समाज-सापेक्ष है। भक्ति के अन्तर्गत जहाँ उन्होंने अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है, वहाँ अनेक प्रकार के अन्ध-विश्वासियों और ढोंगियों का उपहास किया है। ऐसे प्रसंगों में हास्य और विनोद की बड़ी सुन्दर योजना हो गई है। फलतः इस प्रकार की ललित और मनोरंजक-शैली के गठन में कवि ने सार्थक रसानुकूल योजना की है। ईश्वर-स्तुति तथा संसार की नश्वरता में जहाँ वैराग्य और निर्वेद है, शान्त रस की छटा अवलोकनीय है।

तत्कालीन कवियों मे से किसी ने भी इतनी तन्मयता, विह्वलता, रसात्मक और विस्तार से भक्तिपरक शैली का नियोजन नहीं किया। रीतिकालीन रचनाओं में कहीं-कही भक्ति सम्बन्धी उल्लेखों को देखकर उन्हे भक्तिपरक कदापि नही माना जा सकता।[1] किन्तु गुरु गोविन्दसिंह की भक्ति-परक शैली निश्चित रूप से भक्त कवियो के अनुकूल गिने जाने योग्य है।

शृंगार

जैसा कि पहले कहा जा चुका है गुरुगोविन्द सिंह के समकालीन साहित्य की मुख्य धारा रीतिबद्ध शृंगार तो सभी प्रकार के ग्रंथों मे परिव्याप्त था, चाहे वे रीतिबद्ध हों, अथवा रीतियुक्त।[2] इस शृंगार की सबसे प्रधान विशेषता अलंकृत वर्णन-पद्धति थी। एक भी चित्र तथा एक भी मुद्रा के भाव ऐसे नहीं हैं, जहाँ अलंकरण न हो। विशेष रूप से इस युग के हिन्दी साहित्य मे शृंगार के क्षेत्र मे वाक्य विन्यास, शब्द-चयन, भाव-माधुर्य में परिमार्जन और परिष्कार खूब हुआ। एक शब्द को परखने मे जितनी सावधानी की आवश्यकता होती है, उसका कवियों ने अपनी शैली मे पूरा निर्वाह किया है। शृंगार के लिये मुक्तक शैली के सवैया और कवित्त छंद सर्वाधिक प्रिय थे। रीतिकवियों ने मुक्तकों को ही अधिक अपनाया है। दशमेश जी मुक्तक-शैली मे जितने सफल हुए, उतने प्रबन्ध शैली में नहीं। उनकी प्रबन्ध-शैली में लिखित रचनाएँ विशेष रोचकता की सृष्टि नहीं कर सकी हैं। इस पर आगे विस्तार से विवेचन किया जायेगा।

हास्य रस शृंगार और भक्ति दोनो मे आया है। वात्सल्य रस की भी कृष्णावतार मे उन्होंने बड़ी सुन्दर योजना की है। युद्धों तथा किसी की मृत्यु के प्रसंग में कुछ स्थल बडे ही मार्मिक हैं जिनमे करुण रस का आगमन सहज में हो गया है।

'शृंगारिकता के अतिरिक्त रीति-काव्यों मे भक्ति और नीतिपरक उक्तियाँ भी बिखरी पड़ी हैं। पर इनके आधार पर रचयिताओं को न तो भक्त माना जा सकता है और न विलक्षण राजनीतिज्ञ।'[3] परन्तु गुरु गोविन्दसिंह की भक्ति के सम्बन्ध में कहा जा चुका है कि वे निश्चित रूप से भक्त थे। नीति के सम्बन्ध में भी स्पष्ट है कि वे विलक्षण राजनीतिज्ञ थे ठीक रहीम के सदृश। भले ही नीति मे उन्हें रहीम की तरह उतनी सशक्त अभिव्यक्ति का अवसर न प्राप्त हुआ हो, फिर भी यह तो निःसंकोच कहा जा सकता है कि उनके नीतिपरक कथनों में पर्याप्त सचाई है। इसके लिये

१. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, पृष्ठ २१२, २१३
२. बिहारी पृष्ठ ६
३. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, पृष्ठ २१२

उन्होंने अपने पूर्वकालीन नीतिकारों का भी आश्रय लिया है। नीतिपरक मुक्तकों में उन्होंने उदाहरण, दृष्टान्त, अन्योक्ति, अर्थान्तरन्यास की शैली का अनुसरण किया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि उनकी रचाओं मे साहित्य के सभी रसों के परिपाक के साथ तत्सम्बन्धी समस्त अभिव्यंजना-शैलियों का समावेश हो गया है। अपनी युग की सभी प्रवृत्तियाँ चाहे वे परम्परागत रूप में रही हों अथवा सर्वोत्कृष्ट स्थान में, सभी मे अपनी काव्यशैली की दक्षता दिखाई। शैलीकार के व्यक्तित्व को समझ लेने के पश्चात् अब उसकी शैली की विशेषताओं पर प्रकाश डालना समीचीन होगा।

काव्य-रूप

काव्य-रूप की स्थिति मानसिक या भावनात्मक होती है। किसी वस्तु की मानसिक या भावनात्मक अनुभूति के अनेक तत्त्व संघटित होकर एक निश्चित आकार प्राप्त करते हैं। रूप किसी वस्तु के आंतरिक कारणों पर प्रकाश डालता है अथवा यों कहें वह उनके अस्तित्व का कारण, जिसके द्वारा उस वस्तु के उपादान को आकार प्राप्त होता है।[1] कलाकृति में रूप का तात्पर्य उन समस्त तत्त्वों का एक सन्निहित, एकत्रित आकार है जिससे उस कृति के विशिष्ट गुणों का निश्चय होता है। इस प्रकार काव्य-सृजन की प्रक्रिया में रूप, विषय-वस्तु, अभिव्यक्ति और शैली में अभिन्नता स्थापित हो जाती है जिससे कि उनके पार्थक्य का लोप हो जाता है। रीतिकाव्यों में जो विषय-वस्तु अपनाई गई है, वह अपने आपमें एक विशिष्ट आकार में ढल गई।[2] राजसभा में बड़प्पन पाने और तत्कालीन रसिकों को तुष्ट करने के लिये चमत्कार-प्रवण काव्य रचा गया। इस रचना-पद्धति के लिये मुक्तकों से उन्हें बड़ी सहायता मिली। गुरु गोविन्दसिंह जी ने यद्यपि प्रबन्ध-शैली का भी चौबीस अवतारों के प्रसंग मे आधार लिया है; परन्तु उसके अधिकांश स्थल इतिवृत्तात्मक, वर्णनात्मक अथवा आख्यान शैली तक ही सीमित रह गये हैं, उनमे रसात्मकता व तल्लीनता कम प्रतीत होती है। ऐसा जान पड़ता है कि कवि किसी प्रकार कथा मात्र कह कर संतोष कर लेना चाहता है। द्रुतगति के कारण ही उनकी शैली मे शिथिलता आना स्वाभाविक है। कथा कहने के अतिरिक्त कवि को उसमें अधिक रमने का संभवतः अवकाश नहीं था। उदाहरणार्थ :

भीम पठयो तब पूर्व को अरु दछन को सहदेव पठायो।
पच्छम भेजत भे नुकुल कहि बिऊत इहै नृप जज्ञ बनायो।

---

१. हिन्दी साहित्य कोश, पृष्ठ ८४८
२. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, पृष्ठ २१४

पारथ गयो तब उत्तर को न बचयो जिह जा संग जुद्ध मचायो ।
जोर धनो धनु स्याम भनै सु दिल्ली पति पै चलि अर्जुन आयो ॥
पूरब जीत के भीम फिर्‌यो अरु उत्तर जीत कै पारथ आयो ।
दृछन जीत फिरिउ सहदेव घनो चित मै तिन उज जनायो ॥
पच्छम जीत लियो नुकुले नृप के तिन पाहन पै सिर निधायो ।
ऐस कह्‌यो सभ जीत लये ,हम सिंध जरा नहीं जीतन पायो ॥[1]

करुधत दामन सघन सघन घोरत चहूं दिसि घन ।
मोहित भामन सघन डरत बिरहनि त्रिय लखमन ॥
बोलत दादर मोर सुघन झिल्ली झिंकारत ।
देखन द्दगन प्रभाव अमित मुन मन बृत हारत ॥
इह बिध हुलास मद नज दूसर ज दिन चटक सटक है ।
बिन इक विवेक सुनहु नृपत अउर दूसर को हटक है ॥
त्रितीय पुत्र आनन्द जदिन शस्त्रन कहु धरि है ।
करिहै दित्र बचित्र सु रण सुरनर मुनि हरिहैं ॥
को भट परिहै धीरज दिन सामुहि वह ऐहै ।
सबको तेज प्रताप छिनक भीतर हर लैहै ॥
इह विधि अनन्द दुरधरख भटज दिन शस्त्र गहमिक है ।
बिन इक धीरज सुमिरे नृपत सु अऊर न दूसरि टिकहै ॥[2]

प्रबन्ध-शैली के लिये जिस व्यापक आयोजना की आवश्यकता पड़ती है, उसकी ओर ध्यान देने का उनके पास समयाभाव प्रतीत होता है । प्रबन्ध-शैली के लिये दोहा, चौपाई, छन्द सर्वप्रिय रहे हैं; परन्तु दशमेश जी के छन्द अधिकांशतः वही हैं जो रीतिकाल की मुक्तक रचनाओं के लिये प्रयुक्त होते थे । उनके द्वारा अपनाई गई दूसरी शैली संवाद-शैली है । संवादों में प्रवाह, भाषा की सरलता-सहजता की बहुत आवश्यकता होती है । संवाद-शैली में यह भी ध्यान देना पडता है कि कहने वाले की बातें इतनी प्रभावशाली, रोचक और सहज बोधगम्य हों कि श्रोता का मनोरंजन हो और उसे तात्कालिक लाभ का अनुभव हो सके ।[3] संवाद-शैली में बृहत् कथानक, घटना, वातावरण आदि का निर्माण प्रबन्ध के सदृश हो सकता है; क्योंकि हिन्दी के बड़े-बड़े प्रबन्धकाव्यों में स्थान-स्थान पर यह लक्षित कर दिया गया है कि उसमें वक्ता और श्रोता दो की स्थिति होती है । अर्थात् सारा प्रबन्ध दो या दो से अधिक व्यक्तियों

१. कृष्ण अवतार, चौबीस अवतार, छंद सं० २३१५, २३१६
२. पारसनाथ रुद्र अवतार, छंद संख्या १७३, १७४
३. आचार्य केशवदास, पृष्ठ १७४

के संवादों का परिणाम होता है, तथापि संवाद-शैली का स्वतंत्र अस्तित्व भी है। विशेष रूप से जहाँ पर किसी सिद्धान्त का प्रतिपादन या, राजनैतिक दाँव-पेच का प्रकाशन आदि हो। अपनी पुष्टि के लिये वह किसी निश्चित घटना का सहारा भी लेता है; परन्तु उसमें घटना का महत्त्व गौण होता है। गुरुजी की रचनाओं में 'नृप कुंअरि चरित्र' और 'श्री रणखम्भ कला चरित्र' संवाद शैली के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इनमें कवि ने दो व्यक्तियों की बातचीत द्वारा अपने सिद्धान्तों की महत्ता का प्रतिपादन किया है। उनमें भाषा का प्रवाह और सहज बोधगम्यता द्रष्टव्य है। साथ ही, अपने सिद्धान्तों के मंडन में उनकी शैली आवेशपूर्ण भी हो गई है।

निज नारी के साथ नेहु तुम मित बढैयहु।
पर नारी की सेज भूलि सुपने-हूं न जैयहु॥
पर नारी के हेत सीस दस-सीस गवायो।
हो पर नारी के हेत कटक कवरन को धायो॥

कही कुंवरि पितु पहियें जैहौ। तैं मुहि डारा हाथ बतैहों।
तेरे दोनों हाथ कटाऊँ। तौ राजा की सुता कहाऊँ॥[1]

यहाँ पर स्वभावोक्ति के द्वारा संवाद में उग्रता की बडी सुन्दर अभिव्यंजना हुई है।

समस्यापूर्ति

मध्यकाल में काव्य के इस रूप का भी पर्याप्त प्रचलन था। कवि अपने अनुभव को प्रकृति से अथवा किसी मनगढ़न्त घटना का आधार लेकर चित्रित करते थे। पहले समस्या गढ़ ली जाती थी। समस्यापूर्ति के लिये कवित्त, सवैया, छन्द सर्वाधिक प्रिय थे। इसमें कवि अपनी प्रतिभा, शब्द-प्रयोग की क्षमता आदि का विलक्षणतापूर्वक परिचय देता था। संभवतः गुरु गोविन्दसिंह ने समस्या-पूर्ति की रचनाएँ नहीं की थीं, तथापि इस शैली का प्रभाव उनके कुछ छंदों में दिखाई पड़ता है। यथा—

नाचिओई करत मोर दादर करत सोर,
सदा घनघोर घन करिओई करत है।
एक पाइ ठाढ़े सदा बन में रहत बृच्छ,
फूक फूक पाव भूम स्रावग धरत हैं॥
पाहन अनेक जुग एक ठउर दासु करै
काग अउर चील देस देस विचरत है।
ज्ञान के विहीन महादान में न हूजै लीन,
भावना यकीन दीन कैसे कै तरत है॥[2]

---

१. पाख्यान चरित्र, श्री दशम गुरु ग्रन्थ साहिब, सं० १०, छंद सं० ५१, ५२

२. अकाल स्तुति, छद स० ८१ पृष्ठ १४

उल्लिखित दोनों अन्तिम चरणो को लेकर, उनमे कथित बातों का गुरुजी ने अनेक छंदों द्वारा प्रतिपादन किया है।

'मुक्त' शब्द में 'कन्' प्रत्यय लगाने से 'मुक्तक' शब्द की सिद्धि होती है। मुक्तक का तात्पर्य है—पूर्णतया निर्पेक्ष वस्तु। बिना किसी की अपेक्षा रखते हुए भी यह अपने आप मे पूर्ण होता है। इस प्रकार के काव्यरूप लघु रसात्मक खंड दृश्यों के चित्रण में अधिक सफल होते हैं। प्रबन्धक को मुक्तकों का उल्टा कह सकते हैं। उनमें जीवन के अनेकानेक अनुबंधपूर्ण दृश्य अनुबद्ध होते हैं।[1] पूर्वापर सम्बन्ध न होने के कारण कवि को इस छोटे से अनुबन्ध में ही अपनी सारी बात कह देनी पड़ती है। पूर्वापर निरपेक्ष होने पर भी रस-चर्वणा की उसमें क्षमता होनी चाहिये। यदि इस प्रकार कोई छन्द प्रबन्ध के सम्बन्ध के मध्य में आ भी जाय तो उन्हें भी मुक्तक माना जा सकता है। प्रबन्ध के मध्य में आने से मुक्तक को दुहरे उत्तरदायित्व को निभाना पड़ जाता है। पूर्वापर-सापेक्षता भी हो अथवा अप्रासंगिक न लगे और साथ ही उसका स्वतंत्र अस्तित्व भी हो। समूचे रीतिकाल मे मुक्तक रचनाओं का ही प्राधान्य रहा। गुरु गोन्दिसिंह की सफलता इस क्षेत्र मे किसी भी श्रेष्ठ मुक्तककार से कम नहीं है। उनके मुक्तकों के रसास्वादन से यह स्पष्ट भी हो जाता है। भक्ति तथा रीतिकाल के समस्त मुक्तकों की रचना करने की उनमें अद्भुत क्षमता है।

इस काल में मुक्तकों के अनेक छंदों के प्रयोग किये गये हैं। अधिकाश छंदों मे तो कवियों ने अपने अभ्यास और काव्य-नैपुण्य को चमत्कार प्रधान रखा है जिससे उनका अलंकरण तो हुआ; परन्तु हृदयपक्ष दब गया। दशमेश जी के मुक्तकों में सूर, घनानन्द, आलम, बोधा के सदृश भाव-प्रवणता, तल्लीनता और गाभीर्य का सहज स्रोत बह रहा है। कवि ने कहीं भी अलंकारों, चमत्कारो, उक्ति-वैचित्र्य की भरमार करने की चेष्टा नहीं की; वरन् भावधारा के साथ ही भाषा का सहज माधुर्य स्वतः छलक पड़ा है। दो एक उदाहरण देखिए :

नाचत फिरत मोर बादर करत घोर।
दामिनी अनेक भाउ करिओइ करत है॥[2]

... ...

अंजन विहीन हैं निरंजन प्रवीन हैं,
कि सेवक अधीन हैं कटैया जम जाल के॥

---

१. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, पृष्ठ २१५

देवन के देव महादेव हू के देव नाथ,
भूस के भुजैया है मुहीया महाबाल के ॥
राजन के राजा महा साजहू के साजा महा,
जोगहूं के जोग हैं धरैया द्रुम छाल के ॥
कामना के करहै कि बुद्धतां को हर हैं कि,
सिद्धता के साथी हैं कि काल हैं कुचाल के ॥[1]

मध्यकालीन सन्तों और भक्तों ने पदों की पर्याप्त मात्रा मे रचना की है। गुरु गोविन्दसिंह मे जहाँ सभी विषयों और रसों का प्रतिपादन और परिपाक मिलता है, वहीं मध्यकालीन सारी रचना-पद्धतियों मे अपने विचार व्यक्त करने की क्षमता का भी पता चलता है। यह काव्य-रचना की सर्वाधिक गेय रचना शैली है। "सिद्धों के चर्या पदों से इसका इतिहास जोड़ा जा सकता है। परन्तु इसके विकास का मूल स्रोत लोकगीतों की परम्परा ही मानी जा सकती है। वस्तुतः हिन्दी के मात्रिक छंदों के विकास में भी लोक-छन्दों का आधार था और मात्रिक छन्द लोकगीतों की प्रकृति से पूरा मेल रखते हैं। हिन्दी की पद-शैली में विभिन्न छन्दों का प्रयोग उनके अनेक मिश्रित रूपों में हुआ है। इसका निश्चित चिन्ह 'टेक' भी मात्रिक छन्द का ही चरण रहता है।[2] गेयात्मक होने के कारण पद-शैली मे संगीत का अनुपम परिपाक होता है। पदों के साथ प्रायः किसी न किसी राग का निर्देश मिलता है। इन पदों में संगीत का सहज स्वाभाविक स्वरूप रहता है, न कि किसी स्वर और शास्त्रीय ताल-विशेष के आग्रह से युक्त राग का। इन निर्दिष्ट राग से यह नहीं समझना चाहिए कि ये केवल राग में गाये जा सकते हैं अथवा रचनाकार ने उसी विशिष्ट राग का आधार लिया है; वरन् यही माना जा सकता है कि पृथक्-पृथक् सम्प्रदायों में इनके गाये जाने की निश्चित पद्धति थी। इस रचना-पद्धति का कवि भावात्मकता की कुछ विशेष अवस्थाओं में ही आश्रय लेते थे। जब सामान्य छन्दों से वह अपने हृदय की सहज मार्मिकता तथा व्यंजना प्रकट नहीं कर पाता था; तो हृदय का स्वाभाविक उत्स पदों के रूप में फूट पड़ता था। इसमे मार्मिकता तथा व्यजकता के साथ-साथ रूप-सौंदर्य और भाव-सौन्दर्य को अंकित करने की अद्भुत क्षमता रहती है। इनकी "टेक" पद के समस्त भाव की केन्द्र-स्थली होती है। रीतिकाल के छन्दों के प्रसिद्ध छन्द, कवित्त, सवैयों में भावोत्कर्ष क्रमिक रूप से अग्रसर होकर अन्तिम चरण में पूर्णता को प्राप्त होता है। हृदय के भावनाओं की निश्चल आत्माभिव्यक्ति की इससे सुन्दर शैली दूसरी नहीं है।

---

१. वही, छन्द संख्या २६३ पृष्ठ-३७।

२. हिन्दी साहित्य कोश, पृष्ठ ४३६

हिन्दी-साहित्य के इतिहास में पद-शैली की दो निश्चित परम्पराएँ मिलती हैं। प्रथम सन्तों की "सबदों की जिसका सम्बन्ध 'चर्या पदों' तक सरलता से जोड़ा जा सकता है। परवर्ती सन्तों ने सिद्धों और नाथो से भावना और प्रतीकों द्वारा इसे पर्याप्त ग्रहण किया है। दूसरी परम्परा विद्यापति से लेकर कृष्ण-भक्तों तक परिव्याप्त पद-शैली भी है। इन दोनों परम्पराओं के सबंध सीधे लोकगीतों की भावना प्रधान शैली से हैं। लोकगीतों का माधुर्य, भावना की प्रधानता, मार्मिकता, हृदय-स्पर्शिता सभी कुछ इस पद-शैली में मिलती हैं। कबीर, दादू, गुरुनानक, सुन्दरदास आदि अनेक सन्त कवियों ने पद-शैली के द्वारा अपने हृदय की सघन भावाभिव्यक्ति को मूर्त्त रूप दिया है। आध्यात्मिक प्रणय-निवेदन, सदुपदेश, जीवन की नश्वरता, तर्क-वितर्क का जितना सुन्दर निरूपण सन्तों ने इसके द्वारा किया है, उतना अन्यत्र नहीं मिलता। कृष्ण-भक्तों में सूर, मीरा की पद-शैली सर्वोत्कृष्ट है। दशमेश जी ने सन्तों की पदशैली का आधार अनेक आध्यात्मिक प्रसंगों में लिया है। उनके "हजारे के शब्द" की रचना पद-शैली में ही है। मार्मिक एवं सूक्ष्म भावाभिव्यंजन का एक उदाहरण देखिए :

> रे मन इह बिधि जोग कमाउ।
> सिंगी साच अकपट कंठला ध्यान बिभूत चढ़ाउ।
> ताती गहु आतमबसि कर की भिच्छा नाम अधारम्।
> बाजे परम तार ततु हरिको उपजै राग रसारम्।
> उघटे तान तरग रंग अति गिआन गीत बंधानं।
> चकि चकि रहे देव दानव मुनि छकि छकि व्योम बिधानं।
> आतम उपदेस भेसु संजम को जापु स अजपा जापै।
> सदा रहे कंचन सी काया काल न कबहूं व्यापै॥[1]

छन्द-योजना

अक्षर, अक्षरों की संख्या एवं क्रम, मात्रा, मात्रा-गणना तथा यति-गति आदि से संबंधित विशिष्ट नियमों से नियोजित पद्य-रचना छन्द कहलाती है।[2] इस दृष्टि से छंद का काव्य-साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि छंद-विहीन काव्य की रचना हो ही नहीं सकती। छन्द की गेयता, माधुर्य शब्दों का गठन एवं सौंदर्य पाठक और श्रोता दोनों को अपनी ओर आकर्षित करने की अद्भुत क्षमता रखता है। गेयता इसका आवश्यक तत्त्व है, किन्तु अनिवार्य नहीं।

छंदों के दो मुख्य भेद होते हैं—वर्णिक और मात्रिक यह बात ध्यान देने योग्य

---

१. हजारे दे शब्द, श्री दशम गुरु ग्रन्थ संख्या २, पृष्ठ ७१०

२. हिन्दी साहित्य कोश, पृष्ठ २५०

है कि वर्णिक छंदों में मात्राओं की गणना भी निश्चित रहती है। मात्रिक छंदों में वर्णों की संख्या निश्चित करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। गणात्मक वर्णिक छंद 'वृत्त' कहे जाते हैं। संस्कृत में वर्णिक छंदों की ही प्रधानता है। हिन्दी में मात्रिक छंद अत्यधिक लोकप्रिय हुआ है।

गुरु गोविन्दसिंह ने छंदों के दोनों भेदों अर्थात् वर्णिक और मात्रिक का प्रयोग किया है। इन दोनों की रचना करने में उन्हें पर्याप्त सफलता मिली है। नीचे उनके द्वारा प्रयुक्त कुछ छदों पर विचार किया गया है।

वर्णिक छंद

वर्णिक छंदों में दशमेश जी ने कवित्त, भुजंगप्रयात, भुजंगी, समानिका, मालती, तोटक, चर्चरी, किरपान आदि का यत्र-तत्र प्रयोग किया है। इसमें कवित्त प्रभावोत्पादक और सबसे अधिक संख्या में प्रयुक्त हुए हैं। सवैया की भाँति कवित्त का प्रयोग भी पहले पहल अकबर के समकालीन कवियों नरोत्तमदास, गग, बीरबल, तुलसीदास आदि की रचनाओं में मिलता है।[1] केशव और सेनापति के कवित्त हिन्दी साहित्य में सर्वोत्कृष्ट कोटि के माने जाते हैं।

कवित्त या घनाक्षरी को 'दंडक' के अन्तर्गत ही रखा गया है। इसका एक अन्य नाम मनहरण भी है। इसे मुक्तक वर्णिक छंद की कोटि मे माना जाता है। मनहरण कवित्त में ३१ अक्षर तथा १६ और १५ पर यति होती हैं। अन्त में गुरु रहता है। घनाक्षरी वृत्तों में ३१ वर्ण का कवित्त छंद अन्य कवित्तों से सर्वाधिक लोकप्रिय हुआ है।[2] मनहरण के अतिरिक्त रूप-घनाक्षरी का भी उतना ही प्रचलन है। इसमें १६-१६ अक्षरों पर यति होती है। गुरु गोविन्दसिंह जी ने कवित्तों के इन दोनों भेदों को अपनाया है।

उदाहरणार्थ :

मनहरण :

जात में न आवे सो अजात कै कै जानु जिय,
पात में न आवे सो अपात कै बुलाइये।
भेद में न आवै सो अभेद कै कै भाखीअतु,
छेद्यो जो न जाइ सो अछैत कै सुनाइये।
खंड्यो जो न जाइ, सो अखंड जू को ख्याल कीजै,
ख्याल में न आवे गमु ताको सदा खाइये।

---

१. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास पृष्ठ २२२

२. हिन्दी साहित्य कोश, पृष्ठ २८३

जंत्र में न आवे सो अजंत्र कै कै जापीयतु,
ध्यान में न आवे ताको ध्यान कीजै ध्याइये ।।[1]

इसकी प्रत्येक पंक्ति में १६ और १५ अक्षरों की यति का पूर्णतया पालन किया गया है ।

रूपघनाक्षरी :

लूक मलहारी गज गदहा विभूत धारी,
गिदुआ-मसान बास करिओइ करत है ।
घूग्घू मट बासी लगे डोलत उदासी,
मृग तरवर सदीव मोन साधे ही मरत हैं ।
बिन्द के सधैया ताहि हीज की बढैया देत,
बन्दरा सदीव पाये नागे ही फिरत है ।
अंगना अधीन काम क्रोध में प्रवीन,
एक ज्ञान के विहीन छीन कैसे कै तरत है ।।[2]

इसमें भी १६-१६ वर्णों पर यति का पूर्ण ध्यान रखा गया है । इन छदों में गण और मात्रा किसी का प्रतिबन्ध नहीं रहता है । संगीत और नाद-सौदर्य की दृष्टि से कवित्त छंद बेजोड़ है । रीतिकाल में रीतिसिद्ध, रीतिबद्ध, रीतिमुक्त सभी कवियों ने नाद-सौदर्य और संगीतात्मक माधुर्य तथा लालित्य लाने के लिये वर्णमैत्री, शब्दमैत्री, अक्षरमैत्री के द्वारा इसके स्वरूप को खूब मांजा । लय की दृष्टि से उतार-चढाव और लहर प्रवाहित करने के लिये सम-विषम की व्यवस्था की ओर ध्यान देना छन्द के विशेषज्ञों ने आवश्यक माना है । यदि कहीं विषम प्रयोग आ जाता है तो उसके आगे भी पुनः विषम प्रयोग रख कर उसकी विषमता को दूर कर दिया जाता है । इससे छन्द मे श्रुति-माधुर्य और लालित्य आ जाता है ।

मात्रिकछंदों में जिन कठिनाइयों का सामना कवियों को करना पड़ता है, कवित्त में उसकी समस्या नहीं खड़ी होती । इस कारण कवि को छंद के स्वरूप संवारने की अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्रता रहती है । वृत्यनुप्रास की जितनी झड़ी कवित्तकार लगा सकता है, सवैया में वह छेकानुप्रास से आगे बहुत कम अवसरों में जा सकता है । वृत्यनुप्रासों, अक्षर मैत्रियों से सुसज्जित कवित्त सहृदयों के मनों को मोह लेता है । एक उदाहरण देखिए :

तेज हूं को तर है कि राजसी को सरू हैं,
कि सुद्धता को घरू हैं कि सिद्धता की सार हैं ।

---

१. ज्ञान प्रबोध, श्री दशम गुरु ग्रंथ छंद सं० ४१

२. अकाल स्तुति, श्री दशम गुरु ग्रंथ छंद सं० ७१

कामना की खान है कि साधना की सान हैं,
विरक्तता की बान है कि बुद्धि को उदार हैं।
सुन्दर सरूप हैं कि भूपन के भूप हैं,
कि रूप हूँ को रूप हैं कुमत को प्रहार हैं।
दीनन को दाता हैं गनीमन को गारक हैं,
साधन को रक्षक हैं गुनन को पहार हैं॥[1]

चरणों के भीतर अन्त्यनुप्रासों की योजना द्वारा इस छंद में गीतात्मक लय का समावेश कर देने की रमणीय क्षमता है। इससे इसका श्रुति-माधुर्य द्विगुणित हो जाता है।

निम्नलिखित छंद देखिए :

नाचिओई करत मोर दादर करत सोर,
सदा घनघोर घन करिओइ करत है।
एक पाई ठाढ़े सदा बन में रहत वृछ
फूंक फूंक पॉव भूम सावंग धरत है।
पाहन अनेक जुग एक ठौर बास करे,
काग और चील देस देस बिचरत हैं।
ज्ञान के विहीन महा दान में न हूजै लीन,
भावना यकीन दीन कैसे के तरत है॥[2]

भाषा का लचीलापन और भावोद्वेलन की दृष्टि से कवित्त सर्वप्रिय छंद है। प्रबन्ध-काव्यों में प्रबन्ध-क्षमता की न्यूनता के कारण यह मुक्तक-काव्यों में ही अधिक प्रयुक्त हुआ है। इसमें यद्यपि समस्त रसों की सफलतापूर्वक अभिव्यंजना की जा सकती है; परन्तु श्रृंगार और वीर की अभिव्यक्ति में जितनी ख्याति इसे मिली है, उतनी अन्य किसी वर्णिक छन्द को नहीं। रीतिकाल में तो इसकी लयात्मकता और माधुर्य से मुग्ध होकर कवियों ने इसको बडे गर्व से अपनाया था। प्रशस्ति काव्यों, वीर गीतों, श्रृङ्गार के ललित प्रसंगों की रक्षानुकूल अभिव्यक्ति की इसमे बड़ी सूक्ष्म शक्ति है। गुरुगोविन्द सिंह ने भक्ति, वीर और श्रृङ्गार के प्रसंगों में इसका पर्याप्त व्यवहार किया है।

एक अक्षरी

यह भी वर्णिक छंद है। इस छंद मे ईश्वर की स्तुति ही अधिक की जाती है। इसमें विशेषता यह है कि इसे स्वर से पढा जा सकता है। यथा:

---

१. अकाल स्तुति, श्री दशम गुरु ग्रंथ, सं० २५९,

२. वही, छंद संख्या ८१

अजै ॥ अलै ॥ अभै । अबै ॥
अभू । अजू ॥ अनास । अकास ॥
अगंज । अभंज ॥ अलक्ख ॥ अभक्ख ॥[१]

भुजंगप्रयात

वर्णिक छन्दों में समवृत्त का यह एक भेद है। चार यगणों से एक पद बनता है। यह संस्कृत में सबसे अधिक लोकप्रिय छन्द है। दशमेश जी का एक छन्द देखिए :

घटा सावणं जाण स्यामं सुहायं।
मणी नील नग्यं लखं सीस निआयं ॥
महा सुन्दरं स्यामं महा अभिरामं।
महा रूप रूपं महा काम कामं ॥[२]

संस्कृत के तोत्रों में इसका बहुत प्रयोग हुआ है। स्तोत्रों में प्रवाह और गतिमयता का विशेष ध्यान रखा जाता है। इस दृष्टि से 'भुजंगप्रयात' उपयुक्त माना गया है। हिन्दी में यह छन्द अपनी विलम्बित गति के कारण वीर रस और प्रार्थना के लिये व्यवहृत हुआ है। गुरुगोविन्द सिंह ने भी प्रार्थना और वीर रस के प्रसंग में इसे पर्याप्त स्थान दिया है। युद्ध के प्रसंग का एक उद्धरण देखिए :

चढ्यो तत्त ताजी सिराजीत सोभै।
सिरं जैत पत्रं लखे चन्द्र छोभै ॥
अनास ऊच नामा महासूर सोहै।
बढ़ो छत्रधारी धरै छत्र जोहै ॥[३]

यह भी वर्णिक छंदों मे समवृत्त का एक भेद विशेष है। भानुजी ने तीन यगणों और लघु-गुरु के योग से इस वृत्त का लक्षण निर्धारित किया है।[४] इसके अन्त में गुरु वर्ण जोड़ देने से भुजंगप्रयात छंद बन जाता है। हिन्दी में बहुत कम लोगों ने इसका प्रयोग किया है। गुरुगोविन्द सिंह का एक द्रष्टव्य है :

लखे साह संग्राम जुझै जुझारं।
तवंकीट बाणं कमाणं संभारं ॥

---

१. जापु, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छंद संख्या १८८, १८९, १९०
२. अकाल स्तुति, छन्द संख्या ५९।
३. पारसनाथ रुद्र अवतार, श्री दशम गुरु ग्रन्थ, छन्द संख्या २०६
४. छन्दप्रभाकर, भानु पृष्ठ १३८

हनियो एक खानं ख्यालं खतंगं।
डस्यो शत्रुको जानु स्यामं भुजंगं ॥[1]

तोटक

वर्णिक छंदों में समवृत्त का एक भेद-विशेष है। यह वृत्त चार सगणों से बनता है।[2] संस्कृत का यह बहुत प्रचलित वृत्त है। वीर रस के वर्णन-प्रसंग के अन्तर्गत हिन्दी के कवियों में चन्द, केशव, सूदन, जोधराज आदि ने इसका प्रयोग किया है। गुरुजी को भी द्रुतगति के कारण यह रुचिकर प्रतीत हुआ। यथा :

भव भूत भविक्ख भवान भवं।
कल कारण उभारण एक तुवं ॥
सभ ठौर निरंतर नित्यनयं।
मृद मंगल रूप तुयं सु भयं ॥[3]

किरपान। कृपाण।

यह वर्णिक मुक्तक-दंडक का एक भेद है। इसके प्रत्येक चरण में आठ-आठ की यति से ३२ वर्ण होते हैं। यतियों के स्थान पर अनुप्रास और अन्त में गुरु-लघु होना चाहिये। उदाहरणार्थ :

रणवीर गिरत। भवं सिंध तरत ॥
नभं हूर फिरत। बरं बीर बरत ॥[4]
... ...
फिर फेर लरत। रण जूझ भरत ॥
नहि पाव टरत। भव सिंध तरत ॥[5]

तथा— गिर भूम परत। सुर नार डरत ॥
नहि पाव टरत। मन कोप भरत ॥[6]

परन्तु गुरुगोविन्द सिंह के कृपाण छन्द में सात सात पर यति और कुल २८ वर्ण हैं तथा अन्त में गुरु-लघु भी नहीं मिलता है।

---

१. विचित्र नाटक, अध्याय ८, छंद सं० २४, पृष्ठ ४९
२. पिंगल सूत्र ६।३२
३. विचित्र नाटक, अध्याय १, छद सं० ५४, पृष्ठ ८
४. चौबीस अवतार, श्री दशम गुरु ग्रंथ, खंड २, पृष्ठ संख्या २२, २३, २४ छंद २३०।
५. वही।
६. वही, छंद २३२, २३५।

मालिनी

संस्कृत में इस छन्द का पर्याप्त प्रयोग हुआ है। वर्णिक छन्दों में समवृत्त छन्द का यह एक भेद है। इसमें आठ सात पर यति के साथ नगण, मगण, भगण, यगण, और यगण से युक्त १५ वर्णों का समावेश रहता है। इसके अन्त में वर्ण लघु रह सकता है। इसे यत्यात्मक वृत्त भी कह सकते हैं। हिन्दी में केशव और रहीम के अतिरिक्त गुरुजी ने भी इसके प्रयोग किये हैं। सूदन ने भी वीर-प्रसंसों में इसका प्रयोग किया है।

मालती

वर्णिक छन्दों में समवृत्त का यह एक भेद है। भानुजी ने एक नगण, दो जगण और रगण के योग पर वृत्त को माना है।[१] केशव ने हिन्दी में इसके सुन्दर प्रयोग किये हैं। गुरुगोविन्द सिंहजी ने भी ललित प्रसंगों मे इसका उपयोग किया है; परन्तु वे बडे अस्त-व्यस्त हैं। यति, मात्रा, वर्णों का क्रम विश्रृङ्खल है। ऐसा प्रतीत होता है कि अन्य छंदों की रचना मे जितनी सावधानी उन्होंने रखी, मालती में उतनी ही उपेक्षा दिखाई। उदाहरणार्थ :

जहँ तहँ देखिअत। तहँ तहँ पेखिअत॥
सकल कुकर्मी। कहूँ न धर्मी॥[२]
सकल कुकर्म। भज गयो धर्म॥
जग न सुनीयत। होय न गुनीयत॥[३]

समानक। समानिका।

यह भी वर्णिक छंदों मे समवृत्त का एक भेद है। इसी के अन्य नाम वाग्वल्लभ में चामर 'वाणी भूषण' और 'प्राकृत पैंगलम्' 'समानिका' दिये गये हैं।[४] रगण, जगण और गुरु के योग से इस छन्द का चरण बनता है। केशव के पश्चात् गुरुगोविन्द सिंह ने ही इसका हिन्दी मे अधिक व्यवहार किया है। उदाहरणार्थ :

अनंत दान पाइ कै। चले द्विज अघाइ कै॥
दुरंत आशिषै रणैं। रिचा सुवेद की पढैं॥
नरेश देश देश कै। सुमंत वेश वेश कै॥

---

१. छन्द प्रभाकर, भानु, पृष्ठ १५८।
२. चौबीस अवतार, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छंद १२३।
३. वही, छंद २२५।
४. हिन्दी साहित्य कोश, पृष्ठ ८१४।

विशेष सूर शोभहीं । सुशील नारि लोभहीं ॥[1]

मात्रिक छंद

मात्रा की गणना पर आधारित छन्द मात्रिक कहे जाते हैं। इनमें वर्णों की संख्या भिन्न-भिन्न हो सकती है। परन्तु मात्राएँ निश्चित और नियमानुसार रखी जाती हैं। वर्ण-संख्या नियमित रहने के कारण वर्णिक वृत्त कठिन पड़ते हैं; परन्तु मात्रिक छंदों में ऐसा बन्धन न होने के कारण कविगण बन्धन-मुक्त रहते हैं। इन छंदों की गेयता वर्णिक वृत्तों से अधिक सुन्दर और सरल होती है। लोक-प्रचलित आधुनिक भाषा रूपों मे तथा प्राचीन प्राकृत और अपभ्रंश में इन्हीं छंदों का व्यापक प्रयोग मिलता है।[2] हिन्दी-साहित्य के आदिकाल से ही मात्रिक छन्दों के प्रति विशेष अनुराग रहा है। दोहा, चौपाई, रोला, सोरठा, वीर और हरिगीतिका आदि का प्रबन्ध-काव्यों में और दोहा, कुंडलियों, छप्पय तथा उसके भेदोपभेदों का मुख्यता मुक्तक मे व्यवहार होता है। सम्पूर्ण पद-साहित्य मात्रिक छन्दों के शुद्ध मिश्रित रूपों का ही विस्तार है।[3] गुरुजी ने वर्णिक छन्दों की अपेक्षा मात्रिक छंदों का प्रयोग कम ही किया है। वह कहा जा सकता है कि उन्होंने वर्णिक छंदों को प्रथम स्थान मे और मात्रिक छंदों को उनके पश्चात् रखा। मात्रिक छंदों मे दोहा, चौपाई, चतुष्पदी, रोला, सोरठा आदि का प्रबन्ध-शैली मे अधिक प्रयोग किया है; परन्तु उनमे उतनी रम्यता और आकर्षण नहीं है जितना वर्णिक छंदों में। उनके द्वारा प्रयुक्त छंद नीचे दिये जा रहे हैं।

दोहा

विषम चरणों में तेरह और सम चरणों में ग्यारह मात्राओं के साथ विषम चरणों के आदि में जगण और समचरणों के अन्त में तगण या जगण रखते हुए चौबीस मात्राओं का छन्द है। हिन्दी में बिहारी, रहीम, वृन्द आदि के दोहे सर्वाधिक लोकप्रिय हैं। इन कवियों ने दोहे के छोटे से आकार में जितना कह दिया है, उतना और लोग कवित्त, सवैयों में भी व्यक्त नहीं कर पाये। इसके स्वरूप को सँवारने में हिन्दी के रीतिकालीन कवियों ने अपनी समस्त प्रतिभा और काव्य-नैपुण्य का प्रयोग किया। दशमेश जी के दोहों के उदाहरण देखिए :

पर पियरी मुख पर गई। नैन रही निहराह ॥
धरक धरक छतिया करे। वचनन मान्यो जाइ ॥[4]

---

१. गोविंद रामायण, पृष्ठ ४७

२. हिन्दी साहित्य कोश, पृष्ठ ५८८

३. वही, पृष्ठ ५८८

४. पाख्यान चरित्र, श्री दशम गुरु ग्रंथ, सं० २३, छंद ८, पृष्ठ ८४४

उन्होंने दोहों का प्रयोग ऐसे स्थलों पर किया है, जहाँ उन्हें किसी नीति का कथन करना होता है या भावावेश की विविध मुद्राएँ चित्रित करनी होती हैं। लोगों को उपदेश देते हुए कहते हैं :

जग में आप कहावई पंडित सुघर सुचेत।
पाहन की पूजा करै याते लगत अचेत ।।[1]

इसमें सोलह मात्रायें होती हैं। इसके चरणान्त में तगण, या जगण का निषेध किया गया है। अन्त में दो गुरु रहते हैं। इससे छन्द की गति में रोचकता बढ जाती है। तुलसीदास जी की चौपाइयाँ अपनी रम्यता, प्रवाहात्मकता और रुचिरता के लिये प्रसिद्ध हैं।

चौपाई मात्रिक सम छन्द है। सामान्यतया यह वर्णनात्मक है जिससे कवियों ने इसमें प्रत्येक प्रकार की स्थिति चित्रित करने की सफल चेष्टा की है। तुलसी और जायसी ने इनमें साहित्य के सभी रसों का अपूर्व आस्वादन कराया है। कथात्मक अंशों को जोड़ने के लिये तो इससे बढ़कर हिन्दी का दूसरा छन्द नहीं है। प्रबन्ध के प्रवाह को अक्षुण्ण रखने की क्षमता इसमें अपूर्व है। गुरु गोविन्दसिंह जी ने कथात्मक अंशों में इसका विशेष प्रयोग किया है, यद्यपि भक्ति परक चौपाइयाँ भी कम नहीं हैं। चौपाई का उदाहरण देखिए :

जेजे सत्रु सामुहे आए। सबै देवता मारि गिराए।
सेना सकल जबै हनि डारी। आ सुरेस कोपा हंकारी ।।[2]

चतुष्पदी। चौपई।

यह मात्रिक सम छन्द का एक भेद है। यह भी १६ मात्राओं का छंद है। अन्त मे लघु-गुरु होते हैं। चौपाई की तरह प्रबन्ध काव्यों में ही इसका विशेष प्रयोग होता है। गो० तुलसीदास ने इसका 'रामचरित मानस' मे प्रभूत मात्रा मे प्रयोग किया है। गुरु जी ने इसका प्रबन्धात्मक स्थलों में बड़ा रुचिकर प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ :

तिनके वंस विषय रघु भयो। रघुवंसहि जिह जगहि चल्यो ।।
तिन ते पुत्र पौत जे बये। राज करत रह जग को भये ।।[3]

हरिगीतिका

सोलह और बारह मात्राओं पर विराम के साथ, अंत में लघु और गुरु वर्ण रखकर अठाईस मात्राओं से युक्त छंद है। पाँचवीं, बारहवीं, उन्नीसवीं और छबीसवीं मात्रा

---

१. वही, पृष्ठ ८४४

२. चंडी चरित्र श्री दशम गुरु ग्रंथ, छंद संख्या २६, पृष्ठ १०१

३. विचित्र नाटक, अध्याय ४, छंद सं० २०, २५, पृष्ठ २१

को लघु रखना इसमें अच्छा होता है। इसमें प्रवाह, संगीतात्मकता, लयात्मकता का समावेश रहने से कवियों को बहुत प्रिय है। हिन्दी में इस छंद की शास्त्र स्वीकृत यति के अतिरिक्त १४-१४ पर यति का प्रयोग होता आया है।[1]

इसका प्रयोग कवियों ने सभी रसों में समान रूप से किया है। अपनी मध्य विलंबित गति के कारण इसमें कथा का निर्वाह स्थिर क्षणों पर अच्छा होता है।[2] चन्द ने वीर और श्रृंगार के प्रसंग में इसका प्रयोग किया है। मानस में सभी रसों का आस्वादन इस छंद के द्वारा कराया गया है। गुरु जी का एक उदाहरण द्रष्टव्य है :

सब द्रोन गिरवर सिखर तर नर पाप करम भये मनो।
उठ भाज धर्म सभ्रम हुए चमकत दामन सो मनो।
किंधी सूद्र सुभट समाज संजुत जीत है वसुधा थली।
किधीं अस छत्र तजे भजे अस और और क्रिया चली॥[3]

हरिबोलना

यह मात्रिक सम छन्द है। इसमें ८-८ पर यति और सब सोलह मात्राएँ होती हैं। अन्त में गुरु होता है। स्तुति तथा युद्ध के वर्णनों में इसका प्रयोग अधिक होता है। गुरु गोविन्द सिंह ने भी इसका प्रयोग ऐसे स्थलों पर किया है। उदाहरणार्थ :

करुणालय हैं। अर घालय हैं॥
खल खंडन हैं। महि मंडन हैं॥[4]

तोमर

तोमर मात्रिक सम छंद का एक भेद है। भानु जी ने छन्द प्रभाकर में इसे बारह मात्राओं का माना है जिसके अन्त में गुरु, लघु होता है।[5] हिन्दी में तुलसी, केशव, सूदन, श्रीधर तथा गुरु गोविन्द सिंह ने इसका प्रयोग किया है। सम्भवतः तोमर छंदों की मात्रा सभी हिन्दी-कवियों से अधिक गुरु जी की रचनाओं में ही मिलेगी। इस छंद का प्रयोग प्रधानतः वीर रस के प्रसंग में युद्ध की विभीषिका, योद्धाओं की मार-काट, शस्त्रों की झनझनाहट के चित्रण के लिये होता है। इसके अतिरिक्त गुरु गोविन्द सिंह जी ने अकाल-स्तुति में भी इसका प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ :

---

१. हिन्दी साहित्य कोश, पृष्ठ ८८१
२. वही, पृष्ठ ८८१
३. निहकलंकी अवतार, चौबीस अवतार, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छंद सं० १०५
४. जापु, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छंद सं० १७०
५. छन्द प्रभाकर, पृष्ठ ४४

हरि जनम मरण बिहीन। दस चार चार प्रवीन ॥
अकलंक रूप अपार। अनभिज्ज तेज उदार ॥[१]

त्रिभंगी

यह मात्रिक सम छंद का एक भेद है। छन्द-प्रभाकर मे इसके प्रत्येक चरण में १०,८,८,६ की यति से ३२ मात्राएँ बताई गई हैं।[२] इसमें चरण की प्रत्येक यति पर यमक का प्रयोग भी होता है, इसलिये इसे अलंकृत छन्द भी कहते हैं। तुलसी, केशव, सूदन, पद्माकर, जोधराज आदि ने इसका प्रयोग किया है। गुरु गोविन्दसिंह की रचनाओं में स्तुति, वीर, रौद्र, बीभत्स, शान्त आदि के प्रसंग में पर्याप्त मात्रा मे यह व्यवहृत हुआ है। दशमेश जी की ही प्रतिभा है कि उन्होंने जिस-जिस छंद को लिया, उसमे इच्छानुसार रसों की सफल अभिव्यक्ति कर दी। उदाहरणार्थ :

सरता कहूं कूप समुद सरूपं अलख बिभूतं अमित गतं।
अद्वै अबिनासी परम प्रकासी तेज सुरासी अकृत कृतं।
जिह रूप न रेखं अलख अभेखं अमित अद्वैतं सरब महं।
सब किलबिख हरणं पतित उधरणं असरणि सरणं एक दहं ॥[३]

पाधड़ी

यह भी मात्रिक सम छन्द का एक भेद है जिसके प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ तथा अंत में जगण होना चाहिए। हिन्दी में इस छन्द का व्यापक प्रयोग हुआ है। चन्द, सूर, तुलसी, केशव आदि की तरह गुरु जी ने भी इसका वीर-रस के प्रसंगों, विशेषकर युद्ध-वर्णन, वस्तुओ की नाम-गणना, अस्त्र-शस्त्रों की प्रशंसा एवं अन्य वर्णनात्मक प्रसंगो मे उपयोग किया है। हिन्दी कवियो ने इसके प्रयोग मे बड़ी स्वच्छन्दता से काम लिया है। कभी-कभी १०,६ पर यति है। कभी किसी में ठीक यति है अन्य में नहीं।[४] गुरुगोविन्द सिंह जी का पाधड़ी छन्द देखिए :

अव्यक्त तेज अनभउ प्रकास। आछे सरूप अद्वै अनास ॥
अनतुट तेज अनलुट भंडार। दाता दुरंत सरबं प्रकार ॥[५]

मोहिनी

यह मात्रिक अर्धसम छन्द है। इसके विषम पद में १२ और सम मे ७ मात्राएँ

---

१. अकाल स्तुति, छंद सं० ३१
२. छन्द प्रभाकर, भानु, पृष्ठ ७२
३. ज्ञान प्रबोध, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छंद सं० २८, पृष्ठ १२९
४. हिन्दी साहित्य कोश, पृष्ठ ४३७
५. अकाल स्तुति, श्री दशमगुरु ग्रंथ, छंद सं० १२१, पृष्ठ २३

होती हैं। अन्त में सगण होता है। हिन्दी साहित्य में इसका विरल प्रयोग मिलता है। दशमेश जी ने भी इसका प्रयोग कम ही किया है। एक स्थान में देवी की स्तुति उन्होंनें इसी छंद द्वारा की है :

चंचाली चित्रा चित्रांगी। भिंभरीथा भीमा सरब आंगी॥
बुद्ध भूपा कूपा जुव्वाली। अकलंका माई नृपाली॥[1]

मधुमार

यह वर्णिक छंद में समवृत्त का एक भेद है। इस छंद का प्रयोग केशव के पश्चात् गुरु गोविन्दसिंह ने ही किया है। यह सगण और जगण के योग से बनता है। उदाहरणार्थ :

कुपयो कृपाल। नच्चे मराल॥
बज्जे बजन्त। कूर अनन्त॥[2]

अड़िल

यह मात्रिक समछन्द का एक भेद है। इसके १६ मात्रा के प्रत्येक चरण के अन्त मे दो लघु रहने चाहिये और जगण का निषेध। हिन्दी के कवियों ने इसके प्रयोग मे स्वतत्रता से काम लिया है। उन्होंने मात्रा और अन्त के प्रयोग का ही पालन किया है।[3] चन्द, सूर, तुलसी, केशव, सूदन तथा पद्माकर के अतिरिक्त गुरु गोविन्दसिंह ने भी इसका खूब प्रयोग किया है। इस छन्द में प्रायः वीर रस के युद्धादि का वर्णन हुआ है। गुरु जी ने वर्णनात्मक स्थलों में भी इससे सहायता ली है। इस छन्द का एक उदाहरण देखिए :

कहु सुन्दरी किह काज वस्त्र तैं हरे हमारे।
देख भटन की भीरि त्रास उपजयो न हितारे।
जो चोरी जन करै कहो ताकौं क्या करिये।
हो नारि जानिकै टरो न तर जिय ते तुहि मरिये॥[4]

सवैया

रीतिकाल में कवित्त के समान ही सवैया छन्द भी अधिक लोकप्रिय रहा। कवियों ने इसका संस्कार एवं परिष्कार करके इसमें संगीतात्मकता, लय, श्रुति-माधुर्य कूट-कूट कर भरने मे अथक परिश्रम किया है। रीतिकाल की मुक्तक शैली मे

१. पारसनाथ रुद्र अवतार, श्री दशमगुरु ग्रंथ, छंद ५९, पृष्ठ ६७४
२. विचित्र नाटक, अध्याय १०, छंद सं० ८, पृष्ठ ५२
३. हिन्दी साहित्य कोश, पृष्ठ १३
४. पाख्यान चरित्र, श्री दशमगुरु ग्रंथ, संख्या २३, छंद सं० ७, पृष्ठ ८४४

कवित्त और सवैये का महत्त्वपूर्ण योग रहा है। भगणात्मक, जगणात्मक और सगणात्मक सवैये की लय शीघ्र गति से चलती है। यगण, तगण तथा रगणात्मक सवैये की लय मन्द गति होती है।[1] इसमें कवियों ने वस्तु-स्थिति के साथ भाव-स्थिति के चित्र बहुत सफलतापूर्वक अंकित किये हैं। श्रृंगार और भक्ति के लिये इससे सुन्दर अन्य कोई मुक्तक छन्द नहीं है। रीतिकालीन श्रृंगारी कवियों ने नायक-नायिकाओं की विभिन्न मनोस्थितियों, चेष्टाओ-मुद्राओं के बड़े ही भावात्मक एवं चित्रात्मक प्रयोग किये हैं।

सवैये का प्रथम प्रयोग अकबर, गंग, टोडरमल, नरोत्तम दास, तुलसीदास आदि की रचनाओं में पाया जाता है। किन्तु इनकी भाषा और शैली से ज्ञात होता है कि यह पूर्ववर्ती परम्परा भाटों और चारणों में मौखिक रूप से चली आ रही थी। इन कवियों ने भी इसे उन्हीं से ग्रहण किया है।[2] गुरु गोविन्दसिंह ने कवित्तों से अधिक सवैये ही लिखे हैं। उनकी रचनाओं को पढ़ने से स्पष्ट होता है कि सवैया उनका प्रिय छंद था। सवैयों की रचना में वे सभी छंदों के प्रयोग से अधिक सफल रहे हैं।

वर्णिक वृत्तों में २२ से २६ अक्षरों के चरण वाले जाति छंदो को सामूहिक रूप से हिंदी में सवैया कहा जाता है। इस प्रकार सामान्य जाति-वृत्तों से बडे और वर्णिक दंडकों से छोटे छन्द को सवैया समझा जा सकता है। सवैया के अनेक भेदोपभेद हैं। यथा—मत्तगयन्द, सुन्दरी, मदिरा, दुर्मिल्ल, सुमुखि, किरीट इत्यादि। यही नहीं, लघु-गुरु और विभिन्न गणों के आधार पर इसके और भी भेद बनते हैं। उदाहरणार्थ :

सवैया

तो तन त्यागत ही सुन रे जड़, प्रेत बखान त्रिया भजि जैहैं।
पुत्र कलत्र सुमित्र सखा इह, वेग निकारहु आइसु दैहैं।
भउन भंडार धरा गढ़ जेतक, छाड़त प्राण बिगान कहैहैं।
चेत रे चेत अचेत महा पसु, अन्त की बार अकेलोई जैहैं ॥[3]

गुरु गोविन्दसिंह ने सवैयो में अन्य भेदो मत्तगयन्द, सुन्दरी, मदिरा, दुर्मिल, सुमुखि, किरीट, मुक्तहरा, मानिनी, अरसात, महाभुजंगप्रयात इत्यादि का पर्याप्त मात्रा में प्रयोग किया है।

---

१. हिन्दी साहित्य कोश, पृष्ठ ८२३
२. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, पृष्ठ २१८-१९
३. सवैया, श्री दसमगुरु ग्रंथ, सं० ३३, पृष्ठ ७१६

कुंडलिया

यह मात्रिक विषम छन्द है और छः पंक्तियों का होता है जिसकी प्रथम दो पंक्तियाँ दोहे की होती हैं और अन्तिम चार रोला की। कुंडलिया में दोहे के चार पाद दो ही गिने जाते हैं। दोहा इस छंद का पूर्वार्द्ध और रोला उत्तरार्द्ध कहलाता है। इस प्रकार कुंडलिया के प्रत्येक पाद में २४-२४ मात्राएँ हो जाती हैं। दोहे के चौथे पाद को रोला के प्रथम पाद में दोहराया जाता है। दोहा जिस शब्द से आरम्भ होता है, अन्त में रोला के चतुर्थपाद में फिर आ जाता है। यति का नियम दोहा-रोला के अनुसार रखा जाता है। हिन्दी में गिरधर की नीति-उपदेश संबंधी कुंडलिया बहुत लोकप्रिय हैं। गुरु गोविंदसिंह ने भी इसका प्रयोग किया है। किन्तु इनकी कुंडलियों में परम्परागत छः पंक्तियाँ न होकर केवल चार पंक्तियाँ हैं जिनमें दोहे और रोला की दो-दो पंक्तियाँ होती हैं। यथा :

> पापाक्रांत धरा भई पल न सकत ठहराइ।
> काल पुरख को ध्यान धरि रोवत भई बनाइ।
> रोवत भई बनाइ पाप भारन भर धरनी।
> महा पुरख के तीर बहुत विधि जात न बरनी ॥[1]

अतएव उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि गुरु गोविंदसिंह की रचनाओं में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा हिन्दी के अधिकाश छन्दों का प्रयोग हुआ है। उन्होंने अपनी रचनाओं में वर्णिक, मात्रिक सभी प्रकार के छन्दों को उनके भेदोपभेद सहित स्थान दिया और उनके ये प्रयोग सर्वत्र सफल हुए हैं। इससे उनके छन्द-विषयक यथेष्ट ज्ञान का पूर्ण परिचय मिल जाता है। गुरुजी ने इन समस्त छन्दों के प्रयोग, युग की प्रवृत्ति तथा रसों के अनुकूल ही किये हैं।[2]

भाषा

भाषा भावाभिव्यंजन का प्रधान साधन है। काव्य की उत्कृष्ट अभिव्यंजना, सशक्त भाषा द्वारा ही संभव है। अतएव काव्य के कलापक्ष के अंतर्गत भाषा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। भाव को कविता की आत्मा और भाषा को शरीर माना गया है। श्रेष्ठ काव्य की रचना के लिए दोनों का संतुलित सामंजस्य अपेक्षित है। इनमें एक भी निर्बल हुआ कि काव्य-छटा धूमिल-सी दृष्टिगत होने लगती है।[3]

मध्ययुग में समस्त उत्तर भारत की सर्वाधिक प्रचलित भाषा 'ब्रज' थी। यह

---

१. निहकल्की अवतार, चौबीस अवतार, श्री दशमगुरु ग्रन्थ, छंद सं० १३७

२. दि पोयट्री आफ् दशम ग्रन्थ, पृष्ठ २६५

३. अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, पृष्ठ २४८

पश्चिमी हिन्दी की समृद्ध, मधुर एवं सशक्त भाषा थी जिसकी व्यापकता सारे भारत-वर्ष में हो गई थी। वैष्णव धर्म के विस्तार के साथ-साथ व्रजभाषा का विस्तार भी सारे देश में हो गया था। हिन्दी-क्षेत्र की तो वह प्रधान भाषा थी।

गुरु गोविन्दसिंह की रचनाओं में जहाँ अनेक प्रकार की रचना-पद्धतियाँ, शैलियाँ मिलती हैं, वहीं प्राचीन संस्कृत से सम्बन्ध रखनेवाली संस्कृत एवं प्राकृत आदि तथा अन्यान्य जनपदीय भाषाओं—व्रज, अवधी, कन्नौजी, बुन्देली, खड़ी बोली आदि की शब्दावली का प्रयोग विविध रचनाओं में हुआ है। इसके अतिरिक्त फारसी, अरबी-विदेशी भाषाओं की शब्दावली भी उनकी रचनाओं में व्यवहृत मिलती है। फारसी के वे उद्भट विद्वान थे। 'जफरनामा' उनके पांडित्य का ज्वलन्त उदाहरण है। मध्यकाल में विदेशियों से प्रगाढ सम्पर्क तथा राजभाषापद पर आसीन होने के कारण फारसी के शब्द-भंडार का देशी भाषाओं पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। संस्कृत के प्रति गुरुजी के अनन्य अनुराग का परिचय स्थान-स्थान पर दिया जा चुका है। माध्यम से चौबीस अवतारों की सम्पूर्ण पौराणिक कथाओं का अभिव्यक्तीकरण करने में संस्कृत-ज्ञान का उपयोग किया गया है। उनकी काव्य-भाषा ब्रज थी तथापि युग-प्रवृत्ति के अनुसार, उनकी रचनाओं में अन्य देशी भाषाओं की शब्दावली का अभाव नहीं है।

संस्कृत

संस्कृत के प्रति उनकी अटूट आस्था का पता इसी से चल जाता है कि उन्होंने प्रत्येक रचना का प्रारम्भ और अन्त संस्कृत रचनाकारों की शैली के अनुसार किया है।

प्रारम्भ—यथा, अथ कृष्णावतार इक्कीसमों अवतार कथनं।

अध्याय समाप्ति पर : इति श्री विचित्र नाटके श्रीकृष्णवतारे देवकी वसुदेव को छोरबो वर्णनं समाप्तं। अन्त भी इस पद्धति में किया गया है। संस्कृत के तत्सम शब्द ध्यान, नीर, विवेक, अरूप, अनूप, अकाम, अनाम, करुणालय, महिमा, सुधर्म आदि अनेक शब्दों को स्तुति, प्रार्थना, उपदेश, नीति आदि के प्रसंगों में व्यवहृत किया है।

कहीं-कहीं संस्कृत की विभक्तियों का भी प्रयोग किया है, परन्तु शब्द के आकार-प्रकार में परिवर्तन करके 'नमस्तं नमस्त्वं' ऐसे ही शब्द हैं।

मध्यकाल में मिली-जुली भाषा लिखने में कविगण अपना गौरव समझते थे। भिखारीदास ने अपने 'काव्य-निर्णय' में इस प्रवृत्ति का समर्थन करते हुए लिखा है :

भाषा ब्रजभाषा रुचिर कहैं सुकवि सब कोइ।
मिलै संस्कृत पारसिहु पै अति प्रकट जु होइ।
ब्रज मागधी मिले अपर नाग जमन भाषानि।
सहज पारसीहू मिले षट विधि कवित बखानि ॥[1]

इस षट्-भाषा का प्रयोग ब्रजभाषा के सभी उच्चकोटि के कवियों ने किया है। ब्रजभाषा में काव्य-प्रयोग की सीमा को कवियों ने इतना अधिक विस्तृत कर दिया था कि देश भाषाओं के अन्य शब्दों का प्रभाव अत्यन्त सहज और स्वाभाविक हो गया।

प्राकृत

ब्रजभाषा गुरु गोविन्द की काव्य-भाषा थी, जिसकी उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश से हुई है। यही कारण है कि उसमे प्राकृत-अपभ्रंश के अनेक शब्द आ गये हैं। हिन्दी कवियों ने प्राकृत शब्दों में 'णकार' के प्रति आस्था तथा द्वित्व की प्रवृत्ति को वीर-रसात्मक छन्दों के लिये बहुत अधिक मात्रा में अपनाया है। वीर रस, भयानक, रौद्र आदि में अस्त्र-शस्त्रों की झंकार व योद्धाओं की मार-काट, शत्रुओं की भाग-दौड़ आदि के लिये अनुरणनात्मक कर्णकटु शब्दों की आवश्यकता रहती है। गुरु गोविन्द-सिंह जी ने इन शब्दों का प्रयोग स्तुतिपरक रचनाओं में भी किया है। चौबीस अवतारों की कथाओं में मुख्य घटना युद्ध ही होने के कारण इन शब्दों का अत्यधिक प्रयोग होने से कहीं-कहीं पाठक ऊब जाता है। प्राकृत की यह परम्परागत शब्दावलि इस प्रकार है:

कहिज्जे, गणिज्जे, भणिज्जै, बिज्जु, अज्ज, कज्जल, दिच्छ, तिच्छ, खग्ग, चक्क, गज्जर, जूह, गिध, चमक्क, जुद्ध, आदि अनेक शब्द हैं।

ब्रजभाषा

मध्यकाल में यह सर्वमान्य काव्य-भाषा के रूप मे स्वीकृत हो चुकी थी। गुरुजी ने इसी मे अपनी अधिकांश रचनाएँ की हैं। श्रृंगार संबंधी रचनाओं में तो उनका एकछत्र राज्य था। श्रृंगारिक रचनाओं के लिए कोमलकांत पदावली की आवश्यकता होती है। यह गुण ब्रजभाषा मे कूटकूट कर भरा है। भक्ति और रीतिकालीन सभी कवियों ने इसकी मधुरता को माँज कर और भी रुचिकर बना दिया। इस परिमार्जन में अनेक शब्दों का आगम और लोप हो गया। आगम जैसे उ, अ स्वरों का खूब हुआ है। कठोर वर्ण, द्वित्वों, णकारों के स्थान पर स, र, ल, न, म आदि को

---

१. आचार्य भिखारीदास, पृष्ठ १२४

रखकर उच्चारण की कोमलता की ओर ध्यान दिया गया है। इसी प्रयास में कहीं-कहीं शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा भी गया है। स्वर-संकोच जो व्रजभाषा की मुख्य ध्वन्यात्मक प्रकृति है, उसने इस भाषा को माधुर्य की ओर और भी बढ़ा दिया है।

भाषा का परिष्कार इतना अधिक किया गया है कि संयुक्त वर्णों का भी सरलीकरण कर दिया गया। यथा श्रावण-सावन, चक्षु-चख, नित्य-नित आदि इसी प्रवृत्ति के परिचायक हैं। इस परिमार्जन से कभी-कभी एक ही शब्द के अनेक रूप मिलते हैं, यथा—प्रिय के पी, पिय, पीतम, पिया; आखों ऑख, आँखिन, अँखियाँ, अखियन इत्यादि। इस प्रवृत्ति को विशेष प्रोत्साहन मात्राओं, वर्णों, तुक, यथास्थान-प्रयोग की इच्छा से अधिक मिला।

व्रजभाषा मध्य-काल में इतनी व्यापक हो गई थी कि उसमें एक ही कारक के अनेक पर्याय मिलते हैं। गुरुजी ने भी अनेक कारक-चिन्हों के पर्यायों का स्वतंत्रता-पूर्वक प्रयोग किया है। कर्मकारक में कौ, कौ आदि; सम्प्रदान में को, कों आदि; अपादान में ते, तें; अधिकरण में यहैं, पै आदि अनेक प्रयोग मिलते हैं। कारकों-विभक्तियों के विकल्पों ने छन्दों के माधुर्य की वृद्धि में बहुत अधिक सहायता प्रदान की। माधुर्य के साथ इसके व्यंजनों में, कोमलता, ध्वन्यात्मकता आदि अनेक गुणों का समावेश हो गया। उपर्युक्त सभी व्रजभाषा के गुणों का प्रभाव गुरु गोविन्दसिंह के श्रृंगार, भक्ति संबंधी, स्थलों में भरा पड़ा है। सवैयों और कवित्तों में उनकी भाषा का नाद-सौंदर्य एवं श्रुति-माधुर्य देखते ही बनता है। उदाहरणार्थ:

प्रेम छकी अपने मुख तें, इह भाँति कह्यो वृखभान की जाई।
स्याम गये मथुरा तजिकै वृज ही अब धौं हमरी गति काई।
देखत ही पुर की तिय को सुछके तिनके रस मैं जीय आई।
कान्ह लयो कुबजा बसिकै टसक्यो नहीं यो कसक्यो न कसाई ॥[1]
ए हो लला नन्दलाल कहै सब ग्वारनियाँ अति मैन भरी।
हमरे संग आवहु खेल करो न कछू मन भीतरी संक करी।
नैन नचाइ कछू मुसकाइके भौंह दुऊ करि टेढ़ धरी।
मन यू उपजी उपमा रस की मनहु कान्ह के कंठही फांस परी।[2]

दशमेश जी की व्रजभाषा सम्बन्धी अन्य विशेषताओं को पिछले अध्याय में यथा-स्थान बताया जा चुका है।

पंजाबी

गुरु गोविन्दसिंह के जीवन का एक बहुत बड़ा भाग पंजाब में ही व्यतीत

---

1. कृष्णावतार, श्री दशमगुरु ग्रंथ, छंद सं० ९११
2. वही, छंद संख्या ५२९

हुआ था। वे स्वयं पंजाबी थे। उनके शिष्यों की अधिकांश संख्या पंजाबियों की ही थी। साथ ही सिक्ख-आन्दोलन का केन्द्र और कार्यक्षेत्र दोनों पंजाब ही थे। यद्यपि इस समय तक पंजाबी भाषा का कोई विशेष साहित्यिक अस्तित्व नहीं था तथापि उसके शब्द-भंडार से उनका अलग रहना कठिन था। उन्होंने कुछ पंजाबी शब्द ही नहीं ग्रहण किये, वरन् इसमें उनकी एक रचना तथा कुछ स्फुट पंजाबी छन्द भी हैं। उनके शब्दों के गठन में पंजाबीपन की स्पष्ट छाप है। पंजाबी छन्द के उदाहरण देखिए :

मित्र पियारे नू हाल मुरीदां दा कहणा,
तुध बिन रोग रजाइयां दा ओढण,
नाग निवांसा दे रहणा।

सूल सुराही खंजरु पियाला विंग कसाइयां दा सहणा।
यारड़े दा सानू सथरु चंगा मठ खेड़िया दा रहना ॥[1]

उमल लये जोद्धे मारू बज्जिआ।
बदल जिऊ महिखासुर रण विच गज्जिआ।
इन्द्र जेहा जोद्धा मैथऊ भज्जिआ।
कऊण विचारी दुर्गा जिन रण सज्जिआ ॥[2]

पंजाबी, तिहठां, चंगी, चंगा, ऐंडा, पैंडा, गैंदा, आदा, वसादा, बांदा, खिसादा, इत्यादि अनेक शब्दों के प्रयोग उन्होंने किये हैं। इसके अतिरिक्त युद्ध आदि की भीषणता चित्रण करने के लिये प्रायः अनुकरणात्मक पंजाबी शब्दों को भी ले आए हैं। यथा—गारडदंग, दागडदंग, धागड़दंग, नागड़दंग, गागड़दंग, सागड़दंग इत्यादि। इनका अधिक प्रयोग किन्हीं-किन्हीं स्थलों पर खटकता भी है।

पंजाबीपन

पंजाबी शब्दों को ग्रहण करने के अतिरिक्त उनके शब्दों में अनेक स्थानों में पंजाबीपन भी मिलता है। पंजाबी की प्रवृत्ति स्वरलोप की ओर अधिक है। यथा—यमलार्जुन-जुमलाजन, अजित-आजत, महाकवि-महाकव, विचित्र-बचित्र, चकित-चकत, प्रतिमा-प्रतमा, प्रभु-प्रभ, मदिरा-मदरा, कपि-कप, दुहिता-दुहता, केलि-केल, नित्यप्रति-नितप्रत, शत्रु-सत्र, जदुपति-जदुपत, गोकुल-गोकल, हानि-हान, अनादि-अनाद इत्यादि।

स्वरागम भी पंजाबी की विशेषता है। स्वर के मध्य और अन्त में स्वर-लोप

---

१. शब्द हज़ारे, श्री दशम गुरु ग्रंथ, पृष्ठ ७११

२. चंडी दी वार, वही, छंद सं० १६, पृष्ठ १२१

बराबर मिलता है परन्तु अनेक रूपों में स्वरागम भी होता है। स्मृति-सिमित, मृत-मित, कृत-कित, स्नान-सनान, कृष्ण-क्रिसन, मृतक-मितक इत्यादि।

संयुक्ताक्षरों को पूर्ण करने की प्रवृत्ति : श्लोक-सलोक, कष्ट-कसट, विद्या-विदिआ इत्यादि के भी प्रयोग मिलते हैं।

स्तुति, वीर, भयानक, रौद्र, बीभत्स आदि प्रसगों मे णकार का जो आधिक्य दिखाई देता है वह भी शैलीगत या पंजाबीपन का ही प्रभाव प्रतीत होता है। उदाहरणार्थ :

नमो चापणी चरमणी खड्ग पाणं।
गदा पाणिणी चक्रणी चित्र माणं।
नमो सूलणी सैहथी पाणि माता।
नमो ग्यान विग्यान की ज्ञाता॥[1]

सिन्धी

गुरु गोविन्दसिंह जी ने दो-एक स्थलों पर सिन्धी-शब्दों का भी प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ :

वाचे पत्रआणा मेही मिले क्या न जाना सांईयारो जी
असाडे पास आवणा ही आवणा।[2]

खड़ी बोली

गुरु गोविन्दसिंह ने यद्यपि खड़ी बोली में किसी छन्द की रचना नहीं की है तथापि कुछ छंदों में उस बोली का प्रभाव अवश्य लक्षित होता है। दिल्ली, मेरठ के आस पास के क्षेत्र खड़ी बोली के प्रमुख केन्द्र हैं। मध्यकाल में भारत की सभ्यता, संस्कृति और शासन के प्रधान केन्द्र भी ये ही थे। अतः खड़ीबोली के साहित्य का उस समय तक कोई महत्त्वपूर्ण स्थान न होने पर भी, उसके आसपास के क्षेत्रों में रचे जाने वाले साहित्य का प्रभावित होना स्वाभाविक ही है। गुरु जी की रचनाओं में आये हुए खड़ी बोली के रूपों के कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं :

१. जोन जगत में कबहूं न आया।
याते सभों अजोन बताया॥[3]

---

१. चंडी चरित्र, श्री दसमगुरु ग्रंथ, छंद सं० २४१
२. पाख्यान चरित्र, वही, चरित सं० २२८, पृष्ठ ११३९
३. मत्स्य अवतार, चौबीस अवतार, श्री दसमगुरु ग्रंथ, छंद संख्या १३

२. जो इहु पेट न काहू होता।
राव रंक काहू को कहता ॥[१]

३. भल भाग भया इह संभलकै हरिजू हरि मंदर आवहिंगे॥

४. ब्रह्मा पिखि के जिह रीझ कह्यो जिहको दिखकै सिव ध्यान छूटा है।
जानि रखै रति रीझ रही रवि के पति को पिख मान टूटा है॥
कोकिल कंठ चुराए लिये जिन भावन को सब भाव लूटा है।
ग्वारन के घन बीच विराजत राधका मानो बीज छूटा है॥[२]

५. चाल परयो अवनी सिगरी हरिजू हरि असन ते उठि भागा॥[३]

६. बहुरि भयो महिषासुर तिन तो कया किया।
मुह जोरि कर जुद्ध जीत सब जगु लिया॥[४]

अवधी

मध्यकाल मे व्रजभाषा के साथ काव्य-भाषा के रूप में अवधी का भी पर्याप्त सम्मान था। गोस्वामी तुलसीदास जी ने अवधी को जो साहित्यिक रूप दिया उससे मध्यकाल का कोई भी व्यक्ति अछूता न रह सका। गुरु गोविन्दसिंह जी की प्रारम्भिक आयु के कुछ वर्ष वर्तमान उत्तर प्रदेश के पूर्वी क्षेत्रों में बीते थे। अतः संभव है कि तुलसी द्वारा उच्च स्थान-प्राप्त अवधी भाषा ने उस समय इनकी नवोदित प्रतिभा पर अपना प्रभाव न डाला हो तथापि गुरु जी की रचनाओं में अवधी का प्रभाव अल्प मात्रा में ही है। वह भी केवल क्रियापदों के कुछ रूपों में विद्यमान है। उनके द्वारा प्रयुक्त कुछ अवधी-रूपों के उदाहरण देखिए :

१. काल रूप भगवान भनैबो। ता महि लीन जगति सब हैबो॥[५]

२. बद्यो अर्द्ध अर्द्ध दुहं बांटिलीबो॥
सबै बात मानी यहै काम कीबो॥[६]

३. बचै बीर ते बहुरि बुलाइस,
पहर कवच दुंदुंभि बजाइस॥[७]

---

१. वही, छंद सख्या २५
२. वही, छंद संख्या १५५
३. वही, छंद संख्या ५४१
४. चंडी चरित्र, छंद संख्या २१३
५. मत्स्य अवतार, चौबीस अवतार, श्री दशमगुरु ग्रंथ, छंद सं० ३४
६. कच्छ अवतार, वही, छंद संख्या ३
७. ब्रह्मा अवतार, वही, छंद संख्या ४२

४. अधिक कोप कै काम जरायस। वितन नाम तिह तदिन कहायस ॥[1]
५. पाप करा जाही तह मारस॥ सकल प्रजा कहु धर्म. सिखारस[2] ॥

इसी प्रकार बुंदेली, कन्नोजी आदि के भी एकाध स्थलों पर कुछ प्रयोग आ गए हैं।

विदेशी भाषाएँ

फ़ारसी मुगल शासकों की राजभाषा थी। अरबी का भी यथेष्ट सम्मान था। अतः मध्य युग में स्थानीय भाषाओं में अरबी-फारसी से सर्वाधिक शब्द ग्रहण किये गये। फारसी अपेक्षाकृत अधिक व्यापक थी। इसलिये अरबी के भी जितने शब्द जनपदीय भाषाओं मे आये, वे फारसी माध्यम से ही आये। यह तो उल्लेख किया जा चुका है कि गुरु गोविंदसिंह जी फारसी के विद्वान् थे। इसका परिचय उन्होंने अपनी काव्य-रचनाओं में अनेक स्थानो पर दिया है। उनकी फारसी रचनाएँ इसके साक्ष्य मे प्रस्तुत की जा सकती हैं। अपनी रचनाओं मे फारसी के प्रभाव को उन्होंने मुख्यतः तीन रूपों में ग्रहण किया है। प्रथम तो व्रजभाषा और फारसी मिश्रित छन्द, दूसरा विशुद्ध फारसी छन्द, तीसरा शब्दों का प्रयोग। तीनों के उदाहरण नीचे क्रमशः दिये जा रहे हैं :

व्रजभाषा और फारसी मिश्रित छंद

नमस्तुल प्रनामे समस्तुल प्रणासे।
अंगजुल अनामें समस्तुलं निवासे ॥[3]

× × ×

करीमुल्ल कुनिन्दा समस्तुल निवासी ॥[4]
गुस्से आइ साहमणे रण अन्दरि घतन धाण की।
अगे तेग बगाई दुर्गसाह बढ़ सुमन बही पलाण के।
रड़की जाहकै धरत की बढ़ पाखर वद किकाण की।

× × ×

सदा साबास तेरे तान की। तारीफा पाण चबान कौं ॥
सद रहमत कैफां खान की। सदा रहमत तुरे नचान कौं ॥[5]

---

१. वही, छंद संख्या ५०
२. मनुराजा अवतार, चौबीस अवतार, छंद संख्या ५
३. अकाल स्तुति, छंद १९६
४. वही, छंद १९७
५. चंडी दी वार, छंद ५०

कि रोजी दिहींद हैं। कि राजक रहिंद हैं।
करीमुल कमाल है। कि हुसनल जमाल हैं।
गनीमुल खिराज है। गरीबुल निवाज हैं ॥[१]

दशमेश जी ने एक स्थल पर युद्ध-वर्णन के प्रसंग में ब्रज, फारसी, पंजाबी गुजराती मिश्रित भाषा का भी प्रयोग किया है :

धाए महावीर साधे सितं तीर काछे रणं चीर बाना सुहाए।
रवाँ कर्द अरकब य ओ तेज हम शब चुंतुंद अजद होउ मिआ जंगाए।
भिड़ आए इहाँ बुले बेन कीहाँ करें घाइ जीहाँ भिड़े भेड़ भज्जे।
पियो पोस्ताने भछो रावड़ी ने कहा छे अनीरे धनी ने निहारे ॥[२]

फारसी रचनाएँ

फारसी में 'जफरनामा' उनकी सर्वाधिक प्रख्यात रचना है। इसके अतिरिक्त अन्य रचनाओं में भी बीच-बीच में विशुद्ध फारसी के छंद आये हैं। मध्यकाल में नरहरि, गंग, रहीम आदि अनेक कवियो ने अपनी रचनाओं में कहीं-कहीं फारसी में पांडित्य-प्रदर्शन के लिये फारसी छंदों की रचना की है। यह युग-विशेष का ही प्रभाव कहा जा सकता है।

फारसी शब्द

युद्ध और स्तुति के प्रसंगों में सवैया, कवित्त, अड़िल, भुजंगप्रयात, तोमर, नराच, अर्द्धनराच आदि छंदों में और स्तुति मे फारसी शब्द अधिक आये हैं। शृंगारपरक स्थानों पर उन्होंने फारसी के छोटे-छोटे और श्रुतिमधुर शब्दों को स्थान दिया है; परन्तु अन्य प्रसंगों में यथा युद्ध अथवा वस्तुओं के नाम गिनाने तथा स्तुति आदि के प्रसंग में फारसी के क्लिष्ट शब्दों की भरमार कर दी है जिससे ये स्थल बडे शुष्क और नीरस लगते हैं। उनके द्वारा प्रयुक्त कुछ शब्दों के उदाहरण देखिए :

सफ़ा, दफा, खफा, जफा, साकी, करीम, माफी, काफी, सिताबी, महताब, खुआब, शराब, रहीम, रहम, गरीब, आसमान, आफताब, तोप, तुपुक, इमान, इत्यादि। यह ध्यान देने की बात है कि उन्होंने फारसी शब्दों में इच्छानुसार परिवर्तन करके उन्हें माधुर्य और लालित्यपूर्ण बनाने का प्रयत्न भी किया है।

शब्द-विकृति

कवि अपनी निरंकुशता के लिये प्रसिद्ध हैं। मध्यकाल में इस निरंकुशता का कवियों ने खूब प्रदर्शन किया। जब पद-लालित्य, नाद-सौदर्य, श्रुति-माधुर्य के लिये

---

१. जापु, छंद १५२,१५३

२. गोविन्दरामायण, पृष्ठ १७०

कविगण कुशल शिल्पी के सदृश भाषा का शृंगार कर रहे थे, उस समय एक भी शब्द उनकी पारखी दृष्टि से न बचा। इसके अतिरिक्त छंदों के आग्रह से भी, उन्होंने शब्दों को इच्छानुसार तोड़ा-मरोड़ा। गुरु गोविन्दसिंह इसके अपवाद नहीं थे। उनकी समस्त रचनाओं के एक-एक शब्द की यदि ठीक परख की जाय तो सम्भवतः शब्दों की तोड़-फोड़ मे कवियों की सबसे प्रथम पंक्ति में बैठने के अधिकारी बन सकते हैं। कुछ उदाहरण देखिए : —

१. विस्मय से विस्मायो, गरज से गरजायो,

। क्रिया-रूप ।

२. आड़ा । आड़ ।, गाड़ा । गाड़ ।, असाहा । चक्खा, लक्खा, पिक्खा आदि । संज्ञा ।

मुहावरे और लोकोक्तियाँ

भाषा को प्रायः अधिक आकर्षक बनाने और सजाने के लिये मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग किया जाता है। इनसे भावों की प्रभावात्मकता की भी वृद्धि होती है। मुहावरे अथवा लोकोक्ति में कही हुई कोई बात तत्काल हृदय में घर कर लेती है और उसका प्रभाव भी स्थायी होता है। गुरु गोविन्दसिंह की रचनाओं में मुहावरों के प्रयोग अधिक हुए हैं। लोकोक्ति का भी प्रयोग मिलता है; किन्तु अत्यल्प। नीचे इनके कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

लोकोक्ति एवं मुहावरे

कह्यो चलो तब लगे कहानी। जब लग गंग जमुन को पानी।[1]
हाथ दीपक ले महा पसुमधि कूप परंता।[2]
जो पिखवे न तहा तिनको सुकहे हमको हरि हाथ न आवे।[3]
रोस भरे मक ठोक भुजा कवि स्याम कहै अति क्रोधित ह्वै कै।[4]
आज सभो मरिहो टरिहो नही स्याम भनै मुँह राम दुहाई।[5]
गाल बजाय बजाय के दूंदभ ज्यौ घन सावन के घहराए।[6]
सीस धुने इक ऐसे कहे हमहू जदुबीर के काम न आए।[7]

---

१. चौबीस अवतार, बावन अवतार, श्री दशमगुरु ग्रंथ साहब, छंद संख्या २५
२. वही, रुद्र अवतार, वही, छंद सं० ५९
३. वही, कृष्णावतार, वही, छंद सं० ९५३
४. वही, छंद १९९४
५. वही, छंद १९९३
६. वही, छंद १९९५
७. वही, छंद २०५३

ठाढि भई करि ले के गदा अतिरोस के दाँत सो दाँत बजावै ।[1]
मनो तची अति पावक ऊपर काहू बुझाइवे को घृत डार्‍यो ।[2]
लरिके मरिके गिरि खेत रहे ।[3]
फूल फूल फिरे सब गणदेव देवन राय ।[4]
सो न बरै अति रोष भरी तब नाक कटाई गई गृह को सब ।[5]
मै दग्ग अदग्ग भगे हठी गहि गहिकर दाँतन तृणा [6]
सुन्यो लंकनाथं धुने सर्वमाथं ।[7]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गुरु गोविन्दसिंह जी ने अपने युग की ब्रजभाषा की समस्त प्रवृत्तियों को ग्रहण किया है और विविध भाषाओं, बोलियों के शब्दों से ब्रजभाषा के भंडार को समृद्ध करने में अद्भुत योगदान किया है। उन्होंने यह सम्मिश्रण बहुत कम स्थलों पर किया है जिससे उन शब्दों के अवसरोचित प्रयोग से काव्यभाषा की अभिव्यक्ति को शक्ति प्राप्त हुई है; परन्तु कुछ स्थलों पर जहाँ उन्होंने विशेषतः फारसी शब्दों की भरमार कर दी है, वे अंश अवश्य नीरस और उखडे से लगते हैं। तथापि यह मानना पड़ता है कि उनका ब्रजभाषा के सदृश ही अन्य भाषाओं पर भी यथेष्ट अधिकार था।

अप्रस्तुत योजना

साहित्य में कवियों ने अलंकार की योजना मुख्यतः दो कारणों से की है। प्रथम, भावों में तीव्रता लाने के लिये और द्वितीय, अप्रस्तुत का वर्णन प्रस्तुत द्वारा करने के लिये। अलंकार, काव्य के बाह्य शोभाकर धर्म हैं, इस धर्म का फल काव्य का अलंकरण और सजावट है, इसलिये प्राचीनतम अभिधान अलंकार हैं।[8] आचार्य केशवदास ने काव्य की तुलना सर्वांग सुन्दर नायिका से की है।[9] जिस प्रकार नायिका विविध आभूषणों, साज-सजाओं द्वारा अपने सौंदर्य की अभिवृद्धि करती है, उसी प्रकार अलंकार भी काव्य शरीर के लिये आवश्यक हैं। काव्य के लिये

---

१. वही, छंद २२८०
२. वही, छंद २३६७
३. चंडी चरित्र, वही, छंद १९
४. गोविन्द रामायण, पृष्ठ १३
५. वही, पृष्ठ ९०
६. गोविन्द रामायण, पृष्ठ १०५
७. वही, पृष्ठ १२९
८. हिन्दी साहित्य कोश, पृष्ठ ६०
९. आचार्य केशवदास, पृष्ठ २१३

अलंकारों की उपयोगिता केवल आभूषण के सदृश ही नहीं है; वरन् यह काव्य की अभिव्यंजना-शक्ति को भी सप्राण, सजीव और प्रभावोत्पादक कर देते हैं। अभिव्यक्ति को सशक्त करने के साथ ही अलंकार उपयुक्त वातावरण-चित्रण में भी कवि को सहयोग देते हैं; जैसे कंठहारादि। अलंकार नारी-सौदर्य की दीप्ति में वृद्धि करते हैं, वैसे ही सादृश्यमूलक अलंकार रसोत्कर्ष में सहायक होते हैं। इनके द्वारा अभिव्यक्ति में स्पष्टता, रुचिरता, भावों में प्रभावात्मकता और प्रेषणीयता तथा भाषा में सौदर्य एवं रमणीयता आ जाती है। चमत्कारवादी कवियों ने तो अलंकारों द्वारा भाषा में अपने अपूर्व पाडित्य का प्रदर्शन करने के लिये अपनी सारी शक्ति लगा दी थी। मध्यकाल में राजसभाओं के आश्रित कवियों ने अलंकारों के बल पर अपने आश्रयदाताओं को अपनी प्रतिमा द्वारा चमत्कृत कर दिया था।

अलंकार-योजना को अप्रस्तुत-योजना भी कहा गया है। अप्रस्तुत या उपमान द्वारा कवि एक ऐसा भव्य चित्र उपस्थित करता है जो प्रस्तुत या उपमेय का रूप खड़ा करने मे समर्थ होता है। अलंकारों में अधिकाश का आधार उपमान या सादृश्य ही हुआ करता है। यथा-उपमालंकार। यही कारण है उपमा अलंकार को सर्वोपरि स्थान दिया गया है। उपमा के सदृश ही रूपकालंकार का भी अप्रतिम स्थान है। भावपूर्ण चित्रों की योजना रूपक के द्वारा ही संभव होती है।

उपमा और रूपक के उपमान-विधान का प्रमुख प्रयोजन केवल स्वरूप का यथार्थ बोध कराना ही न होकर, भावोत्कर्ष के लिये उपयुक्त वातावरण तैयार करना भी है। यह कहा जा सकता है उसके स्वरूप-बोध का मूल उद्देश्य ही भावों में तीव्रता लाना है। कवि वस्तु को जिस रूप और अवस्था में देखता है और जिस प्रकार उसमे अपनी व्यक्तिगत अनुभूति करता है, ठीक उसी प्रकार के उपमान भी ढूँढ़ता है। प्रायः देखा गया है कि सभी कवियों का उपमान-विधान अधिकाशतः परम्परायुक्त ही है। फिर भी जब उसे रूढ़ उपमान-विधान से सन्तोष नहीं होता, तब वह अपनी मौलिक चिन्तनधारा के अनुसार ऐसे उपमानों का अनुसंधान करता है जो उसकी रुचि और वातावरण की स्पष्ट अभिव्यक्ति कर सकें। कवियों को कुछ उपमान अत्यधिक प्रिय हो जाते हैं। इसका कारण उनकी व्यक्तिगत अभिरुचि, संस्कार और उपयुक्त वातावरण की सृष्टि करना कहा जा सकता है।

चित्र-योजना के लिये कवियों ने कई क्षेत्रों से उपमानों को ग्रहण किया है। उनके चुनाव के मुख्यतः पाँच क्षेत्र होते हैं। तत्कालीन वातावरण, प्रकृति, पशु-पक्षी, शास्त्र-ज्ञान, घरेलू जीवन।[1] गुरु गोविन्दसिंह ने इनमें मुख्यतः तत्कालीन वातावरण,

---

१. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, भाग ६, पृष्ठ २४८,

शास्त्र-ज्ञान और घरेलू जीवन से ही उपमानों का विशेष चयन किया है। नायक-नायिका की मुद्राओं, विभिन्न आन्तरिक मनोदशाओं एवं शारीरिक सौंदर्य के चित्रण के लिए प्रकृति और पशु-पक्षियो का अवलम्बन किया है। उनका उपमान-विधान एवं चित्र-योजना संबंधी अध्ययन स्वयं एक स्वतंत्र विषय कहा जा सकता है। यहाँ पर केवल संक्षेप में इस पर विचार किया जा रहा है।

अलंकार-योजना

अप्रस्तुत-योजना मुख्यतः सादृश्य पर आधारित होती है। यह सादृश्य तीन प्रकार का माना गया है—रूप-सादृश्य, धर्म-सादृश्य और प्रभाव-सादृश्य। अलंकारों का सारा प्रभाव--क्षेत्र इन तीनों के अन्तर्गत आ जाता है। साथ ही अलंकार के मूल प्रयोजन पर भी ये तीनों सुन्दर प्रकाश डालते हैं।

रूप-सादृश्य

स्वरूप-बोध कराने के लिये कवियों ने अनेक प्रयोगों की सादृश्य योजनाएँ की हैं। प्रत्यक्ष या प्रस्तुत की रूपानुभूति को तीव्रतर बनाने में इससे सहायता मिलती है। स्वरूप-बोध से तात्पर्य भावात्मक बोध है। यदि काव्य में यह योजना स्थूल और कृत्रिम हो जाती है तो काव्य-अभिव्यक्ति मे नीरसता आ जाती है। इसे कवि की असमर्थता भी कहा जाता है। गुरु गोविन्दसिंह ने रूप-सादृश्य की बड़ी उत्कृष्ट योजना की है। उन्होंने इस क्षेत्र में साधारण जीवन से भी बड़ी सहायता ली है। पशु-पक्षियों से ढोंगी लोगों का सादृश्य देखिए।

> घूग्घू मट वासी लगे डोलत उदासी,
> मृग तरवर सदीव मौन साधेई मरत है।[1]

इसमें उदासी लोगों की घूग्घू मटवासी और मौन धारण करने वालों को मृग और वृक्षों के सदृश सदैव मौन साधकर मरने वाला बताया है।

> जल के तरैया को गंगेरी सी कहत जग,
> आग के भछैया को चकोर सम मानिये ॥[2]

> सिगी साँच अकपट कंठला ध्यान विभूति चढ़ायो।
> ताती गहु आतम बसिकर की भिच्छा नाम अधारं ॥[3]

गुरु जी ने रूप-सादृश्य की ही योजना सर्वाधिक की है। भक्ति, दर्शन और

---

१. अकाल स्तुति, छंद सं० ७१

२. वही, छंद संख्या ७३

३. शब्द हज़ारे, छंद सं० २

श्रृंगार के प्रसग में वह बहुत उत्कृष्ट बन गई है। पौराणिक उपमानों का भी अनेक स्थानों पर प्रयोग है। उदाहरणार्थ :

सुम्भ निसुम्भ से कोट निसाचर,
जाहि छिनेक विखे हन डारे।
धूमर लोचन चंड और मंड से,
महाख से पल बीच निवारे ॥[1]

धर्म-सादृश्य

रूप-सादृश्य की अपेक्षा इसमे कवि को अधिक सूझ-बूझ से काम लेना पड़ता है; क्योंकि इसमें विधान जितना ही सूक्ष्म होगा, कवि अभिव्यक्ति को उतनी ही प्रभावोत्पादक बना सकता है। इसमें कवि पाठक को गुणधर्म की अनुभूति कराता है। इन साधर्म्यमूलक अप्रस्तुतों में मध्यकाल में लक्षणाशक्ति का चमत्कार प्रदर्शित किया गया है।

नायक-नायिका अथवा आलम्बन को विशेष परिस्थितियों के मध्य मे खड़ा करके उनकी आन्तरिक मनोदशाओं तथा उनके फलस्वरूप आलम्बन-आश्रय मे होने वाले परिवर्तनों को स्पष्ट करने में कवियों ने बड़ी भाव-प्रवण अप्रस्तुतों की योजना की है जिससे काव्य मे प्रभावात्मकता आ गई है। कवि को यह ध्यान रखना पड़ता है कि जिस कोटि का उपमेय है, उपमान भी वैसा ही उपयुक्त हो, अन्यथा वह जो कुछ भी व्यंजना करेगा वह स्थूल और असफल होगी। गुरु गोविन्दसिंह ने भी ऐसे अनेक प्रयोग किये हैं, देखिए :

या कल में सम काल कृपान के,
भारी भुजान को भारी भरोसो ॥[2]
कोप कराल की पावक कुंड में,
आप टंग्यो तिम तोहि टँगे हैं ॥[3]

वृत्यनुप्रास

उक्त छंद में कवि ने कोप और कुंड की अग्नि की धधकती ज्वाला मे धर्म-सादृश्य का बड़ा उत्कृष्ट चित्रण किया है। यशोदा के पुत्र-वियोग की दशा का चित्रण देखिए :

कोऊ कहे जसुदा मुख ते सुनि श्रोणन बात तहाँ ऐऊ धावै।
जो पिखये न तहा तिन को सु कहे हमको हरि हाथ न आवै ॥[4]

---

१. अकाल स्तुति, श्री दशमगुरु ग्रंथ, छंद संख्या ९३

२. विचित्र नाटक, छंद सं० ५२, पृष्ठ १४

३. वही, छंद सं० ९८, पृष्ठ १६

४. कृष्णावतार, चौबीस अवतार, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छंद सं० ९५३

'हाथ न आवे' मुहावरे से कवि ने लाक्षणिकता की बड़ी सुन्दर योजना की है।

प्रभाव-सादृश्य .

यह अप्रस्तुत-विधान साधर्म्य की अपेक्षा भी अतिसूक्ष्म है। इसके लिये कवि का व्यापक अनुभव, गम्भीर निरीक्षण, अध्ययन और प्रतिभा की आवश्यकता होती है। इसके अभाव में यह प्रभाव-सादृश्य का चित्रण करने में सफल नहीं हो सकता। रीतिकाल के रीतिबद्ध कवियों में इस तरह की अप्रस्तुत-योजना बहुत कम मिलती है।[1] गुरु गोविन्दसिंह की रचनाओं में प्रभाव-सादृश्य अनेक स्थानों में मिलता है। कुछ उदाहरण देखिए :

१. ऐसे गये मिलि आपसि में दल जैसे मिले जमुना अरु गंगा।[2]

यहाँ दलों के दूसरे दल में समा जाने में न तो रूप-सादृश्य है और न धर्म-सादृश्य ही, परन्तु मित्र-पक्ष की सेनाओं का शत्रु-पक्ष से मिल जाने और गंगा के जल का जमुना में मिल जाने में अद्भुत प्रभाव-साम्य है।

२. ऐंच लयो हल सो दल को जिम खैंचत दुइ करि झीवर जारी।[3]

३. गंगा सम गंगधार बकान सी बिलंदाबाद,
कीरति तिहारी की उजियारी सोहियतु है।[4]

ईश्वर-स्तुति के प्रसग में कवि ने कीर्ति और मालती-फूल के सौंदर्य में प्रभाव-सादृश्य का बेजोड़ वर्णन किया है, देखिए—

के बिख खाए मरेगी कह्यो अपने तन को महि घात करै हैं॥
मार छुरी अपने तन में हरि के हम ऊपर पाप चढ़े हैं॥[5]

उपर्युक्त तीन आधारों के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी उपमान हैं जो इनके अन्तर्गत नहीं आते। अतः उनका पृथक् संक्षिप्त वर्णन दिया जा रहा है।

संभावनामूलक अप्रस्तुत-योजना

सादृश्य-मूलक, अप्रस्तुत संभावनाओं पर भी आश्रित रहते हैं। इनमें उत्प्रेक्षा प्रधान है। उपमेय की उपमान के रूप मे सम्भावना-उत्प्रेक्षा कहलाती है। इसमें प्रधानता उपमान अथवा अप्रस्तुत की ही रहती है और प्रस्तुत या उपमेय गौण रहता है। प्रस्तुत और अप्रस्तुत मे पार्थक्य रहने पर भी दोनों में अभिन्नता स्थापित

---

१. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, पृष्ठ २५७
२. कृष्णावतार, चौबीस अवतार, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छद सं० १०६४
३. वही, छंद सं० १०६७
४. अकाल स्तुति, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छंद संख्या २६५
५. कृष्णावतार, चौबीस अवतार, छंद सं० ८०६

की जाती है ।[1] सम्भावना के आधार पर कवियों को चमत्कार-प्रदर्शन और कौतूहल-दर्शन का बहुत अवकाश मिलता है । कल्पना की उड़ान और पांडित्य का प्रदर्शन कवि का मूल उद्देश्य हो जाता है तो वह काव्यत्व के गुणों से हीन हो जाता है। अतः यह ध्यान रखा जाता है कि उत्प्रेक्षा में भी अप्रस्तुत लोकानुभूति और लोक-कल्पना के आसपास ही रहना चाहिये। कल्पना के अधिक अनुभूति से परे अप्रस्तुतों का विधान न तो रूपानुभूति में, न कर्म और प्रभाव के सादृश्य में समर्थ हो पाता है और न रसानुभूति में सूक्ष्म हो पाता है। गुरु गोविन्दसिंह ने सिद्धांत-कथन, दार्शनिक प्रसंगों, शृंगारिक स्थलों, युद्ध के वर्णनों में उत्प्रेक्षाओं का बहुत अधिक प्रयोग किया है। उनकी उत्प्रेक्षाओं में स्वाभाविकता और सजीवता है, देखिए—

(२) मन यों उपजी उपमा रणदीप के ऊपर आये पतंग जरे ॥[2]
(२) मानहु कुमार लै तागहि को चक्र ते पुन वासन वाट उतार्‍यो ॥[3]
(३) गिरियो झूम-झूम गये प्राण छूटं ।
मनो मेरको सातवों शृंग टूटं ॥[4]

(४) ता छवि की अति ही उपमा कवि जिऊ चुन ली तिसको चुन काढ़े।
मानहु पावस की रुत में चपला चमकी घन सावन गाढ़े ॥[5]

अतिशयता-मूलक अप्रस्तुत-योजना

काव्य में भावोद्दीपन और सौंदर्य-अभिवृद्धि की दृष्टि से इनका भी महत्त्व है। काव्य की आत्मा रस है, यह पहले कहा जा चुका है। अतः रसाभिव्यक्ति में जहाँ तक ये अलंकार सहायक होते हैं, वहीं तक इनकी उपयोगिता है। किन्तु जहाँ ये सीमा का उलंघन कर देते हैं या कवि बेसिर-पैर की उड़ाने भरने लगता है, वहाँ काव्य का मूल उद्देश्य नष्ट होकर केवल कवि-कौतुकमात्र रह जाता है। अतिशयोक्ति-पूर्ण वर्णन रीतिकाल के कवियों की रचनाओं में विशेष रूप से विरह के प्रसंगों में सर्वाधिक मिलते हैं जो कहीं एक मात्र चमत्कारोत्पादक और कहीं उपहासास्पद हो गए हैं। यथा, बिहारी का निम्नलिखित दोहा देखिए —

---

१. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग ६, पृष्ठ २५६
२. कृष्णावतार, श्री दशम गुरु ग्रन्थ, छंद० १०६६, पृष्ठ ३९७
३. कृष्णावतार, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छंद सं० २२७०, पृष्ठ ५४१
४. चंडी चरित्र, वही छंद सं० २४
५. कृष्णावतार, चौबीस अवतार, वही छंद सं० ३१८

सीरै जतननु सिसिर रितु, सहि बिरहिनि तन तापु।
बसिवे कौं ग्रीषम दिननु, पर्यौ परोसिनि पापु।।[1]

गुरु गोविन्दसिंह ने अतिशयता मूलक अलंकारों का उपयोग युद्ध की भीषणता के चित्रण में किया है।

तवै देवीअं पाण बाणं संभारं।
हनिओ दुसट के धाइ सीसं मंझारं।
गिर्‌यो झूम झूम गये प्राण छुटं।
मनो मेर को सातवीं शृंग टूटं।।[2]
वास सुबास बसीस वही।
तन आनन ससि कोटिक लाजै।।[3]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गुरु गोविन्दसिंह ने भावोद्रेक और शैली के सौंदर्य की अभिव्यक्ति के निमित्त सभी कोटि के अलंकारों का प्रयोग किया है। जहाँ तक स्वरूपबोध और भावानुभूति का संबंध है, उन्होंने प्रधानता भावोद्बोधन को ही दी। अलंकारों के क्षेत्र मे रीति-काल में जिस प्रकार की अस्वाभाविकता और अत्युक्ति मिलती है, उससे गुरु गोविन्दसिंह बिल्कुल पृथक् रहे। काव्य-रस के क्षेत्र में बाधक होने वाले कृत्रिम विधानों की उन्होंने पूर्णतया उपेक्षा की है।

अलंकार-प्रयोग

गुरु गोविन्दसिंह द्वारा प्रयुक्त अलंकृत शैली के विवेचन के पश्चात् नीचे संक्षेप में उनके द्वारा प्रयुक्त अलंकारों पर विचार किया जायेगा।

शब्दालंकार

शब्द-सौष्ठव, शब्द-क्रम और शब्द-मैत्री के लिये कवियों ने शब्दचयन के प्रति सतर्कता दिखाई है। इससे काव्य में नाद-सौंदर्य उत्पन्न होता है। कोमलकान्त पदावली के द्वारा काव्य में रुचिर प्रवाह, पाठक के हृदय में निर्बाध रूप से बहने लगता है। यही कारण है कि काव्य के बाह्यांग को संवारने में शब्दालंकारों का विशेष महत्त्व है। शब्दालंकारों की सृष्टि, ध्वनि के आधार पर होती है। इसे काव्य का संगीत-धर्म भी कहा जाता है। इससे काव्य में शब्द-विशेष के सम्यक् प्रयोग की आवश्यकता होती है। एक ही शब्द के

१. बिहारी रत्नाकर, दोहा सं० २६६
२. चंडी चरित्र, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छं० सं० १४
३. कृष्णावतार, चौबीस अवतार, वही छंद सं० ८४

स्थान में हेर-फेर तथा उनके स्थान पर वही अर्थ-बोधक दूसरे पर्यायवाची शब्द रख देने से काव्य का सौंदर्य पूर्णतया नष्ट हो जाता है। संक्षेप में वर्ण-सौष्ठव से संबंधित अर्थ निरपेक्ष अलंकार, शब्दालकार कहलाते हैं। शब्दालंकार कुछ शब्दगत, कुछ वर्णगत और कुछ वाक्यगत होते हैं। अनुप्रास, यमक आदि अलंकार वर्णगत और शब्दगत तथा लाटानुप्रास आदि वाक्यगत होते हैं। गुरु गोविन्दसिंह द्वारा प्रयुक्त कुछ प्रमुख शब्दालंकारों के उदाहरण देखिए :

वृत्यनुप्रास

दुरन्त कर्म को करैं अथाप थाप थापहीं।
गायत्री संध्या न कै अजाप जाप जापहीं ॥[1]

सुद्ध सिपाह दुरन्त दुबाह, सु साजि सनाह दुर्जनि दलेंगे।
तोर अरीन मरोर मवासन माते मतंगन मान मलेंगे ॥[2]

उक्त छंद की अन्तिम पंक्ति मे वृत्यनुप्रास की बड़ी सुन्दर छटा है। वृत्यनुप्रास मे कवियों ने कोमला वृत्ति की अद्भुत और बीभत्स रस में; तप नागरिका वृत्ति की शृंगार, हास्य, शान्त और करुण रस में तथा परुषावृत्ति की वीर, रौद्र और भयानक रसों की अभिव्यक्ति में बड़ी रुचिर योजना की है। गुरु गोविन्दसिंह ने अपनी रचनाओं में यथास्थान उनका प्रयोग किया है। तुकान्त कविता होने के कारण अन्त्यनुप्रास तो प्रत्येक छंद में अनिवार्य रूप से आ ही गया है। छन्द के चरणान्त में जितने ही अधिक वर्ण स्वर-साम्य के साथ आवृत्ति में आते हैं, उतना ही तुक अच्छा समझा जाता है। एक उदाहरण देखिए :

पारा सी पलाऊ गढ़ रूपा कैसी रामपुर,
सोरा सी सुरंगाबाद नीके रही झूलके।
चम्पा सी चन्देही कोट चॉदनी सी चाँदागढ़,
कीरति तिहारी रही मालती सी फूल के ॥[3]

लाटानुप्रास

इसका सम्बन्ध शब्दावृत्ति और वाक्यावृत्ति दोनों से है इसलिये इसके दो रूप होते हैं। शब्दावृत्ति मूलक......इसके कई उदाहरण गुरुजी की रचनाओं में मिलते हैं, देखिये :

---

१. सूरज अवतार, चौबीस अवतार, छंद सं० ३
२. अकाल स्तुति, छंद सं० २५
३. वही, छंद संख्या २६४

सु घूम घूम घूम ही, करत सैन भूम ही ॥[1]

इसमें यमक अलंकार भी है।

यमक

इसमें वर्ण-समुदाय अथवा तज्जन्य शब्द की आवृति अर्थान्तर के साथ होती है। इसके मुख्य दो भेद हैं—सभंग और अभंग। गुरु गोविन्दसिंह की रचनाओं में अभंग-यमक के ही उदाहरण मिलते हैं:

भूलि पड़ी प्रभु कीजै छिमा मुहि नारि नवाइ के नारि सुनाई।[2]

यहाँ एक नारि का अर्थ नाड़ी और दूसरे का स्त्री है।

तिह तवही विसनहि हरि लियो। अवरन वाट अवरनहि दियो ॥[3]

श्लेष

इसमें एक ही शब्द अनेकार्थी रूप में प्रयुक्त मिलता है। गुरुजी ने यत्र-तत्र इसका उपयोग किया है। उदाहरणार्थ:—

काइन एक तहा मिल गई। सो आ चूक पुकारत भई।
जो सोवै सो मूल गवावै। जो जागै हरि हृदै बसावै ॥[4]

वक्रोक्ति

इसमें वक्ता के कथन का अभिधापरक अर्थ न ग्रहण करके श्रोता उससे चमत्कार-पूर्ण भिन्न अभिप्रेत लगा लेता है। गुरुजी ने इसका प्रयोग-वियोग-प्रसंग में उपालंभ के रूप में किया है:

पाए घनो सुख पै मन में अति ऊपर मान सो बोल सुनायो।
चन्द्रमगाहु सो कैल करो इह ठौर कहा तजि लाजहि आयो ॥[5]

वीप्सा

जहाँ किसी भाव-विशेष पर अधिक बल देने के लिए शब्दों की आवृति हो, वहाँ इस अलंकार का प्रयोग होता है। भक्ति, शृंगार और युद्ध के प्रसंगों में दशमेश जी ने इसका खूब प्रयोग किया है:

जोगी जती ब्रह्मचारी बड़े बड़े छत्र धारी,
छत्र ही की छाया कई कोस लौ चलत हैं।

---

१. सूरज अवतार, चौबीस अवतार, श्री दशम गुरु ग्रन्थ, छंद सं० ५

२. कृष्णावतार, वही, छंद स० २१५८

३. कच्छावतार, वही, छंद सं० १२

४. रुद्र अवतार, छंद सं० २०९, २१०.

५. कृष्णावतार, चौबीस अवतार, श्री दशमगुरु ग्रन्थ, छं० सं० ७२९

बड़े बड़े राजन के दावति फिरति देत,
बड़े बड़े राजनि के दर्प को दलत हैं ।।[१]

शब्दालंकारों के अन्य भी भेदोपभेद हैं । गुरुजी की रचनाओं में यथा सम्भव सभी का समावेश हो गया है । परन्तु उन्होंने श्लिष्ट अथवा अनेकार्थक शब्दों का प्रयोग अल्प मात्रा ही में किया है । उनके अलंकार काव्य के बाह्यांग की अभिवृद्धि के साथ ही उसकी बोधगम्यता को कहीं भी नष्ट नहीं होने देते ।

अर्थालंकार

जिन विधानो द्वारा काव्य मे अर्थ संबधी चातुर्य-चमत्कार-चारुता आती है उन्हें अर्थालंकार कहते हैं ।[२] अर्थालंकारों की योजना मे अर्थ ही प्रधान प्रयोजन होता है । भाव काव्य का अन्तरंग पक्ष है । इसी अन्तरंग पक्ष को प्रभावात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करने में अर्थालंकारों का मुख्य स्थान है । भावावेश की स्थिति में कवि के हृदय से शब्दों, वाक्यों की एक निश्चल धारा बहने लगती है । इसी के साथ अर्थालंकारों की लहरें भी उमड़ पड़ती हैं । भावोद्रेक करने के लिये कवि एक विशेष प्रकार के शब्दों, वाक्यों, अर्थों द्वारा विभिन्न स्थितियों के चित्रण से रम्य वातावरण उपस्थित करता है । अर्थालंकारों के अनेक भेदोपभेद हैं । धर्मपाल आस्ता ने गुरु गोविन्दसिंह द्वारा प्रयुक्त अर्थालंकारों की एक लम्बी सूची दी है जो उनकी तद्युगीन विशेषता की परिचायक है ।[३] यहाँ पर गुरुजी द्वारा प्रयुक्त प्रमुख अर्थालंकारों पर विचार किया जा रहा है ।

उपमा

उपमा का शब्दार्थ है—सादृश्य, समानता तथा तुल्यता आदि ।[४] अलंकारों में कवियों की सर्वाधिक प्रिय उपमा ही है । महाकवि कालिदास तो अपने उपमानों के कारण साहित्य-जगत् में प्रख्यात हैं । अलंकार के सौंदर्य का मूल सादृश्य में है और यही कारण है कि सादृश्यमूलक अलंकारों का आधार मानते हुए उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है । गुरु गोविन्दसिंह की रचनाओं में उपमा के अनेक भेदोपभेद मिलते हैं । मुख्यतः उपमा के कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं :

छीर कैसी छीरावध छाछ कैसी छत्रानेर,
छपाकर कैसी छवि कालिन्दी के कूल के,

---

१. अकाल स्तुति, छं० सं० ७८
२. रसछन्दालंकार, पृष्ठ ४१
३. दि पोयट्री आफ् दशम ग्रंथ, पृष्ठ २५७.
४. हिन्दी साहित्य कोश, पृष्ठ १५४

हंसनी सी सीहा रूम हीरा सी हुसैनाबाद,
गंगा कैसी धार चली सातो सिन्ध बल के।
पारसी पलाऊगढ रूमा कैसी रामपुर
सोरासी सुरंगाबाद नीके रही झूलके ॥[१]

ता छवि की उपमा अति ही कवि स्याम कही मुख तै कुनि ऐसे।
भूमि दुखी मन में अतिही जनु पालत है रिपु दैतन जैसे ॥[२]

मालोपमा

इसमें एक ही उपमेय के अनेक उपमान होते हैं। उदाहरणार्थ:

जैसे झूठ साच सों पखान जैसे कांच सों औ पारा जैसे,
आंच सो पतऊथा जिऊ सहरि सों।
जैसे गिआन मोह सों विवेक जैसे द्रोह सों,
तपसी द्विज द्रोह सों अनर जैसे नर सो ॥
लाज जैसे छर सो सुसीन जैसे धाम सों,
औ पाप राम नाम सों अछर जैसे छर सों।
सूमता ज्यों दान सों ज्यों क्रोध सम्मान सों,
सुस्याम कवि ऐसे आइ मिलियो हरि हरि सों ॥[३]

रूपक

उपमा में उपमान से सादृश्य दिखाया जाता है, परन्तु रूपक सादृश्य-गर्भित रहता है। इसे अभेद-प्रधान, आरोप-मूलक अलंकार भी कह सकते हैं अर्थात वह अलंकार जिसमें अतिसाम्य के कारण प्रस्तुत मे अप्रस्तुत को पूर्णतया आरोप करके अभेद स्थापित किया जाता है। सादृश्य, धर्म, गुण, प्रभाव, प्रकृति अथवा अंग-विशेष, सर्वांग आदि अनेक स्थलों में अभेद की प्रतीति होने से, रूपक के अनेक भेदोपभेद हैं। गुरु गोविंदसिंह ने उनमें से अनेक भेदो को अपनाया है। निम्नलिखित पंक्तियों में उन्होंने पाखंडियों के ढोंग के सुन्दर रूपक बाँधे हैं।

खूक मलहारी गहा गदहा विभूत धारी,
गिदुआ मसान [illegible] फरिओड करत है ॥
घूग्घू मटवासी लगे डोलत उदासी,
मृग तरवर सदीव मौन साधेई मरत है ॥[४]

---

१. अकाल स्तुति, छंद संख्या २६४
२. कृष्णावतार, चौबीस अवतार, छंद सं० १०३
३. वही, छंद सं० २२६९
४. अकाल स्तुति, छंद सं० ७१

नाचत फिरत मोर बादर करत घोर,
दामिनी अनेक भाउ करिओई करत है ॥[१]

अजान देने वाले मौलवी का रूपक भी द्रष्टव्य है :

पंच बार गीदर पुकारे परे सीतकाल,
कुँजर औ गदहा अनेकदा पुकारही ॥[२]

सांगरूपक

रे मन इह विधि जोगु कमाओ।
सिंगी साच अकपट कंठला धिआन बिभूति चढ़ायो।
ताती गहु आतम बस करकी भिछा नाम अधारं।
बाजै परम तार तत हरि को उपजै राग रसारं ।।[३]

उल्लेख

इसमें एक ही वस्तु का अनेक प्रकार से वर्णन या उल्लेख किया जाता है। गुरु जी ने स्तुति के प्रसंग में इस अलंकार को बहुत अधिक प्रयुक्त किया है :

करणालय हैं। अरघालय हैं॥
खल खंडन हैं। महि मंडन हैं॥[४]

उत्प्रेक्षा

जहाँ प्रस्तुत में अप्रस्तुत की सम्भावना की जाती है, वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार होता है। उत्प्रेक्षा का शब्दार्थ है अन्य (उपमान) का उत्कटता से ज्ञान अथवा बलपूर्वक प्रधानता से देखना।[५] सम्भावना में सादृश्य गर्भित रहता है। सम्भावना अनेक प्रकार की होती है। इसी को लेकर आचार्यों ने उत्प्रेक्षा के अनेक भेदोपभेद किये हैं। गुरु गोविन्दसिंह के सवैयो, कवित्तों मे सबसे अधिक उत्प्रेक्षा ही प्रयुक्त हुआ है। ऐसा जान पड़ता है कि अलंकारो में उत्प्रेक्षा ही उनको सर्वाधिक प्रिय था। उदाहरणार्थ :

चंड संभार तवै बलुधार गहि नारि धरा पर भारियो।
जिउ धुबिया सरिता तट जाइकै लै पट को पट साथ पछारियो ॥[६]

---

१. वही, छंद संख्या ७६
२. वही, छंद सं० ८३
३. शब्द हजारे, छंद सं० २
४. जापु, छंद सं० १७०
५. हिन्दी साहित्य कोश, पृष्ठ १३३
६. चंडीचरित्र उक्ति विलास, श्री दशम ग्रंथ, छंद सं० ३४

जुद्ध जुरे जदुराए सखा किधौं क्रोध भरे द्रुयोधन सोहै।
भीर परे रण रावण सों सुत रावण को तिह की सम को है ॥[1]

किधौ देवकन्या किधौं वासवी है।
किधौं यक्षिणी किन्नरी नागिनी है।
किधौं गंधरी दैतजा देवता ही।
किधौं सूरजा शुद्ध सोधी सुधासी ॥[2]

उदाहरण

इसका उपयोग विशेष सिद्धान्त-कथन, नीति-उपदेश आदि के प्रसंगों में होता है। गुरुजी ने युद्ध के प्रसंग में भी इसका प्रयोग किया है :

चंड चमू सब दैतकी ऐसे भई संहार,
पौन पूत जिऊ लंक को डारयो बाग उखार ॥[3]

प्रतीप

अनुसूया के रूप-सौंदर्य के वर्णन में गुरुजी ने उपमेय और उपमान के बीच स्पर्धा और हीनता के भाव का सुन्दर प्रदर्शन किया है जिसमें प्रतीप अलंकार का विधान स्वतः ही हो गया है :

निसनाथ देख आनन रिसान ॥ जल जाइ नैन लहि रोस मान।
तम निरख केस अनीय हीठ। छपिरहा जान गिर हेम पीठ ॥
कंठहि कपोत लखि कोपकीन। नासा निहार बनि कीर लीन।
रोमावल हेर जमुना रिसान। लज्जा मरंत सागर डुबान ॥
बाहु बिलोक लजै मृनाल। खिसियान हंस अविलोक चाल।
जंघा विलोक कदली लजान। निसराह आप करि रूपमान ॥[4]

सीता का रूप-सौदर्य इतना आकर्षक है कि उससे कोयल, चंद्र, मीन, सूर्य सभी हतप्रभ हो जाते हैं :

सुने कूक को कोकिला कोप कीने मुखं देख के चंद दारेर खाई।
लखै नैन वाके मनै मीन मोहै लखे जात के सूर की जोति छाई ॥[5]

---

१. वही, छंद सं० १०५८
२. गोविंद रामायण, पृष्ठ २४
३. चंडीचरित्र उक्ति बिलास, छन्द सं० १४
४. रुद्र अवतार, चौबीस अवतार, छं० सं० १६, १७, १८
५. गोविन्द रामायण, पृष्ठ ७७

अतिशयोक्ति

लोक-सीमा का उल्लंघन करके किसी कथन को कहना अतिशयोक्ति है। कवियों ने युद्ध, शृंगार, वीर, रौद्र, आदि के प्रसंगों में अतिशयोक्तिपूर्ण कल्पनाएँ की हैं। अतिशयोक्ति से जहाँ तक स्वाभाविकता की रक्षा होती है वहीं तक उसका मूल्य है अन्यथा काव्य में अस्वाभाविक, कृत्रिम अतिशयोक्तियाँ उपहासास्पद हो जाया करती हैं। अन्यथा अतिशोक्ति काव्य के सौंदर्य की अभिवृद्धि ही करती हैं। गुरु गोविन्दसिंह ने भी अतिशयोक्ति की अनेक स्थलों पर सुन्दर योजना की है :

रक्तबीज दे चल्यो नगारा । देव लोग लौ सुनी पुकारा ।
कंपी भूम गगन थहराना । देवन जुति दिव राज डराना ॥[1]

दशमेश जी ने राम के विरह अभिव्यंजना अतिशयोक्तिपूर्ण ढंग से की है :

उठ के पुनि प्रात स्नान गए । जलजंत सबै जरि छार भए ।
विरही जिस ओर सुदृष्टि परै । फल फूल पलास अकास जरै ॥
कर सौं धर जीन छु अंत भई । कच बास न ज्यों पक फूट गई ।
तन राघव भेट समीर जरी । तब धीर सरोवर माँझ दुरी ॥[2]

अलंकारों के अन्य भेदोपभेदों का भी प्रयोग उनके काव्य मे यत्र तत्र हुआ है। जिस युग मे ये रचना कर रहे थे उसमें काव्य मे अलंकारों का अत्यधिक आश्रय लिया जाता था जिससे उसकी स्वाभाविकता नष्ट होकर केवल शिल्पगत चमत्कार प्रधान हो गया था। परन्तु दशमेश जी ने अलंकारों का प्रयोग काव्य के सौंदर्य की अभिवृद्धि, व्यंजकता, ध्वन्यात्मकता तथा अभिव्यक्ति को सशक्त और प्रभावशाली बनाने के लिये ही किया है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि गुरु गोविन्दसिंह ने काव्य के भावगत एवं कलागत समस्त पक्षों के उद्घाटन में जिस निपुणता का परिचय दिया, अलंकार और अलंकार्य्य के समुचित समन्वय में जिस प्रवीणता का पूर्णरूपेण प्रदर्शन किया, समस्याओं और संग्रामों में व्यस्त रहने पर भी जिस सहृदयता एवं भावुकता का चरम प्रकाशन किया और तत्कालीन प्रवृत्तियों को अपने में समेट कर कलुष-कर्दम से सुरक्षित रहने में जिस दृढ़ता का प्रमाण प्रस्तुत किया वह अभूतपूर्व है।

---

१. रुद्र अवतार, चौबीस अवतार, छंद संख्या १६,१७,१८
२. गोविन्द रामायण, पृष्ठ ९९६

पंचम अध्याय

दार्शनिक एवं धार्मिक भावना

भारतवर्ष सदैव से दार्शनिकों, सन्तों आदि का देश रहा है। यहाँ के मनुष्यों की चिन्तन-धारा ने बहुमुखी होकर जीवन के विविध क्षेत्रों का आवश्यकतानुसार परिष्कार तथा उन्हें उपादेय बनाने का प्रयत्न किया है। इस देश की समृद्ध प्राकृतिक स्थिति ने भी पारलौकिक चिन्तन-धारा को प्रोत्साहित करने में विशेष सहायता की है। प्रकृति ने इस भारतभूमि को मानव-जीवन की समग्र आवश्यक सामग्रियों से परिपूर्ण बनाकर इस देश के अधिवासियों को ऐहिक चिन्ता से निर्मुक्त करके पारलौकिक चिन्ता की ओर स्वतः अग्रसर किया है। यह देश निसगर्तः विचार प्रधान है।[1]

इस चिन्तन-धारा का देश पर इतना व्यापक प्रभाव पड़ा कि साधारण से साधारण व्यक्ति के जीवन को भी इसने विशिष्ट रूप से प्रभावित किया। पाश्चात्य देशों में दर्शनशास्त्र को विद्वज्जनों ने मनोविनोद का साधन माना है—परन्तु भारतवर्ष में दर्शन तथा धर्म, तत्त्वज्ञान तथा भारतीय जीवन का गहरा सम्बन्ध है। त्रिविध ताप से संतप्त जनता की शान्ति तथा क्लेशमय संसार से आत्यन्तिक दुःख-निवृत्ति करने के लिये ही भारत में दर्शनशास्त्र का आविर्भाव हुआ है।[2] साथ ही आदिकाल से चली आती हुई इस भारतीय चिन्तन-धारा के प्रवाह में एक ऐसी अविच्छिन्नता तथा एकसूत्रता उपलब्ध होती है कि बाहर से वह अनेक रूपात्मक प्रतीत होती हुई भी मूलतः उतनी भिन्न नहीं है। भारतीय सन्तों एवं विचारकों ने उसी बात को समय की बदली हुई परिस्थिति के अनुकूल बनाकर जनसाधारण के समक्ष प्रस्तुत किया है। भारतीय दर्शन की धारा सुदूर वैदिककाल से अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित होती चली आ रही है। इस धारा मे विराम के दर्शन तो कभी नहीं हुए। इस प्रकार पाश्चात्य दर्शन की धारा उस नदी के समान है जो कभी दृष्टिगोचर होती है और कभी दृष्टि से ओझल हो जाती है। परन्तु भारतीय दर्शन की धारा उस पुण्य सलिला गंगा के

---

१. भारतीय दर्शन, पृष्ठ १०

२. वही, पृष्ठ ११

समान है जो अनेक क्षुद्र नद तथा विपुलयकाय नदियों के जल से परिपुष्ट होती हुई शुष्क स्थानों को जलप्लावित तथा क्षेत्रों को शस्यसम्पन्न बनाती हुई अपने निश्चित गंतव्य स्थान की ओर समान भाव से सदैव बहती चली जाती है।[१] परन्तु इस अविच्छिन्न चिन्तनधारा के प्रवाह में समय-समय पर जाने वाले उतार-चढावों ने इसे जो वैविध्य प्रदान किया है तथा जो संसार के मनीषियों के लिये प्रमुख विवेचन का विषय रहा है, यहाँ के निवासी के लिये वही अत्यन्त सुलभ रहा है। उसने सामान्य जीवन-दर्शन के ही रूप में उसे ग्रहण तथा आत्मसात् किया है।

देश की प्राकृतिक समृद्धि के युग में यहाँ के सन्तों ने इस चिन्तनधारा को पारलौकिक मोड़ दिया, परन्तु जब कभी उन्होंने लोक-पक्ष को उर्वर बनाने की आवश्यकता का अनुभव किया तो यह धारा अपना रूप बदल कर इस ओर प्रवाहित होकर उसे हराभरा करने लगी। इस तरह भारतीय विचार-दर्शन लौकिक तथा पारलौकिक सभी तरह के तत्त्वों से भरपूर है। उपयोगितावाद के इस आग्रह ने ही भारतीय जीवन में इस भावना को प्रश्रय दिया कि जब-जब धर्म की ग्लानि होती है और अधर्म बढ़ता है तो कोई विशेष शक्ति अवतार लेकर इस अव्यवस्था में व्यवस्था की स्थापना करती है। परन्तु इतना निश्चित है कि लोकपक्ष को लेकर चलने वाले सन्तों ने भी उसे आध्यात्मिकता का आवरण पहना कर प्रस्तुत किया है। लोक-पक्ष के कर्त्तव्य का संकेत कर, उसकी आवश्यकता का विधान करते हुए, उससे प्राप्त होने वाले पारलौकिक आनन्द की प्राप्ति के उद्देश्य को उन्होंने अवश्य सम्मुख रख दिया है, क्योंकि भारतीय जीवन में यह आध्यात्मिक-तत्त्व इतना अधिक रम गया था कि यदि फल-प्राप्ति उससे सम्बद्ध नहीं है तो व्यक्ति लौकिक कार्यों को करने में भी उतना उत्साह नहीं रखता। इसलिये चाहे यज्ञ हो या अध्ययन, दान हो या ग्रहण, शत्रुओं का नाश हो या पीड़ितों की रक्षा, सभी कार्यों को करने से मुक्ति या इसी तरह का कोई अलौकिक लाभ होता है। इस विश्वास के साथ ही लौकिक पक्ष में जन-साधारण को प्रवृत्त करने वाले सन्तों व विचारकों ने अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। सबसे बडी विशेषता भारतीय दर्शन की यह है कि उसका उद्देश्य व्यावहारिक है। जनता के आधि-व्याधि-प्रपूरित विषम दैनिक जीवन से हटकर वे किसी शान्त, नीरव, काल्पनिक जगत में विचरण नहीं करते। विपद्ग्रस्त प्राणियों की विपत्ति से सदा के लिये मुक्ति प्राप्त करा देना उनका प्रधान लक्ष्य है। उनका लक्ष्य मानसिक कौतूहल का निराकरणमात्र नहीं है, अपितु ऐसा जीवन व्यतीत करना है जो राग, द्वेष के तुमुल द्वन्द्व-युद्ध से बहिष्कृत होने के कारण नितान्त आदरणीय और स्पृहणीय है।[२]

---

१. भारतीय दर्शन, पृष्ठ १२

२. वही, पृष्ठ ३९

अतएव लोकपक्ष भारतीय दर्शन का प्रमुख तथा अभिन्न अंग है। इसे केवलमात्र कोरे तर्क अथवा बुद्धि का व्यायाममात्र मानना संगत न होगा क्योंकि भारतीय दर्शन दुखसत्ता को इस जगतीतल पर विद्यमान मानकर अवश्य प्रवृत्त होता है, परन्तु वह वहीं समाप्त नहीं हो जाता, प्रत्युत आगे बढ़कर उसके आत्यन्तिक निर्वाण का मौलिक उपाय खोज निकालता है।[1] गुरु गोविन्दसिंह ऐसी ही संत-परम्परा के विशिष्ट व्यक्ति थे। वे अपने युग की जिन परिस्थितियों में कार्य कर रहे थे, उन सबको ध्यान में रखते हुए इतना तो निश्चित हो जाता है कि एकान्त-चिन्तन के लिये उनके पास समयाभाव था। आध्यात्मिक विवेचन के अतिरिक्त उन्होंने अन्य साहित्यिक कृतियों का प्रणयन मुख्यतः लोकपक्ष को ध्यान में रखकर किया था। वे दर्शन या अध्यात्म के उच्चकोटि के चिन्तन को अपने ग्रंथों में अधिक गंभीरता से प्रदर्शित नहीं कर सके हैं। यह उस युग की परिस्थितियों के अनुकूल भी नहीं था। अतएव यह स्वाभाविक है कि अध्यात्म तत्व के चिन्तकों या ऐकान्तिक साधकों को उसमें अपने विषय के अनुरूप अधिक सामग्री नहीं मिल सकती।

दशमेश जी का जीवन पूर्णतया एक धार्मिक निष्ठावान् वास्तविक सन्त का जीवन था। उत्तरमध्यकालीन युग मे घोर शृंगार का वर्णन करते हुए कविगण बीच-बीच में ईश्वर-प्रेम के एकाध छींटे डाल दिया करते थे। ईश्वर तथा परमसत्ता के विषय में शंका या अस्तित्व सम्बन्धी प्रश्न उठाना अभी लोगों ने नहीं सीखा था। समाज, राज्य, शत्रु, अन्यायी, अत्याचारी, सुधारक, विचारक सभी ईश्वरीय आस्था का सहारा लेना आवश्यक समझते थे। जिस सम्प्रदाय से दशमेश जी का सम्बन्ध था वह पूर्णतया ईश्वरवादी था। नानक-पंथ के ईश्वर संबंधी विचारों पर सन्तमत के महान विचारक और कवि कबीरदास की स्पष्ट छाप थी। गुरु नानक कबीर के परवर्ती थे। कबीर और गुरु नानक के ईश्वर सम्बन्धी विचारों मे गहरी समानता भी है। दोनों धर्म के व्यावहारिक रूप के कट्टर समर्थक थे। धर्म, ईश्वर, जीव के संबंध मे लम्बी-चौड़ी बाते कहना, दुरूह कल्पना करना उनके स्वभाव के बिल्कुल विपरीत था। उन दोनों की वाणियों का गंभीर अध्ययन अध्येता को इस निष्कर्ष पर पहुँचा देता है कि बाहरी विभिन्नताओं के रहते हुए भी भीतर से संसार के सारे निष्पक्ष मतों का मूलभूत धर्म एक ही है। कोरे सिद्धान्तवादी और आदर्शवादी लोग धर्म के वास्तविक केन्द्र से दूर जा पड़ते हैं। इन विचारकों का विश्वास था कि ग्रन्थों और पोथियों में जितनी भी जटिल व्याख्याएँ मिलती हैं वे केवल उनका कलेवर ही बढ़ाती हैं, न कि धर्म के सच्चे रूप को प्रकट करने का प्रयास करती हैं। बहुधा स्वार्थी लोगों ने अपने व्यक्तिगत सम्मान, प्रतिष्ठा, एवं स्वार्थ-साधन के लिए अपने मतलब

---

१. भारतीय दर्शन, पृष्ठ ४०

की बातें भर रखी हैं। भारतीय धर्म-साधना में अनेक बार ऐसे दुर्भाग्य-पूर्ण समय आये जब कि इस प्रकार के लोगों ने धर्म के वास्तविक रूप पर पर्दा डालने की चेष्टा की। इतिहास के पन्नों को उलटा जाये तो सन्तों का उपर्युक्त आरोप सारयुक्त सिद्ध होगा।

कबीर, गुरु नानक इत्यादि सभी विचारक जनता के साधारण वर्ग से सम्बन्धित थे। यही कारण है कि यह दार्शनिकों का मतवाद न होकर सर्वसाधारण के लिये प्रस्तुत किया गया एक शुद्ध व्यावहारिक धर्म था जिसका पूर्ण अनुसरण समाज में रहकर ही किया जा सकता था। इसी कारण गुरुओं ने सासारिक जनता के बीच रहते हुए ही अपने उपदेश दिये और साथ ही अपने व्यक्तिगत जीवन का आदर्श भी सबके सामने रखा।[1] जाति, एवं सम्प्रदाय के पाखण्डों के स्थान पर इन लोगों ने व्यक्ति के चरित्र-बल की ओर विशेष ध्यान दिया। जन्मपरक वर्ण-व्यवस्था की संकीर्ण सीमाओं से हटकर ये स्वतंत्र आत्मचिन्तन को महत्त्व देते थे। सिक्ख गुरुओं के सम्बन्ध में विशेष ध्यान देने योग्य बात यह भी है कि गुरु नानक देव की गद्दी पर बैठने वाले किसी भी गुरु ने अपने को उनसे भिन्न नहीं माना। इसी कारण गुरु नानक देव के पीछे आने वाले शेष नौ गुरु एक ही दीपक से जलाये गये। अन्य नव दीपकों को भाँति अपने आदि गुरु के पूर्ण प्रतिरूप समझे जा सकते हैं और उनके संगृहीत व सुरक्षित सद्वचन रूपी मणियों की माला में भी इसी भाँति उस एक की भावना का सूत्र निस्यूत माना जायेगा जिससे कभी गुरु नानक देव ने पहले पहल प्रेरणा प्राप्त की थी।[2]

ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि गुरु नानक एवं गुरु गोविन्द-सिंह के ईश्वर सम्बन्धी विचारों में किसी प्रकार का अन्तर नहीं है। निस्सन्देह गुरु गोविन्दसिंह की शक्ति-उपासना नानक-पंथ में उनकी विशेषता रखती है जिसका विवेचन इसी अध्याय मे आगे किया गया है। गुरु नानक के अनुसार धार्मिक जीवन एक साधना-प्रधान अथवा निरन्तर अभ्यास एवं शिक्षण में निरत रहने का जीवन है। इसे यापन करने वाले के लिये उचित है कि अपने को उत्तरोत्तर पूर्णता तक पहुँचाने की चेष्टा करता रहे।[3] अपने को ज्ञानी, पूर्ण पंडित समझ लेने का अभिमान उसे नष्ट कर डालता है। जो सदैव कुछ न कुछ ग्रहण करते रहने के लिए अपनी ज्ञानेन्द्रियों के द्वार उन्मुक्त रखता है वही कुछ सीख सकता है। इस क्षेत्र में व्यवहार की भूमि पर उतरना परमावश्यक है। अव्यावहारिक व्यक्ति जिसने कुछ मापदण्ड निर्धारित कर

१. उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृष्ठ ३३९
२. वही पृष्ठ ३३९
३. उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृष्ठ ३४३

लिये हैं वह अपने ही आदर्शों से चारों ओर से घिर जाता है। परिणामस्वरूप व्यवहार-पटुता उसके अधिकार-क्षेत्र से बाहर पड़ जाती है। व्यावहारिक व्यक्ति जहाँ भी त्रुटियाँ कमी देखता है; तुरन्त उसको सुधारने में प्रवृत्त हो जाता है। गुरु नानक का साधक इसलिये अपने को कभी पूर्ण नहीं कह सकता, वह सदा सीखते रहने वाला शिष्य व सिक्ख है।[१]

एक सच्चे निष्ठावान आस्तिक का सदैव से यही विश्वास रहा है कि समूचे ब्रह्माण्ड के संचालन की सूत्रधारिणी परम सत्ता है। उसी के आदेश अथवा संकेत से प्रत्येक कार्य सम्पन्न होता है। एक ही प्रेरणा-सूत्र में बद्ध होने के कारण संसार गतिवान है। भक्त भी उसी का अभिन्न अंग है। अतः सभी सुलभ सामग्रियों एवं परिस्थितियों का लाभ उठा कर व्यक्ति क्रमशः आगे बढ़ता है। सर्वसाधारण के बीच जीवनयापन करते हुए वह सहजभाव से समस्याओं को सुलझा लेता है। उसके साधन-मार्ग में एक समस्या के सुलझते ही दूसरी कठिनाई आ टपकती है; परन्तु प्रभु की कृपा समझ कर भक्त उस कठिनाई को गले लगाता हुआ अविचल भाव से उत्तरोत्तर अग्रसर होता रहता है। ऐसे व्यक्ति की विशेषता केवल इसी बात में है कि वह अपने संकल्प, साधन व क्रिया, सभी को किसी व्यापक नियम 'हुकुम' के प्रति समर्पित समझता हुआ, अपने अहंभाव 'हंऊ' में को भूल सा जाता है और इस प्रकार उसका व्यक्तित्व समष्टि के साथ किसी भेद का अनुभव नहीं करता।[२] यही मंगल-कामना उसका पथ निश्चित करती है।

ईश्वर का स्वरूप

सन्त-मत में परमात्मा को निराकार, निर्गुण, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र माना गया है। वह सर्वव्यापक परम तत्त्व समूचे ब्रह्माण्ड में रमा हुआ है। भक्त उसे पाने के लिये किसी प्रकार के कृच्छ्राचारों की सहायता नहीं लेता और न बाह्या-डम्बरों की आवश्यकता समझता है। सिक्ख गुरुओं ने भी इसी सन्त-परम्परा का प्रभाव ग्रहण किया। यही नहीं, उसे उन्होंने अपने स्वाधीन चिन्तन के द्वारा और भी आगे बढ़ाया। परमात्मा सत्यस्वरूप, निराकार एवं एक है। गुरु नानक ने अपनी रचना जपुजी में यह स्पष्ट कहा है—"एक ओंकार, सत्य नाम, कर्तापुरुष, निरभऊ, निरवैर, अकाल मुरति, अजुनी, सेभं, गुरु प्रसादि, जप आदि, सच्च जुगादि, है भी सच, नानक होसी भी सच्चु।[3] अर्थात् वह एक मात्र सत्यस्वरूप,

१. वही पृष्ठ ३४३

२. उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृष्ठ ३४४

३. जपुजी, श्री आदि गुरु ग्रंथ, पृ० १

स्वयं भू और नित्य पवित्र है। साथ में ही उसे सच्चा, 'करता' पुरुष बनाकर सम्पूर्ण सृष्टि में परिव्याप्त माना है। उनका ओंकार निष्क्रिय या कोरा पारमार्थिक सत्य मात्र न होकर सब कुछ कर सकने की क्षमता वाला है। उसका सत्य और कर्तारूप, सदैव विद्यमान है। न वह संसार से पृथक है और न संसार की कोई वस्तु उससे विलग है, न उसे ब्रह्माण्ड की किसी वस्तु से पृथक माना जा सकता है। इस प्रकार गुरु नानक का मूल दार्शनिक सिद्धान्त सर्वात्मवाद के उस रूप की ओर संकेत करता है जिसके अनुसार उस नित्य निर्विशेष, एक मात्र सत्य एवं व्यावहारिक असीम सत्ता के बीच कोई अन्तर नहीं है। गुरु नानक ने स्पष्ट उल्लेख किया है :—

> हुकमे अंदरि सभुको, बाहरि हुकुम न कोइ।
> नानक हुकमें जे बुझे तो हऊमें कहे न कोइ॥[1]

तात्पर्य यह है कि प्रत्येक वस्तु उसी परमेश्वर के भीतर है। उस प्रभु की आज्ञा के बिना कोई चल नहीं सकता। प्रभु की आज्ञा को जो सर्वोपरि समझ लेता है उसी का अभिमान सदैव के लिये नष्ट हो जाता है। वह अहंभाव का परित्याग करके उसी की आज्ञानुसार चला करता है। परमेश्वर ने अपने नियमों का संसार के संचालन के निमित्त प्रवर्तन किया है। अतएव प्रत्येक संसारी का कर्त्तव्य है कि वह तदनुसार चले।[2] गुरु गोविन्दसिंह ने भी परमेश्वर की उन्हीं विशेषताओं का विशद वर्णन किया है। "सब कालों में स्थिति रहनेवाले परमेश्वर को प्रणाम है, सब रूप परमात्मा को प्रणाम, सब के राजा को प्रणाम है। सबमें विद्यमान्, सबमें स्थित, सबकालों में वर्तमान, सबके पालनकर्ता परमेश्वर को प्रणाम है।[3] "सब रंगों वाला, सब का संहार करने की क्षमतावाला, काल का भी काल, साथ ही परमदयालु परमपिता हमारा प्रणाम स्वीकार करें।"

ईश्वर का स्वरूप-विवेचन करते हुए उन्होंने जापु साहिब के प्रारम्भ में ही स्पष्ट कह दिया है—

> चक्र चिह्न अरु वरन, जाति अरु पाँति नहिन जिह।
> रूप रंग अरु रेख भेख कोइ काहिन सकत किह॥[5]

परमात्मा का स्वरूप, कोई व्यक्ति भौतिक पदार्थों से उसके सादृश्य की कल्पना

---

१. जपुजी, वही छन्द सं० २
२. जपु जी, गुरु नानक देव, छन्द स० ३
३. जापु साहिब, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छन्द सं० १९, २०
४. वही — छन्द सं० २२-२३
५. वही — छन्द सं० १

करके नहीं बता सकता। उसका न कोई चक्र, चिन्ह है, न वर्ण, जाति-पांति ही, रूप-रंग, रेखा, वेश-भूषा से भी उसे नहीं बताया जा सकता। वह ठीक ऐसा ही है, यह कह सकना मनुष्य के सामर्थ्य की बात नहीं। वह, अचल मूर्ति, प्रकाश स्वरूप, असीम ओज से युक्त कहा जा सकता है। करोडों इन्द्र, इन्द्राणियों के सौंदर्य से भी बढ़ कर है। वह सृष्टि का पालनकर्ता और रक्षक है। लोग उसका वर्णन करते थक गये; किन्तु उसकी थाह न पा सके। अतः सुर, नर, असुर आदि उसे 'नेति नेति' अर्थात न वह ऐसा है न वैसा ही है, कहते हैं। कबीरदास ने इसी कठिनाई के लिये उस परम तत्त्व को 'कहणा, अनकहणा' के बीच कहा। अतः वह व्यक्ताव्यक्त है, केवल स्वानुभूतिगम्य है। दूसरों की बातों एवं ग्रन्थों के स्वाध्याय से परम तत्त्व का स्वरूप स्पष्ट नहीं हो सकता। वे कहते हैं कि मेरे स्वयं विचार करते करते अपने मन ही मन सत्य का प्रकाश हो उठा और मुझे उसकी उपलब्धि हो गई। आत्म-चिन्तन द्वारा ही परम तत्त्व पाया जा सकता है। कबीर ने बार बार इसी को दोहराया है :—

करत विचार मन ही मन उपजी, न कहीं गया न आया ॥[1]

ब्रह्म के इसी स्वरूप की अव्यक्तता को ध्यान में रखते हुए गुरु गोविन्दसिंह ने कहा था :—

निरबूझ हैं। असूझ हैं। अकाल हैं। अजाल हैं॥[2]

"अकाल, कृपाल, अरूप, अनूप, अभेख, अलेख, अकाम, अजाम, अंगज, अभेज, अनाम, अठाम, अकरन, अधरम, अधौम, अजीत, अभीत (अभय), अवाह, अठाह, अनील, अनादि, अछेद, अभेद, अगाध, उदार, अपार, एक, अनेक, अभूत, अजूप, निरकर्म, निरभरम, निरदेस, निरमेस, निरनाम, निरकाम, निरधात, निधूंत, अभूत, अलोक, अशोक, निरताप, अथाप"[3] इत्यादि शब्दों द्वारा परमात्मा के स्वरूप का वर्णन नहीं किया जा सकता। उसे वाणी या शब्दों का तुच्छ आधार देकर सीमा में नहीं बाँधा जा सकता।

संसार की प्रत्येक वस्तु की अपनी सीमाएँ हैं। व्यक्ति उन्हीं सीमाओं में बँधा है। वह भला असीम, सर्वव्यापक परमतत्त्व की अभिव्यक्ति कर सकने में कैसे समर्थ हो सकता है! ज्ञान-प्रबोध में गुरू जी ने प्रभु के स्वरूप की चर्चा इस प्रकार की है :—

---

१. कबीर ग्रंथावली, पद ४२, पृष्ठ १०२

२. जापु साहिब श्री दशम गुर ग्रंथ, छन्द- संख्या ३७

३. जापु साहिब, वही छंद, संख्या २—१३

याहि ब्रह्म आहि आत्मा राम। जिह् अमित तेज्ि अविगत अकाम।
जिह भेद भ्रम नहीं कर्मकाल। जिह् सत्र मित्र सखा दिआल॥[1]

ईश्वर की 'अव्यक्तता के सम्बन्ध में इतना संकेत पर्याप्त होगा। जब ईश्वर के रूप-आकार को शब्दों से प्रकट नहीं किया जा सकता, तब उसके प्रति भक्ति-भावना को प्रेरित कराने वाली कौन वस्तु हो सकती है? इस प्रश्न के उत्तर में कहा जा सकता है कि जो संसार की सभी वस्तुओं से परे एवं महान् है वह अत्यन्त शक्तिशाली है। उसकी इसी सर्वशक्तिमत्ता, अपार ऐश्वर्य की छटा प्रतिबिम्ब दृश्य जगत में स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा है, वही भक्त के हृदय का प्रेरक तत्त्व है। दशमेश जी ने प्रभु की अनंत शक्तियों का वर्णन करते हुए स्पष्ट लिखा है—वह डुबाने पर डुबाया नहीं जा सकता, सुखाने पर सुखाया नहीं जा सकता, काटने पर काटा नहीं जा सकता, जलाने पर जलाया नहीं जा सकता। शस्त्रों के आघात से उसका छेदन नहीं हो सकता और न उस ईश्वर का कोई शत्रु-मित्र है।[2] गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने भी आत्मा के स्वरूप का वर्णन करते हुए आत्मा की इन्हीं विशेषताओं को प्रकट किया है।[3] आत्मा चूंकि ब्रह्म का ही अंश है; अतः ब्रह्म के गुण, कर्म, स्वभाव ही आत्मा के भी होंगे। इस दृष्टि से गुरु गोविन्दसिंह के अनेक वचनों की संगति श्रीकृष्ण के विचारों से मिल जाती है।

सिक्खमत निर्गुणी सन्तमत के सदृश ब्रह्म निराकारोपासना करता है। उस ब्रह्म का कोई आकार अथवा स्वरूप नहीं है। अतः उसकी प्रतिमा नहीं बनाई जा सकती। दशमेश जी ने परमेश्वर की ऐसी ही अनुपम रूप-छटा का अन्यत्र वर्णन करते हुए लिखा है :—

सदा अभेख अभेखी रहई। तातें जगत अभेखी कहई॥
अलख रूप किन्हु नहीं जाना। तिहं कर जात अलेख बखाना॥[4]

अनंत ऐश्वर्यशाली, सर्वशक्तिमान परम तत्त्व को किसी ने साकार मानकर प्रतिमा या मूर्ति का निर्माण किया तो किसी ने उसे खिलौना समझ कर नाना प्रकार के आडम्बरों द्वारा प्राप्त करने का स्वांग रच रखा है। लोग आत्म-साधना एवं चरित्र का उत्थान करना छोड़कर अनेक अन्धविश्वासों, मंत्र होने के बल पर ईश्वर को

---

१. ज्ञान प्रबोध, वही, छंद संख्या १२८
२. ज्ञान प्रबोध, श्री दशम गुरु ग्रन्थ, छन्द संख्या १२९
३. अच्छेद्योऽयमदाह्योयम् अक्लेद्योऽशोष्य एव च। गीता अ० २।२४
नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः। गीता अ० २।२३
४. चौबीस अवतार, श्री दशम गुरु ग्रंथ, चौपई १५

प्राप्त करने का मिथ्या प्रयास करते हैं। ऐसे ढोंगी लोगों को सावधान करते हुए दश-मेश जी ने लिखा है—

जगन खगन ते रहत निरालम्। है यह कथा जग में मालम ॥
जंत्र मंत्र तंत्र न रिझाया। भेख करत किहूं नहिं पाया ॥
जग आपन आपन रुझाना। पारब्रह्म काहू न पछाना ॥
एक मड़ीअन कबरन वै जाहीं। दुहूंऊन में परमेश्वर नाहीं ॥[1]

जंत्र, मंत्र, टोना, कब्र, तीर्थ, व्रत, मन्दिर आदि किसी में भटकते रहने से ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती। इन स्थूल वस्तुओं के संसर्ग से व्यक्ति अपने वास्तविक लक्ष्य से भ्रष्ट होकर इन्हीं में भूला रहता है जिससे परम तत्व की प्राप्ति कहीं संभव नहीं। अतः जोग-भोग अथवा सासारिक वस्तु के प्रलोभन में न पड़ कर उसी परम तत्त्व में अपनी सारी एषणाओं का पर्यवसान कर दे। साधक अपनी सारी मनोवृत्तियों को उसी ओर मोड़ ले और यह दृढ़ निश्चय कर ले कि वही हमारा सर्वस्व है। जापु साहिब में गुरु गोविन्दसिंह ने इसी तथ्य को निम्नलिखित छन्दों में सविस्तार स्पष्ट किया है :—

नमो सरव काले। नमो सरव दिआले ॥
नमो सरव रूपे। नमो सरव भूपे ॥[2]
नमो सरव खापे। नमो सरव थापे ॥
नमो सरव काले। नमो सरव पाले ॥[3]
नमो सरव रंगे। नमो सरव भंगे ॥[4]
नमो काल काले। नमसत सतु दिआले ॥[5]
नमो सरव सोखं। नमो सरव पोखं ॥
नमो सरव करता। नमो सरव हरता ॥[6]
नमो जोग जोगे। नमो भोग भोगे ॥
नमो सरव दिआले। नमो सरव पाले ॥[7]

---

१. चौबीस अवतार, श्री दशम गुरु ग्रंथ, चौपई १७-१८
२. जापु साहिब, छन्द संख्या १९
३. वही छन्द संख्या २०
४. वही छन्द संख्या २२
५. वही छन्द संख्या २३
६. वही छन्द संख्या २७
७. जापु साहिब, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छन्द संख्या २८

त्रिमान है । निधान है ॥
त्रिवरग है । असरग है ॥[1]
नमो दान दानं । नमो मान मानं ॥
नमो रोग रोग । नमस्तं इसनानं ॥[2]
नमो मंत्र मंत्रं । नमो जंत्र जंत्रं ॥
नमो इसट इसटे । नमो तंत्र तंत्रं ॥[3]

ईश्वर सर्वव्यापक एवं अन्तर्यामी है। संसार की प्रत्येक वस्तु मे वह परिव्याप्त है। सूर्य, चन्द्र उसी की प्रभा से आभाषित हैं। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने ईश्वर की विभूतियों की चर्चा करते हुए उसे प्रत्येक वस्तु का आदि मूल एवं सबसे उत्तम बताया है। भक्त भगवान की इन्हीं विभूतियों का संसार के कण-कण में दर्शन कर भाव विह्वल हो जाया करता है। गुरु गोविन्दसिंह ने आत्मा की इसी पूत दशा का वर्णन करते हुए लिखा है—

नमो चन्द्र चन्दे । नमो भान भाने ॥
नमो गीत गीते । नमो तान ताने ॥[4]
नमो नृत नृते । नमो नाद नादे ॥
नमो पान पाने । नमो वाद वादे ॥[5]
नमो राज राजेश्वरं परम रूपे ॥
नमो जोग जोगेश्वरं परम सिद्धे ॥
नमो राज राजेस्वरं परम वृद्धे ॥[6]
सदा सच्चिदानन्द सरब प्रणासी ॥
अरूपे, अनूपे समसतुल निवासी ॥[7]
जले हैं। थले हैं। अमीत हैं। अभै हैं ॥[8]

---

१. वही छन्द संख्या ३२
२. वही छन्द संख्या ५६
३. वही छन्द संख्या ५७
४. वही छन्द संख्या ४७
५. वही छन्द संख्या ४८
६. जापु, साहिब, श्री दशम गुरु ग्रन्थ, छन्द सं० ५०
७. वही, छन्द सं० ५८
८. वही, छन्द सं० ६२

नमो देव देवं नमो राज राजं ॥
निरालम्ब नित्यं सुराजाधिराजं ॥[१]

प्रणवों आदि एकं कारा । जल थल महीअल कीओ पसारा ॥
आदि पुरुख अविगति अविनाशी । लोक चतुर्दश जोति प्रकासी ॥[२]
जिन्ह कीन जगत पसार । रच्यो विचार विचार ॥
अनन्त रूप अखण्ड । अतुल प्रताप प्रचण्ड ॥[३]
जिह अंड ते ब्रह्मण्ड । कीन्हें सु चौदह खंड ॥
सब कीना जगत पसार । अव्यक्त रूप उदार ॥[४]
नमो जीव जीवं । नमो बीज बीजं ॥[५]

परमेश्वर सर्वत्र है, प्रत्येक जीव में व्याप्त है, बीज-बीज में रमा हुआ है, आवश्यकता उससे केवल प्रीति लगाने मात्र की है। वह अनेक रूपों में संसार में दिखाई देता है। मूढ़जन विवेकहीन होने के कारण उसे पहचान नहीं सकते।

बली अबली दोऊ उपजाए। ऊंच नीच कर भिन्न दिखाए ॥
बपु धर काल बली बलवाना । आपह रूप धरत भयो नाना ॥[६]
भिन्न-भिन्न जिमु देह धराए । तिमु तिमु कर अवतार कहाए ॥
परम रूप जो एक कहायो । अन्त समो तिह मधि मिलायो ॥[७]

माया के वशीभूत होकर मनुष्य की बुद्धि भी जड़ हो गई है। उसने ईश्वर को सीमित कर रखा है। परन्तु इस भेद-बुद्धि का परित्याग कर दे तो उसे सर्वत्र प्रभु की ही ज्योति दृष्टिगत होगी—'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'।

जितिक जगति के जीव बखानो । एक जोत सबही महि जानो ।
काल रूप भगवान भनैबो । ता महि लीन जगति सब हैबो ॥[८]

---

१. विचित्र नाटक, छन्द सं० ९, पृष्ठ २
२. अकालस्तुति, छंद संख्या १, पृष्ठ १
३. अकाल स्तुति, छन्द संख्या ३६, पृष्ठ ९
४. वही, छन्द संख्या ३७
५. जापु जी साहिब, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छन्द संख्या ७२
६. चौबीस अवतार, श्री दशम गुरु ग्रन्थ, छन्द संख्या ३२
७. वही छन्द संख्या ३३
८. वही, छन्द संख्या ३४

सबही महि रम रह्यो अलेखा ॥
आंगत भिन्न-भिन्न ते लेखा ॥[1]
एकहू रूप अनूप सरूपा। रंक भयो राव कहूं भूपा।
भिन्न-भिन्न समहन उरझायो। सभते जुदो न किनहु पायो ॥[2]

सन्तों ने सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापक ईश्वर के लिये अवतारवाद की आवश्यकता नहीं मानी है। स्वामी रामानन्द का शिष्यत्व प्राप्त होने पर भी क्रांतिकारी कबीर और गुरु नानक ने ईश्वरावतार का खुल कर विरोध किया। कबीर ने परम्परागत राम नाम को ईश्वर के नाम के निमित्त अवश्य ग्रहण किया; परन्तु राम को कहीं लोग दाशरथी राम न समझ बैठें, इसलिये उन्होंने स्पष्ट कर दिया :—

दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना। राम नाम का मर्म है आना ॥

कबीर के परवर्ती गुरु नानक ने भी राम और सीता के अलौकिक रूप का दिग्दर्शन निम्नलिखित पंक्तियों में कराया है—

करम खंड की बाणी जोरु। तिथै होरु न कोई होरु ॥
तिथै जोरु महाबल सूर। तिनमहि राम रहिआ भरपूर ॥
तिथै सीतो सीता महिमा माहि। ताके रूप न कथने जाहि ॥[3]

सन्तों का कहना था कि जो जन्म लेता है वह संसार के नाना सुख-दुःखों, आपत्ति-विपत्तियों में फंसता एवं मोह-माया के विकट जाल में उलझता है। जन्म लेने वाले की मृत्यु भी निश्चित है। ईश्वर जन्म, मरण, बन्धन, मोक्ष सभी से परे है। फिर जिस बात के लिये लोगों ने उसका अवतार लेना बताया है वह कोई युक्तिसगत उत्तर नहीं है, क्योंकि जिस सृष्टि को स्वयं उस प्रभु ने बनाया उसी में कोई अनुचित कार्य करता है तो ईश्वर अजन्मा रह कर भी दण्ड दे सकता है। नर तो नारायणत्व प्राप्त कर सकता है; परन्तु नारायण को नरत्व के स्तर तक गिरा देना परमतत्त्व की प्रतिष्ठा के अनुकूल नहीं जान पड़ता। यह तो उसका अपमान हुआ। जन्म-मरण-धर्मी जीव के सदृश परमात्मा को बताने वाला तत्त्ववाद इन सीधे-सादे, कथनी-करनी वाले सन्तों के स्वभाव के विपरीत था। वे तो परमात्मा का दर्शन सर्वत्र करना चाहते थे। जन्म लेने से परमात्मा एकदेशीय हो जायेगा। उसके सर्वव्यापकत्व की हानि हो जायेगी। पीड़ित, दलित जनता के प्रतिनिधि होने के कारण सन्तों ने इसे अवतारवाद से भिन्न दिशा की ओर उन्मुख किया। उन्होंने

---

१. वही छन्द संख्या ३६
२. वही छन्द संख्या ३७
३. श्री जपु जी श्री गुरु नानक छन्द संख्या ३७

तर्क-जालों, आचार्यों की रूढ़ मर्यादाओं में पड़ने की आवश्यकता नहीं समझी। गुरु गोविन्दसिंह ने ईश्वर के निराकार, अजन्मा, असीम आदि रूपों का उल्लेख इन शब्दों में किया है :—

नमस्तं अकाए। नमस्तं अजाए॥[१]
नमस्तं अनामें। नमस्तं अठामें॥[२]
नमस्तं अकरमं। नमस्तं अधरमं॥
नमस्तं अनामं। नमस्तं अधामं॥[३]

दशमेश जी ने परब्रह्म को अछेय, अक्षय, अद्वैत रूपों से भी संबोधित किया है—

नमो नाथ पूरे सदा सिद्ध दाता।
अछेदी अछै आदि अद्वै विधाता।
न शस्त्रं न ग्रस्तं समस्तं सरूपे।
नमस्तं नमस्तं सअक्षतं अभूते॥[४]

यही नहीं उनकी दृष्टि में वह राग, रूप, सुख, दुःख, आदि से परे है—

जिह राग रूपै न रेख रुखं।
जिह ताप न साप न सोक सुखं।
जिह रोग न सोग न भोग भयं।
जिह खेद न वेद न छेद छयं॥[५]

गुरु जी ने ईश्वर को वेद, शास्त्र आदि की सीमाओं से आबद्ध नहीं माना है—

अरूप हैं। अनूप हैं॥ अजू हैं। अभू हैं॥
अलेख हैं। अभेख हैं॥ अनाम हैं। अकाम हैं॥[६]
आदि अभेख अछेद सदा प्रभु, वेद कतेवन में हूं न पायो।
दीन दयाल कृपनिधि, सत्र सदैव सभै घट छायो॥[७]

गुरु जी के विचार से परमेश्वर सृष्टि का मूल अनाहद, सभी का पोषक, महत् काम और महाभोग का अधिकारी है—

---

१. जापु साहिब, छन्द सं० ३
२. वही छन्द सं० ४
३. जापु साहिब —श्री दशम गुरु ग्रंथ, छन्द सं० ५
४. अकाल स्तुति, छन्द सं० १२०, पृष्ठ २२
५. वही छन्द सं० १४४, पृष्ठ २६
६. जापु साहिब श्री दशम गुरु ग्रंथ, छन्द सं० ३०
७. सवैये, श्री दशम गुरु ग्रंथ, सं० ३

(क) अच्छर आदि अनील अनाहद, सन्त सदैव तुही करतारा ॥
जीव जितै जल में थल में, सभके सम-पेट को पोखनहारा ॥[1]

(ख) अलेखं, अभेखं, अभूतं, अदेखं।
न रागं, न रंगं, न रूपं न रेखं ॥
महादेव देवं महाजोग जोगं।[2]
महाकाम कामं महा भोग भोगं ॥

कबीर के सदृश दशमेश जी भी कहते हैं :

... ...
रूप रंग न जाति पाति सु जानई किहं जेब ॥
तात मात न जात जाकर जनम मरन विहीन ॥[3]
... ...

वह अनुपम शक्तिशाली प्रभु, 'देस, भेस, रूप और रेख, राग विहीन होते हुए भी भक्त को अनुराग-रंजित नेत्रों से दिखाई देता है'।[4] इसी ओर संकेत करते हुए दशमेश जी भी लिखते हैं—

जत्र तत्र दिसा विसा हुइ फैलियो अनुराग ॥[5]

उन्होंने पुराणों के अन्तर्गत वर्णित चौबीस अवतारों का प्रायः वैसा ही वर्णन किया है। संभवतः यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि गुरुजी का भी अवतारवाद में विश्वास था। परन्तु उन्होंने इस भ्रांति को उठने का अवसर ही नहीं दिया। चौबीस अवतारों का वर्णन करने से पूर्व ही उन्होंने अपना मत व्यक्त कर दिया है :

(क) काल सभन का करत पसारा ॥
अन्त काल सोई खापन हारा ॥
आपन रूप अनन्तन धरही ॥
आपन मध्य लीन पुन करही ॥
इन महि सृष्टि सु दस अवतारा ॥
जिन महि रमिया राम हमारा ॥
अनत चतुरदस गुन अवतारू ॥
कहौ जो तिन तिन कीए अखारू ॥

---

१. सवैये, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छन्द सं० ५
२. विचित्र नाटक, प्रथम अध्याय, छन्द संख्या २०, पृष्ठ ३
३. जापु साहिब, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छन्द संख्या ८२
४. लाली मेरे लाल की जित देखों तित लाल।
लाली देखन मै जो चली मै भी हो-गई लाल ॥ कबीर ग्रंथावली,
५. जापु साहिब, श्री दशम गुरु ग्रन्थ, छन्द संख्या ८०

काल आपनो नाम छपाई, आवरण के सिर दै बुरिआई ॥
आपन रहत निरालन जगते, जान लए जा नामे जब ते ॥[१]

(ख) जो चौबीस अवतार कहाए। तिन भी तुम प्रभ तनक न पाए॥
सबही जग भर में भवरायं। तातें नामु बिअंत कहायं[२]

गुरु गोविन्दसिंह की दृष्टि मे दस अवतार अथवा चौबीस अवतारों से भी प्रभु महान हैं। वह स्वयं जन्म न लेकर भक्तों का संकट दूर करने के लिये कुछ विशिष्ट व्यक्तियों को संसार मे जन्म लेने के लिए भेजता है। उनका कार्य समाप्त हो जाने पर अपने में उन्हें लीन कर लेता है :

निरख दीन पर होत दिआरा। दीन बन्ध हम तबै बिचारा॥
सन्तन पर करुणारस ढरई। करुणानिधि जग तबै उच्चरई॥[३]

भक्तों पर अपनी इसी असीम करुणा के कारण वह दीनबन्धु, करुणानिधि इत्यादि नामों से पुकारा जाता है। उस सर्वशक्तिमान प्रभु को भक्तों की सहायता करने के लिये शरीर धारण नहीं करना पड़ता, क्योंकि :

अन्त करत सब जग को काला। नामु काल ताते जग डाला॥[४]

ऐसे स्रष्टा, सर्वपालक, संहारक ईश्वर को जन्म लेने वाला कहना मूढ़ता है :—

किन्हं कहूँ न ताहि लखायो। इहकर नामु अलख कहायो॥
जौन जगत में कबहूँ न आया। याते सभों अजौन बताया॥[५]

गुरु नानक ने भी अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में अवतारवाद का खंडन किया है। साधारण लौकिक जनों के सदृश ईश्वर की लीला का वर्णन उन्हें अच्छा नहीं लगता था :—

मन महि झूरै रामचन्दु सीता लक्ष्मण जोगु।
हण वंतरू आराधिया आइआ करि संजोगु॥
भूला देत न समझई तिनि प्रभ कीए काम।
नानक वेपरवाह सो, किरत न मिटई राम॥[६]

---

१. चौबीस अवतार, श्री दशम गुरु ग्रन्थ, चौपई, ३, ४, ५,
२. वही चौपई ७
३. वही चौपई १०
४ वही चौपई ५
५. चौबीस अवतार, श्री दशम गुरु ग्रंथ, चौपई, १३
६. गुरु नानक, सलोक २६ वारा ते वधीक, पृष्ठ १४१२

आगे भी गुरु नानक ने आसा राग में रामावतार और कृष्णावतार का खण्डन करते हुए लिखा है कि परमात्मा ने पवन की रचना की, सारी पृथ्वी को धारण किया और जल तथा अग्नि को संयुक्त किया। यदि मोहान्ध रावण के दसों सिरों का उच्छेदन ईश्वर ने अवतार लेकर किया तो फिर उसकी क्या महत्ता रही? जो समस्त सृष्टि का सृजनकर्ता और नियामक है, तो काली नाग को नाथने से उसे क्या श्रेय मिल गया? जिसकी सृष्टि का आद्यन्त ब्रह्मा भी न पा सके, उस परमात्मा की कंस वध में क्या बड़ाई हो सकती है?[1]

गुरु गोविन्दसिंह के भगवद्विषयक विचारों का सबसे मूल्यवान एवं प्रामाणिक संग्रह जापु साहिब है। उसमें उन्होंने अवतारों का जो वर्णन किया है, वह केवल पौराणिक परम्परा का पालनमात्र है। उन्होंने प्रायः पुराणों से अधिकाश अवतारों का हिन्दी में अनुवादमात्र किया है। इनमें आये हुए युद्ध एवं प्रेम के स्थलों का उन्होंने बड़ी रोचक शैली में वर्णन किया है जो वस्तुतः उनकी अभिरुचि के अनुकूल भी था। किन्तु इन अवतारों का उनकी निजी आस्था से कोई सम्बन्ध नहीं है। मध्यकाल के ज्ञानाश्रयी शाखा के अधिकांश सन्तों ने अवतारवाद का तीव्र विरोध किया है। कबीर, नानक तथा उनके सभी अनुयायी, रज्जब, दादू, पलटू, तुरसी साहब आदि सभी सन्त इसी श्रेणी में आते हैं।

सन्तों को अवतारवाद में ईश्वर को ससीम करना बहुत खटका। इसके उत्तर में उन्होंने उस प्रभु की असीम शक्ति अनन्त गुणों, अगणित हाथों, पैरों एवं नेत्रों वाला बताया। कोई साकारवादी उसे दो हाथों, दो नेत्रों वाला कहता है, कोई उसे चतुर्भुज, कोई चतुर्मुख, इस प्रकार सभी उसके हाथों, नेत्रों, पाँवों, मुखों को एक संख्या के भीतर ही निश्चित करते हैं; परन्तु सर्वशक्तिमान ईश्वर इस संख्या एवं गणना से परे हैं। वह एक होकर अनेक, अनेक होकर पुनः एक है। इस अनन्त प्रभु के साक्षात्कार के लिये अनन्त दृष्टियों की आवश्यकता पड़ती है। इसी का वर्णन महात्मा कबीर ने बड़े मार्मिक शब्दों में किया है। ऐसे प्रभु का दर्शन कराने वाले सद्गुरु के प्रति कृतज्ञतापूर्ण शब्दों में वे कहते हैं:—

सतगुरु की महिमा अनन्त, अनन्त किया उपकार।
लोचन अनन्त उघाड़ियाँ, अनन्त दिखावन हार[2]

सब प्रकार से आदि, अन्तविहीन होने के कारण ब्रह्म अनन्त है। अनन्तगुण, कर्मराशिवान सत्ता सन्तों को मान्य है। कबीर के कुछ ही समय पश्चात् आविर्भूत नानक जी भी ईश्वर की महत्ता पर मुग्ध होकर तन्मयता से गाते हैं:—

---

१. श्री गुरु ग्रंथ साहब, रगु आसा, महला १, पृष्ठ ३५०

२. कबीर-ग्रन्थावली,

सरव भूत आपि बरतारा। सरव नैन अपि पेखन हारा ॥
सगल समग्री जाका तना। आपन जसु आप ही सुना ॥
अवन जानु इकु खेल बनाइया। आगियाकारी कीनी माइया ॥[१]

उन्हीं की परम्परा के अनुयायी गुरु गोविन्दसिंह जी भी इसी अनन्त शक्ति का गुणगान करते हुए लिखते हैं :—

रहा अनन्त अन्त नहीं पायो ॥ याते नाम विअंत कहायो ॥[२]
कहा लगे कब कथे विचारा ॥ रसना एक न पइयत पारा ॥
जिवा कोटि कोटि कोइ धरे ॥ गुण समुद्र तव पार न पावे ॥[३]

जापु साहिब में भी दशमेश जी ने इसी प्रकार के विचार प्रकट किये हैं :—

(क) अनछिज्ज अगं ॥ आसन अभंग ॥
उपमा अपार ॥ गति मति उदार ॥[४]
(ख) जल थल अमंड ॥ दिस विस अमंड ॥
जल थल महन्त ॥ दिस विस विअंत ॥[५]
(ग) अडीठ धरम ॥ अति ढीठ करम ॥
अणव्रण अनंत ॥ दाता महंत ॥[६]

सर्वसामर्थ्यवान् ईश्वर के गुणों का वर्णन नहीं हो सकता। अल्पमति मनुष्य इस प्रकार का जो भी प्रयास करेगा वह अधूरा एवं अपूर्ण होगा। सन्तों की विचारधारा में उपनिषदों के 'नेति नेति' अर्थात् अन्त नहीं है, अन्त नहीं है अथवा वह ऐसा भी नहीं वैसा भी नहीं, का भाव कूट कूट कर भरा हुआ है।

कबीर ने भी जाके भुजा अनन्ता वाले प्रभु का ध्यान करने की प्रेरणा दी है। ईश्वर को अनन्त ज्योतिस्वरूप मानने वाले सभी सिक्ख गुरुओं ने भी इस रूप को जनता के सामने रखा है। गुरु गोविन्दसिंह ने भी जापु साहिब में ईश्वर के ऐसे ही स्वरूप की अभिव्यक्ति की है—

चतर चक्रकरता। चतर चक्र हरता ॥
चतर चक्र दाने। चतर चक्र जाने ॥

---

१. गुरु ग्रन्थ साहिब, थऊढ़ी, सुखमनी, महला ५ पृष्ठ २९४
२. चौबीस अवतार, श्री दशम गुरु ग्रंथ, चौपई, १२
३. वही २८
४. जापु साहिब, श्री दशम गुरु ग्रंथ, १६४
५. वही १६५
६. वही १७०

चतर चक्र दरती । चतर चक्र भरती ॥
चतर चक्र पाले । चतर चक्र काले ॥
चतर चक्र पासे । चतर चक्र वासे ॥
चतर चक्र मानये । चतर चक्र दानये ॥[१]

नाम-महिमा

सगुणोपासना में भगवान के अनेक नामों में से किसी भी नाम के स्मरण, कीर्तन तथा श्रवण का भक्तों ने भारी महत्त्व बताया है। भक्तों का कहना है कि हृदय में भगवान का ध्यान, जिह्वा पर उसका नाम-कीर्तन, मन, वाणी और कर्म द्वारा होने वाले सम्पूर्ण पापों को नष्ट कर पवित्र भावना को भरने वाला अभ्यास है।[२]

ईश्वर की अनंत शक्ति और गुणों को दृष्टि में रखकर भक्तों ने उसे अनेक नामों से पुकारा है। एक नाम, एक देश तक उसे सीमित करना उनका उद्देश्य नहीं था। उनका अटल विश्वास था कि ईश्वर को इस प्रकार जो भी नाम दिया जायेगा, वह अपूर्ण एवं अधूरा होगा। इस नाम-भेद के कारण संसार में अनेक मत-मतान्तर उठ खडे हुए जिससे एक ही परमात्मा की सृष्टि मे रहने वालों में भेदभाव उत्पन्न हो गया। महात्मा कबीर ने इसी भावना से प्रेरित होकर कहा है—

अपरंपार का नाऊं अनन्त ॥[3]

अनन्त रूप, गुण, कर्म वाले ईश्वर के नाम भी अन्त ही होने चाहिये। दशमेश जी ने इसी कठिनाई के कारण ईश्वर को स्थान-स्थान पर अनाम कहा है। यथा—

नमस्तं अनामं ।[४] अलेख है। अभेद है ॥[५]
अनंगी अनामे ॥[६]
नाम ठाम न जाति जाकर रूप रंग न रेख ॥[७]
नाम काम विहीन ॥[८]

---

१. जापु साहिब, श्री दशम गुरु ग्रन्थ, चौपाई, ९६, ९७, ९८
२. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृष्ठ ५९४
३. कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ १९९, ३२७
४. जापु साहिब, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छंद संख्या ४
५. वही छंद संख्या ३०
६. जापु साहिब, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छंद संख्या ४८
७. वही छंद संख्या ८०
८. वही छंद संख्या ८१

फिर भी अपनी क्षमता के अनुसार उसके प्रति अपनी भावनाएँ व्यक्त करने के निमित्त कोई न कोई नाम देना ही पड़ता है। कबीर ने इसी कठिनाई से छुटकारा पाने के लिये ब्रह्म का स्मरण राम नाम से किया। नानक देव ने भी इसी राम नाम की महत्ता का गुणगान किया है। इसी परम तत्त्व को सतिनाम, कर्ता पुरुष 'सैभं' (स्वायंभुव) आदि कहा है। उनके चलाए हुए मत में उस परम तत्त्व के लिये 'अकाल' शब्द का प्रयोग बहुलता से हुआ। आगे चलकर उनके शिष्यों ने इसी नाम से भगवत् स्मरण किया। इस शब्द से अधिक महत्ता गुरुमत में जिस शब्द को मिली वह है १ ओंकार विश्व की सभ्यता के आदिमूल वेदों मे ईश्वर का सबसे प्रामाणिक नाम ओ३म् ही माना गया है। नाम, रूप, गुण, कर्म के अनुसार यद्यपि ईश्वर के अनेक नाम हैं तथापि उसका वास्तविक नाम ओ३म् ही माना गया है। प्रत्येक ऋचा के प्रारम्भ में इसी शब्द का उच्चारण आवश्यक माना गया है। वेद के पश्चात् सभी धर्म-ग्रंथ चाहे वे वैदिक हों अथवा अवैदिक, सभी मत-मतान्तरों ने इसी शब्द को ग्रहण किया है। निर्गुण मत में भी ईश्वर को ओंकार ही माना गया है। गुरु नानक ने अपनी पवित्र वाणी द्वारा स्पष्टतया '१ ओंकार (१ उ) सति नाम, करता पुरख निरभौ, निरकार, निरवैर, अकाल मूरति, अजूनि, सैभं (गुरु प्रसादि)' का प्रचार किया। प्रत्येक सिक्ख गुरु ने इसका अक्षरशः पालन किया। जापु साहिब का प्रारम्भ इसी शब्द १ उ सतिगुरु प्रसादि से होता है। उनके सभी ग्रंथों का प्रारम्भ इसी प्रकार हुआ है। सृष्टि-रचना के सम्बन्ध में भारतीय विश्वास करते आये हैं कि सृष्टि के पूर्व केवल शब्द ब्रह्म अर्थात् ओंकार ही व्याप्त था। इसकी ध्वनि होते ही सृष्टि का विस्तार होने लगा। गुरु गोविन्दसिंह ने भी इसी का समर्थन करते हुए लिखा है—

> प्रिथमै ओंकार तिन कहा। सो धुन पूर जगत मो रहा॥
> ताते जगत भयो विस्तारा। पुरख प्रकृत जब दुहु विचारा॥[1]

इसके अतिरिक्त उन्होंने अपने गुरु मत मे मान्य अकाल शब्द को भी ईश्वर का पर्यायवाची नाम माना है। उसे वे काल, अकाल, दोनों नामों से स्मरण करते हैं:—

(क) काल समन का करत पसारा॥
अन्तकाल सोई खापन हारा॥[2]

(ख) अन्त करत सभ जग को काला॥
नामु काल ताते जग डाला॥[3]

---

१. चौबीस अवतार, श्री दशम गुरु ग्रंथ, चौपई ३०
२. वही चौपई २
३. वही चौपई ९

(ग)　　नमस्तवं अकाले ॥[1]

(घ)　　कालहीन कला संजु गति अकाल पुरख अदेस ॥[2]

(ङ)　　खल खण्ड खियाल ॥ गुरुवर अकाल ॥[3]

(च) अकाल ॥ दयाल ॥ अलेख ॥ अभेख ॥[4]

कहीं-कहीं उन्होंने उसका 'अलख' नाम भी दिया है :

(क) किनहू काहू न ताहि लखायो ॥
इह कर नामु अलख कहायो ॥[5]

(ख) अगंज ॥ अभंज ॥ अलक्ख ॥ अभक्ख ॥[6]

ईश्वर की तीन महाविभूतियाँ सत्, चित्, आनन्द अर्थात् सच्चिदानन्द के नाम से भी दशमेश जी ने ईश्वर का गुणगान किया है। इस सम्बन्ध में दो-एक उदाहरण पर्याप्त होंगे :—

(क) सदा सच्चिदानन्द सरवं प्रणासी ॥[7]

(ख) सदा सच्चिदानन्द सत्रं प्रणासी ॥[8]

संक्षेप में गुरु गोविन्दसिंह ने निर्गुण मत के सभी परम तत्त्व के वाचक नामों से ईश्वर का स्मरण किया है। वेद-वेदांग, उपनिषद् आदि आर्ष ग्रंथों एवं मध्ययुगीन सभी सन्त परम्परा के ईश्वर-नाम उनकी भक्ति विचार-धारा में विद्यमान हैं।

दशमेश जी ने ईश्वर के गुणों का गान करते हुए उसकी असीम दयालुता एव भक्तवत्सलता का वर्णन किया है। वह अकाल पुरुष दुष्टों के संहार के निमित्त अवतारों को संसार में भेजता है और अपराधी को यथा-योग्य दण्ड दिलवाता है। यही उसकी कृपा, दयालुता तथा भक्तवत्सलता की पहचान है।[9] भगवान की यही विभूति भक्त के मार्ग के कण्टकों का निवारण करती है। उपासना मार्ग की विघ्न-बाधाओं के नाश हो जाने से वह शान्तिपूर्वक अपने कार्य में संलग्न रहता है। परमात्मा के इसी उपकार का निरन्तर स्मरण करते हुए गुरु जी कहते हैं—

---

१. जापु साहिब, वही छंद संख्या ६६
२. 　वही 　छंद संख्या ८४
३. 　वही 　छंद संख्या १६७
४. जापु साहिब, श्री दशम गुरु ग्रन्थ, छन्द संख्या १९२
५. चौबीस अवतार, वही चौपई १३
६. जापु साहब, वही चौपई १९१
७. वही छन्द संख्या १५८
८. वही १९८
९. ज्ञान प्रबोध, वही छन्द संख्या

(क) अजीजुल निवाज हैं ॥ गनीमुल खिराज हैं ॥
कि कामल करीम हैं ॥ कि राजक रहीम हैं ॥

(ख) करुणालय है ॥ अरिघालय है ॥ खल खंडन है ॥ माई मंडन है ॥
(ग) धर्म चलावन संत उबारन । दुष्ट समन को मूल उबारन ॥[१]

ईश्वर का रुद्र-रूप

युद्ध का देवता रुद्र माना गया है। परमेश्वर का संहारक रूप रूद्र कहलाता है। राक्षसों, असुरों, आततायिओं के संहार एवं सृष्टि के निरन्तर विकास के लिये आस्तिकों ने भगवान् के रुद्र रूप की कल्पना की है। उनका विश्वास है कि संसार में नियमों के यथोचित पालन, नियन्त्रण और संतुलन को स्थायित्त्व देने के लिये ईश्वर को हस्तक्षेप करना पड़ता है अन्यथा पापाचारी इतने बढ़ जाते हैं कि किसी प्रकार की व्यवस्था नहीं रह पाती। वेदों मे परमात्मा के अनेक नामों में रुद्र भी है। कहीं-कहीं तो इसी रूप का बड़ा आकर्षक एवं दार्शनिक चित्रण हुआ है। गुरु गोविन्दसिंह जिस युग में अपनी वाणियों का आस्वादन करा रहे थे, वह एक अशान्त वातावरण का युग था। विधर्मी शासकों के अत्याचार असह्य हो गये थे। ऐसे समय में गुरु जी ने ईश्वर के इसी रौद्ररूप की पर्याप्त स्तुति की है। वे अस्त्र शस्त्रों को परमेश्वर की पर्याय-नामावली मे गिनाते हैं। विचित्र नाटक ग्रन्थ का प्रारम्भ करते हुए वे स्पष्टतया खड्ग की विनती करते हैं—

नमस्कार श्री खड़ग को करो सु हित चितु लाइ।
पूरण करो ग्रंथ इह तुम मुहि करहु सहाइ॥[२]

अगले छन्द में वे तेग की स्तुति करते हुए लिखते हैं कि शत्रुओं के दल के टुकड़े-टुकड़े करके भीषण युद्ध मचाने वाले अखण्ड और प्रचण्ड तेज; भानु के सदृश प्रकाशमान, सन्तों के सुखदायक, कुमति के विनाशक, पापो के विदारक, जग के कारण, सृष्टिकर्ता, मेरे पालक तेज तुम्हारी जय हो, इत्यादि।[४] उन्होंने ईश्वर को खड्गपाणि, अस्त्रशस्त्र धारणकर्ता आदि कह कर भी अनेक स्थलों पर स्तुति की है। निम्नलिखित छन्दों से परमात्मा की ऐसी ही स्तुति की पुष्टि होती है :

तीर तुही सैथी तुही तुही तबर तरवार।
नाम तिहारो जो जपै भवै सिन्धु भयपार।

---

१. विचित्र नाटक, छन्द संख्या ४३, पृष्ठ.४१
२. विचित्र नाटक, प्रथम अध्याय, छं० सं० १
३. वही छंद सं० २

काल तुही काली तुही तेग अस तीर।
तुही निसानी जीत की आजु तुही जगवीर।
तुही सूल सेथी तबर तूं निरबग अरुबान।
तुही कटारी सेल सम तुम ही करद क्रिपान।
ससत्र असत्र तुमही सिपर तुमही कवच निखंग।
कवचांतक तुमहीं बने तुम कापक सरवंग॥ [१]

दशमेश जी ने अस्त्र-शस्त्र से युक्त परमेश्वर की स्तुति अन्यत्र भी की है :

नमो बाण पाणं। निरभयाणं॥
नमो देव देवं। भवाणं भवेऊं॥ [२]
नमो खग खंडं। क्रिपाणं कटारं।
नमो बाण पाणं नमो दण्ड धारियं॥
जिते चौदह लोक जीतं बिथारियं॥ [३]

गुरु गोविन्दसिंह एक वीर योद्धा थे। उनका सारा जीवन रणभूमि में बीता था। फलतः उन्होंने परमात्मा के दर्शन, अस्त्र-शस्त्रों की गड़गड़ाहट के बीच ही किये। तुलसी साधु थे, उन्हें रघुनाथ चन्दन घिसते एवं तिलक लगाते हुए चित्रकूट में दिखाई दिये। कबीर जुलाहे थे अतः परमात्मा उनको उसी रूप में दृष्टिगत हुआ, सूर मथुरा-वृन्दावन के हरे-भरे करील-कुंजों और गोकुल की ग्वालिनियों के मध्य बसते थे। उनके आराध्यदेव भी उसी तन्मयता से ग्वालों के जीवन के साथ घुले-मिले दिखाई दिये। जैसा कि पहले कहा गया है दशमेश जी का समस्त जीवन ही युद्ध करते बीता, तो यदि उन्होंने परमेश्वर के इसी रूप के दर्शन किये तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। उन्होंने युद्ध को भी परमात्मा का ही एक रूप मान कर उसकी स्तुति की है—

नमों जुद्ध जुद्धे नमों गिआन गिआने॥
नमों भोज भोजे नमों पान पाने॥
नमों कलह करता नमों संत रूपे॥
नमो इन्द्र इन्द्रे अनाद विभूते॥ [४]

---

१. शस्त्रनाममाला, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छंद सं० ४, ७
२. विचित्र नाटक, प्रथम अध्याय, छंद सं० ८६
३. विचित्र नाटक, प्रथम अध्याय, छंद संख्या ८७
४. जापु साहिब, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छंद सं० १८७

जापु, अकाल-स्तुति तथा अन्य रचनाओं में गुरुजी ने परब्रह्म को सरवकाल,[१] छत्र छत्री[२] सत्र प्रणासी[३] तथा अनेक अस्त्र-शस्त्रों के नाम के आधार पर उसके विविध नामों का स्मरण किया है। यथा असिपान,[४] असिधारी,[५] असिधुज,[६] असिकेतु,[७] खड्ग-केतु[८] सस्त्रपाने,[९] जस्त्रपाने,[१०] अस्त्रमाने,[११] सरव लोह[१२], इत्यादि। इस प्रकार अनेक स्थानों में युद्ध एवं युद्धास्त्रों को परमात्मा का स्वरूप माना है।

सन्तों ने एकेश्वरवाद को बहुधा सामी एकेश्वरवाद की कोटि का बताया, परन्तु यह उनका नितान्त भ्रम है क्योंकि सामी एकेश्वरवाद और विकृत हिन्दू बहुदेववाद एक ही देवता के दो विभिन्न रूप हैं।[१३] किन्तु निर्गुण सन्तों ने परमात्मा के सम्बन्ध में जो विचार प्रकट किये उनकी परम्परा तत्त्वतः इनसे भिन्न है। उनके मूर्ति-पूजा विरोध को देखकर कोई यह कहे कि मुसलमानी एकेश्वरवाद और इनमें कोई अन्तर नहीं, यह तर्कसंगत न होगा। मुसलमानों का पैगम्बरी खुदाबाद और हिन्दुओं का अवतारवाद प्रायः एक ही कोटि का है। परन्तु निर्गुण सन्तों ने पैगम्बर और अवतार दोनों की ही अवहेलना करके उनकी आवश्यकताओं को अस्वीकार कर दिया। फलतः ब्रह्म सम्बन्धी चिन्तन में वे इन दोनों मतों से आगे बढ़ गये। पैगम्बर और अवतार इन दोनों कल्पनाओं का सर्वथा निराकरण करके वे सत्यता के पथ पर अग्रसर होते गये। इससे उनके ईश्वर सम्बन्धी विचारों में अत्यन्त सरलता, महानता एवं आकर्षण उत्पन्न हो गया।

ईश्वर की सर्वव्यापकता:—

कुछ लोगों ने निर्गुण-मत और इस्लाम दोनों को एक मानने में भ्राति की है।

---

१. अकाल स्तुति, वही
२. जापु साहिब, वही छंद सं० १०६
३. वही छंद सं० १९६
४. रामावतार, श्री दशम गुरु ग्रन्थ, छं० सं० ९९३
५. शब्द हजारे, वही छं० सं० ४
६. पाख्यान चरित्र, वही ग्रन्थ सं० ४०५, चौ० सं० ३८१
७. वही
८. वही सं० ४०१, चौ० सं० ४०५
९. जापु श्री दशम गुरु ग्रंथ, छन्द संख्या ५२
१०. वही छन्द संख्या ५२
११. वही छन्द संख्या १५२
१२. वही छन्द संख्या ५२
१३. हिन्दी काव्य में निर्गुण संप्रदाय, पृष्ठ ९७

यदि हम गंभीरता से विचार करें तो इस भ्रांति का समूल नाश हो जाता है। इस्लाम की अल्लाह-भावना में अल्लाह एकाधिपति शाहंशाह के समान है जिसके ऊपर कोई शासनकर्ता नहीं, जिसकी शक्ति अनन्त और अपरिमित है। हाँ, वह परम बुद्धिमान और न्यायकर्ता है। उसे सर्वज्ञ भी कहा गया है। प्रत्येक व्यक्ति के छोटे-बड़े सभी अपराधों का विवरण उसके पास विद्यमान रहता है। श्रद्धावान्, धार्मिक, ईश्वरविश्वासी व्यक्तियों को वह अपनी कृपा प्रदान करता है। नास्तिक और पापात्मा दण्डित होते हैं।

आस्तिकों की सहायता करने वालों का परमात्मा भी सहायक है। वह अपने उपासक के सारे अपराधों को क्षमा कर देता है। उसे परम दयालु भी कहा गया है। प्रत्येक क्षण वह मनुष्य के सुख-दुख की सुधि लेता रहता है। किन्तु इतना होने पर भी कुरान का अल्ला 'भय बिनु होय न प्रीति' की नीति को बरतता है। वह प्रेम का परमात्मा होने के बदले भय का भगवान है। वह घोर दण्ड भी दे सकता है। निर्गुण पंथी परमेश्वर की इस अनन्त शक्ति को अस्वीकार नहीं करते, परन्तु उनके लिये यह उसकी एक विशेषतामात्र है। वह विश्व का कर्ता-धर्ता, नियन्ता, शासक और एकमात्र स्वामी ही नहीं वरन् सर्वव्यापक तत्त्व भी है। वह ब्रह्माण्ड के कण-कण, जीवमात्र के घट-घट और अणु-परमाणु सभी में व्याप्त है। यदि समग्र संसार, समस्त जीव-सृष्टि का सार वस्तु कोई है केवल परमात्मा। भारतीय विचारधारा में परमतत्त्व को परमेश्वर और उसी को परमात्मा अर्थात् आत्मा की परम सत्ता कहा गया है। आत्मा भी ईश्वर का ही अंश है। जीव के पार्थिव स्थूल शरीर के नष्ट होते ही आत्मा परमात्मा में विलीन हो जाती है। इस दृष्टि से इस्लाम और निर्गुणोपासना सम्बन्धी अनुभूति में जो अन्तर है उसे कबीर ने इस तरह व्यक्त किया है—

मुसल्मान का एक खुदाई। कबीर का स्वामी रह्या समाई ॥[२]

दादू ने वेदान्त के दृष्टान्त का आश्रय लेकर 'घीव दूध में रम रहा व्यापक सब ही ठौर'[3] कहते हुए ईश्वर की सर्वव्यापकता एवं आत्मा-परमात्मा के सम्बन्ध का सुन्दर विवेचन किया है। गुरु नानक ने भी स्पष्ट घोषणा की है :—

जैते जीअ अंत जलि थलि माहीं। जली जत्र कत्र तू सरब जीजा ॥
गुरु प्रसादि राखिले जन कउ। हरि रस नानक झोलि पीजा ॥[४]

---

१. हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृष्ठ ९७
२. वही पृष्ठ ९९
३. दादू, बाजी, भाग १, पृष्ठ ३२
४. हिन्दी काव्य में निर्गुणसम्प्रदाय, पृष्ठ ९९

भगवान की यह सर्वव्यापकता निर्गुण सन्तों का सर्वस्व है। वे सम्पूर्ण सृष्टि में उसी का पसारा देखकर भक्ति-विह्वल होकर भगवान के गुणगान में निरत हो जाते हैं। यही कारण है कि सन्तों ने ईश्वर और भक्त के बीच किसी पैगम्बर या अवतार की आवश्यकता नहीं समझी, न किसी पुस्तक-विशेष अथवा स्थान-विशेष को पूज्य, पवित्र और शिरोधार्य माना। वे भगवान की इसी व्यापक सार-सत्ता के उपासक हैं। वे अणु-परमाणु में परमेश्वर के दर्शन, अपनी अनुभूति और विवेक से चिन्तन करते हुए उपासना करते हैं। सामी विचार-परम्परा में यह बात नहीं है। वह इस सर्वत्र व्यापकत्व को अनन्तशक्ति का एक पक्षमात्र मानती है। वह सर्वव्यापक सर्वत्र समान है। कहीं कम, अधिक या अपूर्ण नहीं वरन् बृहदारण्यकोपनिषद् के शब्दों में पूर्ण में से यदि पूर्ण को निकाल दिया जाय तो पूर्ण ही शेष रहता है।[1] इस प्रकार परमात्मा विश्व में और विश्व परमात्मा में समाहित है। ब्रह्म में आविर्भाव और तिरोभाव की शक्ति है। इसी शक्ति से वह एक से अनेक और अनेक से एक होता रहता है। ब्रह्म से ही पदार्थों का आविर्भाव और ब्रह्म में ही उनका तिरोभाव होता है।[2]

इस सर्वव्यापक तत्त्व को सन्तों ने निर्गुण माना है। वह संसार की वस्तुओं में व्याप्त होने पर भी उनमें लिप्त नहीं रहता है। यह ठीक है कि सब का कर्ता-धर्ता परमात्मा ही है; परन्तु उनमें लीन अथवा लिप्त रहना जीव का स्वभाव है, परमात्मा का नहीं। इस प्रकार निर्गुण से तात्पर्य गुणविहीन अथवा जिसमें से गुण निकल गये हों ऐसा न होकर गुणातीत है। उपनिषदों मे जिस प्रकार ईश्वर को बिना नेत्रों के देखने वाला, बिना कानों के सुनने वाला, बिना मुख के बोलने वाला, बिना पैरों के चलने वाला इत्यादि एवं तीनों गुणों से परे कहा गया है।[3] ठीक उसी प्रकार कबीर ने ईश्वर-तत्त्व के विषय में भी अपने उद्गार प्रकट किये हैं। कबीर के सदृश गुरुनानक जी ने भी उन्हीं शब्दों में अपने सत्यनाम करता पुरुख का वर्णन किया है। उन्होंने कहा कि परमात्मा त्रैलोक्य में व्याप्त है; परन्तु है वह दोनों लोकों अथवा तीनों गुणों से बाहर—तीनि समावे चौथे वासा।[4] सन्त गुलाल उसे चौथे से भी ऊपर ले गये "ब्रह्म

---

१. ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय र्णमेवावशिष्यते॥ बृहदारण्यकोपनिषद्।

२. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृष्ठ ४००

३. अपाणिपादो जवनो गृहीता, पश्यत्यचक्षुः सशृणोत्यकर्णः।
श्वेताश्वेततर उपनिषद्, अ० ३।१९

४. श्री गुरु ग्रंथ साहब, पृष्ठ ४५

सरूप अखंडित, पूरन, चौथे यह सों न्यारे।[१] एक और सन्त प्राणनाथ के शब्दों में सुनिए :—

वाणी मेरे पीउ की, न्यारी जो संसार।
· निराकार के पार थे, तित पारहु के पार॥[२]

गुरु गोविन्दसिंह ने अनेक स्थानों पर इसी से मिलते-जुलते वर्णन किये हैं। बिना पैरों के ब्रह्म सर्वत्र चलता-फिरता रहता है :—

चक्र वक्र फिरै चतुर चक्र मानही पुर तीन॥[३]

बिना हाथों के होते हुए भी उसने सारे विश्व की रचना कर दी—

सरब विश्व रचियो सुयंभव गढ़न भंजन हार॥[४]

परमतत्त्व वाणी, दृश्य-अदृश्य, एवं तीनों गुणों से परे है। अतएव उसे संख्या के भीतर सीमित करना सन्तों ने उचित न समझा। ईश्वर के लिये कुछ भी कठिन नहीं है। अनुभूति की निर्विकल्प अवस्था में पहुँच कर जहाँ भक्तगण अद्वैत ब्रह्म का वर्णन करते हैं। वहाँ पर उनका अभिप्राय परमात्मा की अद्वितीय महत्ता से होता है। किन्तु इसके विपरीत कबीर और कुछ अन्य सन्तों की ब्रह्म-भावना तो ऐसी सूक्ष्म है कि वे उसे एक भी कहना उचित नहीं समझते। कोई वस्तु अनेक के ही विरुद्ध एक हो सकती है; परन्तु ब्रह्म तो केवल एक है।[५] महात्मा कबीरदास इसी भाव को व्यक्त करते हुए कहते हैं :—

जब मैं जाणि बौरे केवल राइ की कहांणी।

ऐसे प्रभु को एक कहा भी कैसे जा सकता है :—

एक कहूं तो है नहीं, दोय कहूं तो गारि।
है जैसा तैसा रहे, कहै कबीर विचारि॥[६]

वह कैसा है उसे तो ब्रह्म के अतिरिक्त कोई भी नहीं जान सकता। अल्पबुद्धि, न्यूनक्षमतावान मनुष्य केवल इतना कह सकता है कि इस समस्त सृष्टि का रचयिता केवल वही है, अन्य नहीं।[७] कुछ सन्तों ने इस भाव को व्यक्त करते हुए लिखा है कि

---

१. सन्त वाणी संग्रह, भाग २, पृष्ठ २०६
२. प्रगट वाणी, पृष्ठ १, नागरी प्रचारणी सभा, खोज रिपोर्ट
३. जापु साहिब, श्री दशम गुरु ग्रन्थ, छन्द संख्या ८२
४. वही छन्द संख्या ८३
५. हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृष्ठ १०७
६. कबीर-ग्रंथावली, पृष्ठ १४३–१६६
७. लेखा होइ लिखिवै, लेखे होइ विणास।
नानक बड़ा आखियै, आपे जाणे आप॥
जपुजी साहिब, छन्द संख्या २२

बाह्य चक्षुओं से अनेकता का आभास होता है, आत्मदृष्टि से एकत्व की अनुभूति होती है; परन्तु साक्षात् परिचय केवल ब्रह्म दृष्टि से हो सकता है जो इन दोनों से परे है।[१] यह विचारधारा इस सन्त-परम्परा में निरन्तर विकसित होती रही। चिन्तन की इसी अटूट परम्परा का प्रभाव हमें दशमेश जी पर भी दिखाई पडता है। उन्होंने अनेक स्थानों पर परम्परा को एक, अनेक दोनों मानते हुए भी इनसे परे उसे मानने का समर्थन किया है। इससे निश्चित रूप से स्पष्ट हो जाता है कि अपने सम्प्रदाय के संस्थापक गुरु नानक देव की विचारधारा का उन पर गंभीर प्रभाव था। भावना एवं अनुभूति की चरमावस्था में पहुँच कर उनके हृदय से भी इसी प्रकार के उद्गार निकले जिसके कुछ उदाहरण निम्नलिखित पंक्तियों में देखिये :

नमस्तं सु एके ॥ नमस्तं अनेके ॥[२]

आगे वे पुनः कहते हैं :

अनेक हैं ॥ फिरि एक है ॥[3]

प्रभु की एकात्मकता के दर्शन अनेक रूपों में होते हैं। इसीलिये वह एक होते हुए भी अनेक प्रतीत होता है। जिस प्रकार बाजीगर अपना तमाशा दिखाकर अपने चमत्कारों को समाप्त कर देता है, ठीक उसी प्रकार परमात्मा भी सृष्टि की रचना करके स्वयं उसे अपने में लीन करके पुनः एक हो जाता है। इसी भाव की पुष्टि गुरु गोविन्द सिंह ने निम्नाकित छन्द में की है—

एक मूरति अनेक दरसन कीन रूप अनेक।
खेल खेल अखेल खेलन अंत को फिरि एक ॥[४]

सन्तों ने सदैव स्वतंत्र स्वानुभूति को ही महत्व दिया। वे किसी प्रणाली अथवा पद्धति विशेष से बद्ध होकर उसी के अनुकरण में नहीं लगे रहे; वरन् सभी ने अपने ढंग से तत्त्व चिन्तन को महत्त्व दिया। फलतः उनके विचारों में सर्वत्र उन्मुक्त वातावरण है, चिन्तन की तीव्रता और स्वानुभूति-जन्य अमिट आनन्द मिलता है। गुरु गोविन्द सिंह इस क्षेत्र में किसी से पीछे नहीं है। उपर्युक्त उदाहरणों से यह भली-भाँति स्पष्ट हो जाता है। ब्रह्म निर्गुण निराकार ही है, यह विचार भी सन्तों की दृष्टि

---

१. चर्म दृष्टि देखे बहुत करि, आत्मदृष्टि एक।
ब्रह्म दृष्टि परिचय भया, (तब) दादू बैठा देख ॥
बानी (ज्ञानसागर), पृष्ठ ४८

२. जापु साहिब, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छन्द संख्या ९

३. वही छन्द संख्या ४३

४. जापु साहिब, श्री दशम गुरु ग्रन्थ, छन्द संख्या ८३

में अधूरा है। जो ब्रह्म सर्वथा पूर्ण है उसे किसी सीमा में बाँध देना उचित नहीं है। वह सगुण और साकार भी है। परन्तु उन्होंने सगुण और साकार इस प्रकार का माना है जिससे परमात्मा के असीम और अनन्त स्वरूप को किसी प्रकार क्षति न पहुँचे। सगुणोपासक भक्तों की मूर्ति या विग्रह से वह सर्वथा भिन्न है। सांख्य मतावलम्बी सृष्टि-रचना में प्रकृति का बहुत बड़ा हाथ मानते हैं। उनके अनुसार विना प्रकृति की सहायता के सृष्टि रचना हो ही नहीं सकती। परन्तु सिक्ख गुरुओं ने स्पष्ट रूप से इस बात को माना है कि निर्गुण ब्रह्म ने विना किसी अन्य अवलम्बन के अपने को सगुण रूप में प्रकट किया। उन्होंने माया को परमात्मा रचित माना है। उनके अनुसार स्वयंभू निर्गुण हरि ही सगुण रूप में दिखायी पड़ रहा है, निर्गुण हरि ही सगुण बन गया है।[१] परमात्मा का वह सगुण-वर्णन सन्तों और गुरुओं की वाणी में दो प्रकार से वर्णित है। पहला विराट् स्वरूप का वर्णन, दूसरा परमात्मा के अन्य गुणों का वर्णन। पहले के अन्तर्गत सगुण ब्रह्म के विराट् स्वरूप का चित्रण है, आकाश रूपी थाल में सूर्य और चन्द्रमा दीपक के सदृश बने हुए हैं। मलय चन्दन की सुगन्ध ही आरती की धूप है। वायु चंवर कर रहा है। वनों के सारे पुष्प ही आरती के पुष्प बने हुए हैं। आरती (सीमित आरती) कैसे हो सकती है। संसार के भय को दूर करने वाले प्रभु की आरती के समय अनाहत शब्द होता है और दिव्य भेरी बजती है।[२] उपनिषदों मे ब्रह्म के विराट् स्वरूप का चित्रण निम्न प्रकार से हुआ है—

> अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्र सूर्यै दिशः श्रोत्रे वाग् विवृताश्चवेदाः।
> वायुः प्राणं हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथ्वी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा॥[३]

इसी प्रकार भगवद्गीता के ११ वें अध्याय में ईश्वर के विराट स्वरूप का अर्जुन के समक्ष दिग्दर्शन कराया गया है। गुरु गोविन्द सिंह ने भी ब्रह्म का वर्णन इस प्रकार किया है—

> आदि रूप अनादि मूरत अजोनि पुरख अपार।
> सरव मान त्रिमान देव अभेद आदि उदार॥[४]
> सदैवं सरूप हैं॥ अभेदी अनूप है॥
> समस्तो पराज है॥ सदा सरवं साज है॥[५]

---

१. श्री गुरु ग्रन्थ दर्शन, पृष्ठ ७८
२. श्री गुरु ग्रन्थ दर्शन, पृष्ठ ८०
३. मुण्डकोपनिषद्, मुण्डक २ खण्ड १, मंत्र ४
४. जापु साहिब, श्री दशम गुरु ग्रन्थ, छन्द संख्या ७९
५. वही छन्द संख्या १२६

उल्लिखित पंक्तियों मे गुरु जी ने स्पष्ट लिखा है कि परमात्मा निर्बाध-स्वरूप है। परमात्मा की अनन्त विभूतियों का वर्णन करते हुए पुनः वे लिखते हैं :

प्रमाथं प्रमाथे ॥ सदा सरब साथे ॥
अगाध सरूपे ॥ निरबाध विभूते ॥[१]

कुछ स्थानों पर दशमेश जी ने परमात्मा को आजानुबाहु[२] भी लिखा है। इससे भ्रम नहीं करना चाहिये कि परमात्मा का कोई एक निश्चित आकार है जिसके अनुसार उसे आजानुबाहु कहा गया है, जैसा कि अवतारवादी लोगों ने माना है। परन्तु इससे आवश्यक संकेत मिलता है कि जो परमेश्वर अनन्त आकार, असीम स्वरूप, अभंग विभूतिवाला है उसकी भुजाएँ भी वैसी ही अनन्त और निर्बाध हैं। उसके स्वरूप के दर्शन तो संसार की समस्त वस्तुओं में हो ही रहे हैं। वह सर्वत्र व्याप्त है, तब भला उसे केवल निराकार कैसे माना जा सकता है ? वेद में भी ठीक इसी आशय की ऋचाएँ विद्यमान हैं जो इस सत्य का प्रकाशन करती हैं :—

उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः
दृशे विश्वाय सूर्यम् ।[३]

अर्थात् संसार के सभी पदार्थ ध्वजारूप में उस सर्वज्ञ प्रकाशमान् प्रभु का ज्ञान करा रहे हैं।

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः
आप्राद्यावापृथ्वीअंतरिक्ष ᳬ सूर्य्यआत्मा जगतस्तस्थुषश्च ।[४]

अर्थात् तीनों लोकों को धारण करने वाला, चराचर का कारण, दिव्य गुणों से युक्त वह प्रकाशस्वरूप ईश्वर सभी शक्तियों मे विराजमान है।

गुरु गोविन्द के विचार भी ब्रह्म के स्वरूप के संबंध में द्रष्टव्य हैं :—

(क) कहूं फूल ह्वैके भले राज फूले। कहूं भवर ह्वैके भली भांति भूले ॥
कहूं पवन ह्वैके बहे वेग ऐसे। कहेमो न आवै कथौ ताहि कैसे ॥
कहूं नाद ह्वैके भली भांति बाजे। कहूं पारधी ह्वैके धरेबान राजे ॥
कहूं मृग ह्वैके भली भांति मोहै। कहूं कामनी जिऊं धरे रूप सोहै ।[५]

---

१. वही छंद संख्या १४६
२. जापु साहिब, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छन्द संख्या १६६
३. यजुर्वेद, अध्याय ७, मंत्र संख्या ४१
४. वही मंत्र संख्या ४२
५. विचित्र नाटक, अध्याय १, पृष्ठ १२-१३.

(ख) कहूं गीतनाद के निदान को बखानत हो।
कहूं नृतकारी चित्रकारी के निधान हो।
कहूं पयूख हुइकै पीवत पीवावत हो।
कहूं विद्या में प्रवीन कहूं भ्रम कहूं भान हो ॥[१]

(ग) कहूं गीत के गवैया, कहूं बेन के बजैया,
कहूं नृत के नचैया, कहूं नर को अकार हो।
कहूं वेद बानी, कहूं कोक की कहानी।
कहूं राजा कहूं रानी कहूं नार के प्रकार हो ॥
कहूं बेन के बजैया, कहूं धेन के चरैया,
कहूं लाखन लवैया, कहूं सुन्दर कुमार हो।
सुद्धता की सान हो कि, सन्तन के प्राण हो कि,
दाता महादान हो कि, निर्दोखी निरंकार हो।[२]

निर्गुण-सगुण, निराकार-साकार सभी रूपों में गुरु जी ने परमात्मा का दर्शन किया है। वे उसे इन दोनों से परे भी मानते हैं। वह ब्रह्म, सगुण-निर्गुण, जड़-चेतन और तीनों गुणों से अतीत है :

कहूं सुचेत हुइके चेतना को चार कीओ, कतहूं अनन्त हुइकै सोवत अचेत हैं।
कहूं वेद रीति कहूं तासिउ विपरीति, कहूं त्रिगुन अतीत कहूं सुरगुन समेत हो ॥[३]

बल और उसकी मिठास के सदृश वह सृष्टि में एकमेव है। सार एवं श्रेष्ठ अंश के रूप में वह सर्वत्र विद्यमान है। कीड़े से लेकर कुंबर अर्थात्—तुच्छाति तुच्छ, सूक्ष्मातिसूक्ष्म सबमें परब्रह्म का निवास है। इसी को उपनिषदों ने 'अणोरणीयान् महतो महीयान्,'[४] अर्थात् वह सूक्ष्म से सूक्ष्म और महान् से महान् है। तद्दूरे-तदन्तिके[५] वह दूर भी है और हृदय में भी उसी का निवास है, कह कर गाया है उसका दर्शन सब कोई क्यों नहीं कर पाता यही एक महान् कठिनाई है। यह कठिनाई तब तक सामने से नहीं हटेगी, जब तक हम अपनी स्थूल इन्द्रियों के आश्रित ज्ञान पर निर्भर रहेंगे और उसी बुद्धि के आधार पर सभी पदार्थों को तौलते रहेंगे।

जीवमात्र के भीतर परमात्मा की विद्यमानता के सम्बन्ध में निर्गुण सन्त प्रायः

---

१. अकाल स्तुति, छन्द संख्या १६
२. वही छन्द संख्या १८
३. अकाल स्तुति, छन्द संख्या ११
४. कठोपनिषद्, द्वितीय वल्ली, २०।४९
५. यजुर्वेद, अध्याय ४० एवं मंत्र संख्या ५

एकमत हैं। कबीरदास, दादू आदि अद्वैत विचारधारा के सन्त इसी श्रेणी के हैं। विडम्बना केवल इतनी ही है कि मनुष्य अपने सच्चे स्वरूप को भूला हुआ है। यों ही इस महता को प्राप्त भी नहीं किया जा सकता, इसके लिये जीवनव्यापी साधना की आवश्यकता है। मन की चंचलता एवं सामान्य बुद्धि के क्षेत्र से जब तक मनुष्य हटेगा नहीं एवं साधना में दृढ़ता एवं निश्चलता नहीं होगी तब तक परम तत्त्व को प्राप्त करना मृगतृष्णा ही बनी रहेगी। इसी ज्ञानाभाव के कारण जीव स्वयं को अपने वास्तविक स्वरूप अर्थात् परमात्मा से पृथक् समझता है। यह भेद-बुद्धि जब अधिक बढ़ आती है तो वह परमात्मा को भी भूल जाता है। वह भ्राति और भूल की आँधी में आत्मतत्त्व की उपेक्षा कर देता है एवं पंचभूतों से निर्मित नाशवान अनित्य शरीर के पोषण मे दिन-रात निमग्न रहता है। उसी मे अपने जीवन की सार्थकता और अपने लक्ष्य की सफलता एवं उद्देश्य की समाप्ति समझ बैठता है। तभी तो सन्तों ने बाह्य, स्थूल दृश्य-आवरण को हटा कर अंततंम झाँकने को जीवन की सार्थकता मानी है। अनुभूति के इसी स्तर पर पहुँच कर साधक अपने साध्य को पाकर आत्मानन्द में विह्वल होकर कह उठता है—मैं तो वस्तुतः एकमात्र सत् तत्त्व हूँ। आत्मानन्द की इन परम पवित्र घड़ियों में साधक को अपने पिछले पापाचरणयुक्त जीवन पर पश्चात्ताप होता है। वर्तमान स्थिति से छूटकर कहीं पुनः उसी स्थिति को न पहुँच जाये, इसकी चिन्ता से वह विह्वल हो उठता है और आत्म-संस्कार में तत्पर हो जाता है। फिर भी इतना तो निश्चित है कि आत्मा और परमात्मा के वास्तविक रूप को न जानते हुए भी उनकी एकता में कोई अन्तर नहीं आता। परन्तु पँच भौतिक जगत के बन्धनों से छुटकारा पाने के लिये ऐसी ही आध्यात्मिक अनुभूति की अपेक्षा है।

ऐसी ही आध्यात्मिक अनुभूति की अपेक्षा है।

अद्वैत सन्तों की वाणियों का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि जीवन के सत्य को उन्होंने निश्चित रूप से अनुभव कर लिया था। कबीर ने बड़ी दृढ़ता और निर्भीकता से इस सम्बन्ध मे अपने भाव व्यक्त किये हैं। आत्मा और परमात्मा की एकता में उनका अटल विश्वास था। वे इन दोनों में इतना भी भेद नहीं मानते कि हम उन्हें एक ही मूल वस्तु के दो पक्ष कह सकें।[1] पूर्ण ब्रह्म के दो पक्ष नहीं हो सकते, पूर्ण में से पूर्ण को घटाने पर पूर्ण ही शेष रहता है, यह पहले बताया ही जा चुका है। तात्पर्य यह है कि आत्मा-परमात्मा दोनों सर्वथा एक हैं। इसी से वे सम्पूर्ण जगत को अद्वैत दृष्टि से देखते थे। कबीर कहते हैं :—

---

१. हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, बड़थ्वाल, पृष्ठ ११६

पाणी ही तें हिम भया, हिम ही गया बिलाय।
जोई था सोई भया, अब कछु कहा न जाय॥

हम सब मांहि सकल हम माहीं। हम थे और दूसरा नाहीं॥
तीन लोक में हमारा पसारा। आवागमन सब खेल हमारा॥[1]

इन सन्तों ने सर्वत्र आत्मा-परमात्मा में भेद-बुद्धि का तिरस्कार किया है। वे तर्क से द्वैत की सिद्धि करने वालों को मोटी अक्ल वाला मानते थे।[2] मुमुक्षु की दृष्टि से मोक्ष, जीवात्मा का परमात्मा में घुल मिल कर एकाकार हो जाता है। इस अभेद-सिद्धि में भक्त परमानन्द को प्राप्त कर लेता है। इस स्थिति की तुलना समुद्र में बूँद के समा जाने से की गई है।[3] गुरु गोविन्दसिंह ने भी अनेक स्थलों पर इस प्रकार के विचार व्यक्त किये हैं। वे कहते हैं कि प्रभु स्वयं ही अनन्त रूप धारण करते हैं और पुनः अपने में ही सब को लीन कर लेते हैं। जो लोग आत्मा और परमात्मा में भेद-बुद्धि की कल्पना करते हैं, उनके विषय में वे लिखते हैं:—

जो जो भाव दुतिय महि राचे। ते ते मति विलन ते बाचे॥
एक पुरख जिन नेक पछाना। तिन ही परम तत्त कहि जाना॥[4]

विश्व के सम्पूर्ण जीव प्रभु से ही उत्पन्न हुए हैं और अन्त में उसी में विलीन भी हो जायेंगे:—

जितिक जगति के जीव बखानो।
एक जोत समै ही महि जानो॥
काल रूप भगवान भनैवौ।
ता महि लीन जगति सब ह्वैवौ॥[5]

गुरु जी के आत्मा-परमात्मा सम्बन्धी उक्त विचारों में विशिष्टाद्वैत का स्पष्ट प्रभाव है। आत्मा और परमात्मा के अभेद का जो प्रतिपादन, उपनिषदों के 'तत्वमसि' नामक महावाक्य के आधार पर, स्वामी रामानुजाचार्य ने किया है, उसमें भी स्पष्टतः यही भाव है। उन्होंने जीव को अणु तथा चेतना कहा है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने स्पष्ट किया है:—

---

१. कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ २०१
२. कहे कबीर तरक-दुइ साधै, तिनकी मति है मोटी॥ कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ १०५
३. हेरत हेरत हे सखी, रहया कबीर हेराइ।
बूँद समानी समुद्र में, सो कत हेरी जाइ॥ कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ १७
४. चौबीस अवतार श्री दशम गुरु ग्रंथ, चौपई ३
५. चौबीस अवतार, श्री दशम गुरु ग्रंथ, चौ० २२

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः[१] ।

अर्थात् इस शरीर में भगवान का एक सनातन अंश है । जीव उसी प्रकार ईश्वर का अंश है, जैसे प्रकाश सूर्य का अंश है या गुण गुणी का । ब्रह्म अखण्ड है । उसके टुकडे नहीं हो सकते । गुरु गोविन्दसिंह ने भी इसी आशय को निम्नलिखित छन्द में स्पष्ट किया है—

जैसे एक आग ते कनूका कोट आग उठे, निआरे हुइकै फेरि आग में मिल्लहिंगे।
जैसे एक धूर ते अनेक धूर पूरत है, धूर के कनूका फेर धूर में समाहिंगे।
जैसे एक नर ते तरंग कोट उपजत हैं, पान के तरंग समै पान ही कहाइंगे।
तैसे विश्वरूप ते अभूत भूत प्रगट हुइ, ताहि ते उपज ताहि में समाहिंगे ॥[२]

'तत्वमसि' की अनेक विचारकों ने अपने ढंग से व्याख्या की है । परन्तु स्वामी रामानुज का मत अन्य विचारकों से कुछ भिन्न है । 'तत्' का अर्थ है—वह ईश्वर, जो सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् तथा सृष्टिकर्ता है । 'त्वम्' का अर्थ है—वह ईश्वर, जो अचित्, विशिष्ट जीव (शारीरिक) है । इस प्रकार यहाँ जो अभेद दिखाया गया है वह ईश्वर के एक विशिष्ट रूप का है । यह एकता एक विशिष्ट एकता है इसीलिये यह मंत्र विशिष्टाद्वैत कहलाता है ।[३]

पुनर्जन्म

सभी भारतीय विचारकों के सदृश गुरु गोविन्दसिंह ने जीवात्मा के पुनर्जन्म पर अपना विश्वास प्रकट किया है । स्वयं वे अपना पुनर्जन्म ईश्वर की प्रेरणा से दुष्टों के संहार के निमित्त स्वीकार करते हैं ।[४] जीवात्मा अपने कर्मों का फल भोगने के लिये बार-बार जन्म लेता है । पुनर्जन्म के सिद्धान्त का मूल ही यही है जो जैसे कर्म करते हैं वैसी योनि भी प्राप्त करते हैं । मानव-योनि को पाकर उत्तम कर्मों के द्वारा आवागमन के बन्धनों से मुक्त होना ही जीव का मुख्य धर्म कहा गया है । जीव के आवागमन से छूटने का एक ही मार्ग है, सांसारिक विषय-वासनाओं से विरक्त होकर शुभ कर्मों को सम्पन्न करना । मुक्ति पाकर जीव की क्या गति होती है, इस पर भारतीय विचारकों में अनेक सम्प्रदायगत विचार हैं । दशमेश जी ने जीवमात्र का मूल स्रोत परमात्मा को ही माना है । सारी योनियाँ उसी से उत्पन्न हुई हैं :—

केते कच्छ मच्छ केते उन कउ करत भच्छ,
केते अच्छ वच्छ हुइ संपच्छ उड जाहिंगे ।

---

१. वही चौ० ३४
२. गीता—१५।७
३. अकाल स्तुति, छन्द ८७, पृष्ठ १६
४. हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ १५१

केते नभ बीच अच्छ पच्छ कच करेंगे भच्छ,
केते प्रतच्छ हुए पचाइ खाइ जाहिंगे,
काल के बनाइ सबै काल ही चबाहिंगे।
तेज जिऊं अतेज मे अतेज जैसे तेजलीन,
ताही ते उपज सबै ताही में समाहिंगे ॥[1]

इस आवागमन के चक्कर से छुटकारा पाने के लिये मनुष्य को शुभ कर्मों में रत होना चाहिये। आवागमन से छुटकारा पाने के लिये बहुधा लोगों ने वैराग्य को अत्यधिक महत्त्व तथा सांसारिक जीवन को बिल्कुल मिथ्या मान कर उसके प्रति उदासीन होने का उपदेश दिया है। परन्तु मध्यकाल के सन्त भक्तों ने सासारिक जीवन का महत्त्व समझा है। गृहस्थ रहते हुए भी ईश्वर की आराधना की जा सकती है, इस पर उनका अटल विश्वास था। ये लोग अधिकाशतः गृहस्थ ही थे। गुरु गोविन्दसिंह भी लौकिक जीवन के उत्तरदायित्वों का निर्वाह आवश्यक मानते हैं। संघर्षमय जीवन व्यतीत करते हुए भी जन्मजन्मान्तर के फेर मे मुक्त हुआ जा सकता है, यही उनका दृढ विचार था। वे स्वयं कहते हैं :—

छत्री को पूत हौ बामन को नहि, के तपु आवत है जु करौ।
अस अउर जंजार जितो गृह को, तुहि त्याग कहा चित तामें धरौं।
अब रीझ के देहु वहै हम को, जोऊ हौ बिनती कर जोर करौं।
अब आऊ की असुध निदान बने, अति ही रन में तब जूझ मरौं ॥[2]

बाह्य आडम्बरों, कृच्छ्राचारों तथा अन्य सभी प्रकार के दिखावों की उन्होंने कटु आलोचना की है। शुष्क नाम-स्मरण, तीर्थ-व्रत, तप, उपवास, स्नान-मंजन, ईश्वर-प्राप्ति में कभी सहायक नहीं हो सकते। भगवान की निश्छल भक्ति ही इस जन्म-मरण के भय को हटा सकती है :—

तीरथ-न्हान दया दम दान, सुसंजम नेम अनेक विसेखे।
वेद पुरान कतेब कुरान जमीन जमान सबान के पेखे।
पउन अहार जती जत धार सबै सुविचार हजारक देखे।
श्री भगवान भजै बिनु भूपति, एक रती बिनु एक न लेखे ॥[3]

नीरस शुष्क मंत्र-पाठ मात्र मनुष्य के लिए लाभप्रद नहीं :—

---

१. विचित्र नाटक, छन्द संख्या ४२, अध्याय ७, पृष्ठ ४१

२. अकाल स्तुति, छन्द संख्या ८८

३. कृष्णावतार, चौबीस अवतार, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छन्द संख्या २४८९

लिखं जंत्र थाके पढं मंत्र हारे।
करे काल ते अन्त ले के विचारे।
कितिओ तंत्र साधे जु जनम बिताओ।
भस्ट फोकटं काज एकै न आयो ॥[१]

बिना प्रभु की निश्चल भक्ति के सुख दुर्लभ है :—

बिना सरन ताकी न अउरे उपायं।
कहा देव दइतं कहा रंक रायं।
जिते जीव जन्तं सु दुनीयं उपायं।
सबै अन्त कालं बली काल घायं।
बिना सरन ताकी नहीं और ओटं।
लिखे जन्म केते पढ़ मेज कोटं ॥[२]

सृष्टि :

प्राय: यह माना जाता है कि जीवों के कर्म ही सृष्टि की रचना के कारण हैं। परन्तु गुरुमत-सिद्धान्त इसका कारण कर्म को न मानकर अकाल पुरुष के 'हुकुम' को मानता है। उसके अनुसार मोह, माया और भ्रम के कारण यह सृष्टि नहीं बनी; किन्तु ईश्वर ने सृष्टि बनाकर अपना 'हुकुम' प्रकट किया है। प्रारम्भ में जब सृष्टि की रचना हुई तब जीव नहीं थे इसलिये कर्म इसकी उत्पत्ति का कारण नहीं हो सकता। कर्ता-पुरुष स्वयं सत्य है, इसलिये उसकी रचना असत्य नहीं हो सकती। इसमें एकता, अनेकता; स्थिरता और परिवर्तन, सभी गुण मिलते हैं।[3] गुरुमत में सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में जटिल दार्शनिक तर्क-पद्धति का आश्रय नहीं लिया गया है। वेद भगवान के अनुसार यह विविध सृष्टि उस एक अविनाशी सर्वशक्तिमान् परमात्मा से उत्पन्न हुई है और प्रलय के उपरान्त उसी समस्त सृष्टि की व्यापक तत्त्व में समाप्ति हो जाती है।[४] गुरु नानक ने वेद के स्वर में स्वर मिलाकर ठीक यही घोषणा करते हुए लिखा है :—

कीता पसाऊ एक्को कवाऊं।
तिसते होवे लख दरियाऊं॥[५]

---

१. अकाल स्तुति, छन्द संख्या २४
२. विचित्र नाटक, प्रथम अध्याय, छन्द संख्या ६२, पृष्ठ १०
३. वही प्र० अ० छन्द सं० ७६, ७७ पृष्ठ ११, १२
४. गुरुमत फिलासफी, पृष्ठ ३८९
५. इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अंग वेद यदि वा न वेद ॥ ऋ० १०।१२९।७

गुरु गोविन्दसिंह ने भी काल-पुरुष को इसी दृष्टि से देखा है :—

काल समन का करत पसारा।
अन्त काल सोई खापन हारा।
आपन रूप अनन्तन धरही।
आपहिं मध्य लीन पुन करही।[1]

ईश्वर अपनी इच्छा और प्रकृति के संयोग से ही सृष्टि का निर्माण करता है :—

प्रिथमें ओऽमकार तिन कहा। सो धुन पूर जगत को रहा॥
ताते जगत भयो विस्थारा। पुरुख प्रकित जब दुइ विचारा॥[2]

सिक्खों के आदि गुरु नानक देव ने सृष्टि-रचना के सम्बन्ध में एक ऐसे समय की कल्पना की है, जब सृष्टि का कोई चिन्ह तक नहीं था।[3] उनके मतानुसार असंख्य युगों पूर्व सर्वत्र घोर अन्धकार था। नामरूपात्मक जगत का कोई अस्तित्व नहीं था। वह अपने प्रकाश से प्रकाशित हो रहा था :—

अरबत नरबत धन्धुकारा। धरनी नगगन हुकम अपारा॥
न दिन न रैनि न चन्द न सूरज, सुन्न समादि लगाइदा॥
खानि न बानि पवन न पानि, उतपति खपति न आवन जानी।
खण्ड पताल सपत नहिं सागर, नदी न नीर वहाइदा॥
न तवि सर्ग न मच्छ पयाला, दो जख भिस्त नहि खै काला॥[4]

इसी प्रकार गुरु नानक चिन्तन करते हुए अपने मन से पूछते हैं कि वह घड़ी, नक्षत्र, तिथिवार, सुरति आदि कौन रहे होंगे जब सृष्टि रूपाकार हुई होगी—

राती रुती थिती वार।
पवण पाणी अगनी पाताल। तिसु विचि धरती थापि रखी धरमसाल।
तिसु विचि जीअ जुगति के रंग। तिनके नाम अनेक अनन्त।
करमी करमी होइ बीचारू। सचा आपि सचा दरबारू।
तिथै सोहनि पंच परवाणु। नदरी करमि पवै नीसाणु।
कच पकाई ओथे पाइ। नानक गइआ जापै जाइ॥[5]

• ऋग्वेद में भी सृष्टि के सम्बन्ध में कहा गया है कि वह सब जगत् सृष्टि के पहले

१. चौबीस अवतार, श्री दशम गुरु ग्रंथ, खंड १, छन्द संख्या ३
२. चौबीस अवतार, श्री दशम गुरु ग्रंथ, खण्ड १, छन्द संख्या २९
३. श्री गुरु ग्रंथ दर्शन, पृष्ठ ९६
४. श्री गुरु ग्रंथ साहिब, मारू सोलह, पहला १, पृष्ठ १०३५, ३६
५. श्री जपु साहिब, गुरु नानक, छन्द संख्या ३४

अन्धकार से आवृत, रात्रिरूप में जानने के अयोग्य, आकाशरूप सब जगत तथा तुच्छ अर्थात् अनन्त परमेश्वर के सन्मुख एकदेशो, आच्छादित था। पश्चात् परमेश्वर ने अपने सामर्थ्य से इसे कार्यरूप में परिणत कर दिया।[1] गुरु गोविन्दसिंह के निम्न-लिखित छन्द से भी यही ध्वनि निकलती है :—

अमित तेज जग जोति प्रकासी।
आदि अछेद अभै अविनासी।
परम तत्त्व परमार्थ प्रकासी।
आदि सरूप अखण्ड उदासी॥[2]

ईश्वर के सम्बन्ध मे यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि उसने संसार की रचना किस प्रकार की :—

तुम्हरा लखा न जाय पसारा।
केहि विधि सृजा प्रथम संसारा॥[3]

इस प्रकार सृष्टि के रचे जाने का समय अज्ञात और अनिश्चित है।

सृष्टि का उद्देश्य

एक ही परमात्मा ने अनेक रूपात्मक जगत् की सृष्टि की है। उसने यह कार्य खेल-खेल में कर दिया, अन्त मे इसे वह पुनः एक कर देगा।[4]

खेल खेल अखेल अंत को फिरि एक॥

अनन्त लोक-लोकान्तरों, देवताओ, मनुष्यों, युगों की रचना परमात्मा ने स्वेच्छा से की। शत्रुओं का नाश, सज्जनों, भक्तों का परित्राण वह सदैव करता रहता है; परन्तु उसका अन्त किसी ने नहीं पाया।[5]

गुरु

जीवन के सभी क्षेत्रों में गुरु की आवश्यकता सदैव मानी गई है। विशेषतः आध्यात्मिक जगत् तो गुरु के बिना अपूर्ण अथवा व्यर्थ ही रह जाता है। 'बिन गुरु

---

१. तम आसीत्तमसा गूढमग्रे प्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिना जायतैकम्
ऋग्० मं० १०, सू १२९, मंत्र ७, ३४ तथा सत्यार्थप्रकाश, समुल्लास ८
२. ज्ञानप्रबोध, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छन्द संख्या २५
३. वही
४. जापु साहिब, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छन्द संख्या ८१
५. विचित्र नाटक, छन्द संख्या २४, २५, पृष्ठ ५

होय न ज्ञान'–एक साधारण उक्ति है। गुरु शिष्य को ज्ञान देता है और 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः—यह श्रुति-वाक्य है। गुरु के बिना सम्पूर्ण संसार मनुष्य को तमसावृत लगता है। उससे रहित व्यक्ति कभी भी इस जगत के गूढ़ रहस्यों को नहीं पा सकता। बड़े से बड़ा साधक, ज्ञानी, तपस्वी, योग्य गुरु के अभाव में पथभ्रष्ट हो जाया करता है। अतः गुरु का स्थान पथ-प्रदर्शक का है। 'गुरु कीजै जानके, पानी पीजै छान के'—प्रसिद्ध कहावत है। भारत म 'निगुरा' अर्थात् गुरु विहीन कहा जाना एक अपशब्द समझा जाता है। गुरु की इसी असाधारण महत्ता के कारण गुरु को परमेश्वर की कोटि तक का माना गया है। सृष्टि के आदि में परमात्मा ही मनुष्य का प्रथम गुरु था। अतः परमेश्वर भी मनुष्य का गुरु है, यह श्रुति वाक्य है।[१] गुरु; ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि हैं, गुरु ही साक्षात् परमेश्वर है, भक्तों ने तो यहाँ तक कहा है कि भगवान के रुष्ट हाने पर गुरु रक्षा कर सकता है; परन्तु गुरु के रुष्ट हो जाने पर त्रैलोक में उसका कोई भी रक्षक नहीं है। इसलिए कुछ सन्तों ने गुरु को ईश्वर से भी ऊँच पदवी दी है।[२] महात्मा कबीर गुरु को परमेश्वर से भी बड़ा मानते हैं, क्योंकि भक्तों को गुरु ही ईश्वर से मिलाता है।[3]

मध्यकाल के सन्तों और भक्तों दोनों ने गुरु की इसी महत्ता को एक स्वर से स्वीकार किया है। गुरु नानक का मत गुरु की महत्ता के कारण गुरुमत ही कहलाता है। सिक्ख-सम्प्रदाय शिष्यों का एक समूह है, ये आजीवन कुछ न कुछ सीखते रहते हैं। इसीलिये ये सिक्ख अथवा शिष्य कहलाते हैं। गुरु गोविन्दसिंह ने ग्रंथ-रचना के पूर्व अपनी वाणी को सतगुरु का प्रसाद मानते हुए एक ओंकार ईश्वर को स्मरण किया है।[४] सिक्खों का प्रसिद्ध धार्मिक नारा 'श्री वाहिगुरु जी की फतह' गुरु की इसी महत्ता का द्योतक है। गुरु गोविन्दसिंह ने पंथ चलाने को आदेश का अकाल पुरुष द्वारा मिलने का उल्लेख किया है और अपने पश्चात् किसी को गुरु न मानकर श्री गुरु ग्रंथ साहिब को ही एकमात्र गुरु मानने की सिक्खों को आज्ञा दी है।[५] गुरु ग्रंथ साहिब मे अनेक स्थानों में परमेश्वर को ही गुरु माना गया है:—

---

१. कबीर, पृष्ठ संख्या ३२

२. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृष्ठ ६८६

३. गुरु गोविन्द दोनो खड़े काके लागूं पांय।
बलिहारी इन चरणन जिन गोविन्द दिया मिलाय॥
कबीर वचनावली, दोहा सं० १०

४. ओंकार सतिगुरु प्रसादि, श्री दशम गुरु ग्रंथ

५. आगिआ भई अकाल की तबै चलायो पंथ।
सब सिक्खन को हुकुम है गुरु मानिओ ग्रंथ॥ ११॥
पंथ प्रकाश, निवास ४०, पृष्ठ ३२८

सतगुरु मेरा सदा सदा, न आवे न जाइ ॥
ओह अविनासी पुरुख है, सब महि रहिया समाइ ॥[१]

पाख्यान चरित्र में गुरु गोविन्दसिंह ने इसका समर्थन करते हुए ईश्वर को ही अपना गुरु माना है।[२] विचित्र नाटक में उन्होंने परमात्मा की आज्ञा से जन्म-ग्रहण की बात की है :—

तिन जो करी अलख की सेवा।
ताते भये प्रसन्न गुरु देवा।
तिन प्रभ जब आयस मुहि दिया।
तब हम जन्म कलू महि लिया ॥[३]

आदि गुरु परमात्मा द्वारा धर्म की रक्षा और उसके प्रचार के निमित्त उन्हें संसार में भेजा गया :

हम एह काज जगत मो आए।
धर्म हेत गुरु देव पठाये।
जहाँ तहाँ तुम धर्म बिकारों।
दुष्ट दोखीअन पकरि पछारों ॥[४]

पाख्यान चरित्र के अन्त में उन्होंने पुनः इसकी घोषणा की है कि सब का पालनकर्ता परमात्मा ही मेरा गुरु है। उसी ने संसार की समस्त योनियों को जन्म दिया है। वही एक ईश्वर अनादि और अनन्त है।[५] अतएव कर्ममार्ग, योगमार्ग, ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग सभी में गुरु की महत्ता स्थापित की गई है। बिना गुरु के 'हुकुम' रजाइ कर्म नहीं प्राप्त होता, न योग की सिद्धि ही प्राप्त होती है और न ज्ञान ही प्राप्त होता है। भक्ति की प्राप्ति भी गुरु के बिना नहीं हो सकती है।[६]

भक्ति-पथ

आध्यात्मिक जगत् में जीवन के चरम लक्ष्य के सम्बन्ध में बड़ा विवाद मिलता है। ज्ञानमार्गियों ने जीवन का अन्तिम उद्देश्य मुक्ति अर्थात् ब्रह्मानन्द में लीन हो जाना माना है। भक्ति-मार्गी भक्ति को ही साध्य और साधन दोनों समझकर भगवद्भक्ति में तल्लीन रहता है। वह भक्ति केवल भक्ति के लिये करता है। कर्म-

---

१. आदि ग्रन्थ महला ४, अष्टपदी।
२. पाख्यान चरित्र, श्री दशम गुरु ग्रन्थ, खण्ड २ चरित्र संख्या ४०५, पृष्ठ ३८५
३. विचित्र नाटक, छंद संख्या ४, पृष्ठ ३५
४. विचित्र नाटक, छन्द सं० ४२, पृष्ठ ४१
५. पाख्यान चरित्र, श्री दशम गुरु ग्रन्थ, चरित्र संख्या ४०५, पृष्ठ ३८५
६. श्री गुरु ग्रन्थ दर्शन, पृष्ठ ३१७

मार्गी कर्म पर विश्वास करता है। कर्ममय जीवन की सफलता ही उसकी मुक्ति है। भारत के प्राचीन आध्यात्मिक जीवन में कभी ज्ञान की श्रेष्ठता रही, कभी कर्म को श्रेष्ठ माना गया और कभी भक्ति को विशेष महत्त्व दिया गया। परन्तु मध्य-कालीन इतिहास में आते-आते इन तीनों का अद्भुत एकीकरण होता दिखलाई देता है। भक्तशिरोमणि तुलसीदास ने ज्ञान-विहीन भक्ति, भक्ति-विहीन ज्ञान, कर्म-विहीन जीवन सभी को अपूर्ण और परमोद्देश्य की प्राप्ति में बाधक बताया है। कर्ममार्गी दोनों से इतने ओत-प्रोत हो गये कि उनका पृथक् अस्तित्व ही न रहा। मध्यकालीन परिस्थितियों में भक्ति का ज्ञान और कर्म दोनों पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि वह सर्वोपरि हो गई अथवा यों कहें कि मध्ययुगीन हिन्दी में से भक्तों को निकाल दिया जाय तो कुछ न बचेगा।[1] भक्ति के इस व्यापक प्रभाव से ज्ञानमार्गी सन्त भी बच न सके। कबीर एवं नानक की वाणियों से इस बात की पुष्टि हो जाती है। सिक्ख-सम्प्रदाय के दशम गुरु गोविन्दसिंह की रचनाओं के अध्ययन से स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि उनका सम्पूर्ण जीवन एक विशुद्ध धार्मिक सन्त का जीवन था जिसका मूल आधार भक्ति थी। वास्तव में कर्म, ज्ञान और भक्ति एक दूसरे के पूरक हैं। गुरुओं ने इन तीनों के बीच अद्भुत समन्वय स्थापित किया है। गुरुओं द्वारा निरूपित सारे कर्म भक्तिभावना से ओत-प्रोत हैं।[2]

दशमेश जी का आराध्यदेव निर्गुण, निराकार, अजन्मा, निर्विकार, सर्वव्यापक परम तत्त्व ही है। इसी परमात्मा का स्मरण उन्होंने प्रत्येक रचना के प्रारम्भ में एक ओंकार लिख कर किया है। परमात्मा की शक्ति रूप में भी उन्होंने उपासना की है जिसमें उसकी युद्ध-वीरता का गुणगान है। जहाँ उस परमतत्त्व की युद्ध के अधिष्ठाता के रूप में आराधना हुई है, उन्हीं स्थलों में अस्त्र-शस्त्रों को परमात्मा का प्रतीक माना गया है। युद्ध-प्रिय गुरु जी की ईश्वर-विषयक यह धारणा अत्यन्त मनोरंजक एवं इतिहास के विद्यार्थी के लिये नितान्त शिक्षाप्रद है।

निराकार ब्रह्म की उपासना-पद्धति तथा सगुण-साकारादि उपासनाओं की पद्धति में उद्देश्य एक होते हुए, अन्तर आ ही जाता है। भक्ति का सर्वप्रथम सोपान मनो-निग्रह है। जब तक मन में चंचलता रहती है, तब तक मनुष्य कुछ भी नहीं कर सकता। मन को एकाग्र कर सकना आसान काम नहीं है।[3] मनोनिग्रह के भक्तों

---

१. हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृष्ठ संख्या ६०

२. श्री गुरु ग्रंथ दर्शन, पृष्ठ २८८

३. चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥
श्रीमद्भगवद्गीता, अ० ६।३४

ने अनेक उपाय निकाले हैं। सगुण साकारोपासक इसके लिये वैधी भक्ति को आवश्यक मानते हैं। जब तक मनुष्य अपरिपक्व बुद्धि का रहता है, तब तक वह मूर्ति की पूजा आदि क्रिया-कलापों में तन्मय रहता है जिससे दिनभर भगवान का स्मरण भी बना रहे और मन की चंचलता कार्यव्यस्त रहने से नियंत्रित भी हो जाये। परन्तु निराकारोपासक भक्त इस प्रकार की उपासना को निरर्थक समझते हैं। वे वैधी भक्ति का खण्डन करते हैं और प्रेमाभक्ति मे विश्वास करते हैं। सिक्ख गुरुओं का समस्त जीवन प्रेमाभक्ति से ओतप्रोत है। उन्होंने वैधी भक्ति के समस्त विधि-विधानों, तिलक, माला, आसन, पादुका, प्रतिमापूजन आदि की निस्सारता स्थान-स्थान पर प्रदर्शित की है।[1] गुरु गोविन्दसिंह साकारोपासना संबंधी वैधी भक्ति का स्पष्ट प्रतिवाद करते हुए लिखते हैं :

जौ जुग तै करिहै तपसा, कछु तोहि प्रसन्न न पाहन कै हैं।
हाथ उठाइ भलि विधि सो जड़, तोहि कछु वरदान न दै है।
कउन भरोस भयो इह कौ कहु, भीर परै नहिं आनि बचैहै।
जानु रे जान अजानु हठी, इह फोकट धर्म सु भर्म गवैहै ॥[2]

ईश्वर की प्रतिमा बनाकर पूजने वालों को अज्ञानी, महाजड़ कहते हुए गुरु जी का स्पष्ट विचार है कि लोगों का इससे चित्त-निग्रह तो नहीं होता परन्तु वे और अधिक पथ-भ्रष्ट हो जाते हैं :

ताहि पछानत है न महां जड़, जाको प्रताप तिहूं पुर माहीं।
पूजत है प्रभु कै तिहको, जिनके परसे परलोक पराहीं ॥
पाप करो परमारथ कै, जिह पापन ते अतिपाप डराहीं।
पाइ परो परमेश्वर के पसु पाहन में परमेश्वर नाहीं ॥[3]

उन्होंने जीवन, जल, थल, सब रूपों, सूर्य, चन्द्र, आकाश, भूमि, पानी, पावक, पवन आदि सभी में परमात्मा की ज्योति देखी, क्योंकि 'जहाँ हेरौ तहाँ चित लाइ तहाँ ही'[4]। परमात्मा को कण-कण में देखकर उसकी भक्ति में विह्वल होने वाले भक्त को क्षण-क्षण उसकी पावन स्मृति बनी रहती है। इसी भावना से प्रेरित होकर सगुण भक्त तुलसी तक ने उस परमतत्त्व के आलोक से समस्त विश्व को दीप्त देखते हुए गद्गद् कण्ठ से कहा था :

---

१. श्री गुरु ग्रंथ दर्शन, पृष्ठ २८३
२. सवैये, श्री दशम गुरु ग्रन्थ, संख्या २२
३. रण खम्भ कला चरित्र, श्री दशम गुरु ग्रंथ पाख्यान चरित्र, छन्द संख्या १२
४. वही छन्द संख्या १३

सियाराम मय सब जग जानी।
करौं प्रणाम जोरि जुग पानी।[१]

निखिल विश्व में उसी परम आनन्ददायक परमात्मा की सत्ता को देखने वाले आस्तिक की आस्था अत्यन्त बलवती और दृढ हो जाती है। वह क्षण-क्षण, पग-पग पर उसकी अनन्त-श्री को देखकर विहृर्चित हो कर गा उठता है :

बन तण महीप जल थल महान।
जह तहं प्रसोह करुणा निधान॥
जग भगत तेज पूर्ण प्रताप।
अम्बर जमीन जिह जपत जाप॥
सातो आकास सातो पतार।
विथरिउ अदृष्ट जिह कर्म जारि॥[२]

ईश्वर अशरण-शरण है। उसे छोड़कर अन्यों की शरण में जाना निरर्थक है। अतः गुरु जी ने जीवात्माओं को उसी सर्व शक्तिमान प्रभु की भक्ति के लिये प्रेरित किया है :

क्रिसन अउ बिसन जप तुहि कोटिक राम रहीम भलि विधि धियाओ।
ब्रह्म जपियो और संभ थविओ तिहते तुहिको किनहुं न बचायो।
कोट करी तपसादिन कोटिक काहू न कौडी कौ काम कढायो।
काम का मंत्र कसीरे के काम न काल का घाऊ किन्हूं न बचायो॥[३]

आगे गुरु जी कहते हैं कि विनयपूर्वक भक्ति ही सबसे सरल मार्ग है जो परमात्मा को रिझा सकती है। अल्पमति जीव तो क्या बडे विद्वान और अलौकिक शक्ति सम्पन्न लोग भी ईश्वर का पार नहीं पा सकते, जब कि परमात्मा का भक्त उसे अपनी सीधी-सरल भक्ति द्वारा प्राप्त कर लेता है :

कागद दीप समै करिकै अरु सात समुन्द्रन की मसु कैहों।
काट बनासपती सगरी लिखवै हूं कै लेखन काज बनैहों।
सारसुती बकता करिकै जुगि कोटि गनसि कै हाथ लिखैहों।
काल कृपाल बिना बिनता न तऊ तुमको प्रभु नैक रिझैहों।[४]

---

१. बालकाण्ड; रामचरितमानस, पृष्ठ संख्या ३९

२. अकाल स्तुति, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छन्द सं० २७१

३. विचित्र नाटक, प्रथम अध्याय, छन्द सं० ९७

४. वही छन्द सं० १०१

परमात्मा के समक्ष हमारी शक्ति ही कितनी है। अल्पमति मानव इससे अधिक कर भी नहीं सकता। सासारिक विषयवासना में अनुरक्त मन को इन्हीं से छुटकारा नहीं मिलता। अपरम्पार ईश्वर की महिमा के सदृश जीव कितना अल्पज्ञ है। भक्त अपनी अकिंचनता प्रकट करते हुए कहता है:

कहाॅ बुद्धि प्रभ तुच्छ हमारी।
बरन सकै महिमा जु तिहारी।
हम न सकत कर सिफत तुमारी।
आप लेहु तुम वृथा सुधारी॥[1]

अपने को परमात्मा के समक्ष तुच्छातितुच्छ मानने की भावना से विनम्रता उत्पन्न होती है। विनम्रता ही भगवद्भक्ति के मार्ग का प्रथम सोपान है। जब तक मन का अहंभाव नष्ट नहीं हो जाता, तब तक हृदय मे परमात्मा के प्रति आदर नहीं हो सकता। आदर और श्रद्धा से ही अथवा अपने को छोटा समझ कर चलने वाला ही विनयी और श्रद्धालु होता है। विनय और श्रद्धा के अभाव में भक्ति क्षण भर नहीं टिक पाती। भक्ति-पथ के पथिकों ने विनम्रता, अहंकारहीनता, अकिंचनता की भावना को स्थिर आधार देने वाला माना है। भक्त के लिये किसी प्रकार का आडम्बर रचने, शरीर को क्लिष्ट साधनाओं से जर्जर करने आदि की कोई आवश्यकता नहीं है। यदि भगवान में अनुरक्ति की आकाक्षा है तो सबसे पहले उसका कृपा-पात्र बनने का प्रयत्न करना चाहिये और वह तभी बना जा सकता है जब आडम्बर अहंकार-विहीन शुद्ध मन से हम ईश्वर आराधना में तत्पर हो जायें:—

काहे को कूर करे तपसा, इनकी कोऊ कौडी काम न ऐहै।
तोहि बचाइ सकै कहु कैसे कै, आपन घाव बचाइ न ऐहै।
कोप कराल की पावक कुण्ड में, आप टँगिओ तिमी तोहि टँगैहैं।
चेत को चेत अजो जिय में जड़, काल कृपा बिनु काम न ऐहैं॥[2]

ईश्वर का कृपापात्र बनने के लिये परमात्मा के समीप पूर्णतया आत्मसमर्पण करने की आवश्यकता है। भक्त अपने को परमेश्वर के समक्ष तुच्छातितुच्छ एवं असहाय समझ कर डाल देता है। ऐसी स्थिति मे उसमें अहंकारपूर्ण भावना का अभाव हो जाता है और वह संसार के किसी व्यक्ति या वस्तु पर भरोसा न कर, एक-मात्र परमात्मा ही का आशा के प्रकाशस्तम्भ के रूप में अनुभव करता है। इस सम्पूर्ण

---

१. विचित्र नाटक, अध्याय २, छन्द संख्या ३
२. वही अध्याय १, छन्द संख्या ९८

आत्मविस्मृति की अवस्था में साधक परमात्मा के संरक्षण में होकर निश्चिंत हो जाता है। गुरु गोविन्दसिंह ने इसी का वर्णन करते हुए लिखा है :—

मेर करो तृण मुहि जाहि, गरीब निवाज न दूसर तो सौ।
भूल छिमो हमरी प्रभु आपन, भूलनहार कहूँ कोऊ मो सौ।
सेव करी तुमरी तिन के, सम ही गृह देखियत द्रव्य भरोसौ।
या कल में सभ काल कृपान के भारी भुजान को भारी भरोसौ ॥[1]

भक्तों का दृढ़ विश्वास है कि बिना परमात्मा के अन्य कोई भी शरणदाता नहीं। अन्य शरणदाता शरणागत व्यक्ति पर शंका-सन्देह, अविश्वास कर सकते हैं अथवा शरण देने मे अपनी असमर्थता प्रकट कर सकते हैं जो कोई शरण भी दे दे, उससे यह आशा नहीं की जा सकती कि वह इसका ठीक-ठीक निर्वाह ही करेगा। फिर वे सब तो केवल लौकिक क्षणिक आनन्द ही दे सकते हैं, परन्तु ईश्वर की शरणागत-वत्सलता अक्षुण्ण है। उसमें किसी प्रकार की न्यूनता नहीं आ सकती। उसके अतिरिक्त कोई समर्थ शरणदाता नहीं है। जो उसकी शरण में चला जाता है, सदैव के लिये मुक्त हो जाता है। उसकी शरण बिना अन्य कोई उपाय भी नहीं है :

बिना सरन ताकि न अउरै उपायं।
कहा देव दईतं कहा रक रायं।
कहा पात शाहं कहा उम रायं।
बिना शरण तांकी न कोटै उपायं ॥[2]

ईश्वर के चरणों में पूर्ण आत्म-समर्पण करने में भक्त सब ओर से निश्चिन्त हो जाता है। अपने सुख-दुःख, मान-अपमान, जय-पराजय आदि किसी की चिन्ता नहीं रह जाती। उसे पूर्ण विश्वास रहता है कि उसके क्षण-क्षण का उत्तरदायित्व शरणदाता प्रभु पर है। उसका कर्तव्य तो केवल इतना रह जाता है कि प्रत्येक क्षण ईश्वर की स्मृति बनी रहे। इसके अतिरिक्त वह कुछ नहीं जानता। वह तो अपने मन्दबुद्धि अल्पज्ञता पर अभिमान करते हुए गा उठता है :—

प्रभु जू तो कहं लाज हमारी।
नीलकण्ठ नर हरि नारायण नील बसन बनवारी।
परम पुरख परमेश्वर स्वामी पावन पउन अहारी।
माधव महाज्योतिमद मरदन मान मुकन्द मुरारी।

---

१. विचित्र नाटक, प्रथम अध्याय, छन्द सं० ७२
२. वही छन्द सं० ७६

निर्विकार निरजर निद्रा बिन निर्बिरन नरकनिवारी।
कृपासिन्धु काल त्रै दरसी कुकृत प्रनासन कारी।
धनुरवान धृत मान धराधर अनिर्विकार असिधारी।
हौं मति मन्द चरन सरनागति कर गहि लेहु उबारी॥[१]

कोई व्यक्ति अपने पुरुषार्थ से ही भक्ति-तत्त्व को पाना चाहे तो नहीं पा सकता। वह लाख प्रयत्न करता रहे, परन्तु जब तक प्रभु स्वयं अनुग्रह नहीं करते, तब तक भक्ति-रस का आनन्द प्राप्त करना असम्भव है। भक्ति का आस्वादन करना हो तो सर्वप्रथम भगवदनुग्रह प्राप्त होना चाहिये। गुरु गोविन्दसिंह अनुग्रह की महत्ता का वर्णन करते हुए लिखते हैं :

सारे ही देस को देखि रह्यो, मत कोऊ न देखिअत प्रानपती के।
श्री भगवान की भाइ कृपा हू ते, एक रती बिन एक रती के॥[२]

एकनिष्ठा भक्ति का सर्वप्रमुख लक्षण है। जब एक बार उस प्रभु पर विश्वास कर लिया, उसे अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया फिर चाहे कितने ही कष्ट, उपेक्षा, अन्याय झेलने पड़े, अविचलित होकर दृढता से भक्त उसे पकड़े रहेगा, तभी उसकी निष्ठा सफल हो सकती है। संसार के सारे प्रलोभनों, सुखों को छोड़ कर, सबसे अपना मोह हटाकर, उसी एक प्रभु के चरणों में अपने को डाल देना एकनिष्ठ भक्त का प्रधान कर्त्तव्य है। जब तक एक से अधिक पर व्यक्ति निर्भर रहेगा, तब तक शंका बनी रहेगी। जहाँ संशय, सन्देह एवं अस्थिरता है, वहाँ भक्ति कहाँ? दशमेश जी ने प्रभु के प्रति अपनी एकनिष्ठा का परिचय निम्नलिखित छंद मे दिया है :

पांय गहे जबते तुमरे तबते कोऊ आंख तरे नहीं आन्यो।
राम रहीम पुरान कुरान अनेक कहैं मत एक न मान्यो।
सिम्रति शास्तर वेद सबै बहु भेद कहै हम एक न जान्यो।
श्री असपान कृपा तुमरी करि मैं न कह्यो सब तोहि बखान्यो॥[3]

यश-अपयश, मान-अपमान, लाभ-हानि, प्रलोभन आदि किसी की चिन्ता न करके अवान्तर से अपना विश्वास और भरोसा छोड़ कर भक्त एकमात्र परमात्मा के चरणों में अपने को अर्पण कर भक्तिविह्वल कण्ठ से गा उठता है :

सगल दुआर को छाड़िके, गह्यो तुम्हारो दुआर।
बाहि गहे की लाज अस, गोविन्द दास तुहार॥[४]

---

१. शब्द हज़ारे, श्री दशम गुरु ग्रंथ, सं० ३
२. अकालस्तुति, वही छंद सं० १
३. गोविन्दरामायण, पृ० २४२
४. वही छंद सं० ८६४

भक्त स्वभावतः प्रेमी होता है। प्रेमविहीन भक्ति में न रम्यता है और न तन्मयता। प्रेम के बिना अहंभाव का नाश नहीं हो पाता, जो प्रेम से शून्य होकर केवल वेद, पुराण और कुरान आदि के ज्ञानमात्र के दम्भ में चूर रहते हैं, उनके हृदय में परमात्मा के प्रति अनुरक्ति हो ही नहीं सकती :

कीट पतंग कुरंग भुजंगम, भूत भविष्य भयान बनाए।
देव अदेव खपे अहमेव, न भेव लख्या भ्रम सिऊँ भरमाए।
वेद पुरान कतेब कुरान, हसेब थके कर हाथ न आए।
पूरन प्रेम प्रभाउ बिना, पति सिऊँ किन श्री पद्मावत पाए॥[1]

दम्भी, अहंकारी, आडम्बर-प्रिय, आचारहीन तथा लोभ और लालच में ग्रस्त व्यक्ति व्यर्थ ही अपने को खोते हैं। इन बाह्य प्रदर्शनों, ढोंगों से अपने को धोखा देने के अतिरिक्त और कुछ नहीं बनता। परमात्मा की प्राप्ति के लिये निश्छल, निःस्वार्थ और निस्पृह प्रेम की आवश्यकता होती है :

ध्यान लगाइ ठग्यो सब लोगन, सीस जटाँ नख हाथ बढ़ाए।
लाइ बिभूत फिर्यो मुख ऊपरि, देव अदेव सबै डहकाए।
लोभ के लागे फिर्यो घर ही घर, जोग के न्यास सबै बिसराए।
लाज गई कछु काज सर्यो नहिं, प्रेम बिना प्रभु पान न आए॥[2]

सच्चे भक्त-स्वरूप के सम्बन्ध में दशमेश जी का विचार है :

दुहुअन सम जोऊ करि जानै। निन्द्या उस्तति सम करि मानै॥
हम ताही कह ब्रह्म पछानहि। वाही कहि द्विज के अनुमानहि॥[3]

कबीर, तुलसी आदि भक्त सन्तों ने स्वयं भक्तों अथवा हरि के जनों का दास बताते हुए अपने को गौरवान्वित किया है। कहीं कहीं उनकी दृष्टि में हरिजन का महत्त्व हरि से भी अधिक महान् प्रतीत होता है। साधारणतया वे हरि और हरिजन को पृथक् नहीं मानते। इसी आशय का समर्थन गुरु जी ने भी किया है :

हरि हरिजन दुई एक है बिभ विचार कछु नाहि।
जल ते उपज तरंग जिऊ जल ही बिखै समाहि॥[4]

अगले छन्द में पुनः वे कहते हैं कि अहंकार-रहित हरिजन के मन-मंदिर में ही परमात्मा के दर्शन करें। वेद, कुरान, इत्यादि पुस्तकों में उसे ढूँढ़न का श्रम करना निष्फल है :

---

१. अकाल स्तुति, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छन्द सं० २४५
२. सवैये, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छन्द सं० १८
३. रणखम्भकला चरित्र, पाख्यान चरित्र, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छन्द सं० २
४. विचित्र नाटक, पृ० ४४

जे जे बादि करत अहंकारा।
तिन ते भिन्न रहत करतारा।
वेद कतेब बिखै हरि नाहीं।
जान लेहु हरिजन मन माहीं ॥[1]

भावना-विहीन व्यक्ति की सारी क्रियायें निष्फल हो जाती हैं। विषय-वासनाओं में अनुरक्त वह जब तक उनको अपने अधीन नहीं कर लेता। तब तक उसे भक्ति-भावना ऐसे दिव्यरत्न की कभी उपलब्धि नहीं हो सकती :

सिजदे कर अनेक तोपची कपट भेस, पोसती अनेकहा निवावत हैं सीस कौं।
कहा भयो मल्ल जो पै काढ़त अनेक डंड सो तौ न डडौत अस्टांग अथ तीस कौं।
कहा भयो रोगी जो पै डार्‍यो रह्यो उर्धमुख मन ते न मूंड निहार्‍यो आदईस कौं।
कामना अधीन सदा दामना प्रवीन, एक भावना विहीन कैसे पावै जगदीस कौं॥[2]

इस प्रकार सब प्रकार के स्वार्थों का परित्याग करके निष्ठापूर्वक व्यक्ति को हरि-भजन में तत्पर हो जाना चाहिए :

अच्युत आदि अनील अनाहद, सत सरूप सदैव बखाने।
आदि अजोनि अजाइ जराबिनु परम पुनीत परमेश्वर माने।
सिद्ध स्वयंभु प्रसिद्ध सबै जग, एक ही ठौर अनेक बखाने।
रे मन रंक कलंक बिना हरि, तै किहि कारण ते न पछाने ॥[3]

गुरु गोविन्दसिंह ने भक्ति और ज्ञान का सुन्दर समन्वय किया है। अज्ञानी व्यक्ति अन्धविश्वासों और मिथ्या आडम्बरों मे फँसकर ढोंगी बन जाता है तथा प्रत्येक के अन्धानुकरण मे लग जाता है जिससे बड़ा अनिष्ट होता है। इसी अविद्या अथवा अज्ञान से वे सावधान करते हुए लिखते हैं :

खूक मलहारी गज गदहा विभूत धारी।
गिदुआ मसान वास करिओई करत है॥
घुग्घू मटवासी लगे डोलत उदासी।
मृग तरवर सदीव मौन साधै ही मरत हैं॥
बिन्द के सिधैया ताहि हीज की बड़ैया।
देत बंदरा सदीव पाइ नागेई फिरत हैं॥

---

१. विचित्र नाटक छंद सं० ६१, पृष्ठ ४४
२. अकाल स्तुति, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छन्द संख्या ७९
३. सवैये वही छन्द संख्या ५

अंगना अधीन काम क्रोध में प्रवीन।
एक ज्ञान के विहीन छीन कैसे के तरत है ॥[1]

ज्ञान-विहीन कितने ही बलवान्, सामर्थ्यवान, ऐश्वर्यवान क्यों न हों फिर भी मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकते :

नाचत फिरत मोर बादर करत घोर,
दामनी अनेक आउ करिओइ करत है।
चन्द्रमा ते सीतल न सूरज ते तपत तेज,
इन्द्र सो न राजा भाव भूप को भरत है।
सिव से तपस्वी आदि ब्रह्मा से न वेदचारी,
सनत कुमार की तपस्या न अनंत है।
ज्ञान के बिहीन काल फास के अधीन सदा,
जुगन की चउकरी फिरौ है फिरत है॥[2]

ज्ञानविहीन व्यक्ति का दान, तीर्थाटन एवं अन्य साधनाएँ सभी निष्फल हो जाती हैं। नित्यप्रति कितने प्रकार के पक्षी कूकते रहते हैं, अनेक मनुष्य रोया करते हैं, बहुत से जल में डूबते-मरते रहते हैं; काशी, गंगा, मक्का के निवासी भी बहुत मिलते हैं, उदासी बनकर भ्रमण करनेवालों की संख्या भी कम नहीं है, कितने ही आकाश में उड़ते हैं, परन्तु यह सभी वे अपने स्वार्थ एवं अज्ञानतावश ही करते रहते हैं।[3]

इसलिये ज्ञान की परम आवश्यकता है। बिना ज्ञान के भगवत्भक्ति का सही रूप समझ में नहीं आ सकता है। मनुष्य सांसारिक कार्यों में इतना व्यस्त रहता है कि वह अपने कार्यक्रम में कुछ क्षण ईश्वर के स्मरण के लिये नहीं रख सकता। बहुधा भौतिकता में आसक्त जीव तो ईश्वर पर विश्वास तक नहीं करता। विषय-वासनाएँ और सासारिक ऐश्वर्य उसकी चित्तवृत्ति को अपने में इतना तन्मय कर लेते हैं कि वह उन्हीं को सर्वस्व समझ कर जगत के वास्तविक तत्त्व की अवहेलना करने लगता है। इस अवहेलना के कारण उसमें अहंकार, दम्भ, अभिमान की वृत्ति जाग्रत होती है। बस, यहीं से उसके पतन का प्रारम्भ हो जाता है। इन क्षणिक वासनाओं के प्रलोभन में फँसा हुआ व्यक्ति भवसागर की अथाह तरंगों में विलीन होकर अपना अस्तित्व खो बैठता है। यँह भी निश्चित है कि विषय-वासनाओं के रहते मनुष्य

---

१. अकाल स्तुति, श्री दशम गुरु ग्रन्थ, छन्द सं० ७१
२. वही छन्द सं० ७६
३. वही छन्द सं० ८९

भगवान में अनुरक्त नहीं हो पाता। भक्ति के लिये जिस एकान्तता और एकाग्रता की आवश्यकता पड़ती है, सांसारिक विषयों में लिप्त होने पर उसका सर्वथा अभाव हो जाता है। अतः मन को एकाग्र कर ईश्वर की भक्ति प्राप्त करने के लिये विषय-वासनाओं का परित्याग परमावश्यक है :

सीस पटकत जाके कान में खजूरा धसै,
मूंड छटकत मित्र पुत्र हूं के सौक सौं।
आक को चरैया फल फूल को भछैया,
सदा बन को भ्रमैया और दूसरों न बोक सौं।
कहा भयो भेड जो घसत बीस वृछन सौं,
माटी को अछैया बोल पूछ लीजे जोक सौं।
कामना अधीन काम क्रोध में प्रवीन,
एक भावना विहीन कैसे भेटे परलोक सौं ॥[१]

इस निस्सार संसार में विषय-वासनाओं के लिये दौड़ लगाना निरर्थक है। मनुष्य का एकमात्र परम उद्देश्य तो विश्व में व्याप्त एकमात्र सत्य, शाश्वत वस्तु को प्राप्त करना है। अतः उसकी प्राप्ति के लिये संसार का मोह छोड़ना होगा। भक्तों-सन्तों ने इस नश्वर और क्षणिक संसार को उपेक्षा की दृष्टि से देखा है। गुरु गोविन्दसिंह के सुन्दर शब्द इसी सत्य को ध्वनित करते हैं :

रावन के महि रावन के, मनु के नल के चलते न चली गउं।
भोज दिलीपत कौरत्रि के, नहि साथ दयो रघुनाथ चलि कउं।
संगि चली लौं नहीं काहु के, साच कहो अध अउध दली सऊं।
चेत रे चेत अचेत महां पसु, काहू के संगि चली न हली हंऊ।[२]

संसार के सारे आडम्बर व प्रदर्शन सभी एक दिन काल की फास में पड़ जायेंगे। मानव को इसका ज्ञान नहीं है :

काहे कउ वस्त्र धरो भगवे मुनि ते सब पावक बीच जलैंगी।
बची इमु रीत चलावत हो, दिन द्वेक चले सबदा न चलैंगी।
काल कराल की रीति महां, इह काहू जुगेस छली न छलैंगी।
सुन्दरि देहि तुमारी महा मुनि अन्त मसान है धूर रलैंगी।[३]

संसार में वही धन्य है जिसने विषय-वासनाओं का मोह छोड़ परमात्मा को ही अपना सर्वस्व मान लिया है। उसी का जीवन सफल है। मानव-जीवन सब योनियों

१. अकाल स्तुति, श्री दशम गुरु ग्रन्थ, छन्द सं० ८०
२. चौबीस अवतार, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छन्द सं० ४९२
३. वही छन्द सं० ४९४

में दुर्लभ है और उसमें भी परमात्मा के प्रति अनुरक्ति तो और भी दुर्लभ है। जिसने मनुष्य-योनि पाकर अपने को प्रभु भक्ति में तल्लीन कर दिया-वही परमपद का अधिकारी है।

गुरु गोविन्दसिंह ने इस भाव की बड़ी उत्कृष्ट अभिव्यक्ति की है :

धन्य जीयो तिह को जग मे मुख ते हरि चित में जुद्ध विचारे।
देह अनित न नित्त रहे जसु नाव चढ़े भव सागर तारे।
धीरज धाम बनाइ इहै तन बुद्धि सु दीपक जिऊं अजियारै।
ज्ञानहि की बढनी मनहु हाथ लै कातरता कुतवार बुहारै।[1]

अतएव परमात्मा की प्रेमाभक्ति जो भी प्राप्त करता है वह परमात्मा का सच्चा भक्त हो जाता है। सच्चे भक्त, जीवन मुक्त, ब्रह्मज्ञानी और निष्काम कर्मयोगी की स्थिति में कोई अन्तर नहीं है।[2] ऐसा भक्त परमात्मा के साथ मिलकर सदैव के लिये एक हो जाता है।

शक्ति-उपासना

मध्यकाल में शाक्तमत की प्रतिष्ठा प्रायः समाप्त सी हो गई थी। समाज में उनकी साधना को लोग घृणा की दृष्टि से देखने लगे थे। मध्य-युग के सन्तों, भक्तों, महात्माओं में शाक्तों की जुगुप्साजनक साधना की निन्दा की एक परम्परा सी बन गई थी। शाक्तों के प्रति कबीर का विरोध सबसे अधिक था। एक ओर वैष्णव भक्त जहाँ समाज की हार्दिक सहानुभूति के पात्र बनते जा रहे थे, वहीं शाक्तों को निम्न श्रेणी का समझा जाने लगा था। जिस मत से गुरु गोविन्दसिंह सम्बन्धित थे, स्वयं उसी में शाक्तों की निन्दा भरी पड़ी है। किन्तु गुरु जी ने जहाँ एक ओर निर्गुण ब्रह्म के उपासक के रूप में, अपने भक्ति-रूप की झाकी प्रस्तुत की है, वहीं दूसरी ओर उन्होंने स्थान-स्थान पर शक्ति एवं उसी के पर्याय देवी, भवानी आदि नामों का स्मरण करके शक्ति के प्रति अपनी आस्था प्रकट की है। ग्रंथ रचना से पूर्व और अन्य सभी महत्त्व-पूर्ण स्थलों पर उन्होंने देवी के ऐश्वर्य एवं प्रताप का प्रचुर वर्णन किया है। उससे यह तो पूर्ण निश्चित हो जाता है कि उनकी शक्ति के प्रति अविचल आस्था थी। श्रीकृष्णावतार ग्रंथ में गोपियाँ दुर्गा की पूजा करती हुई दिखाई गई हैं।[3] जिसका उल्लेख उसके अतिरिक्त अन्य किसी तत्सम्बन्धी ग्रंथ में नहीं मिलता।

यह एक विचारणीय बात है कि गुरु जी ने शक्ति को इतना अधिक महत्त्व क्यों दिया? स्थान-स्थान पर अपने काव्य ग्रंथों के पात्रों, नायकों-नायिकाओं से देवी स्तुति,

---

१. कृष्णावतार, चौबीस अवतार, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छन्द सं० २४९२
२. श्री गुरु ग्रंथ दर्शन, पृष्ठ ३१२
३. कृष्णावतार, चौबीस अवतार, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छन्द सं० २४५, २४६

पूजन आदि करवाने में उनका क्या प्रयोजन है ? इसके तीन कारण हो सकते हैं। पहला यह कि गुरु जी का जन्म पूर्व मे हुआ था, जहाँ पर शाक्तमत का अधिक प्रभाव था। दूसरा, शाक्तमत स्वयं दो धाराओं में प्रवाहित हो रहा था, एक तो वामाचारी था और दूसरा लोकाचार की रक्षा करते हुए शक्ति की विशुद्ध उपासना का समर्थक था। तीसरा शक्ति की उद्भावना शत्रुओं के विनाश करने की भावना में स्थित है। दशमेश जी की रचनाओं के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि वे लोकाचार-समर्थित शक्ति के उपासक थे। बल, पराक्रम, प्रताप की अधिष्ठातृ देवी होने के कारण गुरु गोविन्द जैसे वीर पुरुष को उसकी उपासना अधिक आकर्षक प्रतीत हुई। इस पर विस्तृत विवेचन आगे प्रस्तुत किया गया है।

गुरु गोविन्द सिंह के समय तक सिक्खों पर मुसलमानों के अत्याचार पराकाष्ठा को पहुँच गये थे। देवी के भयंकर विकराल रूप की कल्पना में संभवतः गुरुजी को अधिक सन्तोष मिला। मध्ययुग मे शक्ति की उपासना, लडने-भिड़ने वाली राजपूत जातियों में विशेष रूप से प्रचलित थी। युद्धों में देवी शत्रुओं का संहार करती, शत्रुओं के मुण्डों का हार पहनती, उसके अधर रक्त के प्यासे रहते, उसके गण मास, अस्थि, मज्जा का बडे प्रेम से भोग लगाते, रुधिर की नदी में रणचण्डी स्नान करती, यही वीरों के लिये अतीव आकर्षण प्रतीत होता था। संस्कृत साहित्य में इसका वर्णन युद्धादि के प्रसंगों में मिलेगा। हिन्दी के वीर गाथा में जब कि युद्धों की सर्वत्र प्रधानता थी, युद्धस्थल रक्तरंजित प्रदर्शित किये जाते और भीषण युद्ध के मध्य एवं अन्त में देवी अपने गणों सहित वहाँ पहुँचकर रुधिर पान करती। उसकी वेश-भूषा और कृत्यों का ऐसा वर्णन होता था, जिससे उसकी विकरालता एवं बीभत्सता का सहज ही अनुमान किया जा सकता है। वह शोणित से भरे पात्र को लेकर युद्ध-स्थल पर नृत्य और रुधिर पान करती हुई बताई गई है। उसके गण एवं सैनिक तो स्वरूप आकार-प्रकार में उससे अधिक भिन्न होते थे। मास, मज्जा, अस्थि, रुधिर उनको अत्यधिक प्रिय बताये गये हैं। युद्ध के वर्णनों के साथ ऐसा वर्णन करना, एक परिपाटी सी बन गई जिसका परिपालन कवियों ने खूब किया है।

मध्यकालीन राजपूत शासकों, सामन्तों एवं सैनिकों में बहुतों की कुल देवी भी काली, भवानी, चण्डी आदि कही गई है। शैवों के अधिष्ठाता शिव की पत्नी, पार्वती, काली, दुर्गा, भवानी आदि अनेक नामों से प्रसिद्ध हैं। विभिन्न अवसरों पर देवी के पृथक-पृथक् रूपों, तदनुसार कृत्यों एवं नामों के प्रयोग भी मिलते हैं, यथा आदि-शक्ति, आदि-जननी, महामाया, महाशक्ति, पार्वती, वैष्णवी, काली, दुर्गा, भवानी, चण्डी, प्रलयकारी, दैत्यमर्दिनी आदि। राजपूतों में देवी का शत्रु-संहारक रूप विशेष रूप से पूज्य था। इस रूप की उपासना उनमें इतनी लोकप्रिय

हुई कि वे अपनी तलवार तक को भवानी का साकार रूप समझते थे। इस शक्ति-उपासना का प्रभाव इतने व्यापक रूप से पड़ा कि एक भी ऐसा महान देवता नहीं जिसके साथ उसकी शक्ति अथवा पत्नी न हो यथा शिव पार्वती, सीताराम, राधाकृष्ण, लक्ष्मी-नारायण आदि। शाक्तों का सम्प्रदाय अब प्रबल नहीं रहा, किन्तु यह मानना पड़ेगा कि उनकी उपासना की मूल भावना को भारत के सभी सम्प्रदायों ने अपना लिया जो आज भी अक्षुण्ण रूप से विद्यमान है।

शक्ति-उपासना की प्राचीनता

शक्ति-पूजा का प्रारम्भ कब से हुआ, इस सम्बन्ध में विद्वान अभी तक एकमत नहीं हो सके हैं। वेदों के प्रति अत्यधिक निष्ठा के कारण भारत का धार्मिक वातावरण कुछ ऐसा बना हुआ है कि प्रत्येक सम्प्रदाय मत-मतान्तर का व्यक्ति अपनी बातों को सीधे वेदों से सम्बद्ध अथवा सिद्ध करने का प्रयास करता है। यही बात शक्ति तथा उनके व्याख्याकारों एवं विद्वानों के सम्बन्ध में भी सत्य है। वेदों के ठीक-ठीक अर्थ के सम्बन्ध मे भारतीय और पाश्चात्य विद्वान पूर्णतया एकमत नहीं हैं। वेदों के प्रसिद्ध भाष्यकार महर्षि दयानन्द, महर्षि अरविन्द, पं० जयदेव विद्यालंकार एवं पंडित दामोदर सातवलेकर आदि केवल नाम-सादृश्य के आधार पर किसी मत को वेदसम्मत मानने के पक्ष में नहीं हैं। उनकी दृष्टि में यह प्रणाली अशुद्ध एवं असंगत है। पाश्चात्य परम्परा से वेद का भाष्य करने वाले विद्वानों का मत इसके विपरीत है। प्रथम मत के अनुसार वेदों में श्री, सरस्वती, देवी, लक्ष्मी आदि नाम अवश्य आये हैं; परन्तु प्रसंग, स्थान, अवसर आदि के अनुसार वे परमात्मा के विभिन्न नामों के द्योतक हैं, न कि किसी सम्प्रदाय की अधिष्ठातृ अथवा स्वामिनी आदि के[1]। बहुधा वे एक ही परमेश्वर के विविध गुणवाचक नाम हैं। राम, दशरथ, अयोध्या आदि शब्दों का प्रयोग वेद के कुछ स्थानों में हुआ है। इसी से कुछ लोगों ने वेदों में राम-कथा का मूल घोषित करने की चेष्टा की है। परन्तु वर्तमान समय के विद्वान इस बात पर एकमत हैं कि पुरुषोत्तम राम के स्वरूप-विकास की कड़ी को वेदों के राम से जोड़ना नितान्त भ्रममूलक है। ठीक यही बात शाक्तों के सम्बन्ध में भी सत्य है। प्रायः कुछ गतानुगतिको लोकः के अनुसार वेदों के सम्बन्ध में जो धारणा है, उसके अनुसार शाक्तमत को वेदसम्मत सिद्ध करने वालों का समाधान होना कठिन ही है।

इधर कुछ वर्षों से सिन्धुघाटी की खोजों से इतिहास के विद्वानों को पुरातन युग के आश्चर्य और विस्मय-भरे लोक में विचरण करने के अनेक सूत्र हाथ लगे हैं।

---

१. सत्यार्थ प्रकाश, समुल्लास १.

शाक्त, शैव आदि धर्मों की प्राचीनता का अन्वेषण करने का प्रयत्न विद्वानों ने इन्हीं खण्डहरों के आधार पर किया है[1]।

इन खण्डहरों में ऐसी बहुत-सी सामग्रियों, मूर्त्तियों, तंत्रवादि के अवशेष मिले हैं, जिनसे शक्ति-उपासना की प्राचीनता सम्बन्धी मत को थोड़ा बल मिल सकता है।

जहाँ तक साहित्यिक सामग्री में शक्ति-उपासना सम्बन्धी लिखित प्रमाणों का प्रश्न है, वहाँ श्रुति, स्मृति और धार्मिक इतिहास, गृह्यसूत्रों तक में शक्ति की उपासना का कोई निश्चित संकेत उपलब्ध नहीं होता[2]। महाभारत मे दुर्गा का उल्लेख मिलता अवश्य है; परन्तु प्रक्षिप्तांशों की दृष्टि से महाभारत के सारे स्थल उतने ही प्राचीन नहीं माने जाते, जितने मूल महाभारत के रहे होंगे। व्यास के जय काव्य से भारत, भारत से महाभारत बनने तक पर्याप्त समय लगा होगा। इस अवधि मे निरन्तर विकसित होने वाली उपासना-पद्धतियों, घटनाओं एवं विचार-धाराओं का उसमें आ जाना विशेष आश्चर्य की बात नही है। इससे इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय धार्मिक-साहित्य में शक्ति-पूजा का उल्लेख अधिक प्राचीन नहीं है। पौराणिक-युग में शक्ति-पूजा के स्पष्ट निर्देश मिलते हैं। हरिवंश-पुराण में देवी को महिषासुरमर्दिनी, सुरा और मांस की भक्षिका बताया गया है। वह यशोदा की पुत्री होकर अवतरित होती है, जिसे कंस ने पत्थर पर पटक कर मार डाला था। उसे वासुदेव की बहन और विन्ध्याचलवासिनी भी कहा गया है। कुछ पुराणों में उसे सम्पूर्ण देवों की अधिष्ठातृ देवी स्वीकार किया गया है। इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध मे भी विविध पुराणों में भिन्न प्रकार से वर्णन मिलते हैं। शुंभ-निशुम्भ से निपीड़ित होकर देवताओं का हिमालय में पार्वती की शरण में जाना बताया गया है। वे स्नान करके लौट रही थीं, तभी शिवजी ने देवताओं के कष्ट को दूर करने के लिये पार्वती को संकेत किया। तत्काल उनके शरीर से अम्बिका उत्पन्न हुईं। इस क्रिया से पार्वती का शरीर काला पड़ गया, तब से वे लोक में कालिका नाम से प्रसिद्ध हुईं। शुंभ-निशुम्भ से लड़ते समय, क्रोधाभिभूत पार्वती के मस्तक की गोराई जाती रही। युद्ध-स्थल की बीभत्सता में उन्हें शत्रुओं के सिरों की माला पहनने की इच्छा हुई। अतः नरमुण्डों की माला धारण करने से वह 'चामुण्डा' कहलाईं।

'देवी भागवत' शाक्तों का मुख्य पुराण है। देवी और मार्कण्डेय पुराणों में भी देवी का विस्तार से वर्णन है। रामायण में भी देवी की स्तुतियों का समावेश है जो निस्सन्देह बाद के प्रक्षेप हैं। शाक्तों की मान्यता के अनुसार तो उपनिषदों में देवी

---

१. हिन्दुत्व, पृष्ठ ७१८.

२. भारतीय दर्शन, पृष्ठ ५४४—५४९

का ही ब्रह्मरूप से वर्णन किया गया है। देवी से भिन्न अन्य किसी सत्ता को वे नहीं मानते। उनके पुराणों में देवी से ही ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि सभी देवताओं की उत्पत्ति कही गई है। ऊपर के प्रमाणों से इतना तो स्पष्ट है कि शक्ति-पूजा के विकास में अवश्य ही दीर्घ समय लगा होगा। महाभारत से प्राचीनतर ग्रंथों में उसका उल्लेख नहीं मिलता। दुर्गा, रुद्राणी, भवानी और उमा शब्द यत्र-तत्र प्रयोग में आये हैं, पर वे शक्ति-पूजा को प्रमाणित नहीं करते। बाद में शक्ति-पूजा का विशद-वर्णन तंत्र-ग्रंथों में ही मिलता है, क्योंकि तंत्रों में स्त्री-पूजा को भारी महत्त्व दिया गया है। ईश्वर में मातृभाव की विद्यमानता पुरानी है। हिन्दुओं में ईश्वर की साधारण स्तुति है "त्वमेव माता च पिता त्वमेव", "माता धाता पितामहः" आदि। बाइबिल और कुरान में भी आदम और उसकी स्त्री को साथ-साथ दर्शाया गया है। वेदों में भी परमेश्वर के स्त्रीलिंग के नामों की विद्यमानता है[1]।

'वाजसनेयी संहिता' में दुर्गा रुद्र की भगिनी कही गई है; लेकिन 'तैत्तिरीय आरण्यक' दुर्गा को रुद्र की पत्नी कहता है। रुद्र के महादेव और शिवरूप होते समय, दुर्गा भी उमा, अम्बिकारूपिणी हो जाती है। इस प्रकार वैयक्तिक देवता की उपासना के साथ-साथ मातृभावना की भी वृद्धि होती गई और अन्त में भक्ति-काल में लोग समझने लगे कि भगवान के साथ, उनकी स्त्री शक्तिरूपिणी भगवती की भी पूजा आवश्यक है। इस भावना के बलवती होते ही, एक निष्क्रिय, निरंजन, निराकार, निर्गुण परमात्मा के त्रिगुणात्मक रूप ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र की तीन शक्तियो महासरस्वती, महालक्ष्मी और महाकाली स्वीकृत की गईं। सरस्वती, लक्ष्मी, काली तीनों की पूजा आज तक समाज में हो रही है, परन्तु ज्यों-ज्यों विष्णु का स्थान राम-कृष्ण लेते गये; वैसे-वैसे सीता और राधा भी प्रधान होती गईं। ब्रह्मा की पूजा कहीं न होने के कारण, सरस्वती की पूजा को अधिक विस्तार नहीं मिला। बंग-प्रदेश में निस्सन्देह सरस्वती पूजा का पर्याप्त प्रचलन है। शिव के कल्याणकारी रूप की समानता में, शान्तिमय शक्ति का रूप और रुद्र के भयानक वर्णन के सादृश्य में काली का स्वरूप विकराल बनता गया।

दुर्गा का सम्बन्ध सीधे रुद्र के साथ होने के कारण रुद्र सम्बन्धी भावों की भिन्नता के अनुरूप दुर्गा के भाव भी भिन्न हुए। यथा-अम्बक शिव की महाशक्ति भुवनेश्वरी, कबन्ध शिव की छिन्नमस्ता,[2] दक्षिण मूर्ति कालभैरव की भैरवी, दारिद्रय रुद्र की धूमावती, एक वक्त्र महारुद्र[3] की बगलामुखी, मतंग शिव की मातंगी, रुद्र शिव

---

१. सत्यार्थ प्रकाश, समुल्लास १,

२. शतपथ ब्राह्मण, १-१-२,

३. वही ३-५-४,

की कमला। काली के कृत्यों की दृष्टि से भी उसके नाम प्रचलित हुए। जैसे, चण्ड-मुण्ड को मारने के कारण चामुण्डा[1], नर-मुण्ड मालाधारिणी होने के कारण कापाली, बन में निवास करने के कारण कान्तारवासिनी, विजयिनी होने के कारण पार्वती, पार्वती-कोष से निकलने के कारण कौशिकी, महिषासुर का वध करने के कारण महिषासुर मर्दिनी और शील स्वरूप और रूप के विचार से काली, कुमारी, चण्डी, भीमा, भ्रामरी, भवानी आदि नाम दिये गये हैं। कुल देवी के रूप में मान्यता प्राप्त कर लेने पर भी उसके अनेक नाम मिलते हैं। यथा कात्यायन कुल की देवो, कात्यायिनी आदि। काली की सात शक्ति और विभूतियों के नाम, ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, नारसिंही, ऐन्द्री हैं। ये नाम प्रकट करते हैं कि जिस प्रकार शिव शैवों द्वारा ब्रह्मा, विष्णु आदि से बड़े बताये गये हैं, उसी प्रकार काली भी अन्य देवियों से अधिक महान् हैं और उसी महत्ता के द्योतक भिन्न नाम दिये गये हैं।

संहिता-काल से लेकर बौद्धमत के प्रचार के समय तक वैदिक विचारधारा चार मार्गों मे प्रवाहित हुई। कभी कर्म-मार्ग को प्रधानता मिली, कभी ज्ञान-मार्ग विशिष्ट समझा गया और कभी योग-मार्ग को महत्ता प्रदान की गई तो कभी भक्ति-मार्ग लोक-प्रिय बना। मार्गों में विभिन्नता होने के कारण, उनके लक्ष्यों में भी भेद उत्पन्न हो गया। कोई भोगवादी रहा, किसी ने मुक्ति को जीवन का चरम लक्ष्य मानकर उसी मे सर्वस्व लगा दिया। किन्तु एक ही मार्ग का अवलम्बन करते हुए, भुक्ति-मुक्ति दोनों की प्राप्ति के साधन को किसी ने बताने का यत्न नहीं किया। निरन्तर विकसित होने वाले मानव-मस्तिष्क को, इन एकागी मार्गों से सन्तोष नहीं हुआ। वह इन दोनों मार्गों के भीतर एक ऐसे तत्त्व की खोज में लगा रहा जिसको ग्रहण करनेवाले मानव को भोग और वैराग्य दोनों की ही प्राप्ति हो जाये। मानव-जीवन किसी की एकागी साधना करने से अपूर्ण ही रह जाता है। एक के पूर्ण परित्याग से जीवन का दूसरा पक्ष अधूरा हो जाता है। जिस मनुष्य के जीवन मे उपरोक्त दोनों तत्त्वों का समावेश भलीभाँति होगा वही अपना विकास सन्तुलित ढंग से कर सकता है। ऐसे ही लोग भुक्ति-मुक्ति दोनों की आकाक्षा रखते हैं, क्योंकि मानव-समाज में आधिक्य उन्हीं का पाया जाता है। भोग में लगे रहकर विराग, ध्यान से दूर रह कर भी वे ईश्वर-प्राप्ति, मुक्ति या निर्वाण की चाहना करते हैं। इसी से चमत्कार की ओर मनुष्य सहसा दौड़ने लगता है। अशिक्षितों का जादू-टोना, शिक्षितों के विज्ञान पर विजय प्राप्त करना चाहता है। संक्षेप में मुख्य सुखों की प्राप्ति चाहता है, वह

---

१. मार्कण्डेय पुराण, ८७-२५

उसका स्थायित्व भी चाहता है।[1] विज्ञान की खोज के आकर्षण ने मनुष्य को प्रकृति-रहस्यों को जानने के लिये अत्यधिक उत्सुक और जागरूक बना दिया है। ईश्वर के अस्तित्व के सम्बन्ध में आकर्षण और जिज्ञासा भी इसी का परिचायक है।

तंत्र-मंत्र की उत्पत्ति के मूल में भी, भुक्ति-मुक्ति दोनों को एक साथ प्राप्त करने की भावना निहित है। विज्ञान के अन्वेषणों के अभाव में, तान्त्रिकों ने अलौकिक शक्तियों के चमत्कार पर विश्वास करना आरम्भ किया। उनको सन्तुष्ट कर चमत्कारिक सिद्धियों की प्राप्ति के निमित्त अनेक प्रकार के मंत्र-तंत्र, टोने भी प्रारम्भ होने के कारण अशिक्षित जनता में वह खूब प्रचलित हुआ। इस मार्ग से अणिमादि गुण, दूरात्त-दर्शन, दूरात्तश्रवण, रूपादि परिवर्तन, आकाश भ्रमण, परपिन्ड प्रवेश, घटपाषाण स्फोटन, प्रचण्ड वेग सिद्धि, मृतकोत्थापन, जरामरणनाशन आदि की सहज शक्ति से समन्वित हो साधक अलौकिक आनन्द अनायास ही उठा सकता है।[2] इस प्रकार तंत्रवादी, वैज्ञानिकों से भी अधिक प्रभाव जमाने में सफल हो गये। जहाँ वैज्ञानिक केवल अपराप्रकृति पर विजय पाने का दावा कर सकता है, वहाँ तान्त्रिकों ने तंत्र के द्वारा अपरा के अतिरिक्त परा प्रकृति को भी वश में रखने के योग्य शिक्षा प्रदान करने का दावा किया।

तंत्र में स्त्रीत्व को प्रधानता दी गई है, इस सम्बन्ध में संकेत किया जा चुका है। शक्ति को ही प्रमुख तत्त्व माना गया है। शाक्तों की साम्प्रदायिक शब्दावली में ये परा; ललिता, भट्टारिका, तथा त्रिपुरसुन्दरी कहलाती है। स्त्रीतत्त्व की प्रमुखता होते हुए भी नरतत्त्व (शिव) भी ग्रहण किया गया है; परन्तु साधनरूप में ही। अत: इस शक्ति अथवा त्रिपुर सुन्दरी की पृथक् पहचान होनी चाहिये। साम्प्रदायिक विचारों के अनुसार प्रत्येक शाक्त अपने को त्रिपुरसुन्दरी मानता है; क्योंकि नियामक शक्ति स्त्री है। अतः सभी संसार में विचरण करने वाले स्त्री हैं। शाक्तों की इस भावना का बंगाल में बहुत प्रभाव पड़ा। फलतः मध्यकालीन धर्मसाधना में प्रमुख स्थान रखने वाले भक्त चैतन्य पर इस भावना का गहरा प्रभाव पड़ा। मीराबाई तथा अन्य मध्यकालीन वैष्णव भक्त स्वयं चैतन्य के सदृश राधा और गोपी-भाव से रहते थे। वैष्णवों की कृष्णभक्तिशाखा में राधा को प्रमुखता मिलने का कारण भी शाक्त-भाव ही है। सखी-भाव की उपासना में भी प्रत्येक व्यक्ति स्त्री ही होती है, पुरुष कोई नहीं। वैष्णवीय राधाकृष्ण की भक्ति को शाक्त-विचारों ने पर्याप्त प्रभावित किया।

शक्ति के पूर्व-उल्लिखित सात प्रमुख रूप माने गये हैं—ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी,

---

१. भारतीय ईश्वरवाद, पृष्ठ ३५०

२. वही, पृष्ठ ३५१

वैष्णवी, नारसिंही तथा ऐन्द्री[1]। यही सात शक्तियाँ अनेक रूप धारण करती हैं। यशोदा की पुत्री भीमा, शाकम्भरी आदि शक्ति के ही रूप हैं। इसी को महामाया, आदि शक्ति, आदि जननी कहा गया है। वस्तुतः विष्णु के अवतारों के सदृश ये एक ही के अनेक रूप नहीं हैं; बल्कि शाकम्भरी आदि देवियों का अपना पृथक्-पृथक् विकास हुआ है। गुरु गोविन्दसिंह ने भी एक स्थान पर चण्डी और काली का अलग-अलग रूप मे वर्णन किया है।[2] उनके पूर्व दुर्गा-सप्तशती में भी इसी प्रकार के वर्णन मिलते हैं।[3] विद्वानों का मत है कि अनेक देवियाँ भिन्न जातियों, वन-वासियों, अनार्यों आदि की देवियाँ थीं।[4] प्रारम्भ से सुरा और मास से उनकी पूजा होती रही होगी, जब रुद्र तथा अग्नि को एक कर लिया गया तो दुर्गा की शक्ति अग्नि की लपट के रूप में उसकी जिह्वा मान ली गई।[5] यही उसकी विकरालता का मूल कारण बना। रुद्र की पत्नी के रूप में अनेक देवियों की कल्पना कालान्तर में होती गई। रुद्र की पूजा के साथ इनकी पूजा भी प्रचलित हो गई। देवी की पूजा के अधिक प्रचलन का कारण भय, आतंक तथा अनेक सासारिक एवं अलौकिक सिद्धियों की प्राप्ति का प्रलोभन था।

प्रारम्भ में वाराही, वैष्णवी, नरसिंही आदि देवियों की कल्पना अवतारों की पत्नियों के रूप में हुई। इनकी पूजा की लोकप्रियता ने, ब्राह्मणों को कात्यायिनी, कौशिकी आदि देवियाँ और कल्पित करने का अवसर दिया। कालान्तर में समाज की नैतिक और आचार-प्रस्थान व्यवस्था से ऊबे हुए कापालिक और कालमुख भी शक्ति की कल्पना में अनुरक्त हुए। उन्होंने इसमें पशुबलि का समावेश कर दिया। देवी रक्त जिह्वा बनी। यहीं से उसने उग्र और भयंकर रूप धारण किया। कापालिकों, कालमुखों की कृपा से देवी के उग्र एवं विकराल रूप की पूजा होने लगी। संयोग से उसका दूसरा रूप पवित्र रहा। इस दूसरे रूप में देवी की आद्याशक्ति, नियामक शक्ति मानकर पूजा होती रही। इसमें यज्ञ, पूजादि का विधान था। बामाचार ऐसी उत्शृङ्खलता को स्थान नहीं था। प्रार्थना और भक्ति के माध्यम से भक्त अद्वैत शक्ति जगदम्बा की स्तुति उपासना करता था। 'दुर्गा सप्तशती' में भी यज्ञ-उपासनादि की देवी के स्तवन में चर्चा मिलती है।[6] गुरु गोविन्दसिंह ने देवी द्वारा राक्षसों के संहार

---

१. अथ देव्याःकवचम्; दुर्गा सप्तशती श्लोक सं० ९-११, ३२
२. चण्डी चरित्र उक्ति विलास, श्री दशम गुरु ग्रंथ, दोहा सं० १६७-१६८
३. दुर्गासप्तशती अध्याय ७, श्लोक सं० ६-२०
४. हिन्दुत्व पृष्ठ ७१८
५. वही पृष्ठ ७२२
६. दुर्गा सप्तशती, अध्याय १२ श्लोक सं० ४१

के उपरान्त यज्ञ, वेदपाठ आदि के सम्पन्न होने की चर्चा की है।[1] इन शक्ति के उपासकों में संयम, सदाचार एवं सामाजिक नियमों का पालन बराबर मिलता है। देवी की उपासना का तीसरा रूप कामवासना के रूप में प्रकट हुआ। अर्द्धनारीश्वर की कल्पना, सृष्टि की उत्पत्ति सम्बन्धी विचार आदि सभी ने मिलकर इस रूप को सुदृढ़ कर दिया।

जिस प्रकार शक्ति की उपासना विविध रूपों मे विकसित हुई, ठीक उसी प्रकार शक्ति उपासक शाक्तों की भी मुख्यतः तीन श्रेणियाँ की जा सकती हैं (१) साधारण (२) तान्त्रिक (३) शौर्यात्मक। साधारण श्रेणी में वह शक्ति-उपासक आते हैं, जो दुर्गा, सरस्वती, काली, भवानी आदि की पूजा पवित्र भाव से किया करते हैं। पशु-बलि आदि करते हुए भी घृणित भावों को नहीं अपनाते। तान्त्रिक श्रेणी में वे तन्त्रो-पासक व निम्न श्रेणियों के लोग रखे जा सकते हैं जिनका विश्वास है कि देवी मद्य, मास से ही प्रसन्न होती हैं। इनमें तंत्र-पूजा, चक्रपूजा आदि अनैतिक क्रियाओं की भी खूब भरमार रहती है। शौर्यात्मक श्रेणी मे वे लोग आते हैं जो वीरता में विश्वास रखते हैं, जो विजयोल्लास को ईश्वर और रण-क्षेत्र में विजयश्री को मुक्ति स्वीकार करते हैं। इस कोटि के भक्त बडे वीर हुए हैं। यदि एक ओर तंत्र-साधना में भोग ने शक्ति का रूप धारण किया, तो दूसरी ओर ऐसे वीरों ने अपनी अपूर्व वीरता के कारण उस कलंक को धो देने का उत्कर्ष दिखलाया। ऐसे अनेक प्रमाण राजस्थान और महाराष्ट्र के वीरों की जीवनियों में विद्यमान हैं। राजपूत तलवार को भवानी का प्रतिरूप ही मानते थे। आज भी दुर्गापूजा के दिन अस्त्र-शस्त्रों की पूजा होती है। ऐसे खंग-दुर्गा के भक्त, विजय के अतिरिक्त कामुकता और सासारिक विभूतियों की ओर कुछ भी ध्यान नहीं देते थे। मोक्ष या स्वर्ग का प्रलोभन उनकी दृष्टि में सदैव तुच्छ था। वे सदैव लोकोपकार करते हुए 'वीरभोग्या वसुन्धरा' पर सुशासन रखना चाहते थे।

शक्ति-उपासक की तीनों कोटियों में तान्त्रिक साधक; लोक में बहुत हेय दृष्टि से देखे जाने लगे जिससे शाक्तों का समाज मे अनादरपूर्ण स्थान समझा जाने लगा। तंत्र-मंत्र की प्रमुखता के कारण शाक्तमत बड़ी तीव्रता से भगवत् प्राप्ति के लौकिक उपचारों की ओर उन्मुख हुआ। उनके लौकिक उपचार नैतिक और सामाजिक दोनों दृष्टियों से हेय थे। समाज की कुरीतियों, सामाजिक बन्धन, ऊँच-नीच के भेद-भाव के विरोधी होते हुए भी, ये उसे स्वस्थ रूप नही दे सके, जिससे शाक्त मत की अवनति होने लगी। इसी कारण मध्यकाल के सन्तों, भक्तों, महात्माओं में शाक्तों की साधना की निन्दा एक परम्परा सी बन गई, जिसका उल्लेख पहले हो

१. चण्डीचरित्र उक्ति विलास, श्री दशम गुरु ग्रन्थ, सवैया सं० ५४

चुका है। गुरु जी के शक्ति के उपासना विषयक तीन ग्रंथ उपलब्ध होते हैं—चण्डीचरित्र उक्ति विलास, चण्डीचरित्र, चण्डी दी वार। 'चण्डी चरित्र उक्ति विलास' सात अध्यायों और दो सौ तैतीस छन्दों में वर्णित है। दुर्गासप्तशती कुल तेरह अध्यायों मे विभाजित है जिसमें कुल सात सौ श्लोक हैं; अतः उसका सप्तशती नाम इस प्रकार सार्थक हो जाता है। 'चण्डीचरित्र उक्ति विलास' में छन्द संख्या कम होने के कारण इसका नाम गुरु जी ने सप्तशती न रखा हो, ऐसा सम्भव है। मार्कण्डेय पुराण के उत्तरार्ध मे एक अत्यन्त सुन्दर शिक्षात्मक प्रसग है—दुर्गा-सप्तशती; उसमें पाँच सौ पैतीस श्लोक, एक सौ आठ अर्थ श्लोक, स्तवन, उवाच, सब मिला कर सात सौ की संख्या पूरी हो जाती है। गुरु जी ने इसी सप्तशती के आधार पर अपने 'चण्डीचरित्र उक्ति विलास' की रचना की है। उस बात का उन्होंने अपनी रचना में प्रत्येक अध्याय के अन्त में स्वयं भी उल्लेख किया है, जैसा कि दूसरे अध्याय मे कहा जा चुका है। इस ग्रंथ में कवि ने मुख्यतः देवी की अपार शक्ति, अनन्त पराक्रम, शौर्य आदि का वर्णन किया है। गुरु जी के दार्शनिक विचारों की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसके साहित्यिक महत्त्व का भी पहले उल्लेख हो चुका है। ग्रन्थ-रचना सम्बन्धी अपने अभिप्राय को प्रकट करके भक्त, देवी के प्रचण्ड रूप का वर्णन प्रारम्भ कर देता है। उसके उपास्य का सबसे महत्त्वपूर्ण रूप यही है :

जोत जगमगे जगति में, चण्ड, चमुण्ड, प्रचंड।
भुज दंडन दंडनि असुर मंडन भुइ नवखंड ॥[1]

दूसरे 'चंडीचरित्र' ग्रन्थ के आठ अध्यायों में अधिकांशतः देवी के युद्धों और उसके बल-पराक्रम का ही विशद वर्णन है। अन्तिम पृष्ठों में उसके अनेक नामों सहित स्तुति की गई है। तृतीय 'ग्रन्थ' चण्डी दी वार' पंजाबी में लिखा गया है और इसमें भी युद्ध और स्तुति दोनों हैं। यत्र-तत्र भक्ति सम्बन्धी दार्शनिक विचारों का भी समावेश हुआ है। शक्तिउपासना विषयक उपरोक्त तीनों ग्रन्थों के अनुशीलन से उनके भक्ति सम्बन्धी दार्शनिक विचारों की स्पष्ट झाकी मिलती है।

यह पहले कहा जा चुका है कि शाक्त अद्वैतवादी होते हैं। शक्ति को परम चिन्मय, अखण्ड, अपार, अनन्त, सर्वव्यापक, अभय, नित्य पवित्र मानते हैं। वह एक अद्वैत शक्ति, निखिल ब्रह्माण्ड का सृजन, नियमन एवं संहार करती है। वही सम्पूर्ण पदार्थों में परिव्याप्त है। दुर्गा सप्तशती मे इसका बड़ा सुन्दर वर्णन मिलता है। गुरु गोविन्दसिंह भी एक स्थान पर देवी के रूप की स्तुति करते हुए कहते हैं:—

खण्डा प्रिथेमे साज के जिन सभ संसारू उपजाइया।
ब्रह्मा बिसन महेस साजि कुदरती दा खेलु रचाइ बनाइआ।

---

1. चण्डीचरित्र उक्ति विलास, श्री दशम गुरु ग्रन्थ, छन्द सं० २

सिन्ध परवत मेदनी बिनु थमा गगन रहाइआ।
सिरजे दानो देवते तिन अन्दरि बाद रचाइआ।
तैंही दुर्गा साजिकै दंता दा नासु कराइआ।
किती तेरा अन्त न पाइआ ॥[१]

देवी के स्वरूप का वर्णन करते हुए उसके अनेक गुणों का उल्लेख किया गया है :

पवित्री पुनीता पुराणी परेयं।
प्रभ्भी पूरणी पारब्रह्मी अजेयं।
अरूपं अनुपं अनामं अठामं।
अभीयं अजीतं महा धर्म धामं ॥[२]

आगे वे पुनः लिखते हैं :

अछेदं अभेदं अकरमं सुधर्मम्।
नमो बाण पाणी धरे चरम धरमं।
अजेयं अभेदं निरंकार नितयं।
निरूपं निरवाणं नाभितयं अकितयं ॥[३]

गुरु गोविन्दसिंह ने देवी का पारब्रह्म, परमेश्वरी, निराकार, सर्वशक्तिमान् आदि अनेक नामों से स्मरण किया है। सृष्टि का सृजन, पालन, नियमन और संहार भी वही करती है। उसी ने ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, वरुण, आदि देवताओं को उत्पन्न किया है। उसी ने साधु, असाधु, तीनों गुण, पाँचों तत्त्व, चारों युग, नारदादि ऋषियों और देवताओं के अभिमान को नष्ट करने के लिए महिषासुर आदि राक्षसों को उत्पन्न किया।[४] राक्षस भी जब देवताओं का दमन कर दम्भी हो गये तो उनका भी संहार कर डाला। जिस प्रकार शैवों ने शिव को सभी देवताओं में श्रेष्ठ तथा शिव का दास बताया है, उसी प्रकार शाक्तों ने देवी की महत्ता का गुणगान किया है। देवी स्तवन पढ़ते हुए यह स्पष्ट आभासित होने लगता है; जैसे देवी ने ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश से लेकर छोटे-बड़े सभी देवताओं का सृजन किया हो। राक्षसों से भयातुर होकर बडे से बड़े देवता तक देवी से अपनी रक्षा की प्रार्थना करते हैं। दुर्गा सप्तशती में ऐसे अनेक प्रसंग आये हैं, जहाँ देवता कातर होकर देवी से अपने त्राण की गुहार लगाते

---

१. चण्डी दी वार, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छन्द सं० २
२. चण्डिचरित्र, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छन्द सं० २५१
३. वही, छन्द सं० २५२
४. चण्डी दी वार, वही, २, ३,

हैं।[१] गुरुजी ने भी इसी भाव को अनेक स्थानों पर व्यक्त किया है। मधुकैटभ के भय से ब्रह्मा का चिन्तित होकर देवी का स्मरण करना।[२] महिषासुर के भय से देवताओं का शिवपुरी जाकर रक्षा की याचना करना,[३] शुंभ से पराजित देवताओं का भयभीत होकर देवी की शरण में जाना,[४] आदि अनेक ऐसे ही प्रसंग हैं।

दशमेश जी ने देवी के अनेक नामों का उल्लेख किया है जो प्रायः देवी के स्वभाव, रूप, गुण और उनके क्रिया-कलापों से सम्बन्ध रखते हैं। यथा—स्वभाव-सूचक नामावली :

नमो जुद्धनी क्रुद्धनी क्रूर करमा।
महा बुद्धनी सिद्धनी सुद्ध करमा॥[५]
नमो जोग जुमाला नमो कारति कचानी।
नमो अंबका तोतला श्री भवानी॥[६]

आगे भक्त देवी के कल्याणप्रद स्वभाव का चित्रण करते हुए लिखता है।

नमो हरखणी बरखणी शस्त्रधारा।
नमो तारणी कारणीयं अपारा।
नमो जोगणी भोगणी परम प्रगया।
नमो देव दइतयाइणी देवी दुरगया।[७]

इसी प्रकार देवी के उग्र, क्रोधी, प्रलयंकार, क्रूर, नृशंस, शत्रु-संहारक स्वभाव के सूचक अनेक नामों का कवि ने उल्लेख किया है। ये नाम अधिकांशतः भक्त कवि ने दुर्गासप्तशती के आधार पर ही लिखे हैं। निम्नलिखित श्लोकों से यह स्पष्ट होता है।

दंष्ट्रा कराल वदने शिरो माला विभूषणे।
चामुण्डे मुण्डमथने नारायणि नमोस्तु ते[८]

---

१. दुर्गा सप्तशती, अध्याय ११ श्लोक सं० ३-३५
२. चण्डीचरित्र उक्ति विलास, श्री दशम गुरु ग्रन्थ, छन्द सं० ९
३. वही, छन्द सं० २०
४. वही, छन्द सं० ७८
५. चण्डीचरित्र उक्ति विलास, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छन्द सं० २२८
६. वही, छन्द सं० २३२
७. वही, छन्द सं० २४०
८. श्री दुर्गासप्तशती एकादश अध्याय, श्लोक सं० २१

शाकम्भरीति विख्यातिं तदा यास्याम्यहं भुवि ।
तत्रैव च वधिष्यामि दुर्गमाख्यं महासुरम् ॥
दुर्गा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति ।
पुनश्चाहं यदा भीमं रूपं कृत्वा हिमाचले ।[१]

देवी सम्बन्धित पुराणों एव दुर्गासप्तशती ग्रंथों में उसके रूप का यत्र-तत्र वर्णन किया है । युद्ध काल मे नितान्त क्रूरकर्मा होने के कारण देवी की अत्यन्त भयानक आकृति का चित्रण हुआ है । भीषण प्रलयंकर क्रोधी मुखमुद्रा, विचित्र वेश-भूषा, अद्भुत क्रिया-कलाप वाली देवी का रौद्रस्वरूप शत्रुओं के उत्पात और अनिष्ट पर सहसा उग्रतर होता जाता है । शान्तिकाल मे देवी अत्यन्त रूपवती, भुवन-मोहिनी, कामदा, शुभलक्षणी और कल्याणकारी प्रतीत होती है । देवी के इन दोनो स्वरूपों का सम्बन्धित ग्रंथों में विशद उल्लेख है । उसकी कौमार, युवा आदि अवस्थाओं के अनुसार ही स्वरूप-चित्रण हुआ है । गुरु गोविन्दसिंह ने भी इस प्रकार देवी का रूप-चित्रण किया है । निम्नलिखित उद्धरण मे देवी के विविध रूपों का वर्णन द्रष्टव्य है ।

ऊर्धो उरधवी आप रूपा अपारी ।
रमा रसटरी काम रूपा कुमारी ।
भई भवानी भईरवी भीम रूपा ।
नमो हिंगुला भिंगुलायं अनूपा ॥[२]

अस्त्र-शस्त्र युक्त देवी की नामावली भी तदनुसार वर्णित है ।

नमो चापणी बरमणी खड्ग पाणं ।
गदा पाणिनी चक्रणी चित्र माणं ।
नमो सूलणी सैहथी पाणि॰ माता ।
नमो गिआन विगिआन की ज्ञान ज्ञाता[३]

देवी के रौद्ररूप का चित्रण भी कवि ने यत्र-तत्र किया है ।

नमो घोर रूपा नमोचार नैणा ।
नमो सूलणी सैथनी वक्र वैणा ।
नमो वृद्ध बुधं करी जोग जुआला ।
नमो चण्ड मुण्डी त्रिडा क्रूर काला ॥[४]

---

१. वही, श्लोक सं० ४९-५०

२. चण्डीचरित्र, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छन्द सं० २२७

३. वही, छन्द सं० २३१

४. चण्डीचरित्र, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छन्द सं० २३१

देवी केवल विकराल रौद्रस्वरूपिणी ही चित्रित नहीं की गई हैं; वरन् उसके नख-शिख के सुन्दर और मोहक चित्र भी चण्डी विषयक ग्रंथों में यत्र-तत्र मिलते हैं। भक्तों ने अपनी आराध्या का श्रृंगारिक वर्णन भी खूब किया है। उसका परम मनोहर रूप, उपासकों का आकर्षण बिन्दु रहा है। 'सौंदर्य-लहरी' आदि शाक्त ग्रंथों में तो इस रूप-माधुरी का अत्यन्त उत्कृष्ट वर्णन है। गुरु जी ने भी देवी के रूप-माधुर्य एवं नखशिख का उत्कृष्ट वर्णन निम्नलिखित छन्द में किया है—

मीन मुरझाने कंज खंजन खिसाने अलि फिरत दीवाने बन डोले जित तित ही।
कीर औ कपोत बिम्ब कोकला कलापी बन लूटै फूटै फिरै मन चैनहूं न कित ही।।
दारम चरक गयो पेरव दसननि पांति रूप ही की कांति जग फैलरही सित ही।
ऐसी गुन सागर उजागर सुनागर है लीनी मन मेरो हरि नैन कोर चित ही।।[1]

देवी के गुण-सूचक नामों का स्मरण भी अनेक स्थलों पर भक्त कवि ने किया है। यह भी उसे उसकी पूर्व-परम्परा से ही प्राप्त हुआ। गुणावली का वर्णन निम्नलिखित उद्धरण में द्रष्टव्य है :

जयन्ती नमो मंगला काल कायं।
कपाली नमो भद्रकाली सिवायं।
दुगायं छिमायं नमो धात्रीइयं।
सुआहा सुधायं नमो सीतलेयं।।[2]

जिन लोगों ने शक्ति की शौर्यात्मिका भक्ति को अपनाया, उन लोगों ने देवी के बल, पराक्रम, तेज, शौर्यादिक सूचक नामों की महिमा पर्याप्त मात्रा में गाई है। देवी से सम्बन्धित सभी ग्रंथों में भी इस प्रकार के नामों की लम्बी सूची मिलती है। पहले उल्लेख हो चुका है कि गुरु गोविन्दसिंह मुख्यतः देवी के इसी रूप को लेकर चले हैं जिससे यत्र-तत्र उनके ग्रंथों में भक्तिपरक ऐसे नामों का उल्लेख हुआ है—

नमो सिघबाही नमो दाढ़ गाढं।
नमो खग्ग दगं झमाझम बाडं।
नमो रूढ़ गूढं नमो सरब बिआपी।
नमो नित नारायणी दुष्ट खापी।।[3]
नमो परमेश्वरी धरम करणी।
नई नित नारायणी दुष्ट दरणी।

---

१. चण्डीचरित्र उक्ति विलास, वही, छन्द सं० ८९
२. चण्डीचरित्र, वही छन्द सं० २४७
३. चण्डीचरित्र, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छन्द सं० २३१

छला अछला ईसुरी जोग जुआली।
नमो बरमणी चरमणी क्रूर काली ॥[1]

एक स्थान पर कवि देवी की वन्दना करते हुए उसकी सर्वशक्तिमत्ता और सर्व-व्यापकता पर भक्ति-विह्वल होकर गा उठता है :

तारन लोक उधारन भूमहि दैत संघारन चन्ड तूही है।
कारण ईस कला कमला हरि अद्रिसुता जह देखो वही है।
तामसता ममता नमता कविता कवि के मन माहि गुही है।
कीनो है कंचन लोह जगत में पारस मुरति जाहि छुही है ॥[2]

इस प्रकार गुरु गोविन्दसिंह ने शक्ति-उपासना के प्रति अपनी अडिग आस्था का सर्वत्र परिचय दिया है। मध्यकाल में शाक्तों के जिस वर्ग की निन्दा अथवा भर्त्सना सन्तों ने की थी, उनका उनसे कोई सम्बन्ध नहीं था। वे तो देवी की पारब्रह्मस्वरूपिणी, सर्वथा व्यापक, शुद्ध, पवित्र रूप में उपासना करते थे। उनके ग्रंथों मे इसके प्रभूत प्रमाण हैं। युद्ध-प्रिय स्वभाव के कारण गुरु जी ने देवी की युद्ध-प्रिय प्रकृति को अपने अत्यधिक निकट पाया जिससे देवी के बल-पराक्रमयुक्त-स्वरूप की आराधना को वे अपने जीवन का आधार बना कर चले। वामाचार की उद्दण्डता, अनैतिकता की उनके ग्रंथों में गन्ध भी नहीं है। वैदिक दक्षिणाचारी शाक्तों के सदृश उनकी मर्यादा, चरित्र-रक्षा पर अटूट आस्था थी। ब्रह्म को शक्ति मानकर साधनारत रहने के अतिरिक्त उनमें अन्य भक्तों, सन्तों से कोई अन्तर नहीं है। भक्ति की विह्वलता, तन्मयता, उनमें सर्वत्र मिलती है। देवी के चरित्र-वर्णन पर ही मुख्यतः उनका ध्यान केन्द्रित रहा। देवी के पराक्रम का जो भव्य रूप उन्होंने प्रस्तुत किया है, वह अत्यन्त चित्ताकर्षक है। उन्होंने देवी-चरित्र के वर्णन में चरित्र को ही प्रधानता दी है। अपने हृदयगत भावों का उल्लेख अत्यल्प किया है, जिससे देवी के व्यक्तित्व का चित्र तो खिंच जाता है; परन्तु भक्त के हृदय की द्रवणशीलता, अकिंचनता, मर्मस्पर्शिता की गहनता का पता नहीं चल पाता। स्वभावतः वीर व्यक्ति होने के कारण उक्त गुणों की अपेक्षा ओज, तेजस्विता, प्रखरता ही उनमें विशेष है; अन्यथा सूर, तुलसी, मीरा के सदृश ही उनकी रचनाओं में भावना की तीव्रता, मर्मस्पर्शिता आ जाती। इसके अतिरिक्त उन्होंने जो देवी-स्तुति की है वह स्तोत्र-प्रणाली पर आधारित है जिसका जाप तो हो सकता है; परन्तु रमणीयता और भावों की प्रेषणीयता उनमें नहीं आ सकी है। कुछ भी हो, गुरु जी ने अपनी अधिकाश रचनाओं मे भगवती देवी को सर्वोपरि स्थान देकर उसमे अपनी आस्था का स्पष्ट परिचय तो दे ही दिया है।

---

१. वही, छन्द सं० २३६

२. चण्डीचरित्र उक्ति विलास, वही, छन्द सं० ४

उनके हृदय पर देवी की उपासना की अमिट छाप थी जिसका निर्वाह उन्होंने सर्वत्र किया है।

बाह्याचार और आडम्बर का विरोध

मध्य युग के सन्त कवि, जनता के प्रतिनिधि कहे जा सकते हैं। सामान्य जनता के अभावों से वे भलीभांति परिचित थे और उनकी कठिनाइयों को दूर करने के लिये सतत प्रयत्नशील थे। ऐसे समय में एक ऐसे सरल-मार्ग की आवश्यकता थी जिससे आडम्बर और प्रदर्शन के बिना किसी प्रकार की साधना के न रहते हुए भी, परमात्मा की भक्ति की जा सके। हिन्दू-मुसलमान तथा अन्य तत्कालीन सभी सम्प्रदायों की दृष्टि नितान्त आडम्बरयुक्त थी। विराट आयोजनों, कृच्छ्राचारों, जटिल सामाजिक बन्धनों के जाल ने मनुष्य को जकड़ दिया था। साधनाहीन और सामान्य स्तर का व्यक्ति इनसे कुछ भी लाभ नहीं उठा सकता था। मन्दिरों में अपार वैभव का अनूठा ठाठ था। बड़े-बड़े चढ़ावे चढ़ते और सज-धज तथा साज-सामान के बिना पूजा करना कठिन था। मुसलमानों की पूजा-पद्धति कुछ सरल अवश्य थी; परन्तु बाह्याचार और रूढ़िवादिता, अंधविश्वास के आधार पर विविध मत-मतान्तरों की नींव डाली गई थी जिससे सामान्य जनता में विशेष, वैमनस्य और शत्रुता के भाव परस्पर बढ़ रहे थे। इन सन्तों ने ऐसी विषम परिस्थिति में सरल उपासना-पद्धति को अपनाकर, ढोंग, मिथ्याचार, कट्टरवादिता और रूढ़वादिता के मूल पर आघात करके मानवता का सन्देश दिया जिससे कि संसार के समस्त प्राणी भेद-विभेद को छोड़ सके।

मध्यकाल में पाखण्ड और मिथ्याचार अत्यधिक बढ़ गये थे। सभी मत ईश्वर की उपासना की बात करते थे और अपने-अपने पंथ को सर्वश्रेष्ठ बताते और दूसरे मत को पथभ्रष्ट समझते थे। किन्तु एक-दूसरे की बात सुनने को कोई भी उद्यत न था। इस उपासना-पद्धति से समाज में परस्पर घोर विरोध उत्पन्न हो गया था। साधना-पद्धति के विभेद के साथ-साथ ही उपास्य देवों में भी अन्तर आ गया था। भगवान के सच्चे स्वरूप को कोई न जान सका—

> काहूं लै पाहन पूज धर्‍यो सिर, काहूं लै लिंगु गरे लटकायो।
> काहूं लखियो हरि अवाची दिसा महि, काहूं पछाह को सीस निवायो।
> कोऊ बुतान को पूजत है पसु, कोऊ मृतान को पूजत धायो।
> कूर क्रिया उरझ्यो सब ही जगु, श्री भगवान का भेदु न पायो ॥[1]

विभिन्न प्रकार की साधना-पद्धतियों और उपास्य देवों के नाम पर अनेक पंथ-सम्प्रदाय चल पड़े हैं। सबने अपने-अपने पृथक् नाम, रूप, गुण आदि पृथक-पृथक्

1. अकाल स्तुति, छन्द सं० ३०, पृष्ठ सं० ८

रच कर भेद-भाव उत्पन्न कर दिया। परन्तु स्वार्थान्ध सम्प्रदायवादी नाना प्रकार के ढोंग बना कर लोगों की श्रद्धा और विश्वास का अनुचित लाभ उठा कर अपना पोषण करने लगे :

> भूत बनचारी छित छऊना सभै दुधाधारी।
> पऊन के अहारी सु भुजंग जानीअतु हैं।
> तृण के भछैया धन लोभ के तजैया,
> तेते गऊजन के जया बृख भय्या मानीअतु है।
> नभ के उडैया तांहि पंछी की बडैया देत,
> बगुला बिड़ाल वृक धिआनी ठानीयतु है।
> जैतो बडे गिआनी तिनो जानी पै बखानी नाहि,
> ऐसै न प्रपंच मन भूल आनीअतु है॥[1]

नाना प्रकार की वेश-भूषा धारण करने से ही इन लोगों ने मुक्ति समझ ली है। कोई मौनी बना है, कोई अलखधारी, कोई उदासी। लोगों ने धर्म-कर्म छोड़ दिया है। मनमाने वेष बना कर अपनी पूजा करवा रहे हैं। परन्तु जब तक प्रभु में चित्त नहीं रमा, मन की वृत्तियों पर नियंत्रण नहीं हुआ, तब तक मौन धारण करने, आँखें मूँदने, तीर्थादि में भटकने से कोई लाभ नहीं है :

> कहा भयो दोऊ लोचन मूँद कै,
> बैठि रह्यो बक ध्यान लगाइओ।
> नात फिरयो लिये सात समुद्रन,
> लोक गइयो पर लोक गवाइओ।
> वास किओ बिखि आन सो बैठके,
> ऐसे ही ऐस सु बैस बिताइओ।
> साचु कहो सुन लेहु सभै,
> जिन प्रेम किओ तिनही प्रभु पाइओ॥[2]

वेश बना लेना आसान है; परन्तु तदनुकूल चल पाना बहुत कठिन है। जिसमें संयम, धैर्य, नियमशीलता एवं सत्यता है उसके लिये वेश धारण करने की कोई आवश्यकता नहीं है। वेश तो पाखण्डी लोगों की आड़ है जिसके सहारे वे अपने असली रूप को छिपा कर लोगों से अपनी स्वार्थपूर्ति किया करते हैं। गुरु गोविन्दसिंह इस प्रकार के ढकोसले के कट्टर विरोधी थे :

---

१. वही, छन्द सं० ७२, पृष्ठ सं० ११।
२. अकाल स्तुति, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छन्द सं० २९

जैसे एक स्वांगी कोऊ जोगीआ बैरागी बने,
कबहूं संन्यास भेख बनकै दिखावई।
कहूं पउन हारी कहूं बैठे लाइ तारी,
कहूं लोभ की खुमारी सौं अनेक गुन गावई।
कहूं ब्रह्मचारी कहूं हाथ पै लगावे बारी,
कहूं डंडधारी हुइकै लोगन भ्रमावही।
कामना अधीन परिओ नाचत है नाचन सी,
गिआन के बिहीन कैसे ब्रह्म लोक पावई ॥[१]

भक्ति-भावना से हीन व्यक्ति द्वारा पूजा, नमाज व्यर्थ है। ईश्वर के प्रति सच्ची भक्ति रखने वाले के लिये पूजा और नमाज की कोई आवश्यकता नहीं है। केवल हृदय की सत्यता से ईश्वर-अनुग्रह प्राप्त करना चाहिये। इसके लिये किसी प्रकार के ढकोसले में नहीं पड़ना चाहिए। इसी की ओर संकेत करते हुए दशमेश जी लिखते हैं :

देहरा मसीत सोई पूजा औ निवाज ओइ।
मानस सभै एक पै अनेक को भ्रमाओ है ॥[२]

सभी अपने-अपने पाखण्ड मे रत हैं। सच्चे मार्ग पर कोई नहीं चलता :

कूकत फिरत केते रोवत मरत केते,
दल में डूबत केते आग में जरत हैं।
केते गंगवासी केते मदीना मक्का निवासी,
केतक उदासी के भ्रमाएई फिरत हैं।
करवत सहत केते भूम मै गड़त केते,
सूआ में चढ़त केते दूख कउ भरत हैं।
गैन में उड़त केते, जल में रहत केते,
ज्ञान के बिहीन जक जारेई मरत हैं ॥[३]

लोगों ने मनमाने मत-मतातरों, सम्प्रदाय और साधना-पद्धतियों को गढ़ डाला है :

एक तसवी एक माला धरही।
एक कुरान एक पुरान उचरही ॥
करत विरुद्ध गये मरं मूढ़ा ॥[४]

---

१. वही, छन्द सं० ८२

२. अकाल स्तुति, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छन्द सं० ८६

३. वही, छन्द सं० ८९

४. चौबीस अवतार, वही, छन्द सं० २०

इन वेश-धारियों का उद्देश्य केवल पाखण्ड को फैलाकर जनता को भ्रम में डालना मात्र है :—

जोगी संन्यासी है जेते। मुंडीआ मुसलमान हैं केते ॥
भेष धरे छूटत संसारा। छपत साध जिह नामु अधारा।[1]

चिन्तन-मनन के बिना नाम-स्मरण को भी गुरु जी मिथ्या मानते हैं। इसी प्रकार मंत्र-तंत्र, जादू-टोने आदि पर भी उन्होंने अपना अविश्वास प्रकट किया है।

लिख जंत्र थाके पढ़ मंत्र हारे। करे काल ते अंत लेके विचारे।
कितिओं तंत्र साधै जु सनम किताया। भये फोकटं काज एकै न आयो।[2]

दशमेश जी स्पष्ट लिखते हैं कि यदि इन मन्त्र-तंत्रों से सिद्धि होती तो ये मंत्र-तंत्र रटने वाले भीख के लिये द्वार-द्वार न भटकते।

जो उन मंत्र जंत्र सिद्धि होई। दर दर भीख न माँगे कोई।
एकै मुख ते मंत्र उचारे। धन सों सकल धाम भर डारे ॥[3]

ये पाखण्डी धन के लालची हैं। अवसर मिलने पर अपनी भोली सूरत दिखाकर अनेक प्रकार के अनाचार-व्यभिचार मे प्रवृत्त होते हैं।

बड़े प्रपंची पर पंचन को लिये फिरे।
दिन ही मे लोगन को लूटत बाजार हैं॥
हाथ ते कौड़ी देत कौड़ी कौड़ी माँग लेत।
पुत्री के कहतु तासों करै विभचार हैं।
लोमता के पुत्र केधो दरिद्रतावतार हैं॥[4]

दूसरों को त्याग, तपसा, तितिक्षा, संतोष का उपदेश देते फिरते हैं किन्तु स्वयं पाखंड कर्म करते हैं :

औरन को उपदेश करे आपु ध्यान को न धरे।
लोगन को सदा त्याग धन को द्रिढ़ात है॥
तेही धन लोभ ऊंच नीचन के द्वार-द्वार।
लाज को त्यागि जेही-तेही वैधी धात है॥[5]

---

१. चौबीस अवतार, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छन्द सं० २३
२. विचित्र नाटक, छन्द सं० ६२,
३. श्री रणखम्भकला चरित्र, पाख्यान चरित, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छन्द सं० १७
४. वही, छन्द सं० ११४
५. श्री रणखम्भकला चरित्र, पाख्यान चरित्र, श्री दशम गुरु ग्रन्थ, छन्द सं० ११२

कहत पवित्र हम रहत अपवित्र खरे।
....
बड़े असन्तोसी कहावत सन्तोखी महा।
एक द्वार छाडि मांगि द्वारे द्वारे जात है॥[1]

जो अशरण-शरण एक परम पिता परमेश्वर में अनुरक्त हो चुका है उसके लिये बाह्याडम्बरों की कोई आवश्यकता नहीं है। बाह्याचार मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति मे घोर बाधक हैं। पोथी के ज्ञान को भी मध्यकालीन सन्तों ने आत्मज्ञान के बिना निरर्थक माना है। कबीर ने स्पष्ट घोषणा की है कि पोथी पढ़-पढ़ कर संसार मर गया किन्तु पंडित कोई न हो सका इत्यादि।[2] दशमेश जी का बाह्याडम्बरों में रंचमात्र भी विश्वास नही था। वे केवल अपने हृदय की अटूट आस्था सहित परमात्मा में लीन होने का आदेश देते हुए कहते हैं :

न जटा मुण्ड धारो। न मुद्रका सवारो॥
जपो तासु नामं। सरे सर्व कामं॥
न नैनं मिचाऊं। न डिम्भं दिखाऊं॥
न कुकरम कमाऊँ। न भेखी कहाऊं॥[3]

इस प्रकार फोकट कर्मों की निस्सारता दिखाते हुए गुरु जी ने मन से विषय-विकारों को हटाने का उपदेश दिया है :—

फोकट कर्म जिते जग करही।
नरक कुण्ड भीतर ते पर ही।
हाथ हलाए सुरग न जाहू।
जो मन जीत सका नहिं काहू॥[4]

गुरु गोविन्दसिंह ने अनेक मत-मतान्तरों के विश्वासों और उनके गुरुओं का भी एक स्थल पर उल्लेख किया है :

तब हरि बहुत दत्त उपजायो। तिन भी अपना पंथ चलायो॥
कर मो नख सिर जटा सवारी। प्रभु की क्रिया न कछू विचारी॥
पुनि हरि गोरख को उपरजा। सिख करै तितहू बडराजा॥
श्रवण फाड मुद्रा द्वय डारी। हरि की प्रीति रीति न विचारी॥

---

१. वही, छन्द सं० १९
२. कबीर ग्रंथावली, छन्द सं० ३७७
३. विचित्र नाटक, छन्द सं० ५१-५२,
४. विचित्र नाटक, छन्द सं० ५८

पुनि हरि रामानन्द को करा। भेष बैरागी को जिन धरा॥
कण्ठी कण्ठी काठ की डारी। प्रभु की क्रिया कछू न विचारी॥
जो प्रभु परम पुरुख उपजाए। तिन तिन अपने राह चलाए॥
महा दीन तब प्रभु उपराजा। अरब देस को कीनो राजा॥
सबते अपना नाम जपायो। सति नाम कहूं न दृढायो॥
सब अपनी अपनी उरझाना। पारब्रह्म काहू न पछाना॥[1]

मध्यकाल के सन्तों ने जनता के सुख-दुख, हर्ष-शोक के बीच में रहकर स्पष्ट अनुभव कर लिया था कि परम्परागत रूढियो, अंधविश्वासों ने जनता के धार्मिक जीवन को कलुषित कर डाला है। मत मतान्तरों और सम्प्रदायवादियों ने जनता की अशिक्षा और श्रद्धालु व विश्वासो प्रकृति का दुरुपयोग कर अपनी स्वार्थसिद्धि करना प्रमुख उद्देश्य बना लिया है। साधारण जनता उनकी इन चालों को नहीं समझ पाती, जिसके परिणामस्वरूप लोग पथ-भ्रष्ट हो गये हैं। जीवन की सरलता, सादगी, निष्कपटता और निश्छलता को छोड लोगों ने अनेक आडम्बर, मिथ्याचार, प्रदर्शन-ढकोसले अपना लिये हैं। वेशधारी साधु, संन्यासी, पीर, पैगम्बर सभी जनता के शोषण में रत हैं। इन्होंने ईश्वर के वास्तविक और सच्चे स्वरूप से जनता को अनभिज्ञ रखकर मिथ्या विधि-विधानों के द्वारा नाना प्रकार की भ्रमपूर्ण साधनाएँ प्रचलित कर दी हैं।

उस युग मे कुछ ऐसी जटिल साधना-पद्धतियाँ चल पड़ी थीं जिनके लिये नाना प्रकार के कृच्छ्राचार और कठोर शारीरिक यातनाएँ करनी आवश्यक थीं जो साधारण जनता के लिये अगम्य थीं। शरीर को अनेक प्रकार से यन्त्रणा देकर, सिद्धि प्राप्त करने की होड़ लगी हुई थी। यह साधना-पद्धति जितनी कठोर थी, उतनी ही सफलता की मात्रा न्यूनातिन्यून थी। कोई बिरला ही सिद्धि पा सकता था। पग-पग पर भ्रष्ट होने का जाल बिछा हुआ था। दूसरी ओर वेद, शास्त्र, वेदान्त, स्मृति, पुराण तथा अन्यान्य अनेक प्रकार के ग्रंथों के ज्ञान के बिना, समाज मे प्रतिष्ठा पा सकना असम्भव था। विकट तर्कजालों से कण्टकित यह मार्ग साधारण अशिक्षित जनता के लिये और भी भयावह था। नाना आचार्यों की विभिन्न प्रकार की दार्शनिक व्याख्याएँ, साम्प्रदायिक विचार परम्पराएँ इन सबने मिल कर अबोध जनता को विषम परिस्थिति में डाल दिया।[2]

---

१ विचित्र नाटक; छन्द सं० २३,

२. कई कोटि मिलि पढ़त कुराना। बाचत किते पुराण अजाना॥
अन्तकाल कोई काम न आवा। दाव काल काहूं न बचावा॥
विचित्र नाटक, छन्द सं० ४८,

इसके अतिरिक्त जनता के लिये जो आसान-मार्ग समझा जाता था वह था मूर्ति-पूजा का। मूर्ति-पूजा जितनी सरल प्रतीत होती थी, उतनी ही महँगी भी थी। मठाधीशों के राजाओं के से ठाट-बाट थे। प्रातः से सायं तक मूर्ति का मूल्यवान् रत्नों से श्रृङ्गार होता, दुर्लभ भेटे चढ़तीं और व्ययसाध्य लीलाओं का आयोजन किया जाता था। यह निर्धन और साधनहीन जनता के लिये और भी कठिन था। मूर्ति-पूजा ने ईश्वर के वास्तविक रूप को भुला दिया। सच्चिदानदस्वरूप परमात्मा की पूजा पत्थर की मूर्ति द्वारा होने लगी। सर्वव्यापक और सर्वान्तर्यामी प्रभु को एक मंदिर-विशेष और आकृति-विशेष मे सीमित कर दिया गया। यद्यपि ईश्वर-ध्यान के निमित्तमात्र के लिये मूर्ति की कल्पना हुई थी; परन्तु लोगों ने उसे ही सर्वस्व बना डाला। इस मूर्ति-पूजा के नाम पर अनेक ढोंग और बाह्याडम्बर फैलने लगे। अनेक लोगों ने उसे अपनी आजीविका का साधन बनाकर उल्टे-सीधे जनता का धार्मिक शोषण प्रारम्भ कर दिया। लोग जड़-पूजा में निरत होकर जीव-सृष्टि में विद्यमान् चेतन सत्ता के स्पन्दन का अनुभव करना भूल गए। मध्यकालीन सन्तों ने मूर्ति-पूजाजन्य उन सभी बुराइयों पर कटु आघात किये। जितनी निर्ममता से इन निर्गुण साधकों ने मूर्ति-पूजा की भावना पर प्रहार किया, उतना अन्य किसी अन्धविश्वास पर नहीं, क्योंकि उनकी दृष्टि से समस्त बुराइयों की जड़ यही थी।

दशमेश जी मूर्ति-पूजा के कट्टर विरोधी थे, यह पहले कहा जा चुका है। उनका यह विरोधी स्वर उनकी सभी रचनाओं में विद्यमान है—

घस हारे चन्दन लगाइ हारे चोआ चार।
पूज हारे पाहन चढ़ाइ हारे लापसी॥
गह हारे गोरन मनाइ हारे मढ़ी मठ।
लीव हारे भीतन लगाइ हारे छापसी॥
गाइ हारे गंधर्व बजाइ हारे किन्नर सब।
पचहारे पंडित तपंतहारे तापसी॥[1]

पत्थर की पूजा-अर्चनों में समय खोने वालों को उन्होंने स्थान-स्थान पर सचेत करते हुए कहा है कि संसार को बनाने और संहार करने वाले सर्वशक्तिमान् प्रभु की उपासना के बिना अन्य किसी की उपासना कभी भी फलदायक नहीं हो सकती। कितने ही अनुराग से पत्थर की सेवा करो परन्तु वह तो जड़ है, फल क्या दे सकेगा :

---

१. अकाल स्तुति श्री दशम गुरु ग्रंथ, छन्द सं० ९०

इक बिन दूसर सो न चिनार।
भंजन गढ़न समर्थ सदा प्रभु जानत है करतार॥
कहा भयो जो अतिहित चितकर बहु विधि सिला पुजाई।
प्रान थक्यो पाहिन कहि परसत कछु कर सिद्ध न आई।
अच्छत धूप दीप अरपत है पाहन कछु बर दैहे।
....................................."
जो जिय होत तौ देत कछू तहि मन बच कर्म विचार।
केवल एक सरण स्वामी बिन यों नहि कतहि उद्धार।[1]

आगे पुनः उसी की निस्सारता प्रकट करते हुए वे उपदेश देते हैं :

फोकट धर्म भयो फलहीन
जु पूज सिला जुगि कोट गवाई।
सिद्ध कह सिल के परसे।
बल वृद्ध घटी तब निधि न पाई।[2]

अतः पत्थर की पूजा छोड़कर प्रभु के सच्चे रूप को अपनाना हमारा धर्म है अन्यथा सारा मानव इन निरर्थक पूजा-पद्धतियों में समाप्त हो जायेगा। पाषाण-पूजकों की मति उसी के सदृश जड़ हो जाती है :

पाहन की पूजा करै, जेहैं अधिक अचेत।[3]

लिंग-पूजक मित्र से प्रश्न करते हुए गुरु जी कहते हैं :

कहो मित्र आगे कहम जवाब दैहो,
जबै काल के जाल में फांसि जैहो।
कहो कौन सो पाठ के होत तहाँ ही,
तऊ लिंग पूजा करोगे उहांही॥[4]

जो सत्य-मार्ग के पथिक हैं उनकी इस सत्य-प्रियता के लिये लोग प्रशंसा करें अथवा निन्दा इसकी उन्हें चिन्ता नहीं :—

झूठा कह झूठा हम कह हैं।
जो सभ लोग मने कुररे हैं।

---

१. हज़ादे दे शब्द, श्री दशम गुरु ग्रन्थ, छन्द सं० ९
२. सवैये, वही, छन्द सं० २१
३. पाख्यान चरित, रणखम्भकला चरित्र, श्री दशम गुरु ग्रंथ, सं० ५८
४. पाख्यान चरित्र, रणखम्भकला चरित्र, श्री दशम गुरु ग्रंथ, सं० ८४

महादीन केते पृथी मांझ हुए।
समय अपनी अपनी अन्त मुए॥[1]
जिते औलिया अम्बीआ होइ बीते।
तितिओ काल जीता न ते काल जीते॥
जिते राम से कृष्ण हुए बिसन आए।
तितिओं काल खापिओ न ते काल थाए॥[2]

अवतार, पैगम्बर सभी काल के अधीन हैं। अपना-अपना समय और उद्देश्य पूर्ण करके सभी मृत्यु को प्राप्त होते हैं। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, दशमेश जी ने इन सभी को महापुरुष की पदवी दी है, न कि ईश्वर या परब्रह्म की। गोविन्द-रामायण मे राम को कवि ने एक महान् योग्य शासक क रूप मे ही चित्रित किया है :

बहु विधि करो राज को साजा।
देश देश के जीते राजा॥
साम दाम अस दण्ड सभेदा।
जिह विधि हुती आसना वेदा॥[3]

रामचन्द्र जी अपने लौकिक शरीर को ठीक उसी प्रकार समाप्त करते हैं जैसे एक साधारण मनुष्य :

द्वारे कह्यो बैठ लछमना। पैठ न कोऊ पावै जना।
अन्तहि पुरहि आप पग धारा। देह छोर मृत लोक सिधारा॥[4]

उन्होंने पुराणों में वर्णित चौबीसों अवतारों का वर्णन किया, परन्तु कहीं भी यह विश्वास नहीं प्रकट किया कि वही परमब्रह्म परमात्मन् था या अकाल-पुरुष ने ही विविध अवतार ग्रहण किये। उन्होंने काल या अकाल-पुरुष को ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि से परे, एक सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान तत्त्व माना है। चौबीस अवतारो मे अधिकाशतः सभी इन्हीं त्रिदेवों के अंशावतार माने गये हैं। उनका मत था कि अवतार कुछ विशिष्ट व्यक्तित्व वाले हैं, जिनको आवश्यकता पड़ने पर काल-पुरुष की प्रेरणा से सृष्टि में सन्तुलन और नियमन के लिये जन्म-धारण करना पड़ता है। वे स्वय अपने

१. विचित्र नाटक, अध्याय १, छन्द सं० २७
२. वही, छन्द सं० २८
३. गोविन्द रामायण, पृष्ठ २३४
४. वही, पृष्ठ २३७

को भी इस कोटि में रखते हैं, परन्तु परमतत्त्व का अवतार किसी रूप में मानने को तैयार नहीं थे। सभी अवतारों में मुख्यतः राम और कृष्ण का उन्होंने विशद रूप में चरित्रवर्णन किया है, परन्तु सर्वत्र मनुष्य के रूप में। इतना अवश्य है कि उनके कार्य साधारण से कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के सदृश हैं। परमात्मा की स्तुति करते हुए उन्होंने स्पष्ट घोषणा की है :

हरिजन्म मरण बिहीन। दस चार चार प्रवीन।
अकलंक रूप अपार। अनछिज्ज उदार ॥[1]

परन्तु अवतारवाद के सम्बन्ध में उनका निश्चित मत था :

एक शिव भए एक गए एक फेर भए।
रामचन्द्र कृष्ण के अवतार भी अनेक हैं ॥
ब्रह्माहू बिसन केते वेद पुराण केते।
सिमृति समूहन कै हुई हुई बितए हैं ॥
मौनदी मदार केते असुनी कुमार केते।
कंसा अवतार केते काल बस भए हैं ॥
पीर औ पिकंबर केते गने न परत ऐसे।
भूम ही ते हुइके फेरि भूमि ही मिलए हैं ॥[2]

अवतारों को ब्रह्म परमात्मा का रूप मानने वालों का गुरु जी ने खुलकर विरोध किया। उनसे उन्होंने प्रश्न किया है :

सो किम मानस रूप कहाए।
सिद्ध समाध साध कर हारे क्यों न देखन पाए।
नारद व्यास परासर ध्रुव से ध्यावत ध्यान लगाए।
वेद पुरान हर हठ छाड्यो तदपि ध्यान न आए।
दानव देव पिसाच प्रेत ते नेतह नेत कहाए।
सूछम ते सूछम कर चीने, बुद्ध न बुद्ध बताए।
भूमि अकास पताल सभै सजि एक अनेक सदाए।
सो नर काल फास ते बाचे जो हरि सरण थियाए।[3]

परमात्मा जन्म-मरण, दुःख-शोकादि जीव के धर्मों से परे है। यदि कोई उसे

---

१. अकाल स्तुति, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छन्द सं० ३१
२. अकाल स्तुति, श्री दशम गुरु ग्रन्थ, छन्द संख्या ७७
३. शब्द हजारे, वही, छन्द संख्या ८

अजन्मा, अजर, अमर भी कहे और अवतारवाद पर भी विश्वास करे, उसकी बुद्धि पर हँसी ही आनी चाहिये। गुरु जी ऐसे लोगों से पुनः प्रश्न करते हैं :

जो कहो राम अजोनि अजै अति
काहे को कौसल कुक्ष जया जू।[1]
....।

सन्त सरूप निवैर कहाई।
सु वचो पंथ को रथ हांक धयो जू।।
क्यो कहु कृष्ण कृपानिधि है।
किहि काज ते बद्धक बाण लगायो।
अउर कुलीन उधारहु जो।
किह ते अपनो कुल नासु करायो।।
आदि अजोनि कहाइ कहो किम।
देवकी के जठरन्तर आयो।।
तात न मात कहै जिह को।
तिह क्या बसुदेवहि बापु कहायो।।[2]

ईश्वर को जन्म-मरण के बन्धन में पड़ने वाला मानने से उसकी महत्ता घटती है। उसकी सर्वज्ञता, सर्वशक्तिमत्ता और सर्वव्यापकता पर दोष आ जाता है। भला जो सबका माता-पिता, सबको उत्पन्न करने वाला, सबका पालक और संहारक है, वह जन्म मरण के बंधन में कैसे पड़ सकता है।

अवतार, पीर-पैगम्बरों पर विश्वास करने वाले कभी भी ईश्वर को नहीं प्राप्त कर सकते। जो स्वयं जीव के गुण, कर्म, स्वभाव से मुक्त नहीं हैं, वे दूसरों का कल्याण कर ही क्या सकते हैं। धर्म के नाम पर पाखण्ड, ईश्वर के नाम पर व्यक्तियों की पूजा को गुरुगोविन्द सिंह बड़ा पाप समझते थे, क्योंकि अवतारों-पैगम्बरों ने ईश्वर के वास्तविक स्वरूप को लोगों को न बता कर, उन्होंने अपनी पूजा करके मानव जाति का बड़ा अहित किया है। इसी भावना ने व्यक्ति पूजा को जन्म दिया, व्यक्ति-पूजा ने एक ही मनुष्य-जाति में अनेक मत-मतान्तरों की दीवारें खड़ी करके बड़ा विभेद उत्पन्न कर दिया। पैगम्बरवादियों के दावे का दृढ़ता से प्रत्याख्यान करते हुए गुरु जी कहते हैं :

जो कोऊ जाइ तुखबन में,
महि दीन के दीन तिसै गहि ल्यावै।

---

१. सवैये, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छन्द सं० १३

२. वही, छन्द सं० १४

आपहि बीच गनै करता,
करतार को भेदु न कोऊ बतावै ॥[1]

अनेक मत-मतान्तरों के प्रवर्तकों का वर्णन करते हुए हजरत मुहम्मद के विषय मे उन्होंने लिखा है :

जो प्रभु परम पुरख उपजाए। तिन तिन अपने राह चलाए ॥
महादीन तब प्रभु उपराजा। अरब देस को कोनो राजा ॥[2]
तिन भी एक पंथ उपराजा। लिंग बिना कीने सभ राजा ॥
सब ते अपना नाम जपायो। सति नाम कहूं न दृढ़ायो ॥[3]

अन्तिम दो पंक्तियाँ बडी महत्त्वपूर्ण हैं। अवतार अथवा पैगम्बरवाद पर इतना खुला निष्पक्ष निर्णय देना गुरु गोविन्दसिंह जी ऐसे निस्पृह, निर्भीक व्यक्तियों की ही क्षमता है। उन्होंने अनुभव किया कि कुछ महापुरुषो को लोग ईश्वर का अवतार मानकर पूजने लगे। मत-मतान्तरों के प्रवर्तकों, आचार्यों ने अपने श्रद्धालुओं से अपने व्यक्तित्व की पूजा कराई। हो सकता है, ठीक उसी प्रकार मेरी भी लोग पूजा करने लगें। इसी आशंका के कारण गुरु जी ने अपने अनुयायियों को कड़ी चेतवानी देते हुए कहा :

जो हमको परमेसर उचरिहैं।
ते सब नरक कुण्ड महि परिहैं ॥[4]

जाति-पाँति, ऊँच-नीच, धनी निर्धन आदि के भेद-भाव के वे कट्टर विरोधी थे। मानव-मात्र को उन्होंने अपनी शिक्षाओं, उपदेशों का अधिकारी बताया। उनके जीव की घटनाओं के अध्ययन से स्पष्ट विदित होता है कि उन्होंने जाति, धन, सम्पत्ति अथवा अन्य किसी प्रकार छुटाई-बड़ाई की दृष्टि से अपने शिष्यों में भेद-भाव नहीं रखा। उल्लेख मिलता है कि एक बार गुरु महाराज ने रघुनाथ नामक पंडित को अपने शिष्यों के अध्यापन हेतु नियुक्त करना चाहा, परन्तु जात्यभिमानी ब्राह्मण ने उनके शिष्यों को छोटी जाति का समझ पढाने से इन्कार कर दिया था। गुरु महाराज ने उस जन्माभिमानी को समझाते हुए कहा था—क्या संस्कृत ब्राह्मणों की दासी है। याद रखें, जिन्हें आप इतना छोटा समझते हैं वही अब महान् पंडित बनकर चमकेंगे और आपका दम्भ टूटेगा। उसके टूटते हुए सिंहासन के शब्दों से आपके कान

१. सवैये, श्री दसम गुरु ग्रंथ, सं० २७
२. विचित्र नाटक, छं० सं० २६ पृष्ठ सं०
३. वही छं० सं० २७
४. वही छं० सं० ३२

बहरे हो जायेंगे ।[१] धनी और निर्धन का भेद-भाव रखने वाले धन-लोलुप, विषयी महन्तों, पन्डे-पुजारियों के ढोंग का सुन्दर चित्रण द्रष्टव्य है :

आखेन भीतरि तेल को डार । सुलोगन नीरु बहाइ दिखावै ।।
जो धनवानु लखे निज सेवक । तांहि परोसि प्रसाद जिमावै ।।
जो धन हीन लखे तिह देत न । मांगन जात मुखो न दिखावै ।।
लूटत है पसु लोगन को । कबहूँ परमेसर के गुन गावै ।।[२]

यौगिक क्रियाओं, कृच्छ्राचारों तथा उन सभी प्रकार की साधनाओं को जिनसे शरीर को यंत्रणा मिलती है, उनको उन्होंने निरर्थक माना । उनका कथन था कि जितना समय मनुष्य इनमें व्यर्थ खोते हैं, उतने समय में कोई दूसरा कार्य करके, वे अधिक सिद्धियाँ प्राप्त कर सकते हैं । उपासना की इन क्लिष्ट पद्धतियों की अपेक्षा वे सर्वजन सुलभ सरल साधना-पद्धति के पक्षपाती थे । जटाएँ बढ़ाना, राख लगाना, नखों-केशों की वृद्धि करना इत्यादि बाह्याचारों को वे संन्यासियों की नहीं वरन् ढोंगियों की लीला समझते थे । उनकी दृष्टि में सन्यास का बाह्याचारों से कोई सम्बन्ध न होकर, मनुष्य की अन्तरात्मा से था । निम्नलिखित छन्द उनकी संन्यास विषयक धारणा को स्पष्ट करता है :

रे मन ऐसो करि संन्यासा ।
बन ते सदन सभै करि समझहु मनहि माहि उदासा ।
जत की जटा जोग को मंजनु नेम के नखन बनाओ ।
ज्ञान गुरु आत्म उपदेसहु नाम विभूत लगाओ ।
अल्प अहार सुलप सी निद्रा दया छिमा तन प्रीति ।
सील सन्तोष सदा निरबाहिबो ह्वै के त्रिगुण अतीति ।
काम क्रोध हंकार लोभ हठ मोह न मन सो ल्यावै ।
तब ही आत्म तत्व को दरसे परम पुरख कह पावै ।।[३]

योग के सम्बन्ध मे भी उनका अपना निश्चित दृष्टिकोण था । वे यौगिक क्रियाओं के नाम पर शरीर को यंत्रणा देना और नाना प्रकार के बाह्याचारों का प्रदर्शन करना निष्प्रयोजन मानते हैं । वे चित्त-वृत्ति के निरोध अथवा मन के संयम को योग की सर्वाधिक पूर्णता मानते हैं न कि सिंगी, कण्ठा, विभूति, भिक्षा, तार, तान, नीती, धोती आदि आडम्बरों को । इसी मनोयोग, मनोनिग्रह को उन्होंने बड़े मार्मिक एवं भावपूर्ण शब्दों द्वारा व्यक्त किया है—

---

१. गोविन्द रामायण प्राक्कथन, पृष्ठ ७
२. सवैये, श्री दशम गुरु ग्रन्थ, सं० ३७
३. हजारे दे शब्द, श्री दशम गुरु ग्रन्थ, सं० ३

रे मन इह विधि जोगु कमाओ।
सिंङ्गी साच अकपट कण्ठला ध्यान विभूति चढ़ायो।
ताती गहु आतम बसिकर की भिच्छा नाम अधारं।
बाजे परम तार ततुहरि को उपजै राग रसारं।
चकि चकि रहे देव दानव मुनि छकि छकि व्योम विवानं।
आतम उपदेस भेसु संजम को जाप सु अजपा जापे।
सदा रहै कंचन सी काया काल न कबहूं व्यापे॥[1]

दशमेश जी ने अपनी वाणियों द्वारा अपने युग के अज्ञानजन्य अन्धविश्वासों और रूढियों के विरुद्ध प्रबल आन्दोलन किया था। मूर्तिपूजा, अवतारवाद, पैगम्बरवाद, जात्यभिमान, ऊँच-नीच, धनी-निर्धन की भावना से उत्पन्न होने वाली बुराइयों की निर्भीकता से उन्होंने आलोचना की। पाखण्ड, बाह्याचार, आडम्बरों, ढोंगों के विरोध में उनका स्वर सिद्धों, नाथों तथा कबीर, नानक आदि सन्तों के क्रांतिकारी स्वर से किसी भी रूप में कम अथवा क्षीण न था। उन्होंने यह अनुभव किया कि इन्हीं भेद-भावों ने भारतीयों के संगठन-सूत्र को छिन्न-भिन्न कर दिया है जिससे एक ही देश एक से आधार व्यवहार वाले लोगों में फूट और विद्वेष की आग भड़क उठी है, जिसका अनुचित लाभ विदेशी शासक उठा रहे हैं। इन्हीं दुर्बलताओं से जातीय संगठन पंगु हो गया है। गुरू जी अपने जीवनव्यापी अनुभवों के आधार पर इस जाति के सुसंगठित शक्तिशाली सिक्खों के समुदाय को अपने जीवन के कटु अनुभवों की छाप लगा कर देश के लिये छोड़ गये। जहाँ उन्होंने मूर्ति-पूजा, अवतारवाद, तीर्थ, व्रत, दान आदि बाह्याडम्बरों को समाप्त कर उनके स्थान पर विशुद्ध ईश्वरवाद की स्थापना की, वहीं जाति-पाति, ऊँच-नीच, धनी-निर्धन, छूत-छात, द्वेष, दम्भ, छल, कपट आदि का समूलोच्छेदन करके अखण्ड जातीय एकता का अपूर्व सन्देश भी दिया।

---

१. वही सं० ९

उपसंहार

सिक्खों के दसवें गुरु श्री गोविन्दसिंह जी अपने व्यक्तित्व मे तीन उदात्त स्वरूपों को लेकर अवतरित हुए थे। पहला रूप कुशल योद्धा एव शासक का था, दूसरा तद्युगीन परिस्थितियों के परिवर्तक और खालसा के प्रवर्तक का और तीसरा साहित्य स्रष्टा का।

इतिहास के क्षेत्र में उनकी रण-कुशलता एवं शासन-क्षमता, युगीन परिवेश के परिवर्तन की सफलता और 'खालसा' की पीठिका के सविस्तार विवेचन एवं मूल्याकन के साथ प्रशंसास्पद दृष्टि से देखा गया है किन्तु उसके साहित्य सर्जन पर विहंगावलोकन मात्र करके संतोष कर लिया गया है। फल यह हुआ कि उनकी काव्यगत महत्ता एवं उद्देश्य की चारुता का वास्तविक अध्ययन नहीं किया जा सका है।

जहाँ तक साहित्य सर्जन का प्रश्न है, दशमेश जी की सारी रचनाएँ, एकाध को छोड़कर, हिन्दी भाषा की बहुमूल्य निधियाँ हैं किन्तु दुर्भाग्यवश, गवेषणा और अन्वेषण के अभाव, संप्रदाय विशेष के श्रद्धा-संवलित आधिपत्य और अत्यल्प परिचित गुरुमुखी लिपि होने के विविध कारणों से हिन्दी आलोचकों को उनसे अवगत होने का ही अवसर नहीं मिल सका है। यही कारण है कि अद्यावधि, दशमेश जी को धार्मिक एवं योद्धा रूप में भले आदर की दृष्टि से देखा जाता रहा हो पर साहित्यिक दृष्टि से पूर्णतया उपेक्षित ही रखा गया है।

इससे अधिक दुर्भाग्य क्या हो सकता है कि सारे हिन्दी साहित्य के विस्तृत क्षेत्र में महाकवि चन्द और अब्दुर्रहीम खानखाना को छोड़कर कोई भी व्यक्तित्व शस्त्र एवं शास्त्रों के समान अभ्यास एवं सफल साहित्य-सर्जना की कोटि में नहीं रखा जा सकता। उस रससिद्ध अप्रतिम कवीश्वर से हिन्दी के बडे बड़े विद्वान और आलोचक तक प्रायः अनभिज्ञ हैं।

महाकवि चद और अब्दुर्रहीम के व्यक्तित्व भी, दशमेश जी के सामने गौण हो जाते हैं क्योंकि चन्द और रहीम क्रमशः पृथ्वीराज और मुगल शासकों के आश्रय में थे जब कि दशमेश जी आजीवन अपने समकालीन मुगल सम्राटों से संघर्ष और स्वतंत्र राज्य-संस्थापन के प्रयत्न करते हुए काव्य-साधना कर रहे थे। दूसरा अंतर यह है कि चन्द और रहीम केवल योद्धा और कवि ही थे जबकि दशमेश जी योद्धा, कवि और धार्मिक पथ-प्रदर्शक भी थे। इसके अतिरिक्त धर्म, शासन, एवं रणभूमि

के विविध घात-प्रतिघात सहते हुए भी उन्होंने समकालीन कवियों से मात्रा, संख्या, शैली-वैविध्य, विषय-विस्तार एवं रससिक्तता में बहुत अधिक कार्य संपादित किया है।

इस प्रकार वे अपने अद्वितीय व्यक्तित्व, तत्कालीन और प्राचीन विविध शैलियों, भाषाओं और काव्य परम्पराओं के समायोजन, मौलिक उद्भावनाओं के समावेश और विविध छंद सरणियों के प्रयोग के कारण न केवल अद्वितीय विद्वान, योद्धा एवं साहित्य साधक सिद्ध होते हैं वरन् अनुपमेय प्रतिभावान भी।

ऐसे व्यक्तित्व ससार मे बहुत कम ही पदार्पण कर पाते हैं जिनमें विविध गुणों, विशेषताओं एवं शक्तियों का सम्यक् समावेश हुआ हो। दशमेश जी से निश्चय ही सभी तत्कालीन परिस्थितियों के लिए नहीं वरन् आजकल और भविष्य के लिए भी उपादेय सिद्ध होने वाली विशेषताएँ समाविष्ट थीं। यही कारण है कि उनकी रचनाएँ आज भी राष्ट्र-निर्माण मे महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकती हैं। आवश्यकता केवल उनके अनुशीलन एवं व्यावहारिक धरातल पर उतारने की है।

दशमेश जी की रचनाओं में शाश्वत सत्य, अविनाशी शिव और त्रिकालातीत सुन्दर की त्रिवेणी प्रवाहित हुई है। उनका व्यक्तित्व और कृतित्व महिम ही नहीं, युग-युग तक जीने की क्षमता रखता है। उन्होंने सत् असत्-संघर्ष के वास्तविक तत्त्वों का मर्म पहचान कर जिस स्पष्टता एवं रसमत्ता का परिचय दिया है, वह निरन्तर उसी चिर नवीन रूप मे भावुक, भाविक और रसज्ञ जनों को न केवल मनोरंजन ही वरन् आवश्यकता पड़ने पर उचित मार्ग-निर्देशन भी करेगी।

सहायक ग्रंथ-सूची

संस्कृत

१. ईशावास्योपनिषद्, गीता प्रेस, गोरखपुर, प्रथम संस्करण
२. ऋग्वेद, वैदिक यंत्रालय, अजमेर, प्रथम संस्करण
३. कठोपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर, प्रथम सस्करण
४. काव्यादर्श, आचार्य दंडी, रगाचार्य शास्त्री, १९३८ ई०
५. काव्यालंकार सूत्र वृत्ति, आ० वामन, १९५३ ई०
६. दुर्गा सप्तशती, गीताप्रेस, गोरखपुर, तृतीय संस्करण।
७. ध्वन्यालोक, आ० आनन्दवर्धन, प० दुर्गा प्रसाद, १९२८ ई०
८. नाट्य शास्त्र, भरत मुनि, गायकवाड़ सस्करण, १९५४ ई०
९. मार्कण्डेय पुराण, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, प्रथम संस्करण
१०. मुंडकोपनिषद्, गीता प्रेस, गोरखपुर, चतुर्थ सस्करण
११. यजुर्वेद, वैदिक यंत्रालय, अजमेर प्रथम संस्करण
१२. रस गंगाधर, पंडितराज जगन्नाथ, १९३० ई०
१३. शतपथ ब्राह्मण, निर्णय सागर प्रेस, प्रथम संस्करण
१४. श्रीमद्भगवद्गीता, गीता प्रेस, गोरखपुर, षष्ठ सस्करण
१५. श्रीमद्भागवत् पुराण, गीता प्रेस, गोरखपुर
१६. श्वेताश्वेततरोपनिषद्, गीता प्रेस, गोरखपुर, द्वितीय संस्करण
१७. साहित्यदर्पण, आ० विश्वनाथ, टीका० शालिग्राम शास्त्री, १९७८ वि०
१८. हिन्दी वक्रोक्ति जीवितम्, आ० कुंतक, १९५२ ई०

प्राकृत

१. प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, रिचर्ड पिशेल, अनु० डा हेमचन्द्र जोशी, प्रथम संस्करण

हिन्दी

१. अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल, लखनऊ विश्वविद्यालय, सं० २००७ वि०
२. अकाल स्तुति, गुरु गोविन्द सिंह, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी अमृतसर, १९५०
३. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, डा० दीनदयालु गुप्त, सं० २००४

४. आचार्य केशवदास, डा० हीरालाल दीक्षित, सं० २०११ वि०
५. आचार्य भिखारीदास, डा० नारायण दास खन्ना, सं० २०१२ वि०
६. उत्तरी भारत की संत परम्परा, पं० परशुराम चतुर्वेदी, सं० २००८ वि०
७. कबीर, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, स० १९४२ ई०
८. कबीर ग्रंथावली, डा० श्यामसुन्दर दास, सं० २०१६ वि०
९. काव्य के रूप, श्री गुलाबराय, सन् १९५० ई०
१०. गोविन्द रामायण, श्री गुरु गोविन्द सिंह, सम्पादक संत इन्द्रसिंह चक्रवर्ती, सन् १९५३ ई०
११. छन्द प्रभाकर, श्री जगन्नाथप्रसाद भानु, सन् १९५२ ई०
१२. जपु जी, श्री गुरु नानक देव, अमृतसर संस्करण
१३. जापु जी, श्री गुरु गोविन्द सिंह, अमृतसर संस्करण
१४. तुलसी साहित्य की भूमिका, डा० रामरतन भटनागर, स० १९५८ ई०
१५. प्रगट वाणी, खोज रिपोर्ट, ना० प्र० सभा
१६. पिंगल सूत्र
१७. बानी 'ज्ञानसागर', दादू
१८. बिहारी, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, सं० २०१६ वि०
१९. बिहारी की वाग्विभूति, विश्वनाथप्रसाद मिश्र
२०. बिहारी-रत्नाकर, श्री जगन्नाथ दास रत्नाकर, स० १९५१ ई०
२१. भवानी-विलास-आचार्य देव
२२. भारतवर्ष का इतिहास, डा० ईश्वरी प्रसाद, स० १९५२ ई०
२३. भारतीय ईश्वरवाद, श्री रामावतारशर्मा पांडे
२४ भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा, श्री परशुराम चतुर्वेदी, १९५६ ई०
२५. भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक रेखाएँ, पं० परशुराम चतुर्वेदी, १९५५ ई०
२६. मध्यकालीन भारत की सामाजिक अवस्था, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग स० १९२९ ई०
२७. रसछंदालंकार, डा० रामशंकर शुक्ल रसाल, प्रथम संस्करण
२८. रामचरित मानस, गोस्वामी तुलसीदास, स० १९५० ई०
२९. रीतिकाव्य की भूमिका, डा० नगेन्द्र, स० १९४९ ई०
३०. वाङ्मय विमर्श, पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र सं० २००५ वि०
३१. विचित्र नाटक, श्री गुरु गोविन्द सिंह, अमृतसर संस्करण, स० १९५१ ई०
३२. विद्यासागर, श्री गुरु गोविन्द सिंह, स० १९५५ ई०
३३. श्री गुरु ग्रंथ दर्शन, डा० जयराम मिश्र, स० १९६० ई०

३४. श्री दशमगुरु काव्यामृतसार, डा० जसवन्त सिंह, स० १९३५ ई०
३५. संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, स० १९५२ ई०
३६. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पं० बलदेव उपाध्याय
३७. सत्यार्थ प्रकाश, महर्षि दयानन्द, स० १९९१ वि०
३८. सवैये, श्री गुरु गोविन्द सिंह
३९. सूर सौरभ, डा० मुंशीराम शर्मा, प्रथम संस्करण
४०. हिन्दी काव्य मे निर्गुण सम्प्रदाय, डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल
४१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पं० रामचन्द्र शुक्ल, सं० २०१५ वि०
४२. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय
४३. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षष्ठ भाग, डा० नगेन्द्र, ना० प्र० सभा
४४. हिन्दी साहित्य की भूमिका, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, सं० १९५० ई०
४५. हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास, डा० भगीरथ मिश्र, सं० २००५ वि०
४६. हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठ भूमि, श्री विश्वम्भरनाथ उपाध्याय
४७. हिन्दी साहित्य कोष, डा० धीरेन्द्र वर्मा, प्रथम संस्करण। ज्ञान मंडल, काशी।
४८. हिन्दुत्व, श्री राम दास गौड़

पंजाबी

१. गुरु विलास, भाई सुक्खा सिंह
२. गुरुमत फिलासफी, स० प्रताप सिंह, स० १९५१ ई०
३. चंडी की वार, श्री गुरु गोविन्द सिंह, स० २०१६ वि०
४. जीवन कथा श्री गुरु गोविन्द सिंह, प्रो० कर्तार सिंह, स० १९४६ ई०
५. शब्द मूरत, श्री रणधीर सिंह, सं० २०१२ वि०
६. श्री दशम गुरु ग्रंथ, भाग १, २, श्री गुरु गोविन्द सिंह, सं० २०१३ वि०
७. श्री दशमेश चमत्कार, भाई बूटा सिंह, स० १९५५ ई०
८. श्री गुरु ग्रंथ साहिब, श्री गुरुनानक देव, स० १९५१ ई०

अंग्रेजी

१. इवोल्यूशन आफ दि खालसा, श्री इन्दुभूषण बनर्जी,, स० १९३६ ई०
२. ट्रांसफार्मेशन आफ सिक्खिज्म, डा० गोकुल चन्द नारंग, स० १९४६ ई०
३. दि अपलिफ्ट आफ ह्यूमनिटी, डा० जसवन्त सिंह, स० १९४१ ई०
४. दि पोयट्री आफ दशम ग्रंथ, डा० धर्मपाल आश्ता, स० १९५९ ई०
५. दि सिक्ख रिलिजन, भाग ५, एम० ए० मैकालिफ, स० १९०९ ई०
६. हिस्ट्री आफ औरंगजेब, डा० सर यदुनाथ सरकार
७. हिस्ट्री आफ दि सिक्खस्, जे० डी० कनिंघम, स० १९५५ ई०

८. हिस्ट्री आफ पंजाबी लिटरेचर, डा० मोहन सिंह दीवाना, स० १९३२ ई०
९. राइटर्स आन राइटिंग

हस्तलिखित प्रतियाँ

१. श्री गुरु रामदास लाइब्रेरी, अमृतसर के हस्तलिखित ग्रंथ
२. श्री शिरोमणि गुरुद्वारा लाइब्रेरी, पटना के हस्तलिखित ग्रंथ
३. सेन्ट्रल लाइब्रेरी पटियाला के हस्तलिखित ग्रंथ

खंड (२)

परिशिष्ट-चयनिका

(गुरु गोविन्दसिंह की रचनाओं के प्रमुख अंश)

१ ओं सतिगुरु प्रसादि ॥

जापु

श्रीमुखवाक पातिसाही १० ॥

छपै छन्द ॥ त्व प्रसादि ॥

चक्र चिन्ह अरु बरन जाति अरु पाति नहिन जिह ।
रूप रंग अरु रेख भेख कोऊ कहि न सकत किह ॥
अचल मूरति अनभउ प्रकास अमितोज कहिज्जै ।
कोटि इन्द्र इन्द्राण साहु साहाणि गणिज्जे ॥
त्रिभवण महीप सुर नर असुर नेत नेत बन तृण कहत ।
तब सरब नाम कथै कवन करम नाम बरनत सुमत ॥ १ ॥

भुजंगप्रयात छन्द ॥

नमसत्वं अकाले । नमसत्वं कृपाले ॥ नमसतं अरूपे । नमसतं अनूपे ॥२॥
नमसतं अभेखे । नमसतं अलेखे ॥ नमसतं अकाए । नमसतं अजाए ॥३॥
नमसतं अगंजे । नमसतं अभंजे ॥ नमसतं अनामे । नमसतं अठामे ॥४॥
नमसतं अकरमं । नमसतं अधरमं ॥ नमसतं अनामं । नमसतं अधामं ॥५॥
नमसतं अजीते । नमसतं अभीते ॥ नमसतं अबाहे । नमसतं अढाहे ॥६॥
नमसतं अनीले । नमसतं अनादे ॥ नमसतं अछेदे । नमसतं अगाधे ॥७॥
नमसतं अगंजे । नमसतं अभंजे ॥ नमसतं उदारे । नमसतं अपारे ॥८॥
नमसतं सु एके । नमसतं अनेके ॥ नमसतं अभूते । नमसतं अजूपे ।९॥
नमसतं निरकरमे । नमसतं निरभरमे॥ नमसतं निरदेसे । नमसतं निरभेसे ॥१०॥
नमसतं निरनामे । नमसतं निरकामे॥ नमसतं निरधाते । नमसतं निरघाते ॥११॥
नमसतं निरधूते । नमसतं अभूते ॥ नमसतं अलोके । नमसतं असोके ॥१२॥
नमसतं निरतापे । नमसतं अथापे ॥ नमसतं त्रिमाने । नमसतं निधाने ॥१३॥
नमसतं अगाहे । नमसतं अबाहे ॥ नमसतं त्रिबरगे । नमसतं असरगे ॥१४॥
नमसतं प्रभोगे । नमसतं सुजोगे ॥ नमसतं अरंगे । नमसतं अभंगे ॥१५॥
नमसतं अगंमे । नमसतसतु रंमे । नमसतं जलासरे । नमसतं निरासरे ॥१६॥
नमसतं अजाते । नमसतं अपाते ॥ नमसतं अमजबे । नमसतसतु अजबे ॥१७॥
अदेसं अदेसे । नमसतं अभेसे ॥ नमसतं निरधामे । नमसतं निरबामे ॥१८॥
नमो सरब काले । नमो सरब दिआले । नमो सरब रूपे ॥ नमो सरब भूपे ॥१९॥

नमो सरब खापे । नमो सरब थापे ॥ नमो सरब काले । नमो सरब पाले ॥२०॥
नमसतसतु देवे । नमसतं अभेवे ॥ नमसतं अजनमे । नमसतं सुबनमे ॥२१॥
नमो सरब गउने । नमो सरब भउने ॥ नमो सरब रंगे । नमो सरब भंगे ॥२२॥
नमो काल काले । नमसतसतु दिआले ॥ नमसतं अबरने । नमसतं अमरने ॥२३॥
नमसतं जरारं । नमसतं क्रितारं ॥ नमो सरब धंधे । नमो सत अबंधे ॥२४॥
नमसतं निरसाके । नमसतं निरबाके ॥ नमसतं रहीमे । नमसतं करीमे ॥२५॥
नमसतं अनते । नमसतं महते ॥ नमसतसतु रागे । नमसतं सुहागे ॥२६॥
नमो सरब सोखं । नमो सरब पोखं ॥ नमो सरब करता । नमो सरब हरता ॥२७॥
नमो जोग जोगे । नमो भोग भोगे ॥ नमो सरब दिआले । नमो सरब पाले ॥२८॥

चाचरी छन्द ॥ त्व प्रसादि ॥

अरूप हैं । अनूप हैं ॥ अजू हैं । अभू हैं ॥ २९ ॥
अलेख हैं । अभेख हैं ॥ अनाम हैं । अकाम हैं ॥ ३० ॥
अधे हैं । अभे हैं ॥ अजीत हैं । अभीत हैं ॥ ३१ ॥
त्रिमान हैं । निधान हैं ॥ त्रिबरग हैं । असरग हैं ॥ ३२ ॥
अनील हैं । अनादि हैं ॥ अजे हैं । अजादि हैं ॥ ३३ ॥
अजनम हैं । अबरन हैं ॥ अभूत हैं । अभरन हैं ॥ ३४ ॥
अगर्ज हैं । अभर्ज हैं ॥ अझूझ हैं । अझझं हैं ॥ ३५ ॥
अमाक हैं । रफीक हैं ॥ अधधं हैं । अबधं हैं ॥ ३६ ॥
निरबूझ हैं । असूझ हैं ॥ अकाल हैं । अजाल हैं ॥ ३७ ॥
अलाह हैं । अजाह हैं ॥ अनंत हैं । महंत हैं ॥ ३८ ॥
अलीक हैं । निरसीक हैं ॥ निरलभं हैं । असंभ हैं ॥ ३९ ॥
अगंम हैं । अजंम हैं ॥ अभूत हैं । अछूत हैं ॥ ४० ॥
अलोक हैं । असोक हैं ॥ अकरम हैं । अभरम हैं ॥ ४१ ॥
अजीत हैं । अभीत हैं ॥ अबाह हैं । अगाह हैं ॥ ४२ ॥
अमान हैं । निधान हैं ॥ अनेक हैं । फिरि एक हैं ॥ ४३ ॥

भुजंगप्रयात छंद ॥

नमो सरब माने । समसती निधाने ॥ नमो देव देवे । अभेखी अभेवे ॥४४॥
नमो काल काले । नमो सरब पाले ॥ नमो सरब गउणे । नमो सरब भउणे ॥४५॥
अनंगी अनाथे । निरसंगी प्रमाथे ॥ नमो भान भाने । नमो मान माने ॥४६॥
नमो चन्द्र चंद्रे । नमो भान भाने ॥ नमो गीत गीते । नमो तान ताने ॥४७॥
नमो नृत्त नृत्ते । नमो नाद नादे ॥ नमो पान पाने । नमो बाद बादे ॥४८॥
अनंगी अनामे । समसती सरूपे ॥ प्रभंगी प्रमाथे । समसती बिभूते ॥४९॥

कलंक बिना नेकलंकी सरूपे। नमो राज राजेस्वरं परम रूपे ॥५०॥
नमो जोग जोगेस्वरं परम सिद्धे। नमो राज राजेस्वरं परम बृद्धे ॥५१॥
नमो सस्त्रपाणे। नमो अस्त्रपाणे। नमो परम गिआता। नमो लोक माता ॥५२॥
अभेखी अभरमी अभोगी अभुगते। नमो जोग जोगेस्वरं परम जुगते ॥५३॥
नमो निस्त नाराइणे क्रूर करमे। नमो प्रेत अप्रेत देवे सुधरमे ॥५४॥
नमो रोग हरता नमो राग रूपे। नमो साह साहं नमो भूप भूपे ॥५५॥
नमो दान दाने नमो मान मानें। नमो रोग रोगे नमसतं इसनानं ॥५६॥
नमो मंत्र मंत्रं। नमो जंत्र जंत्रं। नमो इसट इसटे। नमो तंत्र तंत्रं ॥५७॥
सदा सच्चिदानंद सरबं प्रणासी। अनूपे अरूपे समसतुल निवासी ॥५८॥
सदा सिद्धदा बुद्धदा बृद्ध करता। अधो उरध अरधं अघं ओघ हरता ॥५९॥
परं परम परमेस्वरं प्रोछपालं। सदा सरबदा सिद्ध दाता दिआलं ॥६०॥
अछेदी अभेदी अनामं अकामं। समसतोपराजी समसतसतु धामं ॥६१॥

तेरा जोरू । चाचरी छंद ॥
जले हैं। थले हैं॥ अभीत हैं। अभे हैं ॥६२॥
प्रभू हैं। अजू हैं॥ अदेस हैं। अभेस हैं ॥६३॥
भुजंगप्रयात छंद ।

अगाधे अबाधे। अनंदी सरूपे॥ नमो सरब माने। समसती निधाने ॥६४॥
नमसत्वं निरनाथे। नमसत्वं प्रमाथे॥ नमसत्वं अगंजे। नमसत्वं अभंजे ॥६५॥
नमसत्वं अकाले। नमसत्वं अपाले॥ नमो सरब देसे। नमो सरब भेसे ॥६६॥
नमो राज राजे। नमो साज साजे॥ नमो शाह शाहे। नमो माह माहे ॥६७॥
नमो गीत गीते। नमो प्रीत प्रीते॥ नमो रोख रोखे। नमो सोख सोखे ॥६८॥
नमो सरब रोगे। नमो सरब भोगे॥ नमो सरब जीतं। नमो सरब भीतं ॥६९॥
नमो सरब गिआनं। नमो परम तानं॥ नमो सरब मंत्रं। नमो सरब जंत्रं ॥७०॥
नमो सरब द्रस्सं। नमो सरब क्रस्सं॥ नमो सरब रंगे। त्रिभंगी अनंगे ॥७१॥
नमो जीव जीवं। नमो बीज बीजे॥ अखिज्जे अभिज्जे। समसतं प्रसिज्जे ॥७२॥
क्रिपालं सरूपे कुकरमं प्रणासी॥ सदा सरबदा रिद्धि सिद्धं निवासी ॥७३॥

....

अकाल स्तुति

१ ओं सतिगुरु प्रसादि।
उतार खासे दसखत का॥ पातशाही १०॥
अकाल पुरख की रच्छा हमनै॥
सर्ब लोह दी रछिआ हमनै॥

सर्बं काल जी दी रछिआ हमनै ॥
सर्बं लोह जी दी सदा रछिआ हमनै ॥
आगे दसखत लिखारी के ॥

त्व प्रसादि ॥ चौपई ॥

प्रणवो आदि एकंकारा ॥ जल थल मही अल कीओ पसारा ॥
आदि पुरख अबिगति अबिनासी ॥ लोक चतुर्दस जोति प्रकासी ॥ १ ॥
हस्त कीट के बीच समाना ॥ राव रंक जिह इक सर जाना ॥
अब्दै अलख पुरख अबिगामी ॥ सब घट घट के अन्तरजामी ॥ २ ॥
अलख रूप अछै अनभेखा ॥ राग रंग जिह रूप न रेखा ॥
बरण चिन्ह सबहूं ते न्यारा ॥ आदि पुरख अब्दै अबिकारा ॥ ३ ॥
बरण चिन्ह जिह जात न पाता ॥ सत्र मित्र जिह तात न माता ॥
सब ते दूरि सभन ते नेरा ॥ जल थल महीअल जाहि बसेरा ॥ ४ ॥
अनहद रूप अनाहद बानी ॥ चरन सरन जिह बसत भवानी ॥
ब्रह्मा बिसन अन्तु नहीं पायो ॥ नेत नेत मुख चार बतायो ॥ ५ ॥
कोटि इन्द्र उप इन्द्र बनाये ॥ ब्रह्मा रूद्र उपाइ खपाये ॥
लोक चतुर्दस खेल रचायो ॥ बहुर आप ही बीच मिलायो ॥ ६ ॥
दानव देव फनिन्द अपारा ॥ गन्धर्व जच्छ रचै सुभचारा ॥
भूत भविख्य भवान कहानी ॥ घट घट के पट पट की जानी ॥ ७ ॥
तात मात जिह जात न पाता ॥ एक रंग काहूँ नहिं राता ॥
सरब जीत के बीच समाना ॥ सबहूँ सरब ठौर पहिचाना ॥ ८ ॥
काल रहित अनकाल सरूपा ॥ अलख पुरख अबिगत अवधूता ॥
जात पात जिह चिन्ह न बरना ॥ अबिगत देव अछै अनभरमा ॥ ९ ॥
सब को काल सबन को करता ॥ रोग सोग दोखन को हरता ॥
एक चित्त जिह इक छिन ध्यायो ॥ काल फास के बीच न आयो ॥ १० ॥

त्व प्रसादि ॥ कबित्त ॥

कतहूँ सुचेत हुइकै चेतना को चार कीओ,
कतहूँ अचित हुइकै सोवत अचेत हो ॥
कतहूँ भिखारी हुइकै मांगत फिरत भीख,
कहूँ महादानि हुइके मांगिओ दान देत हो ॥
कहूँ महाराजन को दीजत अनन्त दान,
कहूँ महाराजन ते छीन छित लेत हो ॥

कहूँ बेद रीत कहूँ ता सिउं बिपरीत,
कहूँ त्रिगुन अतीत कहूँ सुरगन समेत हो ॥ ११ ॥
कहूँ जच्छ गन्धर्व उरग कहूँ विद्याधर,
कहूँ भये किन्नर पिसाच कहूँ प्रेत हो ॥
कहूँ हुइकै हिन्दुआ गायत्री को गुप्त जप्यो,
कहूँ हुइकै तुरका पुकारै बांग देत हो ॥
कहूँ कोक काव हुइकै पुराण को पढत मत,
कतहूँ कुरान को निदान जान लेत हो ॥
कहूँ वेद रीत कहूँ ता सिउं बिपरीत,
कहूँ त्रिगुन अतीत कहूं सुरगुन समैत हो ॥ १२ ॥
कहूँ देवतान के दिवान मे विराजमान,
कहूँ देवतान को गुमान मत देत हो ॥
कहूँ इन्द्र राजा को मिलत इन्द्र पदवी सी,
कहूँ इन्द्र पदवी छिपाइ छीन लेत हो ॥
कतहूँ विचार अविचार को विचारत हो,
कहूँ निजनार पर नार के निकेत हो ॥
कहूँ बेद रीत कहूँ ता सिउं बिपरीत,
कहूँ त्रिगुन अतीत कहूँ सुरगुन समेत हो ॥ १३ ॥
कहूँ जटाधारी कहूँ कण्ठी धरे ब्रह्मचारी,
कहूँ जोग साधी कहूँ साधना करत हो ॥
कहूँ कान फारे कहूँ डण्डी होइ पधारे,
कहूँ फूक फूक पावन को पृथी पै धरत हो ॥
कतहूँ सिपाही हुइकै साधत सिपाहन कौ,
कहूँ छत्री हुइके अरि मारत मरत हो ॥
कहूँ भूम भार को उतारत हो महाराज,
कहूँ भव भूतन की भावना भरत हो ॥ १४ ॥
कहूँ गीतनाद के निदान को बतावत हो,
कहूँ नृतकारी चित्रकारी के निधान हो ॥
कतहूँ पयूख हुइकै पीवत पिवावत हो,
कतहूँ पयूख ऊख कहूँ मद पान हो ॥
कहूँ महासुर हुइकै मारत मवासन को,
कहूँ महादेव देवतान के समान हो ॥

कहूँ महादीन कहूँ द्रव्य के अधीन,
कहूँ विद्या में प्रवीन कहूँ भूम कहूँ भान हो ॥ १५ ॥
कहूँ अकलंक कहूँ मारत मयंक,
कहूँ पूरण प्रजंक कहूँ सुद्धता की सार हो ॥
कहूँ देव धर्म कहूँ साधना के हर्म,
कहूँ कुत्सित कुकर्म कहूँ धर्म के प्रकार हो ॥
कहूँ पउनाहारी कहूँ विद्या के विचारी,
कहूँ जोगी जती ब्रह्मचारी नर कहूँ नार हो ॥
कहूँ छत्र धारी कहूँ छाला धरे छैल भारी,
कहूँ छकवारी कहूँ छल के प्रकार हो ॥ १६ ॥
कहूँ गीत के गवैया कहूँ बेन के बजैया,
कहूँ नृत्य के नचैया कहूँ नर को अकार हो ॥
कहूँ बेद बाणी कहूँ कोक की कहानी,
कहूँ राजा कहूँ रानी कहूँ नार के प्रकार हो ॥
कहूँ बेन के बजैया कहूँ धेन के चरैया,
कहूँ लाखन लवैया कहूँ सुन्दर कुमार हो ॥
सुद्धता की सान हो कि सन्तन के प्रान हो,
कि दाता महादान हो कि निर्दोखी निरंकार हो ॥ १७ ॥
निरजुर निरूप हो कि सुन्दर सरूप हो,
कि भूपन के भूप हो कि दाता महादान हो ॥
प्रान के बचैया दूध पूत के दिवैया,
रोग सोग के मिटैया किंधौ मानी महामान हो ॥
विद्या के विचार हो कि अद्वै अवतार हो,
कि सिद्धता की सूरति हो कि सुद्धता की सान हो ॥
जीवन के जाल हो कि काल हूँ के काल हो,
कि सत्रन के सूल हो कि मित्रन के प्राण हो ॥ १९ ॥
कहूँ ब्रह्मवाद कहूँ विद्या को विखाद,
कहूँ नाद को ननाद कहूँ पूरन भगत हो ॥
कहूँ वेद रीत कहूँ विद्या की प्रतीत,
कहूँ नीत औ अनीत कहूँ ज्वाला सी जगत हो ॥
पूरन प्रताप कहूँ इकांती को जाप कहूँ,
ताप के अताप कहूँ जोग ते डिगत हो ॥

कहूँ बर देत कहूँ छल सिउँ छिनाइ लेत,
सर्ब काल सर्ब ठउर एक से लगत हो ॥ २० ॥

त्व प्रसादि ॥ सवैये ॥

स्रावग सुद्ध समूह सिधान के देखि फिरिओ घर जोग जती के ॥
सूर सुरार्दन सुद्ध सुधादिक सन्त समूह अनेक मती के ॥
सारे ही देस को देख रह्यो मत कोऊ न देखियत प्राणपती के ॥
श्री भगवान की भाइ कृपा हू ते एक रती बिन एक रती के ॥ २१ ॥
माते मतंग जरे जर संग अनूप उतंग सुरंग सवारे ॥
कोट तुरंग कुरंग से कूदत पउन के गउन को जात निवारे ॥
भारी भुजान के भूप भली विधि निआवत सीस न जात विचारे ॥
एते भये तु कहा भये भूपति अन्त को नागे ही पांइ पधारे ॥ २२ ॥
जीत फिरे सब देस दिसान को बाजत ढोल मृदंग नगारे ॥
गुञ्जत गूढ़ गजान के सुन्दर हँसत हैं हयराज हजारे ॥
भूत भविष्य भवान के भूपत कउन गनै नहीं जात विचारे ॥
श्री पति श्री भगवान भजे विनु अन्त को अन्त के धाम सिधारे ॥ २३ ॥
तीरथन्हान दया दम दान सु संजम नेम अनेक बिसेखे ॥
वेद पुरान कतेब कुरान जमीन जमान सबान के पेखे ॥
पउन अहार जती जत धार सबै सु बिचार हज़ारक देखे ॥
श्री भगवान भजे विन भूपति एक रती विन एक न लेखे ॥ २४ ॥
सुद्ध सिपाह दुरन्त दुबाह सु साज सनाह दुर्जान दलैंगे ॥
भारी गुमान भरे मन मैं कर परवत पंखं हले न हलैंगे ॥
तोर अरीन मरोर मवासन माते मतंगन मान मलैंगे ॥
श्रीमत श्री भगवान भजे विन त्याग जहानु निदान चलैंगे ॥ २५
बीर अपार बड़े बरिआर अबिचारहि सार की धार भछैया ॥
तोरत देस मलिन्द मवासन माते गजान के मान मलैया ॥
गाढ़े गढ़ान के तोड़नहार सो बातन ही चक चार लवैया ॥
साहिबु श्री सब को सिर नायक जाचक अनेक सु एक दिवैया । २६ ॥
दानव देव फनिन्द निसाचर भूत भविख्य भवान जपैंगे ॥
जीव जिते जल मैं थल में पल ही पल मे सब थाप थपैंगे ॥
पुन्न प्रतापन बाढ़जैत धुनि पापन के बहु पुन्ज खपैंगे ॥
साध समूह प्रसन्न फिरैं जग सत्र सभै अवलोक चपैंगे ॥ २७ ॥
मानव इन्द्र गजिन्द्र नराधिप जौन त्रिलोक को राज करैंगे ॥
कोटि स्नान गजादिक दान अनेक सुअम्बर साज बरैंगे ॥

ब्रह्म महेसर बिसन सचीपति अन्त फसे जम फास परैंगे ॥
जे नर श्रीपति के परसैंहैं पग ते नर फेर न देह धरैंगे ॥ २८ ॥
कहाँ भयो दोऊ लोचन मून्द के बैठि रह्यो बक ध्यान लगायो ॥
न्हात फिर्‍यो लिये सात समुद्रन लोक गयो परलोक गवायो ॥
बास कीओ बिखिआन सो बैठ के ऐसे ही ऐस सु बेस बितायो ॥
साच कहों सुन लेहु सबै जिन प्रेम कियो तिनही प्रभु पायो ॥ २९ ॥
काहू लै पाहन पूज धर्‍यो सिर काहू लै लिग गरे लटकायो ॥
काहू लखिओ हरि अवाची दिसामहि काहू पछाह को सीस निवायो ॥
कोऊ बितान को पूजत है पसु कोऊ मृतान को पूजन धायो ॥
कूर क्रिया उरझ्यो सब ही जग श्री भगवान को भेद न पायो ॥ ३० ॥

त्व प्रसादि ॥ तोमर छन्द ।

हरि जन्म मरन बिहीन ॥ दस चार चार प्रबीन ॥
अकलंक रूप अपार ॥ अनछिज्ज तेज उदार ॥ ३१ ॥
अनभिज्ज रूप दुरन्त ॥ सब जगत भगत महन्त ॥
जस तिलक भूभृत भान ॥ दस चार चार निधान ॥ ३२ ॥
अकलंक रूप अपार ॥ सब लोक सोक बिदार ॥
कल काल कर्म बिहीन ॥ सब कर्म धर्म प्रबीन ॥ ३३ ॥
अनखन्ड अतुल प्रताप ॥ सब थापिओ जिह थाप ॥
अनखेद भेद अछेद ॥ मुख चार गावत बेद ॥ ३४ ॥
जिह नेत निगम कहन्त ॥ मुख चार बकत बेअन्त ॥
अनभिज्ज अतुलल प्रताप ॥ अनखन्ड अभित्त अथाप ॥ ३५ ॥
जिह कीन जगत पसार ॥ रच्यो विचार विचार ॥
अनन्त रूप अखन्ड ॥ अतुल प्रताप प्रचन्ड ॥ ३६ ॥
जिह अन्ड ते ब्रह्मन्ड ॥ कीने सु चौदह खन्ड ॥
सब कीन जगत पसार ॥ अव्यक्त रूप उदार ॥ ३७ ॥
जिह कोट इन्द्र नृपार ॥ कई ब्रह्म बिसन विचार ॥
कई राम कृष्ण रसूल ॥ बिन भगत को न कबूल ॥ ३८ ॥
कई सिन्ध बिन्ध नगिन्द्र ॥ कई मच्छ कच्छ फनिन्द्र ॥
कई देव आदि कुमार ॥ कई कृष्ण बिश्न अवतार ॥३९॥
कई इन्द्र बार बुहार ॥ कई बेद और मुख चार ॥
कई रुद्र छुद्र सरूप ॥ कई राम कृष्ण अनूप ॥४०॥
कई कोक काव भणन्त ॥ कई बेद भेद कहन्त ॥
कई शास्त्र सिमृति बखान ॥ कहूँ कथत ही सु पुरान ॥४१॥

कई अग्नि होत्र करन्त ॥ कई उर्द्ध ताप दुरन्त ॥
कई उर्द्ध बाहु संन्यास ॥ कहूँ जोग भेस उदास ॥४२॥
कहूँ निवली कर्म करंत ॥ कहूँ पौन अहार दुरन्त ॥
कहूँ तीरथ दान अपार ॥ कहूँ जग्ग कर्म उदार ॥४३॥
कहूँ अग्नि होत्र अनूप ॥ कहूँ न्याय राज विभूत ॥
कहूँ सास्त्र सिमृति रीति ॥ कहूँ बेद सिऊ विपरीत ॥४४॥
कई देस देस फिरन्त ॥ कई एक ठौर इस्थन्त ॥
कहूँ करत जल महि जाप ॥ कहूँ सहत तन पर ताप ॥४५॥
कहूँ बास बनहि करन्त ॥ कहूँ ताप तनहि सहन्त ॥
कहूँ गृहस्त धर्म अपार ॥ कहूँ राज रीत उदार ॥४६॥
कहूँ रोग रहत अभरम्म ॥ कहूँ कर्म करत अकरम ॥
कहूं शेष ब्रह्म सरूप ॥ कहू नीत राज अनूप ॥४७॥
कहू रोग सोग विहीन ॥ कहूं एक भगत अधीन ॥
कहू रंक राजकुमार ॥ कहू वेद व्यास अवतार ॥४८॥
कई ब्रह्म वेद रटन्त ॥ कई शेष नाम उचरन्त ॥
बैराग कहूँ संन्यास ॥ कहूँ फिरत रूप उदास ॥४९॥
सब कर्म फोकट जान ॥ सब धर्म निहफल मान ॥
बिन एक नाम अधार ॥ सब कर्म भरम बिचार ॥५०॥

त्व प्रसादि । लघु निराज छन्द ॥

जले हरी ॥ थले हरी ॥ उरे हरी ॥ बने हरी ॥५१॥
गिरे हरी ॥ गुफे हरी ॥ छिते हरी ॥ नभे हरी ॥५२॥
इहाँ हरी ॥ ऊहाँ हरी ॥ जिमी हरी ॥ जमाँ हरी ॥५३॥
अलेख हरी ॥ अभेख हरी ॥ अदोख हरी ॥ अद्वैख हरी ॥५४॥
अकाल हरी ॥ अपाल हरी ॥ अछेद हरी ॥ अभेद हरी ॥५५॥
अजन्त्र हरी ॥ अमन्त्र हरी ॥ सुतेज हरी ॥ अतन्त्र हरी ॥५६॥
अजात हरी ॥ अपात हरी ॥ अमृत हरी ॥ अमात हरी ॥५७॥
अरोग हरी ॥ असोक हरी ॥ अमर्म हरी ॥ अकर्म हरी ॥५८॥
अजै हरी ॥ अभै हरी ॥ अभेद हरी ॥ अछेद हरी ॥५९॥
अखण्ड हरी ॥ अमन्ड हरी ॥ अडन्ड हरी ॥ प्रचन्ड हरी ॥६०॥
अतेव हरी ॥ अभेव हरी ॥ अजेव हरी ॥ अछेव हरी ॥६१॥
भजो हरी ॥ थपो हरी ॥ तपो हरी ॥ जपो हरी ॥६२॥
जलस तुही ॥ थलस तुही ॥ नदिस तुही ॥ नदस तुही ॥६३॥

बछस तुही ॥ पतस तुही ॥ छितस तुही ॥ उर्धस तुही ॥६४॥
भजस तुअं ॥. भजस तुअं ॥ रटस तुअं ॥ ठटस तुअं ॥६५॥
जिमीं तुहीं ॥ जमाँ तुही ॥ मकीं तुही ॥ मकां तुही ॥६६॥
अभू तुही ॥ अभै तुही ॥ अछू तुही ॥ अछै तुही ॥६७॥
जतस तुही ॥ ब्रतस तुही ॥ गतस तुही ॥ मतस तुही ॥६८॥
तुही तुही ॥ तुही तुही ॥ तुही तुही ॥ तुही तुही ॥६९॥

....

त्व प्रसादि कवित्त

अत्र के चलैया छित छत्र के धरैया छत्र,
धारियों के छलैया महा सत्रुन के साल हैं ॥
दान के दिवैया महामान के बढैया,
अवसान के दिवैया हैं कटैया जमजाल हैं ॥
जुद्ध के जितैया और बिरुद्ध के मिटैया,
महा बुद्धि के दिवैया महामान हूं के मान हैं ॥
ज्ञान हूं के ज्ञाता महा बुद्धिता के दाता,
देव काल हूं के काल महाकाल हूं के काल हैं ॥ २५३ ॥
पूरबी न पार पावै हिंगुला हिमालै ध्यावे,
गोर गुरदेजी गुन गावै तेरे नाम हैं ॥
जोगी जोग साधै पउन साधना कितेक बाधै,
आरब के आरबी अराधै तेरे नाम हैं ॥
फराके फिरंगी माने कन्धारी कुरेसी जाने,
पच्छम के पच्छमी पछाने निज काम हैं ॥
मरहटा मघेले तेरी मन सो तपस्या करे,
दिड़वै तिलंगी पहचाने धरम धाम हैं ॥ २५४ ॥
बंग के बंगाली फिरंहग के फिरंगावाली,
दिली के दिलवाली तेरी आज्ञा में चलत हैं ॥
रोह के रूहेले माघ देस के मघेले,
बीर बंगसी बुन्देले पाप पुञ्ज को मलत हैं ॥
गोखा गन गावै चीन मची न के सीस न्यावे,
तिब्बंती धिआइ दोख देह को दलत हैं ॥
जिने तोहि ध्यायो तिनै पूरन प्रताप पायो,
सर्ब धान धाम फल फूल सो फलत हैं ॥ २५५ ॥

देव देवतान को सुरेस दानवान को,
महेस गंग धान को अभेस कहीअत हैं ॥
रंग मै रंगीन राग रूप में प्रबीन,
और काहू पै न दीन साध अधीन कहीअत हैं ॥
पाईए न पार तेज पुञ्ज में अपार,
सर्ब बिद्या के उदार हैं अपार कहीअत हैं ॥
हाथी की पुकार पल पाछे पहुचत ताहि,
चीटीं की चिघार पहले ही सुनीअत हैं ॥ २५६ ॥

केते इन्द्र दुआर केते ब्रह्मा मुखचार,
केते कृष्णा अवतार केते राम कहीअत हैं ॥
केते ससि रासी केते सूरज प्रकासी,
केते मुंडीआ उदासी जोग दुआर दहीअत हैं ॥
केते महादीन केते व्यास से प्रवीन,
केते कुमेर कुली न केते जच्छ कहीअत हैं ॥
करत है विचार पै न पूरन को पावै पार,
ताही ते अपार निराधार लहीअत हैं ॥ २५७ ॥

पूरन अवतार निराधार है न पारावार,
पाईए न पार पै अपार कै बखानिए ॥
अद्वय अबिनासी परम पूरन प्रकासी,
महारूपहूँ के रासी हैं अनासी कै कै मानीए ॥
जन्त्रहूँ न जात जाकी बाप हूं न माइ ताकी,
पूरन प्रभा की सु छटा कै अनुमानीऐ ॥
तेजहूँ को तन्त्र हैं कि राजसी को जन्त्र हैं,
कि मोहनी को मन्त्र है निज कै कै जानीए ॥ २५८ ॥

तेज हूं को तर हैं कि राजसी को सर हैं,
कि सुद्धता को घर हैं कि सिद्धता की सार हैं ॥
कामना खाण हैं कि साधना की सान हैं,
बिरक्तता की बान हैं कि बुद्धि की उदार हैं ॥
सुन्दर सरूप हैं कि भूपन को भूप हैं,
कि रूपहूं को रूप हैं कुमति को प्रहार हैं ॥
दीनन को दाता हैं गनीमन को गारक हैं,
साधन को रच्छक हैं गुनन को पहार हैं ॥ २५९ ॥

सिद्ध को सरूप हैं कि बुद्धि को बिभूति हैं,
कि क्रुद्ध को अभूत हैं कि अच्छे अबिनासी हैं ॥
काम की कुनिन्दा हैं कि खूबी ही दहिन्दा हैं,
गनीमन गरिन्दा हैं कि तेज को प्रकासी हैं ॥
काल हूँ के काल हैं कि सत्रन के साल हैं,
मित्रन को पोखत हैं कि बृद्धता की बासी हैं ॥
जोग हूँ को जन्त्र हैं कि तेज हूँ को तन्त्र हैं,
कि मोहिनी को मन्त्र हैं कि पूरन प्रकासी हैं ॥ २६० ॥

रूप को निवास हैं कि बुद्धि को प्रकास हैं,
कि सिद्धता को बास हैं कि बुद्धिहू को घरू हैं ॥
देवन को देव हैं निरन्जन अभेव हैं,
अदेवन को देव हैं कि सुद्धता को सरू हैं ॥
जान को बचैया हैं ईमान को दिवैया,
जमजाल को कटैया हैं कि कामना को करूँ हैं ॥
तेज को प्रचन्ड हैं अखन्डण को खन्ड हैं,
महीपन को मन्ड हैं कि इस्त्री है न नर हैं ॥ २६१ ॥

बिस्व को भरन हैं कि अपदा को हरन हैं,
कि सुख को करन हैं कि तेज को प्रकाश है ॥
पाइये न पार पारावार हूं को पार,
जाको कीजत विचार सु विचार को निवास हैं ॥
हिंगुला हिमालै गावै हसबी हलब्बी ध्यावे,
पूरबी न पार पावै आसा ते अनास हैं ॥
देवन को देव महादेवहूं के देव हैं,
निरन्जन अभेवा नाथ अव्रदय अबिनास हैं ॥ २६२ ॥

अन्जन विहीन हैं निरन्जन प्रवीन हैं,
कि सेवक अधीन हैं कटैया जमजाल के ॥
देवन के देव महादेव हूं के देवनाथ,
भूम के भुजैया हैं मुहैया महाकाल के ॥
राजन के राजा महासाजहूं के साजा,
महाजोग हूं को जोग हैं धरैया द्रुम छाल के ॥
कामना के कर हैं कि बुद्धिता को हर हैं,
कि सिद्धता के साथी हैं कि काल हैं कुचाल के ॥ २६३ ॥

छीर कैसी छीरावध छाछ कैसी छत्रानेर,
छपाकर कैसी छवि कालिन्दी के कूल के ॥
हँसनी सी सीहा रूप हीरा सी हुसैनाबाद,
गंगा कैसी धार चली सातो सिन्ध रूल के ॥
पारासी पलाऊ गढ़ रूपा कैसी रामपुर,
सौरासी सुरंगाबाद नीके रही झूल के ॥
चंपासी चन्देरी कोट चान्दनी सी चान्दा गढ़,
कीरति तिहारी रही मालती सी फूल के ॥ २६४ ॥

फटक सी कैलास कमाऊँगढ़ कांसीपुर,
सीसा सी सुरंगाबाद नीकै सौहीअतु है ॥
हिमांसी हिमाले हर हारसी हलव्वानेर,
हंस कैसी हाजीपुर देखे मोहअतु है ॥
चन्दन सी चंपावती चन्द्रमासी चन्द्रागिर,
चान्दनी सी चान्दागढ़ जो न जोहीअतु है ॥
गंगा सम गंगधार बकानसी बलिदाबाद,
कीरति तिहारी की उजिआरी सोहीअतु है ॥ २६५ ॥

फरासी फिरगी फरांसीस के दुरुगी,
मकरान के मृदंगी तेरे गीत गाईअतु है ॥
भखरी कंधारी गोर गखरी गरदेजा चारी,
पउन के अहारी तेरो नाम ध्याईयतु है ॥
पूरब पलाऊ कामरूप और कमाऊ,
सर्ब ठउर में बिराजे जहाँ-जहाँ जाईअतु है ॥
पूरन प्रतापी जन्त्र-मन्त्र ते अतापी,
नाथ कीरति तिहारी को न पार पाईअतु है ॥ २६६ ॥

....

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥

विचित्र नाटक

अथ विचित्र नाटक ग्रन्थ लिख्यते ॥
त्व प्रसादि ॥ श्री मुख वाक् पातशाही ॥ १० ॥

दोहरा ॥

नमस्कार श्री खड़ग को करो सु हित चितु लाइ ॥
पूरण करो ग्रन्थ इहु तुम मुहि करहु सहाइ ॥ १ ॥

त्रिभंगी छन्द

॥ श्री काल जी की स्तुति ॥

खग खन्ड बिहन्डं खल दल खन्डं अति रण मंडं बरबन्डं ॥
भुजदंड अंखडं तेज प्रचंडं जोति अमंडं भानु प्रभं ॥
सुख संता करणं दुरमति दरणं किलबिख हरणं असि सरणं ॥
जय-जय जग कारण सृष्टि उबारण मम प्रतिपारण जय तेगं ॥ २ ॥

भुजगंप्रयात छन्द ॥

सदा एक जोत्यं अजोनी सरूपं ॥ महादेव देवं महा भूप भूपं ॥
निरंकार नित्यं निरूपं निर्बाणं ॥ कलंकारणेयं नमो खड़ग पाणं ॥ ३ ॥
निरंकार निबिकार नित्यं निरालं ॥ न बृद्धं बिसेखं न तरूणं न बालं ॥
न रंकं न रायं न रूपं न रेखं ॥ न रंगं न रागं अपारं अभेखं ॥४॥
न रूपं न रेखं न रंगं न रागं ॥ न नामं न ठामं महा जोति जागं ॥
न द्वैखं न भेखं निरंकार नित्यं ॥ महाजोग जोगं सु परमं पवित्यं ॥ ५ ॥
अजेयं अभेयं अनामं अठामं ॥ महा जोग जोगं महाकाम कामं ॥
अलेखं अभेखं अनीलं अनादं ॥ परेयं पवित्रं सदा निर्बिखादं ॥ ६ ॥
सु आदं अनादं अनीलं अनन्तं ॥ अद्वैखं अभेखं महेसं महन्तं ॥
न रोखं न सोखं न द्रोहं न मोहं ॥ न कामं न क्रोधं अजोनी अजोहं ॥ ७ ॥
परेयं पवित्रं पुनीतं पुराणं ॥ अजेयं अभेयं भविख्यं भवाणं ॥
न रोगं न सोगं सु नित्यं नवीनं ॥ अजायं सहायं परमं प्रबीनं ॥ ८ ॥
सु भूतं भविख्यं भवानं भवेयं ॥ नमो निर्बिकारं नमो निर्जुरेयं ॥
नमो देव देवं नमो राज राजं ॥ निरालम्ब नित्यं सु राजाधिराजं ॥ ९ ॥
अलेखं अभेखं अभूतं अद्वैखं ॥ न रागं न रंगं न रूपं न रेखं ॥
महादेव देवं महा जोग जोगं ॥ महाकाम कामं महा भोग भोगं ॥१०॥
कहूं राजसं तामसं सातकेअं ॥ कहूं नार के रूप धारे नरेअं ॥
कहूं देवीअं देवतं दैत्य रूपं ॥ कहूं रूप अनेक धारे अनूपं ॥११॥
कहूं फूल ह्वै के भले राज फूले ॥ कहूं भवर ह्वैके भली भान्ति भूले ॥
कहूं पवन ह्वैके बहे बेगि ऐसे ॥ कहे मो न आवै कथों ताहिं कैसे ॥१२॥
कहूं नाद ह्वै के भली भान्ति बाजे ॥ कहूं पारधी ह्वै के धरे बान राजे ॥
कहूं मृग ह्वै के भली भान्ति मोहे ॥ कहूं कामुकी जिऊं धरे रूप सोहे ॥१३॥

नहीं जान जाई कछू रूप रेखं ॥ कहां बास ताको फिरै कौन भेखं ॥
कहा नाम ताको कहा के कहावे ॥ कहा मे बखानौ कहे मो न आवै ॥१४॥
न ताको कोई तात मातं न भाइयं ॥ न पुत्रं न पौत्रं न दाया न दायं ॥
न नेहं न गेहं न सैनं न साथं ॥ महाराज राजं महा नाथ नाथं ॥१५॥
परमं पुरानं पवित्रं परेयं ॥ अनादं अनीलं असंभं अजेयं ॥
अभेदं अछेदं पवित्रं प्रमाथं ॥ महा दीन दीनं महा नाथ नाथं ॥१६॥
अदागं अदग्गं अलेखं अभेखं ॥ अनन्तं अनीलं अरूपं अद्वैखं ॥
महा तेज तेजं महा ज्वाल ज्वालं ॥ महा मन्त्र मन्त्रं महा काल कालं ॥१७॥
करं बाम चाप्यं कृपाणं करालं ॥ कहा तेज-तेजं बिराजे बिसालं ॥
महा दाढ गाढं सु सोहं अपारं ॥ जिने चर्बीयं जीव जग्यं हजारं ॥१८॥
डमाडम्म डडरू सिता सेत छत्रं ॥ हाहा हूह हासं झमा झम अत्रं ॥
महा घोर शब्द बजे संख ऐसे ॥ प्रलय काल के काल की ज्वाल जैसे ॥१९॥

सवैया

मेरू करो तृण ते मुहि जाहि, गरीब निवाज न दूसर तोसो ॥
भूल छिमो हमरी प्रभु आपन, भूलनहार कहूं कोऊ मोसो ॥
सेव करी तुमरी तिनके सम, ही गृह देखीअत द्रव्य भरोसो ॥
या कल मै सब काल कृपाण के, भारी भुजान को भारी भरासो ॥९२॥
सुम्भ निसुम्भ से कोट निसाचर, जाहि छिनेक बिखे हन डारे ॥
धूमरलोचन चन्ड और मुन्ड से, माहख से पल बीच निवारे ॥
चामर से रण चिच्छर से, रकतिच्छर से झट दे झझकारे ॥
ऐसो सु साहिब पाइ कहां, परवाह रही इह दास तिहारे ॥९३॥
मुन्डहु से मधुकीटभ से मुर, से अघ से जिनि कोटि दले हैं ॥
ओट करी कबहूँ न जिनै रण, चोट परी पग द्वय न टले हैं ॥
सिंध बिखै जे न बूड़े निसाचर, पावक बाण बहे न जले हैं ॥
ते असि तोर बिलोक अलोक सु, लाज को छाड़िकै भाज चले हैं ॥९४॥
रावण से महरावण से, घटकानहु से पल बीच पछारे ॥
वारदनाद अकम्पन से जग, जंग जुरे जिन सिउ जम हारे ॥
कुम्भ अकुम्भ से जीत सबै, जग सातहुँ सिंध हथियार पखारे ॥
जे जे हुते अकटे विकटे, सु कटे करि काल कृपाण के मारे ॥९५॥
जो कहूं काल ते भाजकें बाचीअत, तो किह कुंट कहो भजि जईऐ ॥
आगेहुँ काल धरै असि गाजत, छाजत है जिह ते नसि अईऐ ॥

सो न कै गयो कोई सु दाव रे, जाहि उपाव सो घाव बचईऐ ॥
जांते न छूटीऐ मूढ़ कहूं हस तांकी, क्यों न सरणागति जईऐ ॥९६॥
कृष्ण औ विष्णु जपे तुहि कोटिक, राम रहीम भली विधि ध्यायो ॥
ब्रह्म जप्यो अरू सम्भु थप्यो, तिह ते तोहिको किन्हू न बचायो ॥
कोट करी तपसा दिन कोटिक, काहूं न कौड़ी को काम कढायो ॥
कामकु मन्त्र कसीरे के काम न, काल को घाउ किन्हूं न बचायो ॥९७॥
काहे को कूर करै तपसा इनकी, कोऊ कौड़ी के काम न ऐहैं ॥
तोहि बचाय सकै कहू कैसे, कै आपन घाव बचाइ न ऐहैं ॥
कोप कराल की पावक कुन्ड मैं, आप टंगिओ तिमि तोहि टंगैहै ॥
चेत रे चेत अजो जीअ मै जड़, काल कृपा बिनु काम न ऐहै ॥९८॥

ताहि पछानत है न महा पसु, जाको प्रतापु तिहूं पुर माहीं ॥
पूजत है परमेसर कै जिह, कै परसे परलोक पराहीं ॥
पाप करो परमारथ कै, जिह पापन ते अति पाप लजाहीं ॥
पाइ परो परमेसर के जड़ पाहन मै परमेसर नाहीं ॥९९॥
मौन भजे नहीं मान तजे, नहीं भेख सजे नहीं मूंड मुंडाये ॥
कंठ न कंठी कठोर धरे, नहीं सीस जटान के जूट सुहाये ॥
साचु कहों सुन लै चित्त दै, बिनु दीनदयाल की साम सिधाये ॥
प्रीति करे प्रभु पायत है, कृपाल न भीजत लांड कटाये ॥१००॥

कागद दीप समै करिकै, अरू सात समुन्द्रन की मसु कैहों ॥
काट बनासपती सगरी, लिखबैहूँ के लेखन काज बनैहों ॥
सारसुती बकता करिकै जुगि कोटि, गनेस के हाथ लिखैहों ॥
कालं कृपान बिना बिनती न तऊ तुम कौ प्रभु नेक रिझैहों ॥१०१॥

इति श्री विचित्र नाटक ग्रंथे श्री कालजी की स्तुति प्रथमअध्याय सपूर्णम् शुभमस्तु ॥..................

चौपई

तिन इह कल मो धर्म चलायो ॥ सब साधन को राहु बतायो ॥
जो ताकें मारग महि आए ॥ ते कबहूं नहीं पाप संताए ॥५॥
जे जे पन्थ तवन के परे ॥ पाप ताप तिनके प्रभ हरे ॥
दूख भूख कबहूँ न संताए ॥ जाल काल के बीच न आए ॥६॥
नानक अंगद को बपु धरा ॥ धर्म प्रचुर इह जग मो करा ॥
अमरदास पुनि नाम कहायो ॥ जन दीपक ते दीप जगायो ॥७॥

जब बरदान समय बहु आवा ॥ रामदास तब गुरू कहावा ॥
तिह बरदान पुरातन दिया ॥ अमरदास सुरपुरिमगु लिया ॥८॥
श्री नानक अंगदि करि माना ॥ अमरदास अंगद पहिचाना ॥
अमरदास रामदास कहायो ॥ साधनि लखा मूढ नहि पायो ॥९॥
भिन्न भिन्न सबहूँकर जाना ॥ एक रूप किनहूँ पहिचाना ॥
जिन जाना तिन ही सिधि पाई ॥ बिन समझे सिधि हाथ न आई ॥१०॥
रामदास हरि सो मिलि गये ॥ गुरूता देत अरजनहि भये ॥
जब अरजन प्रभु लोक सिधाये ॥ हरिगोविन्द तिह ठां ठहिराये ॥११॥
हरिगोविन्द प्रभु लोक सिधारे ॥ हरी राय तिह ठां बैठारे ॥
हरीकृष्ण तिन के सुत वये ॥ तिन ते तेगबहादुर भये ॥१२॥
तिलक जंञू राखा प्रभ ताका ॥ कीनो बड़ो कलू महि साका ॥
साधनि हेति इती जिनि करी ॥ सीसु दिया पर सी न उचरी ॥१३॥
धर्म हेत साका जिनि किया ॥ सीसु दिया पर सिरू न दिया ॥
नाटक चेटक किये कुकाजा ॥ प्रभ लोगन कह आवत लाजा ॥१४॥

दोहरा

ठीकरि फोरि दिलीसि सिरि, प्रभ पुर किया पयान ॥
तेगबहादुर सी क्रिया करी न किनहूँ आन ॥ १५ ॥

तेगबहादुर के चलत भयो जगत को सोक ॥
है है है सब जग भयो जै जै जै सुर लोक ॥ १६ ॥

इति श्री विचित्र नाटक ग्रथे पातसाही वरननं नाम पञ्चम् अध्याय
समाप्तमस्तु शुभमस्तु ॥

चौपई

अब मै अपनी कथा बखानौ ॥ तप साधत जिह विधि मुहि आनो
हेमकूट पर्वत है जहाँ ॥ सप्तश्रृंग सोभित है तहां ॥१॥
सप्तश्रृंग तिह नाम कहावा ॥ पन्डु राज जह जोग कमावा ॥
तहं हम अधिक तपस्या साधी ॥ महाकाल कालका अपराधी ॥२॥
इह विधि करत तपस्या भयो ॥ द्वय ते एक रूप ह्वै गयो ॥
तात मात सुर अलख अराधा ॥ बहु विधि जोग साधना साधा ॥३॥
तिन जो करी अलख की सेवा ॥ तांते भये प्रसन्न गुरुदेवा ॥
तिन प्रभ जब आयस मुहि दिया ॥ तब हम जन्म कलू महि लिया ॥४॥

चित न भयो हमरो आवन कह ॥ चुभी रही श्रुति प्रभु चरनन मह ॥
जिउं तिउं प्रभ हमको समझायो ॥ इम कहिकै इह लोक पठायो ॥ ५ ॥

अकाल पुरख वाच इस कीट प्रति

जब पहले हम सृष्टि बनाई ॥ दैत्य रचे दुष्ट दुखदाई ॥
ते भुज बल बवरे ह्वै गये ॥ पूजत परम पुरख रहि गये ॥ ६ ॥
ते हम तमकि तनक मो खापे ॥ तिनकी ठउर देवता थापे ॥
ते भी बलि पूजा उरझाये ॥ आपन ही परमेसर कहाए ॥ ७ ॥
महादेव अच्युत कहायो । बिसन आप ही को ठहिरायो ॥
ब्रह्मा आप पारब्रह्म बखाना ॥ प्रभ को प्रभू न किनहूँ जाना ॥ ८ ॥
तव साखी प्रभ अष्ट बनाए ॥ साख निमित्त दैवै ठहिराए ॥
ते कहे करो हमारी पूजा ॥ हम बिन अवरू न ठाकुरू दूजा ॥ ९ ॥
परम तत्त को जिन न पछाना ॥ तिन करि ईसर तिन कहु माना ॥
केते सूर चन्द कहु माने ॥ अगनि होत्र कई पवन प्रमाने ॥१०॥
किनहूँ प्रभू पाहन पहिचाना ॥ न्हात किते जल करत विधाना ॥
केतक कर्म करत डरपाना ॥ धर्मराज को धर्म पछाना ॥११॥
जो प्रभ साख निमित्त ठहराए ॥ ते ईहां आइ प्रभु कहवाए ॥
तांकी बात बिसर जाती भी ॥ अपनी अपनी परत सोभ भी ॥१२॥

जब प्रभ को न तिन्हे पहिचाना ॥ तब हरि इ न मनुच्छ न ठहिराना ।
ते भी बसि ममता हुइ गये ॥ परमेसर पाहन ठहिरऐ ॥१३॥
तब हरि सिद्ध साध ठहिराए ॥ तिन भी परम पुरख नही पाए ॥
जे कोई होत भयो जगि स्याना ॥ तिन तिन अपनो पन्थु चलाना ॥१४॥
परम पुरख किनहूँ नह पायो ॥ बैर बाद अहंकार बढायो ॥
पेड़ पात आपन ते जले ॥ प्रभ कै पन्थ न कोऊ चलै ॥ १५ ॥
जिनि जिनि तनिक सिद्धि को पायो ॥ तिन तिन अपना राहु चलायो ॥
परमेसर न किनहूं पहिचाना ॥ मम उचारते भयो दिवाना ॥ १६ ॥
परम तत्त किनहूं न पछाना ॥ आप आप भीतरि उरझाना ॥
तब जे जे रिखराज बनाए ॥ तिन आपन पुन सिमृति चलाये ॥१७॥
जे सिमृतन के भये अनुरागी ॥ तिन तिन क्रिया ब्रह्म की त्यागी ॥
जिन मन हरि चरनन ठहरायो ॥ सो सिमृतन के राह न आयो ॥१८॥
ब्रह्मा चार ही वेद बनाए ॥ सरब लोक तिह कर्म चलाए ॥
जिनकी लिव हरि चरनन लागी ॥ ते वेदन ते भये त्यागी ॥१९॥

जिन मत वेद कतेवन त्यागी ।। पारब्रह्म के भये अनुरागी ।।
तिन के गूढ़ मत्त जे चलहीं ।। भान्ति अनेक दुक्खन सो दलहीं ।।२०।।
जे जे सहित जातन संदेह ।। प्रभ को संगि न छोड़त नेह ।।
ते ते परम पुरी कह जाहीं ।। तिन हरि सिऊ अन्तरू कछु नाहीं ।।२१।।
जे जे जोय जातन ते डरे ।। परम पुरख तजि तिन मग परे ।।
ते ते नरक कुन्ड मो परहीं ।। बार बार जग मो वपु धरहीं ।।२२।।
तब हरि बहुर दत्त उपजायो ।। तिन भी अपना पन्थु चलायो ।।
कर मो नख सिर जटा सवारी ।। प्रभ की क्रिया न कछू विचारी ।।२३।।
पुनि हरि गोरख को उपराजा ।। सिख करे तिनहूँ बडराजा ।।
स्रवन फारि मुद्रा द्वय डारी ।। हरि की प्रीत रीति न विचारी ।।२४।।
पुनि हरि रामानन्द को करा ।। भेष वैरागी को जिन धरा ।।
कंठी कंठि काठ की डारी ।। प्रभ की क्रिया न कछू विचारी ।।२५।।
जे प्रथम परम पुरुख उपजाए ।। तिन तिन अपने राह चलाये ।।
महादीन तब प्रभ उपराजा ।। अरब देस को कीनो राजा ।।२६।।
तिन भी एक पन्थ उपराजा ।। लिंग विना कीने सम राजा ।।
सब ते अपना नाम जपायो ।। सतिनामु कहूँ न द्रढायो ।।२७।।
सब अपनी अपनी उरझाना ।। पारब्रह्म काहू न पछाना ।।
तप साधत हरि मोहि बुलायो ।। इम कहिकै इह लोक पठायो ।।२८।।

....

अथ कवि जन्म कथनं ।।

चौपई

मुर पित पूरब कीयसि पयाना ।। भान्ति भान्ति के तीरथि न्हाना ।।
जब ही जात त्रिवेणी भये ।। पुन्य दान दिन करत बितए ।। १ ।।
तही प्रकास हमारा भयो ।। पटना शहर विखै भव लयो ।।
मद्र देस हमको ले आये । भान्ति भान्ति दाईअनि दुलराये ।। २ ।।
कीनि अनिक भान्ति तन रच्छा ।। दीनी भान्ति भान्ति की सिच्छा ।।
जब हम कर्म धर्म मो आये ।। देव लोक तब पिता सिधाये ।। ३ ।।

इति श्री विचित्र नाटक ग्रंथे कवि जन्म कथनं नाम
सप्तमोऽध्याय समाप्तमस्तु शुभमस्तु ।।

अथ नादौन का जुद्ध वर्णनं ॥

चौपई

बहुत काल इह भान्ति बितायो ॥ मीयां खान जम्मू कह आयो ॥
अलफ खान नादौन पठावा ॥ भीमचन्द तन बैर बढ़ावा ॥ १ ॥
युद्ध काज नृप हमै बुलायो ॥ आपि तवन की ओर सिधायो ॥
तिन कठ गढ़ नवरस पर बान्धी ॥ तीन तुफंग नरेसन साधी ॥ २ ॥

भुजंग छन्द

तहाँ राज सिंहं बली भीम चन्दं । चढ़िओ रामसिंहं महा वंदं ॥
सुखंदेवं गाजी जसारोट राजं ॥ चढ़े क्रुद्ध कीने करे सर्व काजं ॥ ३ ॥
पृथीचन्द चढ़ियो चढ़े डढवारं ॥ चले सिद्ध हुये काज राजं सुधारं ॥
करी ढुक ढोअं किरेपाल चन्दं ॥ हटाये सबै मारि के बीर वृन्दं ॥ ४ ॥

द्वितीय ढोअ ढूकै वहै मारि उतारी ॥ खरे दान्त पीसे छुभै छत्रधारी ॥
उतै वै खरे वीर बम्वै बजावै ॥ तरे भूप ठांडे बड़ो सोकु पावै ॥ ५ ॥
तबै भीम चंदं कीयो कोपु आपं ॥ हनूमान के मन्त्र को मुख जापं ॥
सबै बीर कोले हमे भी बुलायं ॥ तबै ढोअ कै कै सुनीके सिधायं ॥ ६ ॥
सबै कोप कै कै महावीर ढूके ॥ चले वारबे वार को ज्यों भभूके ॥
तहाँ बिझुड़िआलं हठयो वीर दयालं ॥ उठिओ सैन लै संगि सारे कृपालं ॥ ७ ॥

हुसैनी जुद्ध कथनं

भुजंगप्रयात छन्द

गयो खानजादा पिता पास भज्जं ॥ सकै ज्वाब दै ना हने सूर लज्जं ॥
तहाँ ठोक बाहां हुसैनी गरिज्जयं ॥ सबै सूर लैके सिता साज सज्जियं ॥ १ ॥
करियो जोर सैनं हुसैनी पयानं ॥ प्रथम कूटिकै लूट लीने अवानं ॥
पुनर डढ्ढवालं कियो जीति जेरं ॥ करे बन्दि कै राज पुत्रान चेरं ॥ २ ॥
पुनर दून को लूट लीनो सुधारं ॥ कोई सामुहे ह्वय सक्यो न गवारं ॥
लियो छीन अन्नं दलं वांटि दीयं ॥ महा मूढ़ियं कुत्सितं काज कीयं ॥ ३ ॥

दोहरा

कितक दिवस बीतत भये करत उसे उतपात ॥
गुआलेरीअन की परत भी आन मिलन की बात ॥ ४ ॥
जौ दिन दूइक न वे मिलत तब आवत अरराइ ॥
कालि तिनू के घर बिखैं डारी, कलह बनाइ ॥ ५ ॥

चौपई

गुआलेरीआ मिलन कहु आये ॥ रामसिंह भी संग सिधाये ॥
चतरथ आन मिलत भये जामं ॥ फूटि गई लखि नजरि गुलामं ॥ ६ ॥

दोहरा

जैसे रबि के तेज ते रेत अधिक तपताय ॥
रवि बलि छुद्र न जानई आपन ही गरबाय ॥ ७ ॥

चौपई

तैसे ही फूल गुलाम जाति भयो ॥ तिनै न दृष्टि तरे आनत भयो ॥
काहलूरिया कटोच संग लहि ॥ जाना आन न मो सर महि महिं ॥ ८ ॥
तिन जो धन आनो सो साथा ॥ ते दे रहे हुसैनी हाथा ॥
देत लेत आपन कुरराने ॥ ते धन लै निजि धाम सिधाने ॥ ९ ॥
चेरो तबै तेज तन तयो ॥ भला बुरा कछु लखत न भयो ॥
छन्द बोट वह नैकु विचारा ॥ जात भयो दे तवहि नगारा ॥१०॥
दाव घाव तिन नैकु न करा ॥ सिंहहि घेरि ससा कहु डरा ॥
पन्द्रह पहिर गिर्द तिन कियो ॥ खान पान तिन जान न दियो ॥११॥
खान पान बिन सूरि रिसाये ॥ साम करन हित दूत पठाये ॥
दास निरख संगि सैन पठानी ॥ फूलि गयो तिन की नही मानी ॥१२॥

अथ चण्डीचरित्र उक्तिविलास

स० आदि अपार अलेख अनन्त अकाल अभेख अलक्ख अनासा ।
कै सिव सक्ति हुए सुति चार रजो तम सन्त तिहूंपुर बासा ॥
द्यौस निसा ससिसूर के दीप सुसृष्टि रची पंच तत्त प्रकासा ।
बैर बढाइ लड़ाइ सुरासुर आपहि देखत बैठ तमासा ॥ १ ॥

दो० कृपा सिंध तुमरी कृपा जो कछु मो परि होइ ।
रचौ चंडिका की कथा वाणी सुभ सम होइ ॥ २ ॥

दो० जोत जगमगै जगति मै चंड चमुंड प्रचंड ।
भुज दंडनि दंडनि असुर मंडनि भुइ नव खंड ॥ ३ ॥

स० तारन लोक उधारन भूमहि दैत संघारन चंड तूही है ।
कारन ईस कला कमला हरि अद्रिसुता जह देखो उही है ॥

तामसता ममता नमता कविता कवि के मन मद्धि गुही है।
कीनौ है कंचन लोह जगत में पारस मूरति जाहि छुही है ॥ ४ ॥

दो० प्रमुद करन सम भै हरन नाम चंडिका जासु।
रचौ चरित्र विचित्र तुअ को सुबुद्ध प्रकासु ॥ ५ ॥

आइस अब जो होइ ग्रन्थ तउ मैं रचौं।
रतन प्रमुद कर बचन चीन तामै गचौं ॥
भाखा सुम सम कर हो धरिहों कृत में।
अद्भुत कथा अपार समझ कर चित मैं ॥ ६ ॥

स० त्रास कुटम्ब के हुइकै उदास अकास को त्यागि बस्यो बनराई।
नाम सुरत्थ मुनीसर बेख समेत समाधि समाधि लगाई ॥
चंड अखंड खडेकर कोय भई सुर रच्छन को समुहाई।
बूझहु जाइ तिनै तुम साध अगाधि कथा किह भाति सुनाई ॥ ७ ॥

हरि सोइ रहै सज सैन तहां।
जल जाल कराल विसाल जहां ॥
भयो नाम सरोज ते विसुकरता।
स्रुतमैल ते दैत रचै जुगता ॥ ८ ॥
मधिकैटभ नाम धरे तिनके।
अति दीरघ देह भए जिनके ॥
तिन देख लुकेस डर्‍यो हिय मै।
जग मात को ध्यान धर्‍यो जिय मै ॥ ९ ॥

छुटी चंड जागे ब्रह्म कर्‍यो जुद्ध को साज।
दैत समै घटि जाहि जिमि बढे देवतन राज ॥१०॥

जुद्ध कर्‍यो तिन सौ भगवंत न मार सके अति दैत बली है।
साल भये तिन पंच हजार दुहू लरते नहिं बाहं टली है ॥
दैतन रीझ कह्यो वर मांग कह्यो हरि सीसन देह भली है।
धर उरु पर चक्र सौ काट दै जो न लै आपने अंग मली है ॥११॥

देवन थाप्यो राज मधुकैटभ को मार के।
दीनो सकल समाज बैकुंठगामी हरि भये ॥ १२ ॥

इति श्री मारकंडेयपुराणे श्री चंडीचरित्रे उक्ति विलासे
मधुकैटभबधो नाम प्रथमोध्यायः ॥

बहुरि भयो महिखासुर तिन तो क्या किया।
भुजा जोर करि जुद्ध जीत सब जगु लिया ॥
सुर समूह संहारे रणहि प्रचार कै।
टूक-टूक कर डारे आयुध धार कै ॥ १३ ॥

स० जुद्ध कन्यो महिखासुर दानव मारि सभै सुर सैन गिरायो।
कै-कै दु टुक दए अरि खेत महा बरबंड महारण पायो ॥
स्रोणतरंग संन्यो निसन्यो जसु इआ छवि को मन मो इह आयो।
मारि कै छत्रनि कूंड कै छेत्र भै मानहु पैठि कै रामजु नायो ॥ १४ ॥

स० लै महिखासुर अस्त्र-सस्त्र समै कलवत्र जिउ चीरके डारे।
लुत्थ पै लुत्थ रही गुथ जुत्थ गिरे गिर से रथ से घव भारे ॥
गूद सनै सित लोह में लाल कराल परे रन में गज कारे।
जिउ दरजी जम मृत्त के सीत कैं बागे अनेक कता करि डारे ॥ १५ ॥

लै सुर संक समै सुरपाल सुकोप कै पत्र की सैन पै धाए।
दै मुख ढार लिये करवार हकार प्रचार प्रहार लगाए ॥
स्रोन मै देत सुरंग भए कवि ने मन माहि इहै छवि पाए।
राम मनो रन जीत कै भालिक दै सिर पाउ सवै पहराए ॥ १६ ॥

घाइल घूमत है रण मै इक लोटत है धरनी बिललाते।
दौरत बीच कबंध फिरै तिह देखत कायर है डरपाते ॥
इउ महिखासुर जुद्ध कियो तब जंबुक गिन्झ भए रंगराते।
स्रौन प्रवाह मै पाइ पसार कै सोए है सूर मनो महमाते ॥ १७ ॥

जुद्ध कियो महिखासुर दानव देखत भान चले नहीं पंथा।
स्रौन समूह चल्यो लखि कै चतुरानन भूलि गए सब ग्रंथा ॥
मास निहार कै ग्रिज्झ रड़ै चट सार पड़ै जिमु बारक संथा।
सारसुती तट लै भट लोथ सृगाल कि सिद्ध बनावत कंथा ॥ १८ ॥

अगनत मारे को गने भजे जु सुर करि त्रास।
धारि ध्यान मन सिवा को तकी पुरी कैलास ॥ १९ ॥

देवन को धन धाम सब दैतन लियो छिनाइ।
गए काढि सुरधाम ते बसे सिवपुरी जाइ ॥ २० ॥

कितक दिवस बीते तहां नावन निकसी देवि।
तिध पूरब सब देवतन करी देवि की सेवि ॥ २१ ॥

रेखता

कही है हकीकत मालूम खुद देवी सेती, लियो महिखासुर हमारा छीन धाम है।
कीजै सोइ बात मात तुम को सुहात सम सेवक कदीम तक आए तेरी साम है॥
दीजै बाज देस हमै मेटीए कलेस लेस कीजिये अभेस उठै बड़ौ यहै काम है।
कूकर को मारत न कोऊ नाम लैके ताहि मारत है ताको लै कै खावंद को नाम है।२२॥

दो० सुनत बचन ए चंडका मन मैं उठी रिसाइ।
सभ दैतन को छै करउ बसउ सिवपुरी जाइ॥२३॥
दैतन के बध को जबै चंडी कियो प्रकास।
सिंघ संख औ अस्त्र सम सस्त्र आइगे पास॥२४॥
दैत संघारन के नमित काल जन्मु इन लीन।
सिंघ चंड बाहन भयो सतरन कहँ दुख दीन॥२५॥

दारुन दीरघ दिग्गज से बल सिंह ही के बल सिंघ धरे हैं।
रोम मनो सर कालहि के जन पाहन पीत पै वृच्छ धरे हैं॥
मेर को मद्धि मनो जमना लर केतकी पुंज पै भृंग ढरे हैं।
मानो महा पृथ लैकै कमान सु भूधर भूम ते निआरे करे हैं॥

घंटा गदा त्रिसूल अस संग सरासन बान।
चक्र बक्र कर मैं लिये जन ग्रीखम रित भान॥८७॥
चंड कोप करि चंडका ए आयुध कर लीन।
निकट बिकटि पुर दैत्य के घंटा की धुन कीन॥८८॥

सुनि घंटा केहरि सबदि असुरन अस रन लीन।
चढ़े कोप के जूथ हुइ जतन जुद्ध को कीन॥८९॥

पैंतालीस पदम असुर सज्यो कटक चतुरंग।
कछु बाएं कछु दाहने कहु भट नृप के संग॥३०॥
भए इकट्ठे दल पदम दस पंद्रह अरु बीस।
पंद्रह कीन दाहने दस बाएं संगि बीस॥३१॥

स० दौर सभै इकबार ही दैत्य सुआए है चंड के सामुहिं कारे।
लै करि बान कमानन तान घने अरु कोप सौं सिंघ प्रहारे॥
चंड सम्भार तबै करवार हकार कै सत्त समूह निवारे।
खांडव जारन को अगनी तिह पारथ ने जनु मेघ बिडारे॥३२॥

दो० दैत कोप इक सामुहे गयो तुरंग्रम डारि।
सन्मुख देवी के भयो सलभ दीप अनुहार॥३३॥

स० बीर बली सिरदार दैहत सुक्रोध के म्यान ते खग्ग निकारिओ।
एक दयो तन चंड प्रचंड कै दूसर केहरि के सिर झारिओ॥
चंड संभार तबै बलु धार लयो गहि नारि धरा पर मारिओ।
जिउ धुबिया सरिता तट जाइ कै लै पट को पट साथ पछारिओ॥३४॥

दो० देवी मार्‍यो दैत इउ लर्‍यो जु सन्मुख आइ।
पुनि सत्रनि की सैन भै घसी सु संख बजाइ॥३५॥

स० लैकरि चण्ड कुवंड प्रचंड महा बरबंड तबै इह कीनो।
एक ही बार निहार हकार सुधार बिदार सभै दलु दीनो॥
दैत घने रन माह हने लखि स्रोन सने कवि इउ मन चीनो।
जिउ खगराज बड़ो अहिराज समाज कै काट कता कर लीनो॥३६॥

दो० देवी मारे दैत बहु प्रबल निबल से कीन।
अस्त्र धार करि करन मैं चमू चाल कर लीन॥३७॥
भजी चमू महिखासुरी तकी सरनि निज ईस।
धाइ जाह तिन इउ कह्यो हन्यो पदम भट बीस॥३८॥
सुन महिखासुर मूढमत मन मे उठा रिसाइ।
आग्या दीनी सेन को घेरो देवी जाइ॥ ३९॥

स० बात सुनी प्रभु की सब सैनहि सूरन मिल इक मन कर्‍यो है।
जाइ परै चहूं ओर तो धाइ के ठाट इहै मन मदि कर्‍यो है॥
मार ही मार पुकार परे असि लै करि मै दलु इह विहर्‍यो है।
घेर लही चहूं ओर तो चड सुचंद मनो परवेख पर्‍यो है॥४०॥
देखि चमू महिखासुर की करि चंड कुवंड प्रचंड धर्‍यो है।
दच्छन बाम चलाइ घने सर कोप भयानक जुद्ध कर्‍यो है॥
भंजन ते अरिके तन के छुरि स्रोन समूह धरान पर्‍यो है।
आठहो सिघ पचाइ हुतो मनो या रन मै विधि ने उगर्‍यो है॥४१॥

दो० कोप भई अरि दल विखै चंडी चक्र संभार।
एक मारि कै द्वै किये द्वै ते, कीने चार॥४२॥

स० इहभाँति को जुद्ध कर्‍यो सुनि कै कयलास मै ध्यान छुट्यौ हरका।
पुनि चंड संभार उभार गदा धुनि संख बजाइ कर्‍यो खरका॥
सिर सत्रनि के पर चक्र पर्‍यो छूट ऐसे बह्यो करिको बरका।
जनु खेलन को सरिता तट जाइ चलावत है छिछली लरका॥४३॥

दो० देख चमू महिखासुरी देवी बलहि संभारि ।
कछु सिंघहि कछु चक्र सो डारे सभै संहारि ॥४४॥
इक भाजे नृप पै गए कह्यो हती सभ सैन ।
इउ सुनि कै कोप्यो असुर चढ़ि आयो रन ऐन ॥४५॥

स० जूझ परी सभ सैन लखी जब तौ महिखासुर खग संभाऱ्यो ।
चंड प्रचंड के सामुहि जाइ भयानक मालक जिउ ममकाऱ्यो ॥
मुग्दर लै अपने करि चंड सु कैबरि ता तन ऊपर डाऱ्यो ।
जिउ हनुमान उखार पहार कै रावन के उर भीतर माऱ्यो ॥४६॥

फेर सरासन को गहि कै कर बीर हने तिन पान न मंगे ।
घायल घूम परे रन माहि कराहत है गिरसे गिर लंगे ॥
सूरन के तन कांचन साथि परे धर भाउ उठे तह-बंगे ।
जानो दवा बन माझ लगे तह कीटन मच्छ कै दौरे भुजंगे ॥४७॥

कोप भरी रन चंड प्रचंड सु प्रेर कै सिंघ धरी रन मै ।
करवार लै बाल किये अरिखेत लगी बड़वानल जिउबन मै ॥
तब घेर लई चहु ओर ते दैतन इउ उपमा उपजी मन मै ।
मन ते तन तेजु चल्यो जगमात को दामन जान चले घन मैं ॥४८॥

फूट गई धुजनी समरी असि चउं प्रचंड जबै कर लीनो ।
दंत मरे महि बेख मरै बहु तउ बरबंड महाबल कीनो ॥
चक्र चलाइ दयो करि ते सिर सत्र को मार जुदा करि दीनो ।
स्रौनत धार चली नभ को जनु सूर को राम जलाजल दीनो ॥४९॥

सब सूर संवार दये तिह खेत महाबरबंड पराक्रम कै ॥
यह स्रौनत सिंघ भयो धरनी पर भूज गिरे असिकै धमकै ।
जगमात प्रताप हने सुरताप सुदानव सेन गई जम कै ॥
बहुरौ अरि सिंघुर कै दल पैठ कै दामन जिउ दुरगा दमकै ॥५०॥

दो० जब महिखासुर माऱ्यो सब दैतन को राज ।
तब कायर भाजे सभै छाड्यो सकल समाज ॥५१॥

कवित्त

महावीर कहरी दुपहरी को मान मानो देवन के काज देवी डाऱ्यौ दैत्य मारि कै ।
और दल भाज्यो जैसे पौनहूं ते भाजे मेघ इन्द्र दीनो राज आपनो सो धारु कै ।

देस दैसै के नरेस डारे हैं सुरेस पाइ कीनो अभिसेक सुर मंडल विचारि कै।
यहां भइ गुप्त प्रकटि जाइ वहां भई जहां बैठे हर हरि अम्बर को डारि कै।।५३।।

इतिश्री मारकंडेपुराणे श्री चंडीचरित्र उक्तिविलास
महिखासुर वध नाम दुतीयाध्याय।

....

दो० जब निसुंभ रन मार्‍यो देवी इह परकार।
भाज दैत्य इक सुंभ पै गयो तुरंगम डार।।२०३।।
आन सुंभ पै तिन कही सकल जुद्ध की बात
तब भाजे दानव सभै मारि लियो तुअ–भ्रात।।२०४।।

सं० सुंभ निसुंभ हन्यो सुनिकै बरवीर कै चित्त मै छोभ समायो।
साज चढ्यो गजबाज समाज कै दानव पुंज लिये रन आयो।।
भूम भयानक लोथ परी लखि स्रौन समूह महाविसमायो।
मानहु सारसुती उमड़ी जल सागर के मिलिबै कु धायो।।२०५।।
चंड प्रचंडसु केहरि कालिका औ सकती मिलि जुद्ध करियो है।
दानव सेन हती इनहूं सब इउ कहि कै मन कोप भरियो है।।
बंध कबंध परियो अवलोक कै सोक कै पाइ न आगे धरियो है।
धाइ सकियो न भइयो भइ भीतर चीतह मानहु लंग परियो है।।२०६।।
फेरि कहियो दल की जब सुंभ सुमान चले तब दैत घने।
गजराज सुबाजन के असवार रथी रथ पायक कौन गने।।
तहा घेर लइ चहु ओर ते चंडि महा तिन के तन दीह बने।
मनो भान को छाइ लिया उमड़े घर घो भमंड घटा निसने।।२०७।।

दो० चहूं ओर घेरो पर्‍यो तबै चंडि इह कीन।
काली सो हंसि तिन कही नैन सैन करि दीन।।२०८।।

कबित्त

केते मार डारे और केतक चबाइ डारे केतक बजाइ डारे काली कोप तब ही।
बाज गज मारे तेतो नखन सो फार डारे ऐसो रन भैकर न भयो आगे कबही।।
भागे बहु वीर काहू सुध न रही सरीर हाल चाल परी मरे आपस मै दबही।
देख सुरराइ मन हरखै बढ़ाइ सुर पुंजन बुलाइ करै जै जैकार सब ही।।२०९।।
क्रोध मान भयो कह्यो राजा सम दैतन को ऐसो जुध कीनो कालि डारियौ मारि के।
बल की संभार कर लीनी कर वार ढार पैठो रन मधि मारि मारि छउ उचारि के।।
साथ भए सुंभ के सु महावीर धीर योधे लीने हथियार आप अपने संभार कै।
ऐसे चले दानो रवि मंडल छपानो मानो सलभ उडानो पुंज पंखन सुहार कै।।२१०।।

स० दानव सैन लखि बलवान सु बाहिन चंडि प्रचंड अमानो।
चक्र अलात की बात बघूरन छत्र नहीं सम औ खरसानो॥
तारन मांहि सुऐसे फिर्‍यो जल भौर नहीं सर तादि बखानो।
और नहीं उपमा उपजै सुदुहूं रुख केहरि के मुख मानो॥२११॥

जुद्ध महा असुरगनि साथ भयो तब चंडि प्रचंडहि मारी।
सेन अपार हकार सुधार विचार संघार दइ रन वारी॥
खेत भयो तहा चार सो कोस लो सो उपमा कवि देख विचारी।
पूरन एक घरी न परी जि गिरे घर पै बर जिऊ पति झारी॥२१२॥

मार चमू चतुरंग लई तब लीनो है संम चमुंड को आगा।
चाल पर्‍यो अवनी सिगरो हरि जू हरि आसन ते उठि भागा॥
सूख गयो त्रस कै हरि हारि सुसंकति अंक महा भयो जागा।
लाग रह्यो लपटाइ गरे महि मानहु मुंड की माल को तागा॥२१३॥

चंडि के सामुहि आइकै सुंभ कहियो मुख सोइ हमै सम जानी।
काली समेत सभै सकती मिलि दीनो खयाह समै दल बानी॥
चंडि कहिओ मुख तो इनको तोऊ ता छिन गोर के मद्धि समानी।
जिउ सरता के प्रवाह के बीच मिले बरखा बहु बूंदन पानी॥२१५॥
कै बनि चंडि महारन मद्धि सुलै जमदाड़ की तापर लाई।
बैठ गई अर के उर में तिह सोनत जुगति पूर अघाई॥
दीरघ जुद्ध बिलोक कै बुद्ध कविस्वर के मन में इह आई।
लोथ पै लोथ गई पर इउ सु मनो सुरलोक की सीढ़ी बनाई॥२१५॥

सुंभ चमू संग चंडिका क्रुद्ध कै जुद्ध अनेकन बार मच्यो है।
जंबुक जुग्गन ग्रिध्र मजूर इकत्र को बीच में ईस नच्यो है॥
लुत्थ पै लुत्थ सुमीतै भई सित गूद अउ भेद तौ ताहि गच्यो है।
भउन रंगनि बसाई मनो करि भावि सचित्र नचित्र रच्यौ है॥२१६॥
दुंद सु जुद्ध भयो रन मैं उत सुंभ इतै बर चंडि संभारी।
घाए अनेक भए दुह कै तन पौरख गयो सम दैत को हारी॥
हीन भई बल ते भुज कांपत सो उपमा कवि ऐसे विचारी।
मानहु गारुड़ के बल ते लटी पञ्चमुखी जुग सांपन कारी॥२१७॥
कोप भई बरचंडि महा बहु जुद्ध कर्‍यो रन मै बल धारी।
लै कै कृपान महा बलवान पचार कै सुभ के ऊपरि झारी॥
सार सों सार की धार लगी झनकार उठी तिसतो चिनगारी।
मानहु मादव माह की रैन लसै पट बीजन की चमकारी॥२१८॥

घाइन ते बहु स्रौन पर्‍यो बल छीन भयो नृप सुंभ को कैसे ।
जोत घटी मुख की तन की मनौं पूरन तै परवा -सजि जैसे ॥
चंडि लियो करि सुंभ उठाइ कह्यो कवि ने मुख ते जसु ऐसे ।
रच्छक गोधन के हित कान्ह उठाइ लियो गिरि गोधन जैसे ॥२१९॥

दो० कर ते गिर धरनि पर्‍यो धर ते गयो अकास ।
सुंभ संघारन के नमित गइ चंडि तिह पास ॥२२०॥

स० बीच तबै नभ मंडल चंडिका जुद्ध कर्‍यो जस आगे न होऊ ।
सूरज चंद्र नछत्र सची पति और सभे सुर पेखत सोऊ ॥
खैच कै मूंड दहूं करवार की एक को मार कीए तब दोऊ ।
सुंभ दुटूक है भूमि परिओ तन जिउ कलवात सो चीरत कोऊ ॥२२१॥

दो० सुंभ मारि कै चंडिका उठी सुसंख बजाइ ।
तब धुनि घंटा की करी महा मोद मन पाइ ॥२२२॥
दैत राज छिन मै हन्यो दैवी इह परकार ।
अष्ट करन में सस्त्र गहि सैना दइ संघार ॥२२३॥

स० चंडि के कोप न ओप रही रन मै असिधार मई समुहाई ।
मारि विदारि संघारि दिए तब भूप बिना करै कौन लराई ॥
कांप उठे अरि त्रास हीए धरि छाँड़ि दई सम पौरखताई ।
दैत चले तजि खेत इउ जैसे बडे गुन लोभ ते जात पराई ॥२२४॥
भाज गयो मघवा जिनके डर ब्रह्म ते आदि सभै भै भीते ।
तेई वै दैत पराइ गए रन हार निहार भए बल रीते ॥
जंबुक ग्रिद्ध निरास भए बनवास गए जुग जामन बीते ।
संत सहाइ सदा जग माइ सु संभ निसंभ बड़े अरि जीते ॥२२५॥
देव सभै मिलि कै इक ठौर सुअच्छत कुंकम चंदन लीनो ।
तच्छन लच्छन दै कै प्रदच्छन टीका सु चंडि के भाल में दीनो ॥
ता छन को उपज्यो तह भाव इहै कवि ने मन में लख लीनो ।
मानहु चंद के मंडल में सुभ मंगल आन प्रवेसहि कीनो ॥२२६॥

मिलि कै सुदेवन बड़ाई करी कालिका की इहौ जग मात तै तो कट्यो बड़ो पाप है ।
दैतन को मार राज दीनो तै सुरेसहं को बड़ो जसु लीनो जग तेरोई प्रताप है ॥
देत है असीस दिजराज दिख बारि-बारि तहा ही पढ्यो है ब्रह्म कौंचहू को जाप है ।
ऐसो जस पूर रह्यो चंडिका को तीन लोक–
–जैसे धार सागर मै गंगा जी को आप है ॥२२७॥

स० देत असीस सभै सुरनारि सुधारि कै आरति दीप जगायो ।
फूल सुगंध सु अच्छत दच्छन जच्छन जीत को गीत सुगायो ॥

धूप जगाइ कै संख बजाइ कै सीस नवाइ कै बैन सुनायो।
हे जगमाइ सदा सुखदाइ तै सुंभ को धाइ बड़ो जस पायो ॥२२८॥
सक्रहि साजि समाज दै चंडि सु मोद महामन माहि भई है।
सूर ससी नभ थाप कै तेजु दै आप तहा ते सुलोप भई है॥
बीच अकास प्रकास बढ्यो तिह की उपमा मन ते न गई है।
धूर के पूर मलीन हुतो रवि मानहु चंडिका ओप दई है॥२२९॥

कवित्त

प्रथम मध कैटभ दयतन महाअसुरै मान मरदन करन तरन बार चंडिका।
धूम्रदग घरन घर धूर धानी करन चंड अरु मुंड के मुंड खंड खंडिका॥
रक्त बीज हरन रक्त भछन करन दरन अन सुंभ रन गर रिस मंडिका।
सुंभ बल धार संहार कर वार करि सकल खलु-
-असुर दल जै जै चंडिका॥२३०॥

स० देहि सिवा कर मोहि इहै सुभ करमन तो कबहूंन टरौं।
न डरौं अरि सो जब जाइ लरो निसचै कर आपनी जीत करौं॥
अरु सिक्ख हौं आपने ही मन कौ इह लालच हुंउ गुन तौ उचरौं।
जब आयु की औध निदान बनै अत ही रन मै तब जूझ मरौं॥२३१॥
चंडी चरित्र कवित्तन में बरन्यो सम ही रस रुद्र मई है।
एक ते एक रसाल भयो नख ते सिख लौं उपमा सुनई है॥
कउतुक हेत करी कवि ने सत सै की कथा इह पूरी भई है।
जाहि के नमित्त पढ़ें सुनिहैं नर सो निसचै करि ताहि दई है॥२३२॥
ग्रंथ सतिसैय्या को कऱ्यो जा सम अवरु न कोइ।
जिह नमित कवि ने कह्यो सु देह चंडिका सोइ॥२३३॥
॥ इति श्री मारकंडे पुराणे चंडी चरित्र सुंभ वधे नाम सप्तमोध्याय सम्पूर्ण॥

१ ॐ चण्डीचरित्र लिख्यते

महिख दईत सूरयं॥ बढ्यो सु लोह पूरयं॥
सु देव राज जीतयं॥ त्रिलोक राज कीतयं॥१॥
भजे सु देवता तबै॥ इकत्र होइ कै सबै॥
महेसुरा चल बसै॥ बिसेख चित मों त्रसे॥ २॥
जुगेस भेद धारके॥ भजे हथियार डारकै॥
पुकार आरतं चले॥ बिसूर सूरमां भलै॥ ३॥

भुजंगप्रयात छंद अथ चंडी चरित्र उस्तत बरननं॥
भरे जोगनी पत्र चौसठ चारै॥

चली ढाम ढामं डकारं डकारं ॥
भरे नेह गेहं गए कंक बंकं ॥
रुले सूरवीरं अहाड़ं निसंकं ॥२५७॥
चले नारदं दऊहाथ बीना सुहाए ॥
तने बारदी डंक डऔरु बजाए ॥
गिरे बाजि गाजि बीर खेतं
रुले तच्छ मुच्छंनचे भूत प्रेतं ॥२५८॥
नचे बीर बैताल अंध कमंधं ॥
बधे बध गोपा गुलिआन बंधं ॥
भये साधू संबूह भीतं अभीते ॥
नमो लोक माता भवे शत्रु जीते ॥२५९॥
पढ़ै मूढ़ याको धनं धाम बाढ़े ॥
सुनै सूम सोफी लरै जुद्ध गाढ़े ॥
जगै रैणि जोगी जपै जाप बाको ॥
धरै परम जोग लहै सिध ताको ॥२६०॥
पढ़ै यहि विद्यार्थी विद्या हेतं ॥
लहै सरब शास्त्रन के मद चेतं ॥
जपै जोग संन्यासु वैराग कोई ॥
तितै सरब पुनंयान को पुनि होई ॥२६१॥

दोहरा जै जै तुमरे ध्यान को नित उठ धिटैहैं संत ॥
अंत लहैंगे मुक्तफल पावहिंगे भगवंत ॥२६२॥

१ ॐ वाहि गुरु जी की फतेह ॥

श्री भगौती जी सहाइ ॥ वार श्री भगवती जी की ॥ पातशाही ॥ १० ॥

प्रिथम भगौती सिमर के गुरु नानक लई ध्याइ ।
फिर अंगद गुर ते अमरदास रामदासे होइ सहाइ ॥
अरजुन हरि गोविन्द नूं सिमरो श्री हरि राइ ।
श्री हरि कृष्णा धिआइऐ जिसु डिठै सभ दुख जाइ ॥
तेग बहादुर सिमरहि घर नऊ निधि आवै धाइ ।
सब थांइ होहू सहाइ ॥ १ ॥

पउड़ी—खंडा प्रिथमें साजिके जिन सम संसार उपाइआ ।
ब्रह्मा बिसन महेस साजि कुदरती दा खेलु रचाइ बनाइआ ॥
सिंध परवत मेदनी बिनु थमां गगनि रैहाइआ ॥

सिरजे दानं देवते तिन अन्दरि बादु रचाइआ।
तैही दुर्गा साजिकै दैतां दा नासु कराइआ॥
तैथों ही बलुराम लै नाल बाणा दहसिरु धाइआ।
तैथों ही बलु कृष्ण लै कंसु केसी पकड़ि गिराइआ॥
बड़े बड़े मुनि देवते कई जुग तिणी तणु ताइआ।
किनी तेरा अंत न पाइआ॥ २॥

साधू सतजुग बितिआ अधसीली त्रेता आइआ।
नच्ची कल सरोसरि कल नारद डेरे डअरु बजाइआ॥
अभमानु उतारन देवतियां महिखासुर सुंभ उपाइआ।
जीत लाए तिन दैवते तिह लोकी राज कमाइआ॥
बडा वीर अखाइकै सिर ऊपर छत्र फिराइआ।
दिता निकाल कै तिन गिर कैलासु तकाइआ॥
डरिके हत्यो दानवी दिल अन्दर त्रास बधाइआ।
पास दुर्गा दै इन्द्र आइआ॥ ३॥

दुहां कंधारा मुहि जुड़े सट पई जमधान कौ।
तद खिंग न सुंभ नचाइआ डाल उपरि बरगस्तान कौ॥
फड़ी बिलन्द मगाइउस फरिमाइस करि मुलतान कौ।
गुस्से आइ साहमणे रण अन्दरि घतन घाण कौ॥
अगै तेग बगाई दुर्गसाह बढ सुंभन वही पलाण कौ।
रड़की जाइकै धरत कौ बढ़ पाखर बढ किकाण कौ॥
वीर पलाणो डिगिआ करि सिजदा सुंभ सुजान कौ।
साबास सलोणे खान कौ॥ सदा साबास तेरे तान कौ॥
तरीफा पाण चबान कौ॥ सद रहमत कैफा खान कौ।
सद रहमत तुरे नचान कौ॥ ५०॥

पऊड़ी—दुर्गा अत्तै दानवी गृह संघरि कत्थे।
उरड़ उठै सूरमे आ डाहे मत्थे॥
कट तुफंगी कैबरी दल गाहि निकत्थे।
देखनि जंग फरेसते असमानो लत्थे॥५१॥

पऊड़ी—दुहां कंधारा मुह जुड़े दल धुरे नगारे।
उरड आये सूरमे सिरदार उजिआरे॥
लैकें तैगां बर्छीआ हथियार उभारे।
टोप पटेला पाखरा गली संज सवारे॥

लैके बर्छी दुर्ग साह बहु दानव मारे ।
चढे रथी गज घोड़िइ मार भुइ तै डारे ॥
जाण हलवाइ सीख नाल विन्न बड़े उतारे ॥५२॥
पऊड़ी—दुहां कंधारा मुहि जुड़े नाल धौसा भारी ।
लई भगौती दुर्ग साह वर जागण भारी ॥
लाई राजै सुंभनो रतु पियै पिआरी ।
सुंभ पलाणौ डिगिआ उपमा बिचारी ॥
डुब रतुनालहू निकली बर्छी दुधारी ।
जान सहजादी उतरी पैन सूही सारी ॥५३॥
१ ओं वाहि गुरुजी की फतेह ॥ पातशाही १० ॥
अथ चौबीस अउतार कथनं ।
अब चौबीस उचरो अवतारा ॥
जिह बिध तिनका लखा अखारा ।
सुनीअहु सन्त सबै चित लाई ॥
बरनत स्याम जथा मत भाई ॥ १ ॥

चौपई

जब जब होत अरिष्टी अपारा ॥ तब तब देह धरत अवतारा ॥
काल सबन को पेखत मासा ॥ अंतह काल करत है नासा ॥ २ ॥
काल सभन का करत पसारा ॥ अन्त काल सोई खापन हारा ॥
आपन रूप अनन्तन धरही ॥ आपही मधलीन पुन करही ॥ ३ ॥
इन महि सृष्टि सुदस अवतारा ॥ जिन महि रमिया राम हमारा ॥
अनत चतुरदस गन अवतारू ॥ कहो जो तिन तिन कीए अखारू ॥ ४ ॥
काल आपुनो नाम छपाई ॥ अवरन के सिर दै वुरिआई ॥
आपन रहत निरालम जगते ॥ जान लये जा नामे तवते ॥ ५ ॥
आप रहै आपै कल घाए ॥ अवरन कै दै मून्ड हताए ॥
आप निरालमु रहा न पाया ॥ ताते नाम विअन्त कहाया ॥ ६ ॥
जो चौबीस अवतार कहाए ॥ तिन भी तुम प्रभ तनक न पाए ॥
सभही जग भर में भवरायं ॥ ताते नामु विअन्त कहायं ॥ ७ ॥
सबहीं छलत न आंप छलाया ॥ ताते छलिआ आप कहाया ॥
सन्तन दुखी निरख अकुलावे ॥ दीनबन्ध ताते कहलावे ॥ ८ ॥
अन्त करत सभ जग को काला ॥ नामु काल ताते जग डाला ॥
सभै सन्त पर होत सहाई ॥ ताते संख्या सन्त सुनाई ॥ ९ ॥

निरख दीन पर होत दिआरा ॥ दीनबन्ध हम तबै विचारा ॥
सन्तन पर करूणरस ढरई ॥ करुणानिधि जग तबै उचरई ॥ १० ॥
संकट हरत साधवान सदा ॥ संकट हरन नामु भयो तदा ॥
दुख दाहत सन्तन के आयो ॥ दुख दाहन प्रभ तदिन कहायो ॥ ११ ॥
रहा अनन्त अन्त नहीं पायो ॥ याते नामु बिअन्त कहायो ॥
जग मो रूप सभन के धरता ॥ याते नामु बखानीयत करता ॥ १२ ॥
किनहूं कहूं न ताहिल खायो ॥ इह कर नाम अलख कहायो ॥
जोन जगत मै कबहूं न आया ॥ याते सभों अजोन बताया ॥ १३ ॥
ब्रह्मादिक सबही पचहारे ॥ बिसन महेश्वर कौन विचारे ॥
चन्द सूर जिन करे विचारा ॥ ताते जनीयत है करतारा ॥ १४ ॥
सदा अभेख अभेखी रहई ॥ ताते जगत अभेखी कहई ॥
अलख रूप किनहूं नहिं जाना ॥ तिह कर जात अलेख बखाना ॥ १५ ॥
रूप अनूप सरूप अपारा ॥ भेख अभेख सभन ते न्यारा ॥
दाहक सभो अजाची सभते ॥ जान लयो करता हम तबते ॥ १६ ॥
लगन सगन ते रहत निरालम ॥ है यह कथा जगत में मालम ॥
जन्त्र मन्त्र तन्त्र न रिझाया ॥ भेख करत किनहूं नहि पाया ॥ १७ ॥
जग आपन आपन उरझाना ॥ पारब्रह्म काहू न पछाना ॥
एक मड़ीअन कबरन जे जांहीं ॥ दुहुंअन मैं परमेश्वर नाहीं ॥ १८ ॥
ए दोऊ मोह बाद मो पचे ॥ इन ते नाथ निराले बचे ॥
जाते छूट गयो भ्रम उरका ॥ तिह आगे हिन्दू क्या तुरका ॥ १९ ॥
इक तसबी इक माला धरही ॥ एक कुरान पुराण उचरहीं ॥
करत विरुद्ध गये मय मूढ़ा ॥ प्रभ को रंग न लागा गूढ़ा ॥ २० ॥
जो जो रंग एक के राचे ॥ तेते लोक लाज तजि नाचे ॥
आदि पुरुष जिन एक पछाना ॥ दुतिआ भाव न मन नहि आना ॥ २१ ॥
जो जो भाव दुतिय महि राचे ॥ तेते मीत मिलन ते वाचे ॥
एक प्रमुख जिन नैक पछाना ॥ तिन ही परम तत्त कह जाना ॥ २२ ॥
जोगी सन्यासी है जेते ॥ मुन्डीया मुसलमान गन केते ॥
भेख धरे लूटत संसारा ॥ छपत साध जिह नामु अधारा ॥ २३ ॥
पेट हेत नर डिंभू दिखहीं ॥ डिंभ करै बिन पइअत नाही ॥
जिन नर एक पुरख कह ध्यायो ॥ तिन कर डिंभ न किसी दिखायो ॥ २४ ॥
डिंभ करै विन हाथ न आवै ॥ कोऊ न काहूं सीस निवावै ॥
जो इहु पेट न काहू होता ॥ राव रंक काहूं को कहता ॥ २५ ॥
जिन प्रभ एक वहै ठहरायो ॥ तिन कर डिंभ न किसू दिखायो ॥

सीस दियो उन सिर न दीना ॥ रंच समान देह करि चीना ॥२६॥
कान छेद जोगी कहवायों ॥ अति प्रपंच कर बनहि सिधायो।
एक नामु को ततु न लयो ॥ वनको भयो न ग्रिह को भयो ॥२७॥
कहा लगै कब कथै विचारा ॥ रसना एक न पइअत पारा।
जिवा कोटि कोटि केऊ धरे ॥ गुण समुद्र त्व पार न परै ॥२८॥
प्रथम काल सभ जग को ताता ॥ ताते भयो तेज विख्याता।
सोई भवानी नामु कहाई ॥ जिन सिगरी यह सृष्टि उपाई ॥२९॥
प्रथमें ओ३मकार तिन कहा ॥ सो धुन पूर जगत को रहा।
ताते जगत भयो विस्थारा ॥ पुरख प्रकिति जब दुहू विचारा ॥३०॥
जगत भयो तातें सब जनी यत ॥ चार खान कर प्रगत वखनीयत ॥
सकत इति नही वरन सुनाऊ ॥ भिन्न भिन्न कर नाम बताऊँ ॥३१॥
बली अबली दोऊ उपजाये ॥ ऊंच नीच कर भिन्न दिखाये ॥
बपु धर काल बली बलवाना ॥ आपह रूप धरत भयो नाना ॥३२॥
भिन्न भिन्न जिमु देह धराये ॥ तिमु तिमु कर अवतार कहाए ॥
परम रूप जो एक कहायो ॥ अन्त सभो तिह मधि मिलायो ॥३३॥
जितिक जगति के जीव बखानो ॥ एक जो सभ ही महि जानो ॥
काल रूप भगवान भनैबों ॥ ता महि लीन जगति सब ह्वैबो ॥३४॥
जो किछु दिसट अगोचर आवत ॥ ताकहु मन माया ठहरावत ॥
एकहि आप सभन मो व्यापा ॥ सब कोई भिन्न महि थापा ॥३५॥
सबही महि रम रह्यो अलेखा ॥ मांगत भिन्न भिन्न ते लेखा ॥
जिन नर एक वहै ठहरायो ॥ तिनही परम तत्त कह पायो ॥३६॥
एकइ रूप अनूप सरूपा ॥ रंक भयो राव कहूं भूपा ॥
भिन्न भिन्न सभहन उरझायो ॥ सभ ते जुदो न किनहूं पायो ॥३७॥
भिन्न भिन्न सभहूं उपजायो ॥ भिन्न भिन्न कर तिनो खपायो ॥
आप किसू को दोस न लीना ॥ और न सिर वुरिआई दीना ॥३८॥

श्री भगउती जी सहाय ॥

चौपई

बहु जो जरी रुद्र की दारा ॥ तिन हिम गिर गृह लियो अवतारा ॥
छुटीं बालता जब सुधि आई ॥ बहुरो मिलो नाथ को जाही ॥१॥
जिह विधि मिली राम सो सीता ॥ जैसक चतुर वेद तन गीता ॥
जैसे मिलत सिन्ध तन गंगा ॥ त्यों मिलि गई रुद्र कै संगा ॥२॥
जब तिह व्याह रुद्र घर आना ॥ निरख जलन्धर ताहिं लुभाना ॥
दूत एक तह दियो पठाई ॥ लिआयो रुद्र ते नार छिनाई ॥३॥

दोहा

जलन्धर वाच

कै सिब नारि सिंगार कै मम ग्रिह देह पठाइ ॥
नतर सूल संभार कै संग लरहु मुर आइ ॥४॥

चौपई

कथा भई इह दिस इह भाता ॥ अब कहो विसन जिअ की बाता ॥
ब्रिन्दारिक दिन एक पकाए ॥ दैत सभा ते विसन बुलाए ॥५॥
आइ गयो तह नारद रिखिवर ॥ विसन नार के भाम छुधातर ॥
वैगन निरख अधिक ललचायो ॥ मांग रह्यो पर हाथ न आयो ॥६॥
नाथ हेत मै भोज पकायो ॥ मनुछ पठेकर विसन बुलायो ॥
नारद खाइ जूठ जो जोहैं ॥ पीय कोपत हमरे पर हुए हैं ॥७॥
मांग थक्यो मुन भोजन दीआ ॥ अधिक रोस मुनवर तब कोआ ॥
ब्रिन्दा नाम राछसी वपु घर ॥ त्रीय हुयै वसै जलन्धर के घर ॥८॥
देकर श्राप जाय भयो रिखीवर ॥ आवत भयो विसन ताके घर ॥
सुनत श्राप अति ही दुख पायो ॥ विहस वचन त्रीय संग सुनायो ॥९॥

दोहा

त्रीय की छाया लै तबै ब्रिन्दा रची बनाइ ।
धूम्रकेस दानव सदन जन्म धरत भई जाइ ॥१०॥

चौपई

जैसक रहत कमल जल भीतर ॥ पुनि नृप वसी जलन्धर के घर ॥
व्रिह निमित जलन्धर अवतारा ॥ धरहै रूप अनूप मुरारा ॥११॥
कथा ऐस इह दिसमो भई ॥ अब चल बात रुद्र पर गई ॥
मांगी नार न दीनी रुद्रा ॥ तातें कोप असुर पल छुद्रा ॥१२॥
बज्जे ढोल नफीरी नगारे ॥ दुहूं दिसा डमरू डमकारे ॥
माचत भयो लोह विकरारा ॥ झमकत खग्ग अदग्ग अपारा ॥१३॥
गिर गिर परत सुभट रण माही । धुक धुक उठत मसान तहांही ॥
गजी रथी वाजी पैदल रण ॥ जूझ गिरे रण कीछित अनगण ॥१४॥

तोटक

विरचे रण बीर सुधीर कुधं । मचियो तिहं दारुण भूम जुद्धं ॥
हहरतं हयं गरजन्त गजं ॥ सुनकैं धुन सावन मेघ लजं ॥१५॥

वरखै रण बाण कमाण खगं ।। तह घोर भयानक जुद्ध जगं ।।
गिर जात भटं हहरंत हठी ।। उमगी रिप सैण कीए इकठी ।।१६।।
चहूं ओर किरयो सर सोधि सिवं ।। करि कोप घनो असुरार इवं ।।
दुहू ओरन ते इन बाण बहे ।। नभ और धरा दोऊ छाइ रहे ।।१७।।
गिरगे तह टोपनि टूक घने ।। रहगे जन किंसक श्रोण सने ।।
रण हारे अगंभ अनूप हरं ।। जीय मो इह भातं विचार करं ।।१८।।
जीय मो सिब देख रहा चक कै ।। दल दैतन मधि परा हक कै ।।
रण सूल संभार प्रहार करं ।। सुनकै धूनि देव अदेव डरं ।।१९।।
जीय मो सिव ध्यान धरा जबही ।। कल काल प्रसन्नि भये तबही ।।
कह्यो बिसन जलन्धर रूप धरो ।। पुनि जाइ रिपेस को नास करो ।।२०।।

भुजंगप्रयात छन्द

दई काल आगिया धर्‍यो विसन रूपं ।। सजे साज सखं बन्यो जान भूपं ।।
कर्‍यो नाथ यों आप नारं उधारं ।। त्रीया राज ब्रिन्दा सती सत्त दारं ।।२१।।
तज्यो देहि दैतं भई विसन नारं ।। धर्‍यो दुआरसमो विसन दईतावतारं ।।
पुनर जुद्ध सज्जयो गहे शस्त्र पाणं ।। गिरे भूम भो सूर सोभे विमाणं ।।२२।।
मिट्यो सति नारं कट्यो सैन सखं ।। मिट्यो भूप जालन्धर देह गरवं ।।
पुनर जुद्ध सज्जयो हठे तेज हीणं ।। भजे छाड़ कै संग साथी अधीणं ।।२३।।

चौपई

दुहू जुद्ध कीना रण माही ।। तीसर अवरू तहाॅं कोई नाही ।
केतक मास मच्यो तहाँ जुद्धा ।। जालन्धर हुयै सिव पर क्रुद्धा ।।२४।।
तब सिव ध्यान सकत को धरा ।। तातें सकत क्रपा कह करा ।।
ताते भयो रुद्र बलवाना ।। मंड्यो जुद्ध बहुरि विधि नाना ।।२५।।
उत हरि लयो नारि रिपसत हरि ।। इत सिव भयो तेज देवी कर ।।
छिन मे कीयो असुर को नासा ।। निरख रीझ झट रहे तमासा ।।२६।।
जलन्धरी ता दिन ते नामा ।। जपहु चन्डका को सब जामा ।।
ताते होत पवीत्र सरीरा ।। जिन नहाए जल गंग नीरा ।।२७।।
ताते कही न रुद्र कहानी ।। ग्रन्थ बढ़न की चिंत पछानी ।।
ताते कथा थोर ही भासी ।। निरख भूलि कवि करो न हासी ।।२८।।

।। इति जलन्धर अवतार वारूवा समाप्त मसतु सुभमसतु ।।

....

ओंकार श्री वाह गुरुजी की फतह

अथ रामावतार कथनं

चौपई

अब मैं कहों राम अवतारा ॥ जैस जगत मो करा पसारा ॥
बहुत काल बीतत भयो जबै ॥ असुरन वंश प्रगट भयो तबै ॥ १ ॥
असुर लोक बहुकरें विषादा ॥ किनहुं न तिन्हें तनिक मे साधा ॥
सकल देव इकठे तव भये ॥ छीर सिन्धु जहं थो तहं गये ॥ २ ॥
वह चिर वसत भये तिह ठामा ॥ विष्णु सहित ब्रह्मा जिह नामा ॥
बार बार ही दुखित पुकारत ॥ कान परी करन सो धुनि आरत ॥ ३ ॥

तोटक छन्द

विसनादिक देव लखै विसनं ॥ मृदु हास करी कर काल धुनं ॥
अवतार धरो रघुनाथ हरे ॥ चिर राज करो सुख सों अवधे ॥ ४ ॥
विसनेश धुनं सुन ब्रह्म मुखं ॥ अब शुद्ध चली रघुवंश कथं ॥
जुई छोर कथा कवि याहि कहै ॥ इन बातन को इक ग्रन्थ बढै ॥ ५ ॥
तिसतें कहि थोरह खीन कथा ॥ बल तें उपजी बुध मेध यथा ॥
जहं भूल भई हमतै सहियो ॥ सुकवे तहं वर्ण बना कहियो ॥ ६ ॥
रघुराज भयो रघुवंश मणं ॥ जिह राज कियो पुर औध घनं ॥
सोउ काल जन्यो नृपराज जबै । भुविराज कियो अज राज तबै ॥ ७ ॥
अज राज हन्यो जब काल बली ॥ सुनृपेति कथा दशरथ्थ चली ॥
जिह राज कियो सुखसौं अवधं ॥ मृग मार विहार बने सुप्रभं ॥ ८ ॥
जग्र धर्म कथा प्रचुरी तब तें ॥ सुमित्रेश महीप भयो जब तें ॥
दिन रेन बनेसन बीच फिरे ॥ मृगराज करी मृग नित्य हरे ॥ ९ ॥
इह भान्ति कथा उह ठौर भई ॥ अब राम जनी पर बात गई ।
कुहड़ाम जहां सुनिये नगरं ॥ तहं कोशलराज नृपेश वरं ॥१०॥
उपजी तिह भाम सुता कुशलं ॥ जिह जीत लई ससि अंश कलं ॥
सुधि पाय सुयम्बर जो कर्‌यो । अवधेश नरेशहिं तो बर्‌यो ॥११॥
पुनि सेन सुमित्र नरेश बरं ॥ हिन युद्ध लियो मद्र देश हरं ।
सुमित्रा तिह धाम भई दुहिता ॥ जिह जीत लई ससि सूर प्रभा ॥१२॥
भई बुद्धि सुयम्बर की जब ही । अवधेसहिं चीन्ह बर्‌यो तब ही ।
गण याहि भयो दुख और नृपं ॥ जिह केकय धाम सुता सुप्रभं ॥१३॥
इन तों गृह मो सुत जौन भयो । तब बैठ नरेस विचार कियो ।

तब केकइ नार विचार करी । जिह तें ससि सूरज सोभ धरी ॥१४॥
तिह ब्याहत मांग लिये दु वरं । जिह ते अववेसन प्राण हरं ।
समझी न नरेशहिं बात हिये । तब ही तिह को वर दोय दिये ॥१५॥
पुनि देव अदेवन युद्ध भयो । तहं युद्ध घणं नृप आप कियो ।
हत सारथि स्यन्दन नारि हंक्यो । यह कौतुक देख नरेस चक्यो ॥१६॥
पुनि रीझ दिये तिय दोउ वरं । मन मो सुविचार कछू न करं ।
कहि नाटक भइ चरित्र कथा । जय दीन सुरेस नरेस जथा ॥१७॥
अरि जीत अनेक अनेक विधं । सब काज नरेश्वर कीन्ह सिधं ।
दिन रैन विहारत मध्य वनं । जल लेन कुं जाइ तहां श्रवणं ॥१८॥
पितु मातु तजे दुइ अन्ध भुवं । गहि पात्र गयो जल लेन स्वयं ।
मुनि नोदित काल सिधार तहां । नृप बैठ पतावत वन्ध जहां ॥१९॥
भभकतं घटे अति नाद भवं । धुनि कान परी नर राज तवं ॥
गहि पाणि सुवासहि तान घनं । मृग जानत जो सर सुद्ध हनं ॥२०॥
गिर्‍यो सुलगे शर शुद्ध मनं । निसरी मुख ते हहकार धुनं ॥
मृग नाभि कहां नृप जाइ लहै । द्विज देखत ही कर दांत गहे ॥२१॥

श्रवण उवाच

कछु प्राण रहे तिह मध्य तनं । निकसन्त कह्यो तव विप्र नृपं ।
मोर तातरू मात विचक्ष परे । तिन पानि पिआउ नृपाध अरे ॥२२॥

पाधड़ी छन्द

विन चच्छ भूप दुहुं तात मात । तिन देहु पानि तुहि करहु बात ।
मम कथा न तिन कहियो प्रवीन । सुन मरै पुन तै होहि छीन ॥२३॥
इह भान्त जबै द्विज कहत वैन । चुइ चल्यो सुनत जल भूप नैन ।
धिक्कार मोहि जिन कीन कुकर्म । हत भयो राज अरू गयो धर्म ॥२४॥
जब लयो भूप वह सर निकार । तब तजे प्राण मुनिवर उदार ।
पुनि भयो राव मन मे उदास । गृह पलट जान की तजी आस ॥२५॥
जिय टटीकि धरकर जोग भेस । कहुं बसौं जाय बन त्याग देस ।
किह काज मोर यह राज साज । द्विज मार कियो जिस अस कुकाज ॥२६॥
इहि भान्ति कही पुनि नृप प्रवीन । सब जगत काल करमै अधीन ।
अब करौ कछुहु ऐसो उपाय । जातें बचिहैं उह तात माय ॥२७॥
भूप लियो कुंभ सिर पर उठाय । तहं गयो जहां द्विज तात माय ।
जग गयो निकट तिनके सुधार । तव देखि दुहूं तिह पावचार ॥२८॥

सीता स्वयम्बर

रसावल छन्द

रच्यो सुयंत्र सीता । महाशुद्ध गीता ॥
विधं चारू वैनी । मृगीराज नैनी ॥९६॥
सुन्यो मोननेशं । चतुर चारू देशं ॥
लियो संग रामं । चल्यो धर्म धामं ॥९७॥
सुनो राम प्यारे । चलो संग हमारे ॥
सिय सुयंत्र कीनो । नृपं बोल लीनो ॥९८॥
तहां प्रात जइये । सिया जीत लइये ।
कही मान मेरी । बनी बात तेरी ॥९९॥
बली पाणि पाके । निपातो पिनाके ।
सिया जीत आनो । हनो सर्व दानो ॥१००॥
चले राम संगं । सुहाये निषंगं ।
भये जाइ ठाढे । महा मोद बाढे ॥१०१॥
पुरं नारि देखे । सही काम लेखे ।
रिपं शत्रु जाने । सिधं साधु माने ॥१०२॥
सिसुं बाल रूपं । लख्यो भूप भूपं ।
तप्यो पौन हारी । भटं शस्त्रधारी ॥१०३॥
निशा चन्द जान्यो । दिनं भान मान्यो ।
गणं रूद्र पेख्यो । सुरं इन्द्र देख्यो ॥१०४॥
श्रुतं ब्रह्म जान्यो । द्विज व्यास मान्यो ॥
हरी विष्णु लेखे । सिया राम देखे ॥१०५॥
सिया पेख रामं । विन्धी बाण कामं ।
गिरी झूम झूमं । मदी जान धूमं ॥१०६॥
उठी चेत ऐसे । महावीर जैसे ।
रही नैन जोरी । ससी जिऊं चकोरी ॥१०७॥
रहे मोह दोनो । टरे नाहि कौनो ।
रहे ठाढ ऐसे । रणं वीर जैसे ॥१०८॥

रसावल छन्द

पठे कोट दूतं । चले पौन पूतं ।
कुवंडान डारे । नरेशो दिखारे ॥१०९॥

लियो राम पाणं। भन्यो वीर मानं।
हंस्यो ऐंच लीनो। उभय टूक कीनो ॥११०॥
सबै देव हरषे। घनं पुहुम बरषे।
लजाने नरेशं। चले आप देशं ॥१११॥
तबं राज कन्या। तिहूं लोक धन्या।
धरे फूल माला। बन्यो राम बाला ॥११२॥

भुजंगप्रयात छंद

किंधौ देवकन्या किंधौ वासवी है।
किंधौ यक्षिणी किन्नरी नागिनी है॥
किधौ गन्धरी दैतजा देवता सी।
किंधौ सूरजा शुद्ध सोधी सुधा सी ॥११३॥
किधौ यक्ष विद्याधरी गंधरी है।
किंधौ रागिनी भाग पूरे रची है॥
किंधौ स्वर्ण के चित्र की पुत्रिका है।
किधौ काम की कामिनी की प्रभा है ॥११४॥
किधौ चित्र की पुत्रिका सी बनी है।
किधौ शंखिनी चित्रिणी पद्मिनी है॥
किंधौ राग पूरे भरी रागमाला।
वरी राम तैसी सिया आज बाला ॥११५॥
छके प्रेम दोनो लगे नैन ऐसे।
मनो फान्द फान्दे मृगीराज जैसे॥
विधं बाक वैनी कटं देश छीनं।
रंगे रंग रामं सुनैनं प्रवीणं ॥११६॥
जिती राम सीता सुनी श्रोणरामं।
गहे शस्त्र अस्त्रं प्रस्यो तनै तौन जामं॥
कहां जात भाख्यो रहे राम ठाढ़े।
लखौ आज कैसे भये वीर गाढ़े ॥११७॥

अथ अवध प्रवेश कथनम्

सवैया

भेटं भुजा भर अंक भले॰ भरि नैन दोऊ निरखे रघुराई।
गुंजत भृंग कपोलन ऊपर नाग लवंग रहे लव लाई॥

कंज कुरंग कलानिधि केहरि कोकिल हेर हिये हहराई।
बाल लखैं छवि खाट परै नहि बाट चलैं निरखैं अधिकाई ॥१५४॥
सीय रही मुरछाय मने रण राम कहा मन बात धरैगें।
तोर सरासन संकर को जिमि मोहिं बर्यो तिमि और वरैगें॥
दूसर व्याह वधू अवहीं मन ते मोहि नाथ विसार डरेगें।
देखत हौं निज भाग भले विधि आज कहा इह ठौर करेगें ॥१५५॥
तव ही लौं राम जिते दुज को अपने दल आए बधाई बजाई।
भग्गलु लोक फिरै सव ही रण मो लख राघव की अधिकाई॥
सीय रही रण राम जिते अवधेश्वर बात जवै सुनि पाई।
फूलि गयो अति ही मन मै धन के घन की वरषा वरसाई ॥१५६॥
बन्दनवार बन्धी सवहीं दर चन्दन सो छिरके गृह सारे।
केसर डार वरातनि पै सवही जन हुइ पुरहूत पधारे॥
बाजत ताल मुचंग पखावज नाचत कोटन कोट अखारे।
आन मिले सबही अगुआ सुत को पितु लै पुर औध सिधारे ॥१५७॥

अथ वनवास कथनम्

विजै छन्द

चन्द को अंश चकोरन के करि मोरन विद्युल्लता अनुमानी।
मत्त गयन्दन इन्द्रवधू भिनुसार छटा रवि की जिय जानी॥
देवन दोषन की हरता अरि देन काल क्रिया कर मानी।
देसन सिन्धु दिसेसन विन्ध्य, जोगेशन गंग केरंग पछानी ॥२६३॥

दोहा

उत रघुवर बन को चले सीय सहित तजि गेह।
इतै दशा जिह विधि भई सकल साधु सुन लेह ॥२६४॥

माता उवाच

कवित्त

सवै सुख लै कै गये गाढो दुख देत भये,
राजा दसरथ जू को कै कै आज पात हो।
आज हूं न छीजे बात मान लीजै राज कीजै,
कहो काज कौन को हमारे स्रोण न्हात हो।
राजसी के धारो साज साधन कै कीजै काज,
कहो रघुराज आज काहे को सिधात हो।

तापसी के भेष कीने जानकी को संग लीने,
मेरे बनवासी मो उदासी दिये जात हो ॥२६५॥
कारे कारे करि वेस राजा जू को छोरि देस,
तापसी को कै कै भेष साथ ही सिधारिहौं।
कुलहूं की लाज छोरूं राजसी के साज तोरूं,
संग ते न मोरूं मुख ऐसो कै विचारिहौं।
मुन्द्रां कान धारूं सारे मुख पै भभूत डारूं,
हठि को न हारूं पूत राज साज जारिहौं।
जुगिया को कीनो वेस कौशल को छोरि क्लेस,
राजा रामचन्द्र जू कै संग ही सिधारिहौं ॥२६६॥

अथ सीता हरणम्

मनोहर छन्द

रावण नीच मरीचहुँ के गृह बीच गये बध वीर सुनैहै।
बीसहुं वांह हथ्यार गहे रिस मार मनै दससीस धुनैहै॥
नाक कट्यो जिन सूपनखा कहो तिहको दुख दोष लगैहै।
रावल को बनु कै पल मो छल कै तिह की घरनी धरि लैहै ॥३४८॥

मारीच उवाच

नाथ अनाथ सनाथ कियो करि कै अति मोर कृपा कह आये।
मौन भन्डार अंटी विकटी प्रभु आज सवै घर बार सुहाये॥
द्वै करि जोर करौं विनती सुन कै नृपनाथ वुरो मति मानो।
श्री रघुवीर सही अवतार तिनैं तुम मानस कै न पछानो॥३४९॥
रोष भऱ्यो सब अंग जऱ्यो मुख रत्त कऱ्यो जुग नैन नचाए।
तैंन लगे हमरे सठ बोलन मानस द्वै अवतार कहाए॥
मात की एक ही बात कहे तजि तात घृणा वनवास निकारे।
ते दोऊ दीन अधीन जुगी कस कै भिरिहैं संग आन हमारे॥३५०॥
जौ नहिं जात तहाँ कह तैं सठ तोर जटान को जूट पटैहौं।
कंचन कोट के ऊपर तें डरि तोहिं नदीसर बीच डुवैहौं॥
चित्त चिरात विसात कछू न रिसात चल्यो मुनि घात पछानी।
रावण नीच की मीच अधोगत राघव पाणि परी सुरि मानी॥३५१॥
कंचन को हरना वनिकै रघुवीर बली जहं थौ तहं आयो।
रावण ह्वै उत तै जुगिया सिय लैन चल्यो, जनु मीच चलायो॥

सीय विलोक कुरंग प्रभा कह मोहि रही प्रभु तीर उचारी।
आनि दिजै हम कऊ म्रिगवा सुन श्री अवधेस मुकन्द मुरारी ॥३५२॥

राम उवाच

सीय मृग कहुं कन्चन को नहि कान सुन्यो विविध नैन बनायो।
बीस विसै छल दानव को बन मे जिह आन तुम्हैं बहकायो॥
प्यारी को आयस मेटि सकै न बिलोक सिया कहुं आतुर भारी।
वान्ध निषंग चले कटि सौ कहि भ्रात इहां करिजै रखवारी ॥३५३॥
ओट थक्यो करि कोटि निसाचर श्री रघुवीर निदान संघाऱ्यो।
हे लहु बीर उबार लै मो को यौ कहि कै पुन राम पुकाऱ्यो॥
जानकी कोल कुबोल सुन्यो तव ही तिह और सौमित्र पठायो।
रेख कमान की काढि महावति जात भये इन रावण आयो ॥३५४॥
भेख अलेख उचार कै रावण जात भयो सिय के ढिग यौं।
अवलोक धनी धनवान बड़े तिह जाइ मिलै मग मै ठग ज्यौं॥
कछु देहु भिछा मृगनैनी हमै इह रेख मिटाइ हमै अबहीं।
विनु रेख भई अवलोक लई हर सीय उड्यो नभ कौ तबहीं ॥३५५॥

अथ इन्द्रजीत युद्ध कथनम्

सिरखन्डी छन्द

जुट्टे वीर जुझारे धग्गां बज्जियां।
बज्जे नाद करारे दला मेसाहदा॥
लुज्झे कारणयारे संघर सूरमे।
बुट्ठे जानु डरारे घनिअर कैबरी ॥४६७॥
बज्जे संगलियाले हाठा जुट्टिया।
खेत वहै मुच्छाले कहर ततारचे॥
डिग्गे वीर जुफारे हुग्गां फुट्टियां।
बके जानु मतवाले भगां पीइकै ॥४६८॥
उरइये हकांरी धग्गां वाइ कै।
वाहि फिरै तरवारी सूरे सूरियां॥
वग्गे रत्त झुलारी झाड़ी कैबरी।
पाई धूम लुझारी रावण राम की ॥४६९॥
दोहीं धौसं बजाई संघर मच्चिरिया।
वाहि फिरं वैराई तुरे ततारचे॥
हूंरा चित्त बधाई अम्बर पूरिया।
जोध्यो देखन ताईं हूले होइयां ॥४७०॥

पाधड़ी छन्द

इन्द्रादि वीर कुप्पयो कराल ॥ मुकतन्त बाणा गहि धनु विशाल ।
धरकन्त लुथं फरकन्त बाह ॥ जूझन्त सूर अछरौ उछाह ॥ ४७१ ॥
चमकन्त चक्र सरकन्त सेल ॥ जुज्झे जटाल जनु गंग मेल ।
संघरे सूर अध्ययाय घाय ॥ वरषन्त बाण चढ़ चोप चाय ॥ ४७२ ॥
सम्भले शूर आरूहे जंग ॥ वरषन्त बाण विषधर सुरंग ॥
नभ व्है अलोप सर वरष धार ॥ सब ऊंच नीच कीने शुमार ॥ ४७३ ॥
सब शस्त्र अस्त्र विद्या प्रवीन ॥ सरधार वर्षे सरदार चीन ॥
रघुराज आदि मोहे सुबीर ॥ दल सहित भूमि डिग्गे अधीर ॥ ४७४ ॥
तब कही दूत रावणहि जाय ॥ कपि कटक आजु जीत्यो बनाय ॥
सिय भजो आजु व्है के निचीत ॥ संघरे राम रण इन्द्रजीत ॥ ४७५ ॥
तब कहै वैन त्रिजटी बुलाय । रण मृतक राम सीतहिं दिखाय ॥
लै गई नाथ जहँ गिरे खेत । मृग मारि सिंह ज्यो सुभ्र अचेत ॥ ४७६ ॥
सिय निरख नाथ मन महि रिसान । दस अडर चार विद्या निधान ॥
पढ़ नाग मन्त्र संघरी पाश । पति भ्रात जिवइ चित भा हुलास ॥ ४७७ ॥
सिय गई जगे अंगराय राम । दल सहित भ्रात जुत धर्मधाम ॥
बज्जे सुनाद गज्जे सुवीर । सज्जे हथ्यार मज्जे अधीर ॥ ४७८ ॥
संभले सूर सर वरष जुद्ध । हन साल ताल विकराल क्रुद्ध ॥
तजि जुद्ध सुद्ध सुरमेघ घण्ण । थल गयो निकुंभल हो कण्ण ॥ ४७९ ॥
लघु वीर तीर लंकेश आन । इमि कहे वैन तज भ्रात कान ॥
आईहै शत्रू घात हाथ । इन्द्रारि वीर अरिवर प्रमाथ ॥ ४८० ॥
निज मास काटकर करत होम । थरहरइ भूमि अरू चकित व्योम ॥
तहं गयो राम भ्राता निशंक । कर धरे धनुष कटि कसि निषंग ॥ ४८१ ॥
चिन्ती सुचित्त देवी प्रचन्ड । अरू हन्यो बाण कीने दुखन्ड ॥
रिपु फिरे मार दुन्दभि बजाइ । उत भजे दैत दलपति जुझाइ ॥ ४८२ ॥

अथ रावण युद्ध कथनम्

दोहा छन्द

सुन्यो इसं । जिन्यो किसं । चप्यो चितं । बुल्यो वितं ॥ ५२७ ॥
घिरयो गढं । रिसं बढ़ं भजी त्रियं । भ्रमी भयं ॥ ५२८ ॥
भ्रमी तबै ॥ भजी सबै । त्रियं इसं । गह्यो किसं ॥ ५२९ ॥
करै हहं । अहो दयं । करो गई । छमो भई ॥ ५३० ॥

सुनी श्रुतं। धुनं उतं ॥ उठ्यो हठी। जिमं भठी ॥ ५३१ ॥
कछूयो नरं। तजे सरं। अने किसं। रूकी दिसं ॥ ५३२ ॥

त्रिणनन छन्द

त्रिणनन तीरं। ब्रिणनन वीरं ॥
ढणनन ढालं। ज्रणनन ज्वालं ॥ ५३३ ॥
खणनन खोलं। ब्रणनन बोलं ॥
रणनन रोषं। ज्रणनन जोशं ॥ ५३४ ॥
ब्रणनन बाजी। त्रणनन ताजी ॥
ज्रणनन जूझै ॥ लणनन लूझै ॥ ५३५ ॥
हरणन हाथी। स्रणनन साथी ॥
भरणन भाजे। लरणन लाजे ॥ ५३६ ॥
चरणन चर्मं। वरणन वर्मं ॥
करणन काटे। वरणन वाटे ॥ ५३७ ॥
मरणन मारे। तरणन तारे ॥
जरणन जीता। सरणन सीता ॥ ५३८ ॥
गरणन गैनं। अरणन ऐनं ॥
हरणन हूरं। परणन पूरं ॥ ५३९ ॥
वरणन वाजे। गरणन गाजे ॥
सरणन सूझे। जरणन जूझे ॥ ५४० ॥

त्रिगता छन्द

तत्तत्तीरं। बब्बूब्बीरं। ढढ्ढढालं। जज्जज्वालं ॥ ५४१ ॥
तत्तत्ताजी। गग्गग्गाजी। मम्मम्मारे। तत्तत्तारे ॥ ५४२ ॥
जज्जज्जीते। तल्लल्लीते। तत्तत्तोरे। छच्छच्छोरे ॥ ५४३ ॥
ररराजं। गग्गाग्गाज। धद्धद्धायं ॥ चच्चचायं ॥ ५४४ ॥
डड्डडिग्गे। भभ्भभिग्गे। शश्शशेणं तत्तत्तोणं ॥ ५४५ ॥
सस्सस्साधे। बब्बवाधे। अअअअंगं। जज्जज्जंगं ॥ ५४६ ॥
कक्कक्रोधं। जज्जज्जोधं। घघ्घघ्घाये। घध्घध्धाये ॥ ५४७ ॥
ह:ह:हूरं। पप्पप्पूरं। गग्गग्गैनं। अअअयनं ॥ ५४८ ॥
बव्बव्वाणं। तत्तत्तानं। छच्छच्छोरं। जज्जीजोरं ॥ ५४९ ॥
बव्बव्वाजे। गग्गग्गाजे। भभ्भभ्भूमं। झज्झज्झूमं ॥ ५५० ॥

अनाद छन्द

चल्ले बाण रूके गैन। मत्ते सूर रत्ते नैन ॥
ढक्के ढोल ढुक्की ढाल। छुट्टे बाण उट्ठी ज्वाल ॥ ५५१ ॥

भिग्गे शोण डिग्गे सूर। झुम्मे भूमि घुम्मी हूर॥
बज्जे शंख सद्दं गद्द। तालं शंख भेरी नद्द॥ ५५२॥
टुट्टे त्राण फुट्टे अंग। जुज्झे बीर रूज्झे जंग॥
मच्चे सूर नच्ची हूर। मत्ती घुम्म भुम्मी पूर॥ ५५३॥
उट्ठे अद्ध बद्धं बद्ध। पक्खर राग खोलं नद्ध।
छक्के छोभ छुट्टे केस। संघे सूर सिंह भेस॥ ५५४॥
टुट्टे टीक टुट्टे टोप। भग्गे भूप भन्नी घोप॥
घुम्मे घाय झुम्मी भूम। उज्झे झाड़ धूमं धूम॥ ५५५॥
बज्जे नाद वादं अपार। सज्जे सूर वीरं जुझार॥
जुज्झे टूक टूक हु खेत। मत्ते मद्द जानो अचेत॥ ५५६॥
छुट्टे शस्त्र अस्त्रं अनन्तं। रंगे रंग भूमं दूरन्तं॥
खुल्ले अन्ध धुन्य हथ्यार। वक्के शूर वार विकार॥ ५५७॥
विक्खा लूथ जूथं अनेक। मच्चे कोट भग्गे अनेक॥
हस्से भूत प्रेतं मसान। लुज्झे जुज्झ रुज्झ कुरान॥ ५५८॥

बहड़ छन्द

अधिक रोष कर राज पखरिया धावहिं।
राम राम बिनु संक पुकारत आवहिं॥
रुज्झ रुज्झ झड़ भयानक भूम पर।
रामचन्द्र के हाथ गये भव सिन्धु तर॥ ५५९॥
सिमटि सागं संग्रहे सामुहं व्है जूझहिं।
टूक टूक है गिरत न घर कहुँ बूझहिं॥
खन्ड खन्ड है गिरत खन्ड घन खन्ड रन।
तनिक तनिक लग जाहिं असिन की धार तन॥ ५६०॥

संगीत बहड़ छन्द

सागड़दी सागं संग्रहैं तागड़दी रण तुरी नचावहिं।
झागड़दी झूम गिर भूमि। सागड़दी सुरपुरहि सिधावहिं॥
अंगड़दी अंग है भगं आगड़दी आव महि डिग्गाहिं।
बागड़दी बीर बिकरार हो सागड़दी सोणत तन भिग्गाहिं॥ ५६१॥
रागड़दी रोष रिपुराज लागड़दी लछमन पै धायो।
कागड़दी क्रोध तन कुढ्यो पागड़दी पवन है सिधायो।
आगड़दी अनुज उर तातं गागड़दी गहि धाइ प्रहार्‍यो।
झागड़दी झूम झूम गिर्‍यो सागड़दी सुत वैर उतार्‍यो॥ ५६२॥

चागड़दी चिकं चावंड़ी डाड़दी डाकिनी डकारी।
भाषड़दी भूत भरहरे। रागड़दी रण रोष प्रचारी॥
भागड़दी मूर्च्छा भयो। लागड़दी लछमन रण जूझ्यो।
जागड़दी जान घूझि गयो रागड़दी रघुपत इमि बूझ्यो।
जागड़दी जान जूझि गयो रागड़दी रघुपत इमि बूझ्यो॥ ५६३॥

त्रिभंगी छन्द

सायक जनु छूटे तिमि अरि जूटे बखतर फूटे जेव गिरे।
मसहर मुखियाए तिमि अरि धाये शस्त्र नचायन फेरि फिरे॥
सन्मुख रण गार्ज्जें किमहुं न भाजै लखि सुर लाजैं रण रंगं।
जै जै धुनि करहीं पुहपुन डरहीं सुविधि उचरहीं जै जै जंगं॥५९९॥

कलस छन्द

मुख तंबोर अरु रंग सुरंग। निडरे फिरत भूमि वह जंग।
लिपत मले घनसार सुरंग। रूप भानु गति बाण उतंग॥६००॥

त्रिभंगी छन्द

तन सुभत सुरंगं छवि अंग अंगं लजत अनंग लख नैनं।
शोभित कच कारे अति घुंघरारे रसन रसारे मृदु बैनं॥
मुखि छकत सुवासं दिनस प्रकासं जनु ससि भासं तस सोभं।
रीझत चख चारं सुर पुर प्यारं देव दिवारं लखि लोभं॥६०१॥

कलस छन्द

चन्द्रहास एकं कर धारी। द्वितिय घोष गहि तृतीय कटारी॥
चतुरथ हथ सैहथि उचियारी। गोफन गुरज करत चमकारी॥६०२॥

त्रिभंगी छन्द

सतवें असि भारी गदहि उभारी त्रिशूल सुधारी छुरकारी।
जवुंवा अरु बाणं सुकसि कमानं चरम प्रमाणं धर मारी॥
पन्द्रए गंलोलं पाश अमोलं परस अडोलं हथिनालं।
विछुआ परहायं पटा भ्रमायं जिमि यम धायं विकरालं॥६०३॥

कलस छन्द

शिव शिव शिव मुख एक उचारं। द्वितिय प्रभा जानकी निहारं॥
तृतीय झुण्ड सब सुभट पुकारं। चतुरथ करत मार ही मारं॥६०४॥

त्रिभंगी छन्द

पंचए हनुमन्तं लख दुतमन्तं सुबल दुरन्तं तजि कलिनं।
छठएं लखि भ्रातं तकत पैघातं लगत न घातं जिय कलनं॥

जतए लखि रघुपति कपि दल अधिपति सुभट विकट मति जुत भ्रातं ।
अठवें सिरि फेरे नवम निहोरै दसअन बोरैं रिस रातं ॥६०५॥

चौबोला छन्द

धाए महावीर सावे सितं तीर काछे रणं चीर वाना सुहाए ।
रवां कर्द अरक़ब यलो तेज इम शव चु तुन्द अज़दहो उमिआ जगांहे ।
भिड़ आए इहाँ वुलैं वैन कीहाँ करै घाइ जीहां भिड़ेभेज भज्जे ।
पियो पोस्ताने भछो रावड़ी ने कहा छे अनीरे घनी ने निहारे ॥६०६॥
गाजे महाशूर घुम्मी रणं हूर भरमी नभं पूर वेशं अनूपं ।
वले वल्ल साई जिवीं जुग्गां ताई तैन्डे घोली जाई अलावीत ऐसे ।
लगो लार थाने वरो रोज माने कहो और काने हठी छाडं थेसे ।
बरो आन मोको भजौं आन तोको चलो देव लोको तजो वेगि लंका॥६०७॥

सवैया वहुतुका छन्द

रोष भर्‌यो तजि होश निशाचर श्री रघुराज को धाइ प्रहारे ।
जोश बड़ो कर कौशलिशं अधवीच ही तें सर काट उतारे ।
फेर बड़ो कर रोष दिवारी धाइ परै कपि पुन्ज संघारै ।
पट्टस लोह हथो परसै गड़िये जंवुए जमदाढ़ चलावैं ॥६०८॥

चौबोला छन्द

श्री रघुराज सरासन लै रिस ठान घनी रण बाण प्रहारे ।
वीरन मार दुसार गये सर अंवरं तैं वरसे जनु ओरे ॥
वाजि गजी रथ साज गिरे घर पत्र अनेक सु कौन गनावे ।
फागुन पौन प्रचन्ड बहे वन पत्रन ते जनु पत्र उडारे ॥६०९॥

सवैया

रोष भर्‌यो रण मों रघुनाथ सु रावण को बहु बाण प्रहारे ।
श्रौणन नैक लग्यो तिनके तन फोर जिरै तन प्राण पधारे ॥
वाजि गजी रथराज रथी रणभूमि गिरे इह भान्ति संघारे ।
जानौ वसन्त के अन्त समै कदलीदल पौन प्रचण्ड उखारे ॥६१०॥
धाइ परैं कर कोप वनेचर है तिन के जिय रोष जग्यो ।
किलकार पुकार पैरे चहुँ धारन छाडि हठि नहि एक भग्यो ॥
गहि बाण कमान गदा वरछी उत तै दल रावण को उमग्यो ।
भट जूझि अरुझि गिरे धरणी द्विजराज भ्रम्यो शिव ध्यान डिग्यो॥६११॥
जूझि अरुझि गिरे भटवा तन आइन घाइ घने भिभराने ।
जम्बुक गिद्ध पिशाच निशाचर फूल फिरे रण मो हरषाने ॥

कांप उठी सुदिशा विदिशा दिग्पालन फेर प्रलय अनुमाने।
भूमि अकाश उदास भये गण देव अदेव भ्रमे महराने ॥६१२॥
रावण रोष भऱ्यो रण मो रिस सों सर उग्र प्रउग्र प्रहारे।
भूमि अकास दिशा विदिशा सब ओर रुके नहि जात निहारे॥
श्री रघुराज शरासन लै छिन मो छुभ कै सर पुन्ज निवारे।
जानहु भान उदै निस कऊ लखि कै सबही तप तेज पधारे॥६१३॥
रोष भरे रण मो रघुनाथ कमान लै बाण अनेक चलाये।
बाजि गजी गजराज घने रथराज बने करि रोष उड़ाये॥
जे दुख देह कटे सिय के हित ते रण आज प्रतच्छ दिखाये।
राजिव लोचन रामकुमार घनो रण घाल भने घर घाये॥६१४॥
रावण रोष भऱ्यो गरज्यो रण मो सहि कै सब सैन्य भजान्यो।
आपुहि हाक हथ्यार उठी गहि श्री रघुनन्दन सों रण ठान्यो॥
चाबुक मार कुदाइ तुरन्गन जाइ पऱ्यो कछु त्रास न मान्यो।
वाणन ते विन्ध बाहन ते मनु मारुत को रथ छोरि सिधान्यो॥६१५॥
श्री रघुनन्दन की भेज तें जव छोर सरासन बाण उड़ाने।
भूमि अकास पतार चहूं चक पूर रहे नहिं जात पछाने॥
तोर सनाइ सुवाहन के तन आस करी नहिं पार पराने।
छेद करोटन ओटन कोट अटान मो जानकी वाण पछाने॥६१६॥
सीय सुरारिन के कर को जिन एक ही बाण विषै तन चाख्यो।
भाज सक्यौ न भिऱ्यो हठ कै भट एक ही धाइ धरा पर राख्यो॥
छेद सनहा सुवाहन को सर ओटन कोट करोटन नाख्यो।
सूर जुझार अपार हठी रण हार गिरे धर हाय न भाख्यो॥६१७॥
आन अरे सु मरे सब ही भट जीत वचे रण छांडि पराने।
देव अदेवन के जितया रण कोटि हते करि एक न जाने॥
श्री रघुराज पराक्रम को लखि तेज समूह सबै भहराने।
ओटन कूद करोटन फान्द सु लंकहि छांड़ि विलंक सिधाने॥६१८॥
रावण रोष भऱ्यो रण भोगहि वीसहुँ वाहि हथ्यार प्रहारे।
भूमि अकास दिशा विदिशा चकि चार रुकै नहि जात निहारे॥
फोकन तै फल तैं मघ तैं अघ तै वध कै रणमण्डल तारे।
छत्र भुजा वर वाजि रथी रथ काट सबै रघुराज उतारे॥६१९॥
रावण चोप चल्यो चप कै निज वाजि विहीन जबै रथ जान्यो।
ढाल त्रिशूल गदा वरछी गहि श्री रघुनन्दन सो रण ठान्यो॥

धाय पर्‍यो लडकार हठि कपि पुन्जन को कछु त्रास न मान्यो ।
अंगद आदि हनूवन्त सो भट कोटिहु ते कर एक न जान्यो ॥६२०॥
रावण को रघुराज जबै रण मन्डल आवत मध्य निहार्‍यो ।
वीस सिला सित सायक लै करि कोप बढ्यो उर मध्य प्रहार्‍यो ॥
भेज चले मर्मस्थल को सर श्रोण नदीसर बीच पखार्‍यो ।
आगेह रेगं चल्यो हठि कै भट धाम को भूल न नाम उचार्‍यो॥६२१॥
रोष भर्‍यो रण मों रघुनाथ सुपाण के बीच सरासन लैके ।
पाचंक पाइ हटाइ दियो तिह वीसहु वाहिं विना उंह कै कै ॥
दै दस बाण विमान दसो सिर काट दिये शिवलोक पठै कै ।
श्री रघुराज वर्‍यो सिय को बहुर्‍यो जनु जुद्ध स्वयंबर कै कै ॥६२२॥

अथ अयोध्या आगमनम्

रसावल छन्द

तबै पुष्प पै कै । चढ़े जुद्ध जै कै ।
सबै सूर गाजे । जयं गीत बाजे ॥६५३॥
चलै मोद व्है कै । कपी वाहिनी लै ।
पुरी औध पेखी । श्रुतं स्वर्ग लेखी ॥ ६५४ ॥

मकरा छन्द

सिय लै सियेश आये । मंगल सुचार गाये ॥
आनन्द हिय बढ़ाये । शहरो अवध जुहारे ॥ ६५५ ॥
धाई लुगाइ आवैं । भीरो न वार पावैं ॥
आकिल खरै दघावे । म्हारे ढोलन कहाॅं ते ॥ ६५६ ॥
जुलफैं अनूप जाकी । नागिन सीस्या वाकी ॥
अदभुत अदाय तांकी । ऐसो ढोलन कहां है ॥ ६५७ ॥
सरवै सही चमन रा । परचस्त जां व तन रा ।
जिन दिल हरा हमारा । वह मन हरण कहां है ॥ ६५८ ॥
चित को चुराइ लीना । जालिम फिराक दीना ॥
जिन दिल हरा हमारा । वह गुल चिहर कहां है ॥ ६५९ ॥
कोऊ बताइ दै रे । चाहे सु आन लै रे ।
जिन दिल हरा हमारा । वह मन हरण कहां है ॥ ६६० ॥
माते मनो अमल के । हरिया कि जां व तन के ।
आलम कुशाय खूबी । वह गुल चिहर कहां है ॥ ६६१ ॥

जालिम अदाय लीए। खन्जन खिसान कीए ॥
जिन दिल हरा हमारा। वह मह वदन कहां है ॥ ६६२ ॥
जालिम अदाय लीने। जानहु शराब पीने ॥
रूखसार जहां तावां। वह गुलवदन कहां है ॥ ६६३ ॥
जालिम जमाले खूबी। रौशन दिमाग अकसर ॥
परचस्त जां जिगर रा। वह गुल चिहर कहां है ॥ ६६४ ॥
बालम विदेश आए। जीते जुआन जालिम ॥
कामिल कमाल सूरत। वह गुल चिहर कहॉ है ॥ ६६५ ॥
रोशन जहान खूबी। जाहिर कलीम हफतस्त ॥
आलम कुशाए जत्वा। वह गुलचिहर कहां है ॥ ६६६ ॥
जीते वजंग जालिम। कीने खुतंग परा ॥
पुहपक विमान बैठे। सीतारमण कहां है ॥ ६६७ ॥
मादर खुशाल खातिर। कीने हजार छावर ॥
आतुर शिताब धाई। वह गुल चिहर कहां है ॥ ६६८ ॥

अथ माता मिलनम्

रसावल छन्द

सुने राम आये। सबै लोग धाये ॥
लगे आन पायं। मिले राम रायं ॥ ६६९ ॥
कऊ चौरं ढारै। कऊ पान रव्वारैं ॥
परे मात मायं। लिये कंठ लायं ॥ ६७० ॥
मिलै कंठ रोबै। मनो शोक धोवै ॥
करै वीर वातै। सुनै सर्व मातैं ॥ ६७१ ॥
मिले लच्छ मातं। परे पांइं भ्रातं ॥
कियो दान एतो। गनै कौन केतो ॥ ६७२ ॥
मिले भर्तु मातं। कही सर्व बातं ॥
धनं मात तोको। कियो उऋण मोको ॥ ६७३ ॥
कहा दोष तोरो। लिखा लेख मेरो ॥
हुनी हो सु होई। कहै कौन कोई ॥ ६७४ ॥
कियो बोध मातं। मिल्यो फेरि भ्रातं ॥
सुन्यो भरत धाये। पगं सीस लाए ॥ ६७५ ॥
भरे राम अंकं। मिटी सर्व शंकं ॥
मिल्यो शत्रुहन्ता। सरं शास्त्र गंता ॥ ६७६ ॥

जटं धूर झारी । पगं राम रारी ॥
करी राज अर्चा । द्विजं वेद चर्चा ॥ ६७७॥
करैं गीत गानं । भरे वीर मानं ॥
दियो राज राजं । सरे सर्व काजं ॥ ६७८ ॥
बुलै विप्र लीने । श्रुतोच्चार कीने ॥
भये राम राजा । बजे जीत वाजा ॥ ६७९ ॥

भुजंगप्रयात छन्द

चहूं चक्क के छत्रधारी बुलाए ।
धरे अस्त्र नीके पुरी औध आए ॥
गहे राम पायं महा प्रीत कै कै ।
मिले चत्र देसो बड़ो भेंट दै के ॥ ६८० ॥
दिये चीन याचीन चीनन्त देशं ।
महासुन्दरी चेरिका चारु केशं ॥
मणं मानकं हीर चीरं अनेकं ।
किये खोज पैये कहूं एक एकं ॥ ६८१ ॥

अथ सीता को वनवास दीबो

भुजंगप्रयात छन्द

भई एम तौने इतै इक श्रुणारं ।
कही जानकी सो सु कत्थं सुधारं ॥
रचौ एक बागं भिरामं सुशोभं ।
लखे नन्दनं जौन की कान्त छोभं ॥ ७१७ ॥
सुनी राम वाणी सिया धर्म धामं ।
रच्यो एक बागं महा अभिरामं ॥
मणी भूषितं हीर चीरं अनन्तं ।
लखे इन्द्र पत्थं लजे शोभवन्तं ॥ ७१८ ॥
मणी माल वज्रं सुशोभायमानं ।
सबै देव देवं दुती स्वर्ग जानं ॥
गये राम तामे सिया संग लीने ।
कई कोट दासी सबै सगं कीने ॥७१९॥
रच्यो एक भौनं महा शुभ्र ठामं ।
कर्‍यो राम सैनं तहां धर्म धामं ॥

करी एक खेलं सुबेलं सुभोगं।
हुतो जौन कालं समै जैस जोगं ।।७२०।।
रह्यो सीय गर्भं सुन्यो सर्व वामं।
कह्यो राम सीता पुनर्वैन रामं ।।
फिर्‍यो वाग वागं विदा नाथ दीजै।
सुनो प्राण प्यारे इहै काज कीजै ।।७२१।।
दियो राम संगं सुमित्रा कुमारं।
दई जानकी संग ताके सुधारं ।।
जहाँ घोर सालं तमालं विकरालं।
तहां सीय को छोर आयो उतालं ।।७२२।।
वनं निर्जनं देख कै कै अपारं।
वनवास जान्यो दियो रामनारं ।।
सरोदं सुर उच्च पाततं प्राणं।
रणे जेम वीर लगे मर्म बाणं ।।७२३।।
सुनी वालमीक श्रुतं दीन बाणी।
चल्यो चौंकचित्तं तजी मौन धानी ।।
सिया संग लीने गयो धाम आपं।
मनं वच्च कर्मं दुगा जान जापं ।।७२४।।
भयो एक पुत्रं तहाँ जानकी .कै।
मनो राम कीनो दुती राम लै के ।।
वहै चारु चिन्हं वहै उग्र तेजं।
मनो अप्प अंश दुती काढि भेजं ।।७२५।।
दियो एक पालं सुवालं रिखीसं।
लसै .चन्द्र रूपं किंधौं द्योस ईसं ।।
गयो एक दिवसं रिखि संधयानं।
लियो बाल संगं गई सीय न्हानं ।।७२६।।
रही जात सीता महा मौन जागे।
विना वाल पालं लख्यो शोक पागे ।।
कुशा हाथ लेके रच्यो एक बालं।
तिसी रूप रंगं अनूपं उतालं ।।७२७।।
फिरी न्हाय सीता कहा आन देख्यो।
वही रूप बालं सुपालं विसेख्यो ।।

कृपा मौनराजं घनी जान कीनो ।
दुती पुत्र ताते कृपा जान दीनो ॥७२८॥
इतै बाल पालै इतै और राजं ।
बुलै विप्र जग्यं तज्यो एक वाजं ॥
रिपं नाश हन्ता दियो संग ताके ॥
बड़ी फौज लीने चल्यो सर्ग वाके ॥७२९॥
फिर्‍यो देश देशं नरेशान वाजं ।
किनी नाहिं वान्ध्यो मिले आन राजं ॥
महा उग्र धन्वा बड़ी फौज लै कै ।
परे आन पायं बड़ी भेट दै कै ॥७३०॥
दिशा चार जीती फिर्‍यो फेरि वाजी ।
गयो वालमीकं रिखी स्थान ताजी ॥
जबै भाल पत्रं लै लवं छोर वांच्यो ।
बड़ो उग्र धन्वा रसं रौद्र राच्यो ॥७३१॥
वृछं वाजि वान्ध्यो लख्यो शस्त्रधारी ।
बड़ो नाद कै सर्व सेना पुकारी ॥
कहाँ जात रे वाल लीने तुरंगं ।
तजो नाहि या के सजो आन जंगं ॥७३२॥
सुन्यो नाम जुद्धं जबै श्रोण शूरं ।
महा शस्त्र सोढं महा लोह पूरं ॥
हठे वीर हाठे सबै शस्त्र लै कै ।
परो मध्य सैन्यं बड़ो नाद कै कै ॥७३३॥
भली भान्ति मारे पछारे सुशूरं ।
गिरे जुद्ध जोधा रही धूर पूरं ॥
उठी शस्त्र झारं अपारन्त वीरं ।
भ्रमे रुण्ड मुण्डं तनं तच्छ तीरं ॥ ७३४ ॥
गिरे लुत्थ पत्थं सु जुत्थन्त बाजी ।
भ्रमे छूछ हाथी विना स्वार ताजी ॥
गिरे शस्त्र हीनं विअस्तंत शूरं ।
हंसे भूत प्रेतं भ्रमी गैन हूरं ॥ ७३५ ॥
घनघोर नीशान वज्जे अपारं ।
खहे वीर धीरं उठीं शस्त्र झारं ॥

चले चारु चित्रं विचित्रन्त वाणं ।
रणं रोष रज्जे महा तेज वानं ॥ ७३६ ॥

अथ सीता ने सब जिवाये कथनम्

चौपई

अब मो कछं कासठ दे आना । जरउं लागि पति होऊं मसाना ॥
सुनि मुनिराज बहुत विधि रोए ॥ इन वालन हमरे सुख खोए ॥८२०॥
जब सीता तन चहा कि काढूं । जो अगिनि उपराज सुछाडूं ॥
तब इमि भई गगन तें वाणी ॥ कहा भई सीता तैं अयानी ॥८२१॥

अरूपा छन्द

सुनी वाणी । सिया रानी ॥
लया आनी । करै पानी ॥८२२॥

सीता उवाच मन में ।

दोहा

जो मन वच करमन सहित, राम विना नहिं और ।
तऊ ए राम सहित जिएं, कह्यो सिया तिह ठौर ॥ ८२३ ॥

अरूपा छन्द

सबै जागे ॥ भ्रमं भागे ॥
हठं त्यागे ॥ पगं लागे ॥ ८२४ ॥
सिया आनी ॥ जगं रानी ॥
धर्मं धानी ॥ सती मानी ॥ ८२५ ॥
मनं भाई ॥ उरं लाई ॥
सती जानी । मनं मानी ॥ ८२६ ॥

दोहा

वहु विधि सियंहिं संवोध कर । चले अजुध्या देश ॥
लव कुश दोऊ पुत्रन सहित । श्री रघुवीर नरेश ॥ ८२७ ॥

चौपई

वहुत भान्ति कर सिसन संवोधा ॥ सिय रघुवीर चले पुर औधा ॥
अनिक वेष से शस्त्र सुहाए ॥ जानहु तीन रांम वनि आए ॥८२८॥

सीता और दुहू पुत्रन सहित अवध प्रवेश कथनम्

चौपई

तिहूं मात कंठन सो लाये । द्वो ऊ पुत्र पायन लपटाये ॥
बहुरि आन सीता पग परी । मिट गई तहं दुखन की घरी ॥८२९॥

वाजि मेध पूरन किय जग्गा ॥ कोशलेश रघुवीर अभग्गा ॥
गृह सपूत दो पूत सुहाए ॥ देश विदेश जीत गृह आए ॥८३०॥
जेतक कहे सु जग्ग विधाना ॥ विधि पूरब कीने तें नाना ॥
एक घाट सत कीने जग्गा ॥ चट पट चक्र इन्द्र उठ भग्गा ॥८३१॥
राजसूय कीन्हे दस बारा । वाजि मेध इकीस प्रकारा ॥
गवालम्भ अजमेध अनेका । भूम मद्ध कर्म किये अनेका ॥८३२॥
नाग मेध षट जग्ग कराए । जौन करे जनमेजय पाए ॥
और गनत कहां लगि जाऊं ॥ ग्रन्थ बढ़न तैं हिए डराऊं ॥८३३॥
दस सहस्र दस वर्ष प्रमाना । राज करा पुर अउध निधाना ॥
तब लौं काल दशा नियराई ॥ रघुवर सिर मृत डंक वजाई ॥८३४॥
नमस्कार तिह विविध प्रकारा । जिन जग जीत कियो वश सारा ॥
समनहि सीस डंक तिह बाजा ॥ जीत न सका रंक अरु राजा ॥८३५॥

दोहा

जे तिनकी सरनी परे, कर दे लये वचाय ।
यों नहि कोऊ बांचिया, किसन बिसन रघुराय ॥८३६॥

चौपई

बहु विधि करो राज को साजा ॥ देश-देश के जीते राजा ॥
साम दाम अरु दण्ड सभेदा ॥ जिह विधि हुती सासना वेदा ॥८३७॥
वरन-वरन अपनी कृत लाये ॥ चार-चार ही वरन चलाये ॥
छत्री करै विप्र की सेवा ॥ वैस लखे छत्री कहं देवा ॥८३८॥
सुद्र सवन की सेव कमावैं । जहं कोऊ कहे तहीं वहि जावैं ॥
जे सक हुती वेद की ससना ॥ निकसा तैस राम की रसना ॥८३९॥
रावणादि रण हाकं संघारे ॥ भान्त भान्त सेवक गण तारे ॥
लंका दई टंक जनु दीनो ॥ इह विधि राज जगत मो कीनो ॥८४०॥

दोहरा

बहु वर्षन लौं राम जी । राजं करा अरि टाल ॥
ब्रह्म रंध्र कंठ फोर कै भयो कौशिल्या काल ॥८४१॥

चौपई

जैस मृतक कै हुते प्रकारा ॥ तैसेइ करे वेद अनुसारा ॥
राम सपूत जाहि घर माहीं ॥ ता कहुं तोट कोऊ कहं नाहीं ॥८४२॥
वहु विधि गति कीनी प्रभु माता ॥ तब लो भई केकई शान्ता ॥
ताके मरत सुमित्रा मरी ॥ देखहु काल क्रिया कस करी ॥८४३॥

एक दिवस जानकि त्रिय सिखा ॥ भीत भये रावण कहं लिखा ॥
जब रघुवर तिह आन निहारा ॥ कछुक कोप इमि वचन उचारा ॥८४४॥

राम उवाच मन मे

याको कछु रावण सों हेता ॥ तातें चित्त चित्र के देखा ॥
वचन सुनत सीता भई रोषा ॥ प्रभु मोहिं अजहुं लगावत दोषा ॥८४५॥

दोहरा

जउ मेरे मन वच क्रमन हृदय वसत रघुराय ॥
पृथवि पैन्ड मुहिं दीजिये, लीजै मोहि मिलाय ॥८४६॥

चौपई

सुनत वचन धरनी फट गई । लोप सिया तिह भीतर भई ॥
चकृत रहे निरखि रघुराई । राज करन की आस चुकाई ॥८४७॥

दोहा

इह जग धुअंरो धउलहरि, किह के आयो काम ।
रघुवर विन सिय ना जियै, सिय विन जियै न राम ॥८४८॥

चौपई

द्वारे कह्यो बैठ लछमना ॥ पेठ न कोऊ पावे जना ॥
अन्तहि पुरहि आप पग धारा ॥ देह छोर मृत लोक सिधारा ॥८३९॥

दोहा

इन्दुमती हित अज नृपति जिमि गृह तज लिय जोग ।
तिमि रघुवर तन को तजा श्री जानकी वियोग ॥८५०॥

चौपई

रौर परी सगरे पुर माहीं । काहू रही कछू सुधि नाहीं ॥
नर नारी डोलत दुखियारे ॥ जानकु गिरे जूझि जुझियारे ॥८५१॥
सगर नगर महि परि गई रौरा ॥ व्याकुल गिरे हस्त अरु घोरा ॥
नर नारी मन रहत उदासा ॥ कहा राम कर गये तमासा ॥८५२॥
भरतो जोग साधना साजी ॥ जोग अगन तन ते उपराजी ॥
ब्रह्म रन्ध्र झट दै करि फोरा ॥ प्रभु सौं चलत अंग नहि मोरा ॥८५३॥
सकल जोग कै किये विधाना ॥ लछमन तजै तैसही प्राना ॥
ब्रह्म रन्ध्र लवअरि फुन फूटा ॥ प्रभु चरणन तर प्राण निखूटा ॥८५४॥
लव कुश दोउ तहां चल गये ॥ रघुवर सिअहि जरावत भये ॥
अरु पितु भ्रात तिहूं कहं दहा ॥ राज छत्र लव के सिर रहा ॥८५५॥
तिंहुअन की इस्त्री तहं आईं ॥ संगि सती व्है सुरग सिधाईं ॥
लव सिर धरा राज का साजा ॥ तिहुं अन तिहुं कुटं कीयन राजा ॥८५६॥

उत्तर देश आप कुश लीआ। भरतपुत्र कहं पूरब दीआ॥
दच्छिन दीअ लखन के बाला॥ पच्छम शत्रुघून सुत बैठाला॥८५७॥

दोहरा

राम कथा जुग जुग अटल सब कोइ भाखत नेत।
सुरग वास रघुवर करा सगरी पुरी समेत॥८५७॥

चौपई

जो इह कथा सुनै अरु गावै। दुख पाप तिह निकट न आवै॥
विष्णु भक्ति कीए फल होई॥ आधि व्याधि छ्वै सकै न कोई॥८५९॥
संमत सत्रह सहस पचावन॥ हाड़ वदी प्रथमा सुख दावन॥
तव प्रसाद करि ग्रन्थ सुधारा॥ भूल परी लहु लेहु सुधारा॥८६०॥

दोहा

नेत्र तुंग के चरण तर शतद्रव तीर तरंग।
श्री भगवत पूरन कियो रघुवर कथा प्रसंग॥८६१॥
साध असाध जानों नही वाद सुवाद विवाद।
ग्रन्थ सकल पूरन कियो भगवत कृपा प्रसाद॥८६२॥

सवैया

पांय गहे जवते तुमरे तवते कोउ आंख तरे नहिं आन्यो।
राम रहीम पुरान कुरान अनेक कहैं मत एक न मान्यो॥
सिमृति शास्तर वेद सबै बहु भेद कहैं हम एक न जान्या।
श्री असपान कृपा तुमरी करि मै न कह्यो सब तोहि बखान्यो॥ ८६३॥

दोहा

सकल द्वार कौ छाड़ि के गह्यो तुम्हारी द्वार।
बांह गहे की लाज अस गोविन्द दास तुम्हार॥ ८६४॥

इति श्री रामायण समाप्तमस्तु।

एक ओंकार वाह गुरुजी की फतह ॥

अथ कृष्ण अवतार इकसमों अवतार कथनं ॥

चौपई

अब बरनौं कृष्ण अवतारू ॥ जैस भान्ति बहु धर्‍यो मुरारू ॥
परम पाप ते भूमि डरानी ॥ डगमगात विधि तीर सिधानी ॥ १ ॥
ब्रह्मा गयो क्षीर निधि जहाँ ॥ काल पुरूख स्थित ते तहां ॥
कह्यो विसन के निकट बुलाई ॥ कृष्ण अवतार धरो तुम जाई ॥ २ ॥

दोहरा

काल पुरूख के वचन ते सन्तन हेत सहाई ॥
मथुरा मण्डल के विरवै जन्म धर्‍यो हरिराई ॥ ३ ॥
जै जै कृष्ण चरित्र दिखाये ॥ दसम वीच सब भाख सुनाये ॥
ग्यारह सहस बनाये छन्दा ॥ कहै दसमपुर बैठ अनन्दा ॥ ४ ॥

अथ देवी जी स्तुति कथनं

सवैया

होई कृपा तुमरी हमपै तू सबै सगनं गुन ही धरिहौं ॥
जीय धार विचार तबै वर बुद्धि महां अगनं गुन को हरिहौं ॥
विनु चण्ड कृपा तुमरी कबहूं मुख ते नहीं अच्छर हुंकरिहौं ॥
तुमरो कर नाम किधौं तूलहा जिम वाक समुन्द्र विखै तरिहौ ॥ ५ ॥

दोहरा

रे मन भज तू सारदा अनगण गुण है जाहिं ॥
रचौ ग्रन्थ इह भागवत जौ वह कृपा करांहि ॥ ॥ ६ ॥

कवित्त

संकट हरण सब सिद्धि की करन चन्ड तारन तरन सरन लोचन विसाल है ॥
आदि जाके आहम हैं अन्त को न पारावार सरन उवारन करण प्रतिपाल हैं ॥
असुर संहारन अनेक दुख जारन सो पतित उधारन छड़ाये जमजाल हैं ॥
देवी वर लायक सुबुद्धिहूं की दायक सुदेह वर पाइक बनावैं ग्रन्थ हाल हैं ॥७॥

सवैया

अद्र सुताहूं की जोत मया महिश्वासुर की भरता फुनि जोऊ ॥
इन्द्र को राजहि की दिवइया करता वध सुंभ निसुंभहि दोऊ ॥

जो जपके इह सेव करै वर को सुलहै मन इच्छा सोऊ ॥
लोक विखे उह की समतुल्ल गरीबनिवाज़ न दोसर कोऊ ॥ ८ ॥

.॥ इति श्री देवी जू की अस्तुति समापत ॥

अब पृथ्वी ब्रह्मा पहि पुकारत भई ॥

सवैया

दईतन के भर ते डर तेजु भई पृथ्वी वहु भारहि भारी ॥
गाय को रूप तवै धर के ब्रह्मा ऋषि पै चल जाइ पुकारी ॥
ब्रह्म कह्यो तुमहूं हमहूं मिल जाहिं तहां जिह हैं व्रतधारी ॥
जाइ करै विनती तिह की रघुनाथ सुनो इह बात हमारी ॥ ९ ॥

सवैया

ब्रह्म को अग्ग सबै धरके सु तहां को चलै तनके तनियां ॥
तव जाइ पुकार तिह सामुहि रोवत ता मुनि ज्यों हनिया ॥
ता छवि की अति ही उपमा कवि ने मन भीतर योगनिया ॥
जिमि लूटै ते अग्रज चौधरी के कुटवार पै कूकत है वनिआ ॥ १० ॥

लै ब्रह्मासुर सैन समै तह दौर गये जहाँ सागर भारी ॥
गाइ प्रणाम करो तिनको अपने लखि वारिन वारी ॥
पाइ परै चतुरानन ताहिकै देख विवान तहाँ व्रतधारी ॥
ब्रह्म कह्यो ब्रह्मा कहु जाहु अवतार लै जर दै तन भारी ॥ ११ ॥

स्रवनन मे सुनि ब्रह्मा की बात तवै मन देवन के हरखाने ॥
कह कह प्रणाम चले ग्रह आपन लोक सबै अपने कर माने ॥
ता छवि को जस उच्च महाकवि ने अपने मन में पहिचाने ॥
गोधन भान्ति गयो सब लोक मनो सुर जाइ बहोर के आने ॥१२॥

ब्रह्म वाच—दोहरा

फिर हरि इह आगिआ दई, देवन सकल बुलाइ ॥
जाइ रूप तुमहू धरौ हौहुँ धर्‍यो आइ ॥ १३ ॥
बात सुनी जब देवतन कोटि प्रणाम जो कीन ॥
आप समेत सु धामीए लीने रूप नवीन ॥ १४ ॥
रूप धरे सब सुरन यों भूमि माहि यह माइ ॥
अब लीला देवकी की मुख ते कहौं सुनाइ ॥ १५ ॥

॥ इति श्री बिशन अवतार वरणनं ॥

अब देवकी को जनम कथनं।

दोहरा

उग्रसेन की कन्यका नाम देवकी तास ॥
सोमवार दिन जठर ते कीनों ताहिं प्रकाश ॥ १६ ॥

॥ इति देवकी के जन्म वरणनं प्रथम वाच समापतमस्तु ॥

अब देवकी को वर ढूंढवो कथनं

दोहरा

जबै भई के वहि कंजिका सुन्दर वर को जोग ॥
राज कहीं पर के नमित ढूंढहूं अपना लोग ॥ १७ ॥
दूत पठ्यो तिन जाइके निरख्यो है वसुदेव ॥
मदन वदन मुख को सदन लखै तत को भेव ॥ १८ ॥

कवित्त

दीनो है तिलक जाइ भाल वसुदेव जूके,
डार्‌यो नारियर गोद महि दे असीस कौं।
दीनी है बड़ाई पै मिठाईहूं ते मीठी सब,
जन मन भाई और ईसन के ईस कौं॥
मन जो पै आई सो तो कहि कै सुनाई ताकी,
सोभा सव भाई मन मद्ध धरनीस को।
सारे जग गाई जिन शोभा जाकी गाई सो तो,
एक लोक कहा लोक भेदै वीस तीस को ॥१९॥

दोहरा

कंस वासदेवै तवै जोर्‌यो व्याह समाज ॥
प्रसन्न भये सब धरनि मै बाजन लागै बाज ॥ २० ॥

अथ देवकी को व्याह कथनं

सवैया

आसनि द्विजनि को धरकै तर ताको नवाइलै जाइ बैठायो ॥
कुंकुम को पिस के कर प्रोहित वेदन धुनि सो तिहुँ लायो ॥
डारत फूल पंचामृत अक्षत मंगलचार भयो मन भायो ॥
भाट कलांवत और गुणी सब लै वखशीश महाजसु गायौ ॥ २१ ॥

दोहरा

रीत बरातन दूल्हा की बासदेव सब कीन ॥
तबै काज चलबै नमित मथुरा मे मनु दीन ॥
वासुदेव को आगमन उग्रसेन सुन लीन ॥
चम्मु सबै चतुरंगिनी भजे आगमने दीन ॥ २३ ॥

सवैया

आपसु मे मिलवे हित को दल साज चलै घुजनीपति ऐसे ।
लाल करे पट पैवर के सर रंग भरे प्रतनापति कैसे ॥
रंचक ता छवि ढूंढ लई कवि ने मन के पुन भीतर ऐसे ॥
देखन कौतक व्यायहि को निकसे इह कुंकुम आनन्द जैसे ॥ २४ ॥

दोहरा

कंस अवर वसुदेवजू आपस मै मिल अंग ।
तबै वहुइ देवन लगै गाली रंगा रंग ॥ २५ ॥

सोरठा

दुन्दभि तबै बजाइ आये जो मथुरा निकट ॥
ता छवि को निरषाइ हरख भयो हरिखाइ कै ॥ २६ ॥

सवैया

आवत को सुनकै वसुदेव रूप सजै अपने तन नारी ॥
गावत गीत बजावत ताल दिवावति आवत नागर मारी ॥
कोठन पै निरखै चढ़ तासन छवि की उपमा जीय धारी ॥
बैठ विवान कुटुम्ब समेत सुदेखत देवन की महतारी ॥ २७ ॥

कवित्त

वासुदेव आयो राजे मण्डल बनायो मन,
महा सुख पायो ताको आनन निरख कै ॥
सुगन्ध लगायो राग गानन गायो तिसे,
बहुत दिवायो वर ल्यायो जो परख के ॥
छाती हाथ लायो सीस निआयो उग्रसेन,
तबै आदर पठायो पूज मन मे हरख कै ॥
भयो जन मगनन भूमि पर वादर सो,
राजा उग्रसेन गयो कन्चन बरख कै ॥२८॥

दोहरा

उग्रसेन तव कंस को लयो हजूर बुलाइ ॥
कह्यो साथ तुम जाइके देहु भंडार खुलाइ ॥२९॥
और सामग्री अन्न की लैजा ताके पास ॥
कर प्रणाम ताको तबै इउं कर्‍यो अरदास ॥३०॥
कालराज को व्याह है कंसहि कही सुनाय ॥
वासदेव प्रोहत कही भली जु तुम्हे सुहाय ॥३१॥
कंस कह्यो कर जोर तब सबै बात को भेव ॥
साथ साथ पन्डित कह्यो असमानी वसुदेव ॥३२॥

सवैया

रात व्यतीत भई अरु प्रात भई फिर रात तबै चढ़ आये ॥
छाड़ दये हथि फूल हजार भुजा पयोधर ऐस फिराये ॥
और हवाई चलि नभ को उपमा तिह की कवि स्याम सुनाये ॥
देखय कौतुक देव सबै तिहते मनो कागद कोट पठाये ॥३३॥
लै वसुदेव को अग्र प्रोहत कंसह के चल धाम गये हैं ॥
आगे तो नार भइ इक लोहिस गागर पन्डित डार दये हैं ॥
डार देह लडुआ गह भाटंन ताको सोऊ वैतो भच्छ गये हैं ॥
जादव वंश दुहु दिसि ते सुनके सु अनेक कहास भये हैं ॥३४॥

कवित्त

गावत बजावत सु गारन दिवावत,
सुआवत सुहावत है मन्द मन्द गावती ।
केहरि सी कटी अउ कुरंगन से द्रग जाके
गज कैसी चाल मन भावत सुआवती ॥
मोतिन के चौक करे लालन के खारे धरे,
बैठे तबै दोऊ दुल्ह दुल्ही सुहावती ।
वेदन की धुनि कीनी दच्छिनादि जन दीनी,
लीनी सात भावरे जो भावते सो भावती ॥३५॥

दोहरा

रात भये वसुदेव जू कीनो तहां विलासि ॥
प्रात भये उठके तबै गयो ससुर के पास ॥ ३६ ॥

सवैया

साज समेत दिये गज अच्युत सो और दिये त्रिगुणी रथ नारे ॥
लच्छ भट्ट दस लच्छ तुरन्गन ऊंट अनेक भरे जर भारे ॥

छत्तीस कोट दिये दल पैदल संग कधौ तिनके रखवारे ॥
कंस तवै तिह राखन को मनो आप भये रथ के हकवारे ॥ ३७ ॥

दोहरा

कंस लिवाये जात तिन सकल प्रवल दल साज ॥
आगे ते स्रवणन सुनि विधि की असुभ अवाज ॥३८॥

नभि वानी वाच कंस सो ॥

कवित्त

दुख के हरन विधि सिद्ध के करन रूप,
मंगल धरन ऐसो कह्यो है उचारकै ॥
लिये कहां जात तेरो काल हैरै मूढ़ मति,
आठवें गर्भ याको तोको डारे मारकै ॥
अचरज मान लीनो मन में विचार इह,
काढ़ कै कृपान डारो इनही संघार कै ॥
जाहिगे छपाई कैसु जानी केस मन माहि,
इहै बात भली डारो जरही उखारकै ॥ ३९ ॥

दोहरा

कंस दोऊ के बध नमित लीनो खड़ग निकार ॥
वासदेव अरु देवकी डरै दोऊ नर नार ॥ ४० ॥

दोहरा

वासुदेव डर मानकै तासों कही सुनाइ ॥
जो याही ते जन्म है मारहु ताकौं राइ ॥ ४१ ॥

कंस वाच मन मै

दोहरा

पुत्र हेत के भाव सों मति इह जाइ छपाइ ॥
वन्दी खाने देउ इन इह विचारी राइ ॥ ४२ ॥

सवैया

डार जंजीर लिये तिन पाइन पै फिरकै मथुरा मे आयो ॥
सो सुनके सब लोग कथा अति नाम वुरो जग मे विखरायो ॥
आन इसै ग्रह आपने मे रखवारि को सेवक लोग बिठायो ॥
आन बढ़ेन की छांड़ दई कुल भीतर आपनो राह चलायो ॥४३॥

दोहरा

कितक दिवस बीतै जबै कंस राज उत्पात ॥
तबै कथा अउरै चली कर्म रेख की बात ॥ ४४ ॥

प्रथम पुत्र देवकी के जन्म कथनं

दोहरा

पुत्र भयो देवकी कै कीरत मत तिह नाम ॥
वासुदेव लै ताहि को गयो कंस के धाम ॥ ४५ ॥

सवैया

लैकर तात को तात चलयो जवही नृप के दर ऊपर आयो ॥
जाइ कह्यो दरवावन सों तिन वोलके भीतर जाइ जनायो ॥
कंस करी करना सीस देख कह्यो हमहू तुमको वखसायो ॥
फेर चलयो ग्रह को वसुदेव तऊ मन मे कुछ न सुख पायो ॥ ४६ ॥

वासदेव वाच मन मे

दोहरा

वासदेव मन अपने कीनो इह विचार।
कंस मूढ़ दुरमति बढ़ो याको डरिहै मारि ॥ ४७ ॥

नारद शिव वाच कंस प्रति

दोहरा

तव मुनि आयो कंस ग्रह कही बात सुन राइ।
अस्टलीक करकै गनी दीनो भेद बताइ ॥ ४८ ॥

अथ भ्रितन सो कंस वाच

सवैया

बात सुनी जब नारद की इह तो नृप के मन माहि भई है ॥
मारहु जाइ इसे अवही करि भ्रतन नैन की सैन दई हैं ॥
दउर गये तिह आयस मानस कै बात इहै चल लोग गई है ॥
पाथर पै हनि कै घनि जिउ पुन जीवहि ते कर भिन्न लई है ॥ ४९ ॥

प्रिथम पुत्र बधहि

सवैया

अउर भयो सुत जो तिहको ग्रह लऊ नृप कंस महामति हीनो ॥
सेवक भेज दये तिन ल्याइकै पाथर पै हनिकै पुन दीनो ॥

सोर परयो सब ही पुर मे कवि ने तिह को जम इह लख लीनो ॥
इन्द्रमूह सुनकै रन मै मिलकै सुर मन्डल रोदन कीनो ॥ ५० ॥
अउर भयो सुत जो तिहके ग्रह नाम धर्यो तिह को तिनहुंजै ।
मार दयो सुनकै नृप कंस सु पाथर पै हनि डार्यो खुन्जै ॥
सीस के बार उखारत देवकी रोदन सोरन तें घरि गुन्जै ॥
जिउ रुत अंत बसन्त समै नभि को जिम जात पुकारत कुन्जै ॥ ५१ ॥

कवित्त

चउथो पुत्र भयो सो भी कंस मार दियो,
तिह सोक बड़वा की लाटें मन मे जगत है ॥
परी हैगी दासी महा मोह की फान्सी बीच
गई मिट सोभा पै उपासी ही पगत है ॥
कैधो तुम नाथ व्है सनाथ हमहूं पै हूजै
पत की न गति और तन की न गत है ।
भई उपहासी देह पूतन विनासी अविनासी
तेरी हासी हमै गासी सी लगत है ॥ ५२ ॥

सवैया

पाचंवो पुत्र भयो सुन कंस सु पाथर सौ हनिभार दयौ है ॥
स्वास गयो नभि के मग मै तन ताको किधौं जमना में गयो है ॥
सो सुनके पुन श्रवनन देवकी सोक सो सासं उसास लयो है ॥
मोह भयो अति ता दिम मै मनो याही ते मोह प्रकास भयो है ॥५३॥

देवकी विनती वाच

कवित्त

पुत्र भयो छठो वंस सो भी मारि डार्यो कंस,
देवकी पुकारी नाथ बात सुन लीजिये ॥
कीजिये अनाथ न सनाथ मेरे दीनानाथ
हमे मार दीजिये कि याकौ मार दीजिये ॥
कंस बड़ो पापी जाको लोक भयो जापी सोई,
कीजिये हमारी दसा जातें सुखी जीजीये
श्रोनन मै सुनि असवारी गजवारी करो
लाइये न ढील अब दो में एक कीजिये ॥ ५४ ॥

इति छठवों पुत्र वधह

अथ वलभद्र जन्म

सवैया

जो बलभद्र भयो गरभान्तर तौ दुहं बैठके मंत्र कऱ्यो है ॥
ताहि के मंत्र के जोर सों काढ के रोहणी के उर बीच धऱ्यो है ॥
कंस कदाच हनै सिस को तिह ते मन मे वसदेव डऱ्यो है ॥
सेख मनो जग देखन को जग भीतर रूप नवीन कियो है ॥ ५५ ॥

दोहरा

क्रिएन क्रिएन करि साथ दो विसन किसन पत जास ॥
कृसन विस्व तरवै नमित तन मे कऱ्यो प्रकास ॥ ५६ ॥

अथ क्रिसन जन्म

सवैया

संख गदा कर अउर त्रिसूल धरे तन कवच बड़े बड़भागी ॥
नन्द गहै कर सारंग सारंग पीत धरे पट पै अनुरागी ॥
सोई हुती जनमयो इह कै ग्रह कै उर पै मन मे उठ जागी ॥
देवकी पुत्रन जान्यो लख्यो हरि कै कै प्रणाम सु पाइन लागी ॥ ५७ ॥

दोहरा

लख्यो देवकी हरि मनै लख्यो न कर कर तात ॥
सखयो जान कर मोहि की तानी तान कनात ॥ ५८ ॥
कृस्न जन्म जब ही भयो देवन भयो हुलास ।
सत्रु सवै अब नास होहि हमको होहि विलास ॥ ५९ ॥
आनन्द सों सब देवतन सुमन दीन वरखाइ ॥
शोक हरन दुखरन दलन प्रगटे जग मो आइ ॥ ६० ॥

कृष्ण की बाल क्रीडा

सवैया

साल व्यतीत भयो जब ही तब कान्ह भयो बल के पग मे ।
जसु मात प्रसन्न भई मन मे पिख धावत पुत्रहि को मग मे ॥
बात कही इह गोपन सों प्रभा फैल रही सु सबै जग मे ॥
जन सुन्दर ती अति माखन कौ सब धाय धसी हरि के नग मे ॥११८॥
गोपन सो मिलके हरिजी जमुना तट खेल मचावत हैं ॥
जिम बोलत हैं खग बोलत हैं जिम धावत हैं तिम धावत हैं ॥
फिर बैठ बरेतन मध्य मनो हरि सोवह ताल बजावत हैं ॥
कवि स्याम कहैं तिनकी उपमा सुभ गीत भले मुख गावत हैं ॥११९॥

कुञ्जन मे जमुना तट पै मिल गोपन सों हरि खेलत हैं ॥
तरकै तबही सिगरी जमुना हट मद्ध वरेतन पेलत हैं ॥
फिर कूदति हैं जमुना तट ज्यों जल को हृदय संग रेलत हैं ॥
फिर ह्वै हुंडुआ लरकै दुहं ओर ते आपस मे सिर मेलत हैं ॥१२०॥
आए जबै हरि जी ग्रह आपने खाइके भोजन खेलन लागे ॥
मात कहें न रहें घर भीतर बाहर को तबही उठ भागे ॥
स्याम कहे तिनकी उपमा वृज के पति बीथिन मे अनुरागे ॥
खेल मचाइ दयो लुक मीचन गोप सबै तिहकै रस पागे ॥१२१॥
खेलत है जमुना तट पै मन आनन्द कै हरि वारन सों ॥
चल रूख चलावत सोट किंधौ सोऊ धाइकै लिआवे गुआरन सों ॥
कवि स्याम लखि तिनकी उपमा मनो मद्धि अनन्त अपारन सों ॥
बलजात सवैं मुन देखन को करके बहु जोग हजारन सों ॥१२२॥

इति श्री विचित्र नाटक ग्रन्थे कृसन अवतारे गोपन सों

खेलवो वरनन खसटमाध्यायसमाप्तम्

अथ माखन चौर खैबो कथनं

सवैया

खेलन कै मिस पै हरिजी घरि भीतर पैठि के माखन खावै ॥
नैनन सैन तवै करिकै सभ गोपन को तबही सु बुलावै ॥
बाकी बचयो अपने कर लेकर वानर के मुख भीतर पावै ॥
स्याम कहै तिहकी उपमा इहकै विध गोपन कान्ह खिझावैं ॥१२३॥
खाइ गयो हरिजी जब माखन तौं गोपियाँ सब जाइ पुकारी ॥
बात सुनो पत की पत्नी तुम हार गई दधि की सख खारी ॥
कान्ह के डर ते हम चोर कै राखत है चढ़ ऊँच अटारी ॥
ऊखल के धरके मनहा पर खात है लगंर देकर गारी ॥१२४॥
होत नहीं जिहके घर मै दध दैकर गारन सोर करै हैं ॥
जो लरका जनिकै खिझहै जन तो मिल सोटन साक मरै हैं ॥
आए परै जु त्रिया तिह पै सिर ते तिह वार उखाड़ टरैहैं ॥
बात सुनो जसुधा सुत की सु विना उत्पात न कान्ह टरैहैं ॥१२५॥
वात सुनी जब गोपन की जसुधा तबही मन माहि खीझी हैं ॥
आए गयो हरिजी तबही पिख पुत्रहि को मन माहि रीझी हैं ॥
बोल उठै नन्दलाल तवै इह गवार खिझावन मोहि गीझी हैं ॥
मात कहा दधि दोस लगावत मार बिना इह नाहि सीझी हैं ॥१२६॥

मात कह्यो अपने सुत को कहो क्योंकर तोहि खिझावत गोपी ॥
बात सों बात कही सुत यों करि सो गहि भागत है मुहि टोपी ॥
डार के नास विखै अगुंरी सिर मारत हैं मुझको वह थोपी ॥
नाक हसाइ घसाए उन्हें फिर लेत तबै वह देत हैं टोपी ॥१२७॥

जसुधा वाच गोपिन सों ।

सवैया

मात खिझी उन गोपिन सों तुम क्यों सुत मोहि खिझावत हो री ॥
बोलत हो अपने मुख ते हमरे धन है दूध दाम सु गौरी ॥
मूढ अहीरन जानत है बद बोलत हो सुरहो तुम ठौरी ॥
कान्हि साध विना अपराधहि बोलहिगी जु भई कछु बौरी ॥१२८॥

दोहरा

विनती कै जसुधा तबै दोऊ दये मिलाइ ॥
कान्ह विगारे सेर दूध लेहु मनक तुम आइ ॥ १२९ ॥

गोपी वाच जसुधा से

दोहरा

तब गोपी मिलि यो कहीं मोहनि जीवै तोहि ॥
याहि देहि हम खान दूध सम मन करै न कोहि ॥ १३० ॥

॥ इति श्री विचित्र नाटके ग्रन्थे कृष्णावतारे माखन चुरैबो वर्णननं ॥

अथ रास मन्डल

सवैया

कान्ह के पास गई जबहीं तबही सब गोपन लीन सु संगा ॥
चिर गये चीर परै गिरकै तन भूषण टूट गई तिन हाथन बंगा ॥
कान्ह के रूप निहार सबै गुपियाँ कवि स्याम भई इक रंगा ॥
होए गई तन मैं सबही इक रंग मनो सब छोड़ के संगा ॥४५१॥
गोपन भूल गई गृह को सुध कान्ह ही के रस भीतर राची ॥
भौं भरी मधरी बरनी सब ही सु ढरी जनु मैन को साची ॥
छोर दये रस औरन स्वाद भले भगवान ही सो सब साची ॥
सोभत वा तन मैं हरि के मनो कञ्चन मै चुनीयाँ चुन खाची ॥४५२॥
कान्ह को रूप निहार रही वृज मैं जु हुती गुपियाँ अति झाच्छी ॥
राजत जाहि मृगीं पति नैन विराजत सुन्दर है सम माछी ॥

शोभत हैं ब्रज मण्डल मैं जन खेलवे काज नहीं इह काछी ॥
देखन हार किं धौ भगवान देखावत भाव हमैं हिया आछी ॥४५३॥
सोहत है सब गोपिन के कवि श्याम कहै द्रग अंजन आंजे ॥
कंवलन की जनु सुधप्रभागर सुन्दर सान के ऊपर मांजे ॥
बैठ धरी इक मैं चतरानन मैन के तात बने कसि साजे ॥
मोहति है मन जोगयन के फुन जोगिन के गन बीच कलाजे ॥४५४॥

ठाढ़ि है कान्ह सोऊ मही गोपन जाहिको अन्त मुनी बूझे ॥
कोटि करे उपमा वहु परखन नैनन सो तो नैनन सूँझै ॥
ताही के अन्त लखैवे के कारण सूर घनै रण भीतर सूझै ॥
सो ब्रज भूमि विखै भगवान त्रिआगन मैं रस वैन अरूझै ॥ ४५५ ॥
कान्हर के निकट जवही सबही गुपियाँ मिल सुन्दर गईयाँ ॥
सो हरि भध्य ससानन देख सबै फुन कन्दर्प वेख बनईयाँ ॥
लै मुरली अपने कर कान्हकिधौं अति ही हित साथ वजईया ॥
घंटक हेरक जिऊ पिखके मृगनी मुही जात गुहे ठहरईयाँ ॥ ४५६ ॥
मौलश्री और रामकली शुभ सारंग भावन साथ बसावै ॥
जैतश्री अरू सुध मलार विलावल की धून कूक सुनावैं ॥
लै मुरली अपने कर कान्ह किधौं अति ही हित साथ बजावैं ॥
पौन चले न रहे जमुना थिर मोहि रहे धुन जो सुन पावैं ॥ ४५७ ॥
सुनके मुरली धुनि कान्हर की सब गोपन की सब सुध छुटी ॥
सब छाड़ चली अपने गृहकारज कान्ह ही की धुन साथ जुटी ॥
ठगनी सुर व्है कवि श्याम कहै इन अन्तर की सब मत्त लुटी ॥
मृगनी सम है चलत्यो इनके मग लाल की वेल तराक टुटी ॥ ४५८ ॥

कान्ह को रूप निहार रही प्रिया स्याम कहै कवि होए इकाठी ॥
जिऊ सुर की धुन को सुनकै मृगनी चल आवत जात न नाठी ॥
मैन सो मत्त हो कूदत कान्ह सु छोरि मनो सब लाज की गाठी ॥
गोपन को मन यों चुर गयो जिम खोरु पाथर पै चरनाठी ॥४५९॥
हरि बात करे हरि सों गुपियां कवि स्याम कहे जिन भाग बड़े ॥
मोह सबै प्रगट्यो इनको पिख के हरि पापन जाल लड़े ॥
कृष्ण तन मध्य वधू वृज की मन है कर आतुर अन्ति गड़ै ॥
सोऊ सत्य किधौं मन जाहि गड़े सु अन्धनि जिनो मन है अगड़ै ॥४६०॥
नैन चुराए महा सुख पाए .कछु मुस्काए भयो हरि ठाढ़ो ॥
मोहि रही व्रजबाम सबै अतिही तिह के मन आनन्द बाढो ॥

जा भगवान किधौ खियजीत कै मार डाऱ्यो रिपु रावन गाढ़ो ॥
ता भगवान किधौं मुख ते मुक्ता मुक्ता सम अमृत काढ़ो ॥४६१॥

आज भयो झड़ है जमुना तट खेलन की अवघात बनी ॥
तजकै डरू खेल करो हमसो कवि स्याम कह्यो हसि कान्ह अणी ॥
जोऊ सुन्दर है तुम मै सोऊ खेलहु खेलहु नाही जनी रुकणी ॥
इह भान्ति कहे हसिके रस बोल किधौं हरिता जोऊ मान फनी ॥४६२॥

हसि कै सुकही बतियां तिन सो कवि स्याम कहे हरि जो रस रातो ॥
नैन मृगी पति से तिहके हम चाल चले जिम गईजर मातो ॥
देखत मूरत कान्ह की गोपन भूल गई गृह की सुध सातो ॥
चीर गये उड़के तन के अरू टूट गयो नैन ते लाज को नातो ॥४६३॥

कूप के मधिकैटभ तान मरे मुर दैत मऱ्यो अपने जिन हाथा ॥
जाहि बिभीषण राज दयो रिस रावन काट दए जिह माथा ॥
सो तिह की तिहु लोगन मद्य कहे कवि स्याम चले जैसे गाथा ॥
सो वृज भूमि विखै इसके हित खेलत है फुन गोपन साथा ॥४६४॥

हसिकै हरिजू ब्रजमन्डल मै संग गोपन के इक होड़ बदी ॥
सब धाइ परे हमहूं तुमहूं इह भान्ति कह्यो मिल बीच नदी ॥
जब जाए परे जमुना जल मे संग गोपन के भगवान जदी ॥
तब लै चुम्बकी हरिजी त्रिय को सुलयो सुभ चूम किधो सुतदी ॥४६५॥

राधिकामान-वर्णन

दूतीवाच

मैं कहा देखन जाऊ त्रीया तुहि लियावन को जदुराई पठाई ।
ताही ते हौ सव ग्वारनि तै उठिकै तबही तुमरे पहि आई ॥
त अभिमान के बैठ रही नही मानत है कछु सीख पराई ।
वेग चलो तुहि संग कहो तुमरे मग हेरत ठाढ़ कन्हाई ॥७०१॥

राधेवाच

हरि पास न मै चल्हो री सखी तुकहा भयो जो तुहि बात बनाई ।
स्याम न मोरे तू पास पठी इह बातन ते कपटी लखी पाई ॥
भी कपटी तू कहा भयो ग्वारनि तू न लखै कछू पीर पराई ।
यों कहिकै सिर न्याइ रही ऐसो न मान पिख्यो कहूं माई ॥७०२॥

दूतीवाच

फिर ऐसे कह्यो चलीये री हहावल मै हरिके पहियों कह आई ।
होऊ न आतुर श्री व्रजनाथ हौं ल्यावत हो ऊह जा मनाई ॥
इत तू करि मान रही सजनी हरि पै तु चलो तजिकै दुचिताई।
तो विन मो पै न जात गयो कह्यो जानत है कछू बात पताई॥७०३॥

राधेवाच सवैया

उठ आई हुँती तु कहा भयो ग्वारन आई न पूछ कह्यो कछु सोरी।
जाइ कह्यो फिरि कै हरि पै इह ते कछु लाज न लागत तोरी ॥
मो वतीयौ जदुराई जु पै कवि स्याम कहै कहीयो सु अहोरी ।
चन्द्रभगा संग प्रीत करो तुम सो नहि प्रीत कह्यो प्रभु मोरी ॥७०४॥
सुनकै इह राधका की बतीयां तब सो उठ ग्वारन पाइन लागी ।
प्रीत कह्यो हरिकी तुमसो हरि चन्द्रभगा हू सो प्रीत त्यागी ॥
उनकी कवि स्याम सुबुद्ध कहै तुहि देखन के रस मैं अनुरागी ।
ताही ते वाल वलाइ लऊ तेरी मै वेग चलो हरि पै बढभागी ॥७०५॥
वृजनाथ बुलावत है चलीहै कुछु जानत रस बात इयानी ।
तोहिको स्याम निहारत हैं तुमरे विन री नही पीवत पानी ॥
तू एह भान्त कहै मुख ते नही जाऊगी हौं हरि पै इह बानी ।
ताही ते जानत हों सजनी अव जोवन पाई भई हैं दिवानी ॥७०६॥
मान कर्यौ मन विच त्रियां तज वैठ रही हित स्याम जू केरो ।
बैठ रही बक ध्यान करै सब जानत है प्रीत को भावन तेरो ॥
तो संग तो मै कह्यो सजनी कहियो को जो मन उमगयो मेरो ।
आवत है हम मो मन में दिन चार को पाहुन जोवन तेरो ॥७०७॥
ताके न पास चलै उठके कवि स्याम जोऊ सब लोगन भोगी ॥
ताते रही हठ वैठ त्रिया उनको कछू जैगौ न आपन खोगी ॥
जोवन को जुगु मान करे तिह जोवन की सुदसा इह होगी ॥
तो तजिके सोऊ यों रमि है जिम कन्ध पै डार बघम्बर जोगी ॥७०८॥
नैन कुरंगन से तुमरे सम केहरी की कटि री शुन त्वैहै ॥
आनन सुन्दर है ससि हो जिह की घुन कन्ज बराबर क्वैहै ॥
बैठ रही हठ बांध घनो तिह ते कछु आप नहीं सुन ख्वैहै ॥
ए तन सो तुहि बैर करयो हरि स्यों हठ स तुमरो कछु हैहै ॥७०९॥
सुनके एक ग्वारन की बतीयाँ वृखभान सुता अति रौस भरी ॥
नैने नचाइकै चढ़ाइकै भौंहन पै मन० मै संग क्रोध जरी ॥

जोऊ आई मनावन ग्वारन थीं तिह सो बतीयाँ हम पै उचरी ॥
सखी काहे को हौं हरि पास चलो हरि की कछु मो परवाह परी ॥७१०॥
यों इह उत्तर देत भई तब या विधि सो उन बात करी है ॥
राधे बुलाइ लियो रोस करै नहि क्यों कही कोप के संग भरी है ॥
तू इत मान रही करिकै उत हेरत पै रिपु चन्द हरी है ॥
तू न करै परवाह हरी हरि को तुमरी परवाह परी है ॥७११॥
यों कहि बात कही फिरि उठ बेगि चलो चलिहो हूं संजोगी ॥
ताही के नैन लगे इह ठौर जोऊ सब लोगन के रस भोगी ॥
ताके न पास चले सजनी उनको कछू जैहैं न आपन खोगी ॥
त्वैं मुखरी बल देखन को जदुराइ के नैन भये दोऊ वियोगी ॥७१२॥
देखत है नहीं और त्रिया तुमरो ई सुनो बलि पन्थि निहारै ॥
तेरे ही ध्यान विखै अटकै तुमरी ही किधौ बलि बात उचारै ॥
झूम गिरै कबहूँ धरनी करि त्वैं मधि आपन आप संभारै ॥
तौन समै सखी तोहि चितारिकै स्याम जू मैन को मान निवारै ॥७१३॥
ताते न मान करो सजनी उटि बेगि चलो कछु संक न आनो ॥
स्याम की बात सुनो हमते तुमरे चित मै अपनी चित मानो ॥
तेरे ही ध्यान करै हरि जू करिके मन सोक असोक बहानो ॥
मूढ़ रही अबला करि मान कछू हरिको नहीं हेत पछानो ॥७१४॥
ग्वारनि की सुनि कै बतियाँ तब राधका उत्तर देत भई ॥
किह हेत कह्यो तजिके हरि पास मनावन मोहू के काज घई ॥
नहीं हौ चल्यों हरि पास कह्यो तुमरी धौ कहा गति ह्वै है दई ॥
सखी और न नाम सु मूढ़ धरै न लखै इह हौं-हूं कि मूढ मही ॥७१५॥
त्याग्र कह्यो अब मान सखी हमहु तुमहु वन बीच पधारै ।
नाहक ही तू रिसि मन मे नही आन जीया मन बात हमारे ॥
ताते असोक के साथ सुनो वल तीर नदी सब सो कहि डारे ॥
या ते न और भली कछु है मिलि के हम मैन को मान निवारे ॥७३६॥
कान्हर आतुर है अतिही बृखभान सुता ढिग बात उचारी ॥
ताहि मनी हरि बात सोऊ तिन भान की बात विदाकर डारी ॥
हाथहि सो वहीयां बहि स्याम सु ऐसे कह्यो अब खेलहि यारी ॥
कान्ह कह्यो तब राधका सों हमरे संग केल करो मोरी प्यारी ॥

राधे वाच काण्ह सो ।

सवैया

यो सुनकै बृखभान सुद्दा नन्दलाल लला को उत्तर दीनो ॥

ताही सो बात कहे हरिजू जिहके सगं नेहु घनो तुम कीनो ॥
काहे को मोरी गही बहियां सु दुखावत काहे कौ हो मुहि जीनो ॥
यो कहि बात भरी अखियां करिकै दुख स्वास उसास सु लीनो ॥
केल करो उन ग्वारनि सो जिन संग रचायो मन है सु तुमारो ॥
स्वासन लै अखियां भर के बृखभान सुता इह भातं उचारो ॥
संग चलो नही हो तुमसे कर आयुध लै कहियो क्यो नही मारो ॥
साच कहू तुमसो बतियां तजिकै हमको जदुवीर पधारो ॥७३९॥

कान्ह जु बाच राधे सों ।

संग चलो हमरे उठके सखी मान कछू मन मै नही आनो ॥
आइ हो हौ तजि संकि निसंकि कछू तिहते रस रीत पछानो ॥
मित्र के बेचे किधौ बिकीये इन श्रोन सुनो सखी प्रीत कहानो ॥
ताते हौं तेरी करो बिनती कहिबो मुहि मान सखी अब मानो ॥७४०॥

राधे बाच :

यों सुनकै हरि ही बतियां हरि को तिन यो विधि उत्तर दीनो ॥
प्रीत रही हमसो तुमरी कहा यो कहिके दृग बार भरीनो ॥
प्रीत संग चन्द्रभगा अति कोप बढ़्यो तिहते मुहि जीनो ॥
यों कहिके भर स्वासं लियो कवि स्याम कहै अत ही कपटीनो ॥७४१॥
क्रोध भरी फिरि बोल उठी बृखभान सुता मुख सुन्दर सिऊ ॥
तुमसो हमसो रस कोऊ न रह्यो कवि स्याम कहै बिन के पहिऊ ॥
हरि यो कही मो हित है तुहि सो उन कोप कह्यो हमसो कहु किऊ ॥
तुमरे संग केल करैं बन में सुनीये बतीयाँ हमरी बल हऊ ॥७४२॥

कान्ह जु बाच राधे सो :

मोह्यो हौं तेरी सखी चलिबो खि मोह्यो सु हौं दृग पेखत तरै ॥
मोहि रह्यो अलकै तुमरी पिखि जात गयो तजि या नहीं डरै ॥
मोहि रह्यो तुही अंग निहारन प्रीत बढ़ी तिहते मन मेरे ॥
मोहि रह्यो मुख तेरो निहारत जिऊ गण चन्द चकोरन हेरे ॥७४३॥
तातो न मान करो सजनी मुहि संग चलो उठके अब ही ॥
हमरी तुम सो सखी प्रीत घनी कुपि बात कहो तजिकै सबही ॥
तिहते इह छुद्रन बात की रीत कह्यो न अरी तुमको फल ही ॥
तिहते सुन मो बिनती चलीहै इह काज कियै न कछु लाभ ही ॥ ७४४ ॥
अत ही जब कान्ह करी बिनती तब ही मन रंक त्रीया सोऊ मानी ॥
दूर करी मन की गनती जबही हरि की० तिन प्रीत पछानी ॥

तौ हम उत्तर देत भई जोऊ सुन्दरता महि त्रीयन रानी ॥
त्याग दई दुचितई मन की हरि सो रस बातन सो निज कानी ॥७४५॥

अथ हरिको अकरुर मथुरा को लै जइबो

सुनि कै बतियाँ तिहकी हरिजू पित धाम गये इह बात सुनाई ॥
मोहि अबै अकरूर के हाथ बुलाइ पठयो मथुराहूके राई ॥
पेखत ही तिह मूर्त नन्द कही तुमरे तन है कुसराई ॥
काहे की है कुसरात कह्यो इह भान्ति बुलयो मुसलीधर भाई ॥ ७९१ ॥

अथ मथुरा मै हरिको आगम

सुनिकै बतीयाँ संग ग्वारनि लै वृजराज चलयो मथुरा को तबै ॥
बकरे अति लै पुन छीर घनो धर कै मुरली धर स्याम अगै ॥
तिह देखत ही सुख होत घने तनको जिह तन को जिह देखत पाप भगैं॥
मानो ग्वारनि को बन सुन्दर मै सम कैहरि की जदुराई लगै ॥ ७९२ ॥

दोहरा

मथुरा हरिकै जान की सुनी जसोधा बात ॥
तबै लगी रोदन करन भूल गई सुध सात ॥७९३॥

सवैया

रोवन लाग जबै जसुधा अपुने मुख ते इह भातं सो भाखे ॥
को है हितु हमरो ब्रज मै चलते हरिको वृज मै फिरि राखे ॥
ऐसो को ढीठ करै जीय मो नृप सामुहि जा वतीया इह भाखे ॥
सोक मरी मुरझाइ गिरि धरनी पर सो बतायो नहि भाखै ॥ ७९४ ॥
बारह मास रखियो उदरे महि तेरहि मास भये जोऊ जइया ॥
पाल बढयो जु करयो तबही हरि को सुन मै मुसलीधर भइया ॥
ताही कै काज किधौ नृपवा वसुदेव को कै सुत बोल पठहिया ॥
पै हमरे घर मागन के घर भीतर मै नही स्याम रहइया ॥ ७९५ ॥

दोहरा

रथ ऊपर महाराज गे रथ चढकै तजि गेह ।
गोपिन कथा बरलाप की भई सन्त सुन लेह ॥ ७९६ ॥

सवैया

जबही चलिबे की सुनी वतियां तव ग्वारनि नैन ते नीर ढर्‍यो ।
गिनती तिनके मन बीच भई मन को सब आनन्द दूर कर्‍यो ।
जितनो तिन मै इस जीवन थो दुख की सोई ईंधन मे महि जर्‍यो ।
तिनतै नही बोल्यो जात कछू मन कान्ह की प्रीत के संग जर्‍यो ॥७९७॥

जा संग गावत मिलि गीत करै मिलिकै जिह संग अखारे ॥
जा हित लोगन हास सह्यो तिह रंग फिरै नही संक विचारे ॥
जा अमरो·अति ही हितकै लरि आप वली तिन दैत पछारे ॥
सो तजि कै वृज मन्डल को सजनी मथुराहू की ओर पधारे ॥७९८॥
जाही के संग सुनो सजनी हमरो जमुना तट नेहु भयो है ॥
ताही के बीच रह्यो गहु कै तिहते नहीं छूटन नैकु गयो है ॥
ता चलवे की सुनी बतियाँ अति ही मन भीतर सोक छयो है ॥
सो सुनीर सजनी हमको तजिकै वृज को मथुरा को मथुरा को गयो है ।७९९।
अति ही हित सिऊ संग खेल तजा कवि स्याम कहे अति सुन्दर कामन ॥
रास के भीर यों ससकै रुत सावन की चमकै जिम दामन ॥
चन्दमुखी तन कन्चन से द्रग कंज प्रभा जु चले गज गामन ॥
त्याग तिनै मथुरा को चल्यो जदुराज सुनो सजनी अब धामन ॥८००॥
कंज मुखी तन कन्चन सो विरलाप करै हरि सो हित लाई ॥
सोक भयो तिनमे मन बीच असोक गयो तिनहूं ते नसाई ॥
भाखत है यह भांत सुनो सजनी हम त्याग गयो है कन्हाई ॥
आप गये मथुरा पुर मै जदुराइ न जानत पीर पराई ॥८०१॥
अंग विखै सजकै भगवो पट हाथन मै चिपियां हम लैहैं ॥
सीस धरैगी जटा अपने हरि मूर्ति भिच्छ क्यों मांग अघै हैं ।
स्याम चलै जिह ठौर दिखे हमहूं तिह ठौर विखै चलि जैहैं ॥
त्याग कह्यो हम धामन को सबही मिलकै हम जोगन ह्वैहैं ॥८०२॥
बोलत ग्वारनि आपस मे सुनिये सजनी हम काम करैंगी ।
त्याग कह्यो हम धामन कहूं चिपियां गहि सीस जटान धरैंगी ॥
कै विख खाइ मरेगी कह्यो नहिं बूढ मरै नहिं जाये जरैंगी ॥
मान वियोग कहैं सब ग्वारिन कान्ह कै साथ ते पै न टरैंगी ॥८०३॥
जिनहू हमरे संग केल करे बन बीच दये हमको सुख भारे ।
जा हमरे हित हास सह्यै हमरे हित कै जिह दैत पछारे ॥
रास दिखे जिह ग्वारनि के मन के सव सोक विदाकर डारे ।
सो सुनीये हमरे हित को तजिकै सु अबै मथुरा को पधारै ॥८०४॥
मुद्रका का पहरे हम कानन अंग विखै भगवे पट केहैं ।
हाथन पै चिपिया धरिकै अपने तन बीच विभूत लगैहैं ॥
पै कसिकै सिगीआ कटि मै हरि को संग गोरखनाथ जगैहैं ।
ग्वारनियां इह भान्ति कहैं तजिकै हम धाम्मन जोगन ह्वैहैं ॥८०५॥

कै विख खाइ मरेगी कह्यो अपने तन को नहीं घात करैहैं।
मार छुरी अपने तन में हरि के हम ऊपर पाप चढ़ैहैं ॥
नातर ब्रह्म के जा पुर मै वृथा इह की सु पुकार . करैहैं।
ग्वारनियां इह भान्त कहैं वृज तो हरि हम जान न दैहैं ॥८०६॥

सेली डरेगी गरे अपुने बटुआ अपने कहि साथ कसैहैं।
लैकरि बीच त्रिसूल किधौं फरुआ तिह सामुहे धूप जगैहैं ॥
घोट के ताही के ध्यान की भांग कहै कवि स्याम सुवाही चढैहै।
ग्वारनियां इह भान्त कहे न रहें हम धामन जोगन ह्वैहैं ॥८०७॥

धूम डरै तिह के गृह सामुहे और कछू नहीं कारज कैहैं।
ध्यान धरैंगी किंधौ हित को हित ध्यान की भांगहि सो मति ह्वैहैं॥
लै तिनके फुन पाइन धूर किधौं सु विभूत की ठडर चढ़ैहैं।
कै हित ग्वारनीए सो कहे तजिकै गृह को हम जोगन ह्वैहैं ॥८०८॥

कै अपने मन की फुन माल कहे कवि वाही को नाम जपैहैं।
कै इह भांत की पै तप सहित सो तिहते जदुराय रिझैहैं ॥
मांग सबै तिहते मिलिकै बरु पायन पै तिहते हम लगैहैं।
याते विचार कहै गुपीयां तज के हम धामन जोगन ह्वैहैं ॥८०९॥

ठाड़ी है होइ ए कड़ो जीय जिम घंट्क हरे बजे मिरगाइल।
स्याम कहै कवि चिन्त हरै हरि को हरि ऊपरि ह्वै अति माइल ॥
ध्यान लगै दृग मून्द रहों उघरे निकटे तिह जान उताइल।
यों उपजी उपमा मन मै जिन मीचत आंख उघारत घाइल ॥८१०॥

अथ ऊधो वृज भेजो कथनं

सवैया

सोवत ही इह चिन्त करी वृजवासन सिऊ इह कारज कइये।
प्रात भये ते बुलाइ के ऊधव भेज कह्यो तिह ठऊरै दइये ॥
ग्वारनि जाए सन्तोष करे सु सन्तोख करे हमरी धर्म मइये।
या ते न बाल भली कछू और है मोहि विवेकहि क्रो झगरिये ॥८९३॥

प्रात भये ते वुलाइके ऊधव पै वृज भूमहि भेज दयो है।
सो चलि नन्द के धाम गयो बतीयां कहि सोक असोक भयो है ॥
नन्द कह्यो संग ऊधव कै कबहूं हरि जी मुहि चित्त कयो है।
यों कहिकै सुध स्यामहि कै धरनी पर सो मुरझाय पयो है ॥८९४॥

जब नन्द पर्‍यो गिर भूमि विखै तब याहि कह्यो जदुवीर अये।
सुनकै बतीयां उठ ठाढ भयो मन के सब सोक पराए गये ॥
उठि कै सुधि सो इह भान्त कह्यो हम जानत ऊधव पेच कये।
तज कै वृज को पुर बीच गये फिरकै वृज मै नहीं स्याम अये ॥८९५॥

स्याम गये तजिकै वृज को वृज लोगन को अति ही दुख दीनो।
ऊधव बात सुनो हमरी तिहके विन भयो हमरो पुर हीनो ॥
दै विधि ने हमरे गृह बालक पाप विना हमते फिर छीनो।
यों कहि सीस झुकाइ रह्यो बहु सोक बढ्यो अति रोदन कीनो ॥८९६॥

कहिकै इह बात पर्‍यो धरि पै उठ फेर कह्यो संग ऊधव इऊं।
तजिकै वृज स्याम गये मथुरा हम संग कहो अब कारण किऊं ॥
तुमरे अब पांय लगो उठकै सु भई वृथा सु कह्यो सब जिऊं।
तिहते नही लेत कछू सुधि है मुहि पाप पछान कछू रिस सिऊं ॥८९७॥

सुनिकै तिन ऊधव यों बतीयां इह भान्तन सिऊ तिह उत्तर दीनो।
को सुत सो वसुदेवहि को तुमते सब पै प्रभजू नहीं चीनो ॥
सुनकै पुर को पति यों बतीयां कवि स्याम उसास कहै तिन लीनो।
धीर गयो छूट रोवत भयो इनहु तिह देखत रोदन कीनो ॥८९८॥

हठि ऊधव कै इह भान्त कह्यो पुर के पति सों कछू सोक न कीजै।
स्याम कही मुहि यों बतीयां तिनकी विरथा सबही सुन लीजै ॥
जाकी कथा सुन होत खुसी मन देखत ही जिह को मुख जीजै।
वाही कह्यो नही चिन्त करो न कछू इहते तुमरो फुन छीजै ॥८९९॥

सुनिकै हम ऊधव से बतीयां फिर ऊधव को सोऊ पूछत लाग्यो।
कान्ह कथा सुन चित्त के बीच हुलास बढ्यो सब ही दुख भाग्यो ॥
और दई सब छोर कथा हरि बार सुनेबै विखै अनुराग्यो।
ध्यान लगावत जिऊ जोगिया इहतिऊं हरि ध्यान के भीतर पाग्यो ॥९००॥

यों कह ऊधव जात भयो वृज मै तिह ग्वारनि की सुध पाई।
मानहु सोक के धाम हुतो द्रुम ठऊर रहे सु तहां मुरझाई ॥
मौन रही गृह बैठ त्रिया मनों यो उपजी इहते दुचिताई।
स्याम सुनै तै प्रसन्न भई नही आए सुने फिर भी दुखदाई ॥९०१॥

ऊधव बाच

ऊधव ग्वारन सो यह भान्त कह्यो हरि की बतीयां सुन लीजै।
मार्ग जाहि कह्यो चलीये जोऊ काज कह्यो सोऊ कारज कीजै ॥

जोगनि फार सबै पट होवह यों तुम सो कह्यो सोऊ करीजै ।
ताही की ओर रहो लिव लाए री याते कछू तुमरो नही छीजै ॥९०२॥

ग्वारनि वाच

सुन ऊधव ते विधि या बतीयां तिन ऊधव को हम उत्तर दीनौ ॥
जा सुनि वियोग हुलास घटै जिहके सुन ए दुख होवत जीनो ॥
लाग गये तुम हो हमको हमरो तुमरे रस मे मनु भीनो ॥
यों कह्यो ता संग यो कह्यो हरि जू तू ही प्रेम विदा कर दीनो ॥९०३॥
फिर कै संग ऊधव के वृजभामन स्याम कहे इह भान्त उचार्‍यो ॥
त्याग गये न लई सुध है इससों हमरो मनुआ तुम जार्‍यो ॥
हऊ कहिके पुन ऐसे कह्यो तिह को सु किधों कवि यों जसु सार्‍यो ॥
ऊधव स्याम सो यों कहीयो हरिजू तुहि प्रेम विदा कर डार्‍यो ॥९०४॥
फेर कह्यो हम ऊधव सों जब ही सब ही हरि के रस भीनी ॥
जो तिन सो करयो ऊधव इऊ तिन ऊधव सों विनती इह कीनी ॥
कंचन सों जिनको तन कों जोऊ हात विखै हुती ग्वार नवीनी ॥
ऊधव जू हमको तजि कै तुमने विन स्याम कछू सुध लीमी ॥९०५॥
एक कहै अति आतुर है एक कोप कहे जिन ते हित भाग्यो ॥
ऊधव जू जिह देखन को हमरो मनुआ अति ही अनुराग्यो ॥
सो हमको तजि गयो पुर वासन के रस भीतर पाग्यो ॥
जऊ हरिजू वृजनार तजि वृज नारिन भी वृजनाथ त्याग्यो ॥९०६॥
एकन यों कह्यो स्याम तज्यो इक ऐसे कहे हम काम करेंगी ॥
भेख जिते कह्यो जोगन के तितने हम अपने अंग डरेंगी ॥
एक कहैं हम जैहैं तहाँ इक ऐसे कहे गुनि ही उचरेंगी ॥
एक कहै हम खै मरिहै विख इक यों कहे ध्यान ही बीच मरेंगी ॥९०७॥

ऊधव वाच गोपिन सों

पिखि ग्वारनि की इह भॉत दसा विसमै हो ऊधव यो उचरो ॥
हम जानत हैं तुमरी हरि सों बलप्रीत घनी इह काम करो ॥
जोऊ स्याम पठ्यो तुम पै हमको इह रावल भेखन अंग धरो ॥
तजिके गृह के पुन काज सबै सखी मोरे ही ध्यान के बीच अरो ॥९०८॥

गोपिन वाच ऊधो सों

एक समै वृज कुञ्जन मै मुहि कानन स्याम तटक धराये ॥
कञ्चन के बहु मोल जरे नग ब्रह्म सकै उपमा न गनाये ॥
वज्र लगौ जिन बीच छटा चमके चहु ओर घरा छवि पाये ॥
तौन समै हरि वै क्यों ऊधव दै अब रावल भेख पठाये ॥९०९॥

एक कहै हम जोगन ह्वैहैं कहे इक स्याम कह्यो ही करैंगी ॥
डार विभूत सबै तन मे बटुआ चिपिया करि बीच धरैंगी ॥
एक कहे हम जाहि तहाँ इक यों कहै ग्वारनि खाइ मरैंगी ॥
एक कहे विरहागनि को उपजाइ के ताही के संग जरैंगी ॥९१०॥

राधेवाच ऊधव सों

प्रेम छकी अपने मुख ते इह भान्त कह्यो वृखभान की जाई ॥
स्याम गये मथुरा तजिके वृज हो ऊधों हमरी गति काई ॥
दैखत ही पुर की त्रीय को सु छके तिनके रस मै जीय आई ॥
कान्ह लयो कुबजा बसिकै टसक्यो नही यों कसक्यो न कसाई ॥९११॥
सेज बनी संग फूलन सुन्दर चान्दनी रात भली छबि पाई ॥
सेत बहे जमुना पट है सित मोतिन हार गरे छबि छाई ॥
मैन चढ़यो सरि लै कर कै बधवे हमको विनजान कन्हाई ॥
सोऊ लयो कुबजा वसकै टसक्यों नहीं यो कसक्यों न कसाई ॥९१२॥
रात बनी घन की अति सुन्दर स्याय श्रृंगार भली छबि पाई ॥
स्याम बहे जमुना तरए इह जा बिन को नही स्याम सहाई ॥
स्यामहि मै न लग्यो दुख देवन ऐसे कह्यो वृखभानहि जाई ॥
स्याम लयो कुबजा वसिकै टसक्यो नही यों कसक्यो न कसाई ॥ ९१३ ॥
फूल रहे सिगरे वृज के तर फूल लता तिन सो लपटाई ॥
फूल रहे सरसों रस सुन्दर सोभ समूह बढ़ी अधिकाई ॥
चेत चढ़यो सुक सुन्दर कोकिल का जुत कन्त विना न सुहाई ॥
दासी के संग रह्यो गहि हो टसिक्यो नहीं या कसक्यो न कसाई ॥९१४॥
वास सुबास अकास मिली अर वासत भूमि महा छबि पाई ॥
सीतल मन्द सुगन्ध समीर बहै मकरन्द निसंक मिलाई ॥
पैर पराग रही है विसाख सकै वृज लोगनि की दुखदाई ॥
मालन लै वकरो रस को टसक्यो नहीं यों कसक्यो न कसाई ॥९१५॥
पौन प्रचन्ड वहे अति तापत चंचल चिति दसो दिस धाई ॥
वैस अवास रहे नर नार विहंगम वार सु छाहि तकाही ॥
देख असाढ़ भई रित दादर मोरनहुं घनघोर लगाई ॥
गाढ़ भरी विरही जन कोट सक्यो नहि यों कसक्यो न कसाई ॥९१६॥
ताल भरे जल पूरन सों अरु सिन्ध मिली सरिता सब जाई ॥
तैसे घटान छटान मिली अतिही पपीहा पीय टेर लगाई ॥
सावन माहि लग्यो वर सावन भावन नाही इहा थर माई ॥
लाग रह्यो पुर भामन यों टसक्यो नही यो कसक्यो न कसाई ॥९१७॥

भादव माहि चढ़्यो बिन नाहि दसो दिसि माहि घटा घहराई ॥
द्योस निस निहि जान परै तम बिज्जु छटा रवि की छबि पाई ॥
मूसल धार छूटै नभि ते अवनी सगरी जल पूरनि छाई ॥
ऐसे समै तजि गयो हमको टसक्यो नहीं यो कसक्यो न कसाई ॥९१८॥

नीर समीर हुतासन के सम और अकास धरा तपताई ।
पंथ न पंथी चलै कोऊ उतरै ताक तरै तन ताप सिराई ॥
जेठ महा बलवन्त भयो अति व्याकुल जीय महारितु पाई ॥
ऐसे सक्यो धसक्यो ससक्यो टसक्यो नही यों कसक्यो न कसाई ॥९१९॥

मास कुआर चढ्यो बलधार पुकार रही न मिली सुखदाई ॥
सेत घटा अरु रात छटा सर तुंग अटा सिमकै दरसाई ॥
नीर विहीन फिरै नभि छीन सुदेख अधीन भयो हिय राई ॥
प्रेमछकी तिन सो विथक्यो टसक्यो नहीं यो कसक्यो न कसाई ॥९२०॥

कातिक मै गुनि दीप प्रकासत तैसे अकास मै उज्जलताई ॥
धूप जहाँ तहाँ फैल रह्यो सिगरे नर नारन खेल मचाई ॥
चित्र भये घर आंगन देख गये तहके अस चित्र भरमाई ॥
आयो नहीं मन भायो तहीं टसक्यो नही यों कसक्यो न कसाई ॥९२१॥

वारिज कूल रहे सर पुंज सुगन्ध सने सरिता न घटाई ।
कूंजत कन्त विना कुल हंस क्लेस बढै सुनिकै तिह माई ॥
बासर रैन न चैन कहुँ छिन मंघर मास आयो न कन्हाई ।
जा तन ही तिन सो मसक्यो टसक्यो नहीं यो कसक्यो न कसाई ॥९२२॥

सवैया

इह भांति विरुद्ध निहार भयो मुसलीधर स्याम सो तेज तये हैं ।
भाख दोऊ निज सूतन को रिप सामुहे जुद्ध के काज गये हैं ॥
आयुध लै सुहठी कवची रिस कै संगि पावक बेख भये हैं ।
स्याम भने इम धावत भे मानहु केहरि दुइ मिम्र हेर धये हैं ॥१८७१॥

धनु सायक लै रिस भूपत को तन धाय करे वृजराज तबै ।
पुनि चारोई बानन सो हय चारोई राम भनै हन दीने सबै ॥
तिल कोटिक स्यन्दन काटि कीयो धनु काटि दियो करि कोप जबै ।
नृप पिआदो गदा गहिं सौंह गयो अति जुद्ध भयो कहिहो सु अबै ॥१८७२॥

पायन धाय कै भूप बली सु गदा कहु धाय हली प्रतिझार्‍यो ।
कोप हुतो सु जितो तिह मै सब सूरन को प्रत्यक्ष दिखार्‍यो ॥

कूद हली भू ठाढ़ो भयो जसु ता छवि को कवि स्याम उचार्‍यो ।
चारोई असुअन सूत समेत सु कै सबही रथचूरण डार्‍यो ॥१८७२॥

इत भूप गदा गहि आवत भयो उत लैके गदा मुसलीधर धायो ।
आये अयोधन बींच दुहूं कवि स्याम कहै रन दुन्द मचायो ॥
जुद्ध कीयो बहुतो चिर लौ नहि आप गिर्‍यो ओर को न गिरायो ।
ऐसे रिझावत भयो सुर लोगन धीरन वीरन को रिझवायो ॥१८७४॥

हार के बैठ रहे दोउ वीर संभार उठे पुन जुधु मचावै ।
रंच न संक करे चित में रिसकै दोउ मार ही मार उचावै ॥
जैसे गदावह की विध है दोऊ तैसे लरे अरू घाव चलावै ।
नैक टरे न और हठ बांध गदा संग वार बचावै ॥१८७५॥

स्याम भनै अति आहव मै मुसली अरु भूपत कोप भरे हैं ।
आपस वीच हकार दोऊ भट चित विरवै नही नेक डरे हैं ॥
भारी गदा गहि हाथन मै रन भूमह ते नहि पेगु टरे हैं ।
मानहु मद्ध महावन के पल के हितू है वरसिंघ अरे हैं ॥१८७६॥

काटि गदा बलदेव दई तिह भूपत की अरु वानन मार्‍यो ।
पोरख याही भिर्‍यो हम सो रिसकै अरि कौ इह भांत पचार्‍यो॥
इऊ कहिकै पुन वाननि मार सरासन लै तिह ग्रीवह डार्‍यो ।
देव करे उपमा सु कहे जदुवीर जित्यो सु बड़ो अरि हार्‍यो ॥१८७७॥

कम्पत हो जिहते सु खगेश महेस मुनी जिहते भै भीत्यो ।
सेस जलेस दिनेस निरेस सुरेस हुते चित मै न निचीत्यो ।
ता नृप के सिर पै कवि स्याम कहे इह काल इसो अब बीत्यो,
धनहि धनु कहे सब सूर भले भगवान बड़ो अरि जीत्यो ॥१८७८॥
बलभद्र गदा गहिकै इत ते रिस साथ कह्यौ अरि कौ हरिहौ ।
इह प्राण बचावत को हमसो जब जो भिरिहै न तौ डरिहो ॥
घनस्याम सबै संग जादब लै तजि याह कहै न भया टरिहौं ।
कवि स्याम कहे मुसली इह भांत अबै इह हो वध ही करिहौ ॥१८७९
सुनि भूप हलायुद्ध की बतीयां अपुने मन में हति ही डरु मान्यो ।
मानख रूप लख्यों न बली निहचै बल कौ जम रूप पछान्यो ॥
श्री जदुवीर की ओर,चिते तजि आयुद्ध पायन सो लपटान्यो ।
मेरी सहाय करो प्रभू जूकवि स्याम कहै कहि यो घिघियान्यो॥१८८०॥
करुणानिधि देख दसा तिहकी करुणा रस को चित बीच बढ़ायो ।
कोपहि छाड़ि दयो हरिजू दुहू नैनन भीतर नीर बहायो ॥

वीर हलायुद्ध ठाड़ो हुतो तिहको कहिकै इह बैन सुनायो ।
छाड़ि दै जो हम जीतन आयो हो सो हम जीत लयो बिलखायो ॥१८८१॥
इह छोड़ हली नही छोड़त हो किह काज कह्यो तुहि बाननि मार्यो ।
जीत लयो तो कहा भयो स्याम बड़ो अरि इह पौरख हार्यो ॥
आछो रथी है भयो बिरथी अरु पाय गहै प्रभ तेरे उचार्यो ।
तेईस छोहनी को पति है तो कहा इह को सब सैन संघार्यो॥१८८२॥

दोहा

सैन बड़ो संगि सत्र के जीत ताहि ते जीत ।
छाड़त है नहि वधत तिह इहै बड़न की रीत॥१८८३॥

सवैया

पाग दई अरु बागो दयो इक स्यन्दन दै तिह छाड़ि दयो हैं ।
भूप चितै हरि को चित मै अति ही कर लज्जत वान भयो है॥
ग्रीव निवाय महा दुख पाय घनो पछुताय कै धाम गयो है ।
श्रीजदुवीर को चौदह लोकन स्याम भनै जस पूर रह्यो है ॥१८८४॥
तेईस छोहन तेईसवार अयोधन ते प्रभ ऐसेही मारे ।
बाज घने गनपति हने कवि स्याम भने बिपते कर डारे ॥
एक ही वान लगे हरिको जमधाम सोऊ तजि देह पधारे ।
श्री बृजराज की जीत भई अरु तेईस वारन ऐसे ही हारे ॥१८८५॥

दोहा

देवन जो स्तुति करी पाछे कही सुनाय ॥
कथा सु आगे होइहै कहिहो वही बनाय ॥ १८८६ ॥

सवैया

उत भूपति हार गयो गृह कौं रन जीत इतै हरिजी गृह आयो ॥
मात पिता को जुहार कियो पुनि भूपति को सिर छत्र तनायो ॥
बाहर आये गुनीन सु दान दयो तिह इऊं जसु भाखु सुनायो ॥
श्री जदुवीर महा रनधीर बड़ो अरि जीत भलो जसु पायो ॥१८८७॥
और जिती पुर नार हुती मिलिकै सब स्याम की ओर निहारें ॥
भूखन और जितो धनु है पट श्री जदुवीर के ऊपरि वारें ॥
बीर बड़ो अरि जीत लयो रन यों हँसिकै सब वैन उचारें ॥
सुन्दर तैसे ही पौरख मै कहि इऊं सब सोक विदा कर डारें ॥१८८८॥
हसिकै पुर नार मुरार निहार सु बात कहै कछू नैन नचैके ॥
जीत फिरै रन धाम ही के संगि वैरन के बहुजूझ मचैके ॥

ए ई सु वैन कहे हरिसों तव स्याम भनै कछू संक न कैके ॥
राधका साथ लसो प्रभू जैसे सु तैसे हंसो हम ओर चितैकै ॥१८८९॥
इऊ जब· वैन कहे पुरवासिन तौ हसिके वृजनाथ निहारे ॥
चारु चितैन कौ हेरि तिनो मन के सब सोक संताप विडारे ॥
प्रेम छकी तिय भूम के ऊपर झूम गिरी कवि स्याम उचारे ॥
भौंह कमान समान मनो दृग सायक यों वृजनायक मारे ॥१८९०॥
उत संकत होय त्रीया धाम गई इत वीर सभा मै स्यामजी आयो ॥
हेरि के श्री व्रजनाथह भूपति दौर कै पायन सीस लुडायो ॥
आदर सों कवि स्याम भनै नृप लै सुसिघासन तीर बैठायो ॥
वारुणी लै रस आगे धऱ्यो तिह पेखके स्याम महा सुख पायो ॥१८९१॥
वारुणी के रस सो जब भूर छकै सबही बलभद्र चितार्‍यो ॥
श्री वृजराज समाज मे वाज हने गजराज न कोऊ विचार्‍यो ॥
सो विन प्राण कियो कि छन मै रिसके जिह वान सु एक प्रहार्‍यो ॥
वीरन वीच सराहत भयो सुहली जुद्ध स्याम इतो रन पार्‍यो ॥१८८२॥

दोहा

सभा बीच श्री कृष्ण सौं हली कहै पुन वैन ॥
अति ही मदरा सो छके अरुण भये जुग नैन ॥१८९३॥

सवैया

दीबो कछू मय पीवो घनो कही सूरत सों इह वैन सुनायो ॥
जूझवों जूझके प्राण तजे जुझयवो छजनब को बन आयो ॥
वारुणी कौं कवि स्याम भनै कचु के हित तो भृगनिंद्य करायो ॥
राम कहै चतुराननि सोसु इही रस को रस देवन पायो ॥१९९४॥

दोहा

जैसे सुख हरिजू कीए तैसे करे न और ॥
ऐसो अरि जित इन्द्र सं रहत सूर नित पौर ॥१८९५॥

सवैया

रीझ के दान दीयो जिनकौ तिन आंगन के न कहूं मन कीनो ।
कोप न काहू सिऊ वैन कह्यो जूऐ भूल भरी चितकै हंस दीनो ।
दन्ड न काहू लयो जन ते लख मारग ताको कछू धनु छीनो ।
जीतन जान दयो ग्रह कौ अरि श्री वृजराज इहै व्रत लीन्तो ॥१८९६॥
जो भुअ को नलराज भये कवि स्याम कहे सुख हाथ न आयो ।
सो सुख भूमि न पायो तबै मुरमार जबै जमधाम पठायो ॥

जो हरि ना कस भ्रात समेत भयो सुपने प्रिथुणा दरसायो ॥
सो सुख कान्ह की जीत भये अपने चित मै पुहमी अति पायो ॥१८९७॥
जो घटा घनघोर घनै जुर गाजत है कोऊ और न गाजै ॥
आयुद्ध सूर सजै अपने करि आननि आयुध अंगहि साजै ॥
दुन्दभ द्वार बजे प्रभ के विन व्याह न काहू के दुआरह वाजै ॥
पाप न होत कहूं पुर मै जित ही कित धर्म ही धर्म विराजै ॥१८९८॥

दोहरा

कृष्णा जुद्ध जो हौं कह्यो अतिही संग सनेह ॥
जिह लालच इह मै रचयो मोह वहै बरु देहि ॥१८९९॥

सवैया

हे रवि हे ससि हे करुणानिधि मेरी अबै विनती सुन लीजै ॥
और न मांगत हौ तुमते कछू चाहत हौं चित मै सोई कीजै ॥
शात्रन सिऊ अति ही रन भीतरह जूझ मरों कहि साच पतीजै ।
संत सहाय सदा जगमाय कृपा करि स्याम इहै वरु दीजै ॥१९००॥
जो कछू इच्छ करो धन की तौ चल्यो धनु देसन देस ते आवै ॥
और सब रिद्धन सिद्धिन पै हमरो नहीं नैकु हीया ललचावै ॥
और सुनो कछूं जोग विखै कहि कौन इतो तपकै तनु तावे ॥
जूझ मरों रन मै तजि भै तुमते प्रभ स्याम इहै वरु पावै ॥१९०१॥
पूर रह्यो सिगरे जग मै अब लौ हरि को जसु लोक सु गावै ॥
सिद्ध मुनीसर ईश्वर ब्रह्म अजो बल को गुन व्यास सुनावै ॥
अज परासुर नारद सारद श्री सुच ससेस न अन्तह पावै ॥
ताको कवितन मै कवि स्याम कह्यो कहि कै कवि कौन रिझावै ॥१९०२॥

इति श्री विचित्र नाटक ग्रन्थे कृष्णावतारे जुद्ध प्रबन्धे
नृपजरासिन्ध को पकर कर छोर दीयो समाप्त ॥

यों सुनिकै सुति की बतियां नृप वामन ताही को लेन पठायो ॥
दे द्विज सीस चल्यो उत को दुहता इह भूपत की सुन पायो ॥
सीस धुनें कवि स्याम अनै तिन नैन ते अति नीर बहायो ॥
मानहु आसहि की कटि भीतर सुन्दर रूख सु है मुरझायो ॥११७६॥

रुक्मणी वाच सखीन सों

सवैया

संग सहेलन बोलत सी सखी प्रण एक अबै करिहौं ।।
कितौ जोगन भेस करो तज देसन ही विरहागन सों जरिहौं ।।
मोर पिता हठ ज्यूं करिहै तू विसेख कह्यो विख खा मरिहौं ।।
दुहिता नृप की कहियो न तिहकौ बरिहौं तु स्याम ही को बरिहौं ।।१९७२।।

दोहा

और विचार मन विखै करिहो एक उपाय ।।
पतीया दै कोऊ भेजहों प्रभू देहैं सुध ताहि ।। १९७३ ।।
एह चिन्ता कर चित विखै एक द्विज लयो बुलाय ।।
वहु धनु दै ताको कह्यो प्रभू दै पतीआ जाय ।। १९७४ ।।

रुक्मणी पाती पठी कान्ह प्रति

सवैया

लोचन चार विचार करो जिन वाचत ही पतीयां उठ धावहु ।।
आवत है ससपाल इतै मुहि व्याहवन को प्रभू ढील न लावहु ।।
मार हनै मुहि जीत प्रभू चलो द्वारावती जग मै जसु पावहु ।।
मोरी दसा सुनिके सब यों कवि स्याम कहे करि पेखनि आवहु ।।१९७५।।
है पति चौदह लोकन के सुनिए चित दे जु संदेश कहे हैं ।।
तेरे विना सु अहं और क्रोध बढयो सब आत्मे तीन बहे हैं ।।
यो सुनिये नृपरारते आदिक चित विखै कबहूं न चहै हैं ।।
वाचत ही पतियां उठ आवहु जू व्याह विखै दिन तीन रहे हैं ।।१९७६।।

दोहा

तीन व्याह में दिन रहें इऊं कहिए द्विज गाथ ।।
तजि विलम्ब आवहु प्रभू पतीया पढ द्विज साथ ।। १९७७ ।।

सवैया

और यदुवीर से यों कहिये तुमरे बिन देख निसा डर आवै ।।
वारही वार अति आतुर ह्वै तन स्याम कह्यो जीय मोर परावै ।।
प्राची प्रत्यक्ष भयो समपूरण सो हमको अति करि तावै ।।
मैन मनो मुख आरन कै तुमरे विनु आय हमो डरुपावै ।।१९७८।।
लाग रह्यो तुहि उरहि स्याम जी मै इह बेर धनी हटके ।।
घनश्याम की बंक विलोकन फासके संगि फसे सु नहीं छुटके ।।
नहीं नैकु मुरार मुरे हमरे, तुहि मूरत हेरन ही अंटके ।।
कवि स्याम मनै संग लाज के आज भये दोऊ नैन बटा नटके ।।१९७९।।

साज दयो रथ वामन को बहुतो धनु दै तिह चित्त बढायो ॥
श्री वृजनाथ ल्यावन काज पठ्यो चित मैं तिनहूं सुखु पायो ॥
यों सोऊ लै पतियां को चल्यो सुप्रबन्ध कथा कहि स्याम सुनायो ॥
मानहु पौन के गौनहूं ते सु सिताब दै श्री जदुवीर पै आयो ॥१९८०॥

श्री वृजनाथ को वास जहां सु कहे कवि स्याम पुरी अति नीकी ॥
वज्र खचे अरु लाल जवाहरि जोत जगे अतिहि सु मनी की ॥
कौन सराह करे तिह की तुम दीन कहो ऐसी बुद्धि किसी की ॥
ऐ निसेस जलेस की और सुरेस पुरी जिह अग्रज फीकी ॥१९८१॥

दोहा

ऐसी पुरी निहार कै अति चित हरख बढ़ाय ॥
श्री वृजपत को गृह जहां तह द्विज पहुंच्यो जाय ॥ १९८२ ॥

देखत ही वृजनाथ दिजोतम ठाड़ भयो उठ आगे बुलायो ॥
लै द्विज आगे धरी पतीया तिह बांचत ही प्रभूजी सुख पायो ॥
स्यन्दन मासज चढ्यो अपने सोऊ संगि लयो मनो पौन है धायो ॥
मानो क्षुधातुर होय अति ही मृग झून्डन के उठ केहरि धायो ॥१९८३॥

इत स्यामजू स्यन्दन साज चढ्यो उत लै ससपाल घनो दलु आयो ॥
आवत सोऊ इन्हूं सुनिकै पुर द्वार वजार जु थे सु बनायो ॥
सैन्य बनाय भली इत ते रुक्मादिक आगे ते लैन को धायो ॥
स्याम भनै सब ही भटवा अपने मन मैं अति सुख पायो ॥१९८४॥

और बड़े नृप आवत भेज चतरंग चम्मू सुघनी संग लेकै ॥
हेरन व्याह रुक्मणी को अति हो चित मैं सुहुलास बढ़ैकै ॥
भैर भनी सहनाय संगे इद दुंदुभ और तुरहीन वजैकै ॥
स्याम हतै छप आवत भयो कबि स्याम भनै तिन कारन छेके ॥१९८५॥

स्याम भनै जोऊ वेद के बीच लिखी विध व्याह की सु दुहूं कीनी ॥
मंजन सो अभिमन्त्रन कै भूअ फेरन की सु पवित्र कै लीनी ॥
और जिते द्विज श्रेष्ठ हुते तिनको अति ही दछना तिन दीनी ॥
वेदी रची भली भान्तहि सो जदुवीर बिना सब लागत हीनी ॥१९८६॥

तौंही लो लै किह संग पुरोहित देवी की पूजा के काज सिधारे ॥
स्यन्दन पै चढ़वाय तबै तिह पाछे चले तिहके भट भारे ॥
या विध देख प्रताप घनो मुखते रुकमैं इन बैन उचारे ॥
राखीं प्रभू पति मोर भली विध धन्य कह्यो अब भाग हमारे ॥१९८७॥

चौपई

जब रुकमनी तिह मन्दिर गई ॥ दुख संगि विह्वल अति ही भई ॥
तिन इव रोय सिवा संग रर्‍यो ॥ तुहिने मोहि इही वरु सर्‍यो ॥१९८८॥

सवैया

दूर दई सखियां करकै करि लीन छुरी कह्यो घात करैहैं ॥
मै बहु सेव सिवा की करी तिहते सब हो सु इहै फलु चैहौं ॥
प्राणन धाम पठौ जमके इह देहरे ऊपर पाप चढ़ैहौं ॥
कै इह को रिझवाय अबै बरवो हरिको इह ते बरु पैहौं ॥१९८९॥

देवी जु वाच

देख दशा तिहकी जगमत प्रत्यक्ष ह्वै ताहि कह्यो हसि ऐसे ॥
स्याम की वाम तै अपुने चित करो दुचिता फुन रंच न कैसे ॥
जो सिसुपाल के है चित मै नहि ह्वैहै सोऊ तिहकी सु रचे से ॥
दुख होय अवसि सोऊ सुनरी कवि स्याम कहै तुमरे जीय जैसे ॥१९९०॥

दोहा

यों बरु लेके सिवा ते प्रसन्न चली हुई चित्त ॥
स्यन्दन पर चढ़ मन विखै चहि श्री जदुपति मित्त ॥१९९१॥

सवैया

चढी जात हुती सोऊ स्यन्दन पै वृजनायक दृष्टि लिखै करिकै ॥
अरु शत्रुन सैन निहार घनी तिहते नहीं स्याम भनै डरिकै ॥
प्रभु आये पर्‍यो तिह मध्य विखै इह लेत हो रे इम उचरिकै ॥
वलधार लई रथ भीतर डार मुरार तबै बहोया धरिकै ॥१९९२॥
डार रुकमण स्यन्दन पै सब सूरन सो इह भांति सुनाई ॥
जात हो रे इह को अब लै इह कै रुकमै अब देखत भाई ॥
पौरख है जिह सूर विखै सोऊ याह छड़ाय न मांड लराई ॥
आज सभो मरिहो टरिहौ नहीं स्याम घनै मुंह राम दुहाई ॥१९९३॥
यों बतियां सुनि कै तिह की सब आये परे अति क्रोध बढ़ै के ॥
रोस भरै भक ठोक भुजा कवि स्याम कहे अति क्रोधत ह्वैकै ॥
भरे घनी सहनाथ सिंगे रण दुन्दभ और अति ताल बजैकै ॥
सो जदुवीर सरासन लै क्षण बीच दये जमलोक पठैकै ॥१९९४॥
जो भट काहू ते नेक टरै नहिं सो रिसकै तिह सामुहि आये ॥
गाल बजाय बजाय कै दुन्दभि ज्यो घन सावन के घहराये ॥
श्री जदुवीर के बान छूटे न टिके पल एक तहां ठहराये ॥
एक परे हां कराहत बीर बली इक अंत के धाम सिधाये ॥१९९५॥

रुक्मनि साथ कान्हजी हासी करन कथनं

सवैया

श्री वृजनाथ कह्यो त्रीय सो मुहि भोजन गोपन धाम कर्यो ॥
सुन सुन्दरता दिन ते हमरो विचीयादध को फुन नाम पर्यो ॥
जब सिन्धजरा दलु साज चढ्यो भजगे तब नैकु न धीर धर्यो ॥
तिहते तुमरी मति को अबका कहियै हम सौ कहि आन वर्यो ॥२१५२॥
राज समाज नहीं सुन सुन्दर न धन काहू ते मांग लयो है ॥
सूरन ही जिन त्याग के आपनो देश समुन्द्र मे वास कयो है ॥
भ्वोरि पर्यो मन को फुन नाम सु याही ते क्रोधत भ्रात भया है ॥
ताहि तै मो तजि कै वरु आनहि तेरो कछू अव लौं न गयो है ॥२१५३॥
चिंत करी हमसों मन मे न थी जानति स्याम इति करिहैं ॥
बरू मो तजिकै तुम आनहि कौ वचना येहि भाँति कै उच्चरिहैं ॥
हमरो भरवोई वन्यो इति ठां जिये है ना अवसि अब मरिहैं ॥
मरिबो जुनि जाति भले मजनी अपने पति सो हठि कै जरिहैं ॥२१५४॥
त्रिय कान्ह सो चिन्तन होइ मन मे मरबोई कर्याचित वीथ विचार्यो ॥
मो संग क्यों वृजनाथ अबै कवि स्याम कहे कट बैन उचार्यो ॥
क्रोध सो खाय तवारि धरा पर झूम गिरी नहि नैकु संभार्यो ॥
यो उपमा उपजी जीय मे जनु टूट गयो रूख व्यारि को मार्यो ॥२१५५॥

दोहा

अंक लियो भर कान्ह तिह दूर करन क्यों क्रोध ।
सावधान करि रुकमिनी जदुपति कियो प्रबोध ॥२१५६॥

सवैया

तेरे ही धरम ते मै सुनि सुन्दर केसनि ते गहि कंस पछार्यो ॥
तेरे ही धरम ते सिंध जराइ को सैन सबै छिन माहि संहार्यो ॥
तेरे ही धरम जित्यौ मघवा अरू तेरो ही धरम भुमासूर मार्यो ॥
तोसो कियो उपहास अबै मुहि ते अपने जीअ सांचु विचार्यो ॥२१५७॥

रुक्मनि वाच

यों पिय की त्रीय बात सुनी दुख की सब बात सबै विसराई ॥
भूलि पड़ी प्रभु कीजै छिमा मुहि नारि नेकाई कै नारि सुनाई ॥
और उपमा करी प्रभु की जू कवित्तन मे वरनी नहिं जाई ॥
उत्तर देति भई हसि कै हरि मै उपहास की बात न पाई ॥२१५८॥

दोहा

मान कथा रुक्मिनि की स्याम कही चित लाइ ॥
आगे कथा सुहायैगी सुन्यो अहो प्रेम बढ़ाइ ॥२१५९॥

कवियोवाच

सवैया

श्री जदुवीर की जेति त्रिया सबको दसहूं दस पुत्र दिये ॥
गरु एकहि एक दई दुहिता तिनके सुहुलास बढाइ हिये ॥
सब कान्हि की मूरत स्याम भनै सब कन्ध पटम्बर पीत लिये ॥
करुनानिधि कौतुक देखनु कहु इह भूपर आई चरित्र किये ॥२१६०॥

रुक्मिनी उपहास समाप्तम्

अथ कान्हजू जल विहार त्रीया संग

कञ्चन की जिह दुआरवती तिह ठां जबही वृज भूखन आयो ॥
लाल लगे जिह ठा मनो वज्र भले वृजनाइक ब्योत बनायो ॥
ताल के बीच तरै जदनन्दन सोक सबै चित को विसरायो ॥
लै त्रीया बालक दे दिज कौ जब श्री वृजनाथ बड़ो जस पायो ॥२४७२॥

सवैया

त्रीयन सो जल मै वृजनाइक स्याम भनै रुच सिऊ लपटाए ॥
प्रेम बढ्यो उनके अति ही प्रभ के लगी अंग अनंग बढ़ाए ॥
प्रेम सो एक ही हुई गई सुन्दर रूप निहार रही उरझाए ॥
पास ही सामजू रूप रची त्रीया हेर रही हरि हाथ न आए ॥२४७३॥
रूप रची सभ सुन्दर स्याम के स्याम भनै दसहूं दिस दौरे ॥
कुंकुम वेद लिलाट दिए सु दीए तिन ऊपर चन्दन खौरे ॥
मैन के वसि भई सभ भामन धाई फिरै फुन धामन औरे ॥
ऐसे रहे मुख ते हम कौ तजि हो वृजनाथ गयो किह ठौरे ॥२४७४॥
ढूढ़त एक फिरै हरि सुन्दर चित विखै सब भ्रम बढ़ाई ॥
वेख अनूप सजे तन पै तिन वेखन को वरन्यो नहीं जाई ॥
संक करै न ररै हरि ही हरि लाजहि वेच भनो तिह खाई ॥
ऐसे कहै तजि गयो किह ठां तिह हो वृजनाइक देहु दिखाई ॥२४७५॥

दोहा

बहुत काल मुंछत भई खेलत हरि के साथ ।
मुच्छत ह्वै तिन यों लख्यों हरि आए अब हाथ ॥२४७६॥

हरिजन हरि संग मिलत है सुनत प्रेम की गाथ ॥
जिऊ डार्‍यो मिलि जात है नीर नीर के साथ ॥२४७७॥

चौपई

जलते तब हरि बाहरि आए ॥ अंगह सुन्दर वस्त्र बनाए ॥
का उपमा तिहकी कवि कहे ॥ पेखत नैन रीझ कै रहे ॥२४७८॥
वस्त्र त्रीअन हूं सुन्दर धरे ॥ दान बहुत बिप्रन को करे ॥
जिह तिह ठां हरिको गुन गायो ॥ तिह दारद धन देह वायो ॥२४७९॥

अथ प्रेम कथा कथनं

कवियो वाच

चौपई

हरि के सन्तक बढी सुनाऊ। ताते प्रभ लोगन रिझवाऊ ॥
जो इह कथा तनक सुन पावै ॥ ताको दोख दूर होइ जावे ॥ २४८० ॥

सवैया

जैसे तृनावत और अघ को सु बकासुर को वध जा मुख फार्‍यो ॥
खन्ड कीओ सकटासुर को गह केसन ते जिह कंस पछार्‍यो ॥
सिंधजराहूं को सैन मथ्यो अरु सत्रहु को जिह मानहि टार्‍यो ॥
तिऊ बृजनाइक साधन के पुन चाहत है सभ पापन टार्‍यो ॥२४८१॥
जो बृजनाइक के रुच सो कवि स्याम भनै फुन गीतन गैहैं ॥
चातुरता संग जो हरिके जसु बीच कवित्तन के सु बनेहैं ॥
औरन ते सुन जो चर्चा हरि की हरिके मन भीतर दैहैं ॥
सा कवि स्याम भनै धरिकै तन या भव भीतर फेर न ऐहैं ॥२४८२॥
जो उपमा बृजनाथ की गाई है और कवित्तन बीच करैगें ॥
पापन की तेऊ पावक मै कवि स्याम भनै कबहूं न जरैगें ॥
चिन्त सभै मिटहै तुरही छिन मै तिनके अघ वृंद टरैंगे ॥
जे नर स्याम जूके परसे पग ते नर फेर न देह धरैगें ॥२४८३॥
जो बृजनाइक को रुच सो कवि स्याम भनै फुर जाप जपेहैं ॥
जो तिहके हित कै मन मै वहु मंगन लोगन को धनु दैहैं ॥
जो तजि काज सभे घरके तिह पाइन के चित भीतर दैहैं ॥
भीतर ते अब या जग के अघ वृन्दन बीर विदा करि जैहैं ॥२४८४॥
प्रेम कीयो न कियो बहुतो तप कष्ट सह्यो तन को अति तायो ॥
कासी में जाइ पढ्यो अति ही वहू वेदन को फरि सार न आयो ॥
दान दीए बसि है गयो स्याम सभै अपनो तिह दर्‍व गवायो ॥
अंतरि की रुचकै हरिसिऊ जिह हेत कीओ तिनहू हरि पायो ॥२४८५॥

का भयो जो बक लोचन मून्द कै बैठ रह्यो जग भेख दिखाये ॥
मीन फिर्‍यो जल जात सदा तु कहा तिहके करि मो हरि आये ॥
दादर जों दिन रैन रटै सु विहंग उड़ै तन पंख लगाये ॥
स्याम भनै इह संत सभै बिन प्रेम कहू वृजनाथ रिझाये ॥२४८६॥

लालच जो धन के किनहूं जु पै गाई भलै प्रभ गीत सुनायो ॥
नाच नच्यो न खच्यो तिह मै हरि लोक अलोक को पैडं न पायो॥
हास कर्‍यो जग में आपनों सुपनेहूं न गिआन को तंतु जनाओ ।
प्रेम बिना कवि स्याम भनै करि काहू के मै वृजनाइक आयो ॥२४८७॥

हार चले गृह आपने कौवन मो बहुतो तिन ध्यान लगाए ॥
सिद्ध समाध अगाध कथा सुन खोज रहे हरि हाथ न आए ॥
स्याम भने सब वेद कतेवन सन्तन के मति यों ठहराए ।
भाखत है कवि सन्त सुनो जिह प्रेम कीए तिन श्रीपति पाए ॥२४८८॥

छत्री को पूत हौ वामन को नहिं कै तपु आवत है जू करों ॥
अरु और जंजार जितो गृह को तुहि त्याग कहा चित तामै धरों ॥
अब रीझ कै देहु वहे हमको जोऊ हौ विनती कर जो करों ॥
गव आऊकी आऊध निदान वनै अति ही रन में तब जूझ मरों ॥२४८९॥

दोहा

सत्रह सै पैन्ताल महिं सावन सुदी तिथि दीप ॥
नगर पावटा सुभ करन जमना बहै समीप ॥२४९०॥
दसम कथा भागोत की भाख करी बनाइ ॥
अवर वासना नाहि प्रभ कर्म जुद्ध के चाइ ॥ २४९१ ॥

सवैया

धन्न जीओ तिहको जग मै मुख ते हरि चित्त मै जुद्ध विचारै ॥
देह अनित्त न नित्त रहे जसु नाव चढै भवसागर तारे ॥
धीरज धाम बनाइ इहै तन बुद्धि सु दीपक जिऊ उजियारे ॥
गियानहि की बढ़नी मनहु हाथ लै कातरता कुतवार बुहारै ॥२४९२॥

इति श्री दसम स्कन्ध पुराने विचित्र नाटक ग्रन्थे
कृष्णावतारे अध्याय समाप्तमसतु सुभमसतु ।

१ ॐ सतिगुरु प्रसादि ॥
श्री भगऊती जी सहाइ ॥

अथ ज्ञान प्रबोध ग्रंथ लिख्यते ॥

पातशाही १० ॥ भुजंगप्रयात छंद ॥ त्वप्रसादि ॥

नमो नाथ पूरे सदा सिद्ध करमं ॥
अच्छेदी अभेदी सदा एक धरमं ॥
कलंक विना निहकलंकी सरूपे ॥
अछेदं अभेदं अखेदं अनूपे ॥ १ ॥

नमो लोक लोकेश्वरं लोक नाथे ॥
सदैवं सदा सख साथं अनाथे ॥
नमो एक रूपं अनेकं सरूपे ॥
सदा सख साहं सदा सख भूपे ॥ २ ॥

अछेदं अभेदं अनामं अठामं ॥
सदा सरवदा सिधदा बुद्धि धामं ॥
अजंत्र अमंत्र अकंत्र अभरमं ॥
अदेखं अभेदं अछेदं अकरमं ॥ ३ ॥

अगाधे अबाधे अगंतं अनन्तं ॥
अलेखं अभेखं अभूतं अगंतं ॥
न रंगं न रूपं न जातं न पातं ॥
न सत्रां न मित्रां न पुत्रां न मातं ॥ ४ ॥

अभूतं अभंग अभिखं भवनं ॥
परेयं पुनीतं पवित्रं प्रधानं ॥
अगंजं अभंजं अकामं अकरमं ॥
अनन्तं विअन्तं अभूभं अभरमं ॥ ५ ॥

नही जान जाई कछू रूप रेखं ॥
कहा बासु ताको फिरे कौन भेखं ॥
कहा नाम ताको कहा का कहावै ॥
कहा मैं बखानो कहै मैं न आवै ॥ ६ ॥

अजोनी अजै परम रूपी प्रधानै ॥
अछेदी अभेदी अरूपी महाने ॥

असाधि अगाधे अंग जल गनीमे ॥
अरंजुल अराधे रहाकुल रहीमे ॥ ७ ॥
सदा सरवदा सिद्धदा बुद्धि दाता ॥
नमो लोक लोकेश्वरं लोक ज्ञाता ॥
अछेदी अभै आदि रूपी अनंतं ॥
अछैदी अछै आदि अद्वै दुरंतं ॥ ८ ॥

नराज छंद

अनन्त आदि देव हैं ॥ विअंत भरम भेव हैं ॥
अगाधि बिआधि नास हैं ॥ सदैव राख पास हैं ॥ ९ ॥
बिचित्र चित्र चाप हैं ॥ अखण्ड दुष्ट खाय हैं ॥
अभेद आदि काल हैं ॥ सदैव सरव पाल हैं ॥१०॥
अखण्ड चण्ड रूप हैं ॥ प्रचण्ड सख सरूप हैं ॥
कालहूँ के काल हैं ॥ सदैव रछपाल हैं ॥११॥
कृपाल दिआल रूप हैं ॥ सदैव सख भूप हैं ॥
अनन्त सरब आस हैं ॥ प्रेम परम पाल हैं ॥१२॥

अदृष्ट अन्तर्ध्यान हैं ।
सदैव सर्वमान हैं ॥
कृपाल काल हीन हैं ।
सदैव साध अधीन हैं ॥१३॥

भजस तुयं ॥ भजस तुयं ॥
अगाधि बिआधि नासनं ॥ प्रेयं परम उपासनं ॥
त्रिकाल लोक मान हैं ॥ सदैव पुरख प्रधान हैं ॥१५॥

तबसं तुयं तबसं तुयं ॥
कृपाल दिआल करम हैं । अगंज भुंज भरम हैं ॥
त्रिकाल लोक पाल हैं ॥ सदैव सरब दिआल हैं ॥१४॥

जपस तुयं ॥ जपस तुयं ॥
महान मौन मान हैं ॥ परैव परम प्रधान हैं ॥
पुरान प्रेत नासनं ॥ सदैव सरब पासनं ॥१६॥
प्रचंड अखण्ड मंडली ॥ उदंड राज सुंथली ॥
जगंत जोंति जुआलका ॥ जलंत दीप्र मालका ॥१७॥

क्रिपाल दिअहत दिआल लोचनं ॥
मचकं बाज मोचनं ॥
सिरं करीट धारीयं ॥
दिनेस क्रत हारीयं ॥१८॥

बिसाल लाल लोचनं ॥ जमान जाल मोचनं ॥
सुभंत सीस सु प्रभा ॥ चवुत्त चारु चंद्रका ॥१९॥
जगंत जोत जआलका ॥ छकंत राज सु प्रभा ॥
जगंत जोति जैतसी ॥ वदंत वृत्त ईसुरी ॥२०॥

त्रिभंगी छंद ॥ त्वप्रसादि ॥
अनकाद सरूपं अमित बिभूतं अचल सरूपं बिसु करणं ॥
जग जोति प्रकाश आदि अनासं अमित अगासं सरब भरणं ॥
अनगंज अकालं बिसु प्रतिपालं दीन दियालं सुभ करणं ॥
आनन्द सरूपं अनहदि रूपं अमित त्रिभूतं तब सरणं ॥२१॥

बिस्वंभर भरणं जगत प्रकारणं अधरण धरण सिसट करं ॥
आनन्द सरूपी अनहद रूपी अमित त्रिमूर्ती तेज बरं ॥
अनखंड प्रतापं सब जग थापं अलख अतापं बिसु करं ॥
वंदे अविनासी तेज प्रकासी सरब उदासी एक हरं ॥२२॥

अनखंड अमंड तेज प्रचंड जोति उदंड अमित मतं ॥
अनमै अनगाधं अलख अबाधं बिसु प्रसाधं अमित गतं ॥
आनन्द सरूपी अनहद रूपी अचल बिभूति भव तरणं ॥
अन गाधि अबाधं जगत प्रसाधं सरव अराधं तव सरणं ॥२३॥

अकलंक अबाधं बिसु प्रसाधं जगत अराधं भव नासं ॥
बिसीअंभर भरवं किलबिख हरणं पतत उधरणं सब साथं ॥
अनाथन नाथे अक्रत अगाधे अमित अनाथे दुख हरणं ॥
अंगज अविनासी जोति प्रकासी जगत प्रणासी-तुयं सरणं ॥२४॥

अमित तेज जग जोति प्रकासी ॥
आदि अछेद अमै अविनासी ॥
परम तत्त परमार्थ प्रकासी ॥
आदि सरूप अखंड उदासी ॥२५॥

तहां सिंध अजै मनि रोस बढ़ी ॥
करि कोप चम्मू चतुरंग चढ़ी ॥
तहं जाइ परी जहाँ खत्र वरं ॥
बहु कूदि परे दिज साम धरं ॥३०१॥

दिज मंडल बैठि विचार कीयो ॥
सब ही दिज मडल गोद लीयो ॥
कहुं कौन सु बैठि विचार करैं ॥
नृप साथ रहै नहीं एऊं मरैं ॥३०२॥

इह भाँति कही तिइं ताही सभै।
तुम तोर जनेवन देऊ अबै ॥
जो भानि कह्यो सोई लेत भये ॥
तेऊ बैसहू बाण जे करत भये ॥३०३॥

जिह तोर जनेऊ न कीण हठं ॥
तिन सिऊ अन भोज कीयो इकठं ॥
फिर जाह जसूसहि ऐस कह्यो ॥
इनमें उनमें इक भेद रह्यो ॥३०४॥

पुनि बोलि उठ्यो नृप सरब दिजं।
नहीं छत्र तू देह सुताहि तुअं ॥
मरिग सुन बात मनो सबही।
उठि के ग्रिहि जात भये तब ही ॥ ३०५ ॥

सब वैठ बिचारन मंत्र लगे।
सब सोक के सागर बीच डुबै ॥
वहि बाघ बहिठ अत ते ऊहठं।
हम ये दोऊ भ्रात चले इकठं ॥ ३०६ ॥

हठ कीन दीजै तिन लीन सुता।
अति रूप महा छबि परम प्रभा ॥
त्रियो पेट सनोढ से पूत भये।
बहि जाति सनोढ दहात भये ॥

सुत औरन के इह ठांउ अहे।
उत छत्रीअ जात अनेक भये ॥

पुन कटन काल करवाल ॥ जग जारीआ जिह् जुआल ॥
बहि खंडीआ अनखंड ॥ अखंड राज प्रचंड ॥३१९॥

अथ पंचमो राज समाप्तमसतु ।
सुभमसतु ॥

तोमर छंद ॥ त्वप्रसादि ॥
पुन मथे मुनि छितराइ ॥
इह् लोक के हरि राइ ॥
अरि जीति जीति अखंड ॥
मही कीन राजु प्रचन्ड ॥३२०॥

अरि घाइ घाइ अनेक ॥ रिपु छाड्यो नहीं एक ॥
अनखन्ड राजु कमाइ ॥ छित हीन छत्र फिराइ ॥३२१॥

अनखन्ड रूप अपार ॥ अनमंड राजु जुआर ॥
अविकार रूप प्रचंड ॥ अनखंड राज अमंड ॥३२२॥

बहु जीति जीति नृपाल ॥ बहु छाडि कै सर जाल ॥
अरि मारि मारि अनन्त ॥ छित कीन राज दुरन्त ॥३२३॥

बहु राज भाग कमाइ ॥ इम बोल्यो नृप राइ ॥
इक कीजीय मख साल ॥ दिज बोलि लहु उताल ॥३२४॥

दिज बोलि लीन अनेक ॥ ग्रिह छाड्यो नहीं एक ।
मिलि भंज कीन विचार ॥ मति भिन्न मंत्र उचार ॥३२५॥

तब बोल्यो नृप राइ ॥ करि जग को चित चाइ ॥
किव कीजीये मखसाल ॥ कहु मंत्र भिन्न उताल ॥३२६॥
तब मंत्र मिजन कीन ॥ नृप संग चऊ कहि दीन ॥
सुनि राज राज उदार ॥ दस चारि चारि अपार ॥३२७॥

सति जुग्ग में सुनि राह ॥ मख कीन चंड बनाइ ॥
अरि मारकै महि खेस ॥ बहु तोख कीन पसेस ॥३२८॥

महि खेस कौ रण छाइ ॥ श्री इन्द्र छत्र फिराइ ॥
करि तोख जोगनि सरब ॥ करि दूर दानव गरब ॥३२९॥

मति खेख को रवि जीत ॥ दिज देव कीन अमोत ॥
किद सेस लीन बुलाइ ॥ छित छीन छत्र फिराइ ॥३३०॥

मुख चार लीन बुलाइ ॥ चित चौप सिरु जग माइ ॥
करि जग को आरम्भ ॥ अनखंड तेज प्रचंड ॥३३१॥
तब बोल्यो मुख चार सुनि चंडि चंडि जुहार ॥
जिम होइ आइस मोहि ॥ तिम माखउ मत तोहि ॥३३२॥
जग जीअ जंत अपार ॥ निज लीन देव हमार ॥
अरि काटिकै पलखंड ॥ पढ़ि वेद मंत्र उदंड ॥३३३॥

रुआल छंद । त्व प्रसादि ।

बोलि बिघन मंत्र मित्रन जग कीन अपार ॥
इन्द्र और उपिन्द्र लीके बोलि कै मुम चार ॥
कीन भातन कीजीए अब जग को आरम्भ ॥
आज मोहि उचारए सुनि दिज मंत्र असंभ ॥३३४॥

मास के पल काटिके पढ़ि वेद मंत्र अपार ॥
अगन भीतर होमीए सुनि राज राज अविचार ॥
छेदि चिछुर बिड़ारासुर धूलि करणि खपाइ ॥
मार दानव को कन्यो मख दैत मेघ बनाइ ॥३३५॥

तैसही मख कीजोए सुनि राज राज प्रचंड ॥
जीति दानव देसके बलवान पुरख अखंड ॥
तैस ही मख मारकै श्री इन्द्र छत्र फिराइ ॥
जैस सुर सुखु पायो तिव संत होइ सहाइ ॥३३६॥

श्री वाहि गुरूजी की फतेह ॥ श्री भगवती जी सहाय

अथ श्री शस्त्रनाममाला पुरान लिख्यते ॥ पातसाही १० ॥

दोहरा

सांग सरोही सैफ अस तीर तुपक तरवार ॥
सत्रांतक कवचांतिकर करिये रछ हमार ॥ १ ॥
अस कृपाण धाराधरी सैल सूफ जमदार ॥
कवचातक सत्रान कर तेग तीर तरवार ॥ २ ॥

अस कृपान खन्डो खन्डरा तुपक तवर अरु सर्स तीर ॥
सैफ सरोही सैहवी यहां हमारे पीर ॥ ३ ॥

तीर तुही सैथी तुही तुही तवर तरवार ॥
नाम तिहारो जो जपै भये सिद्ध भवपार ॥ ४ ॥

काल तुही काली तुही तुही तैगा अरु तीर ॥
तुही निशानी जीव की आज तुही जगवीर ॥ ५ ॥
तुही सूल सैथी तवर तु निखंग अरु बान ॥
तुही कटारी सैल सब तुम्ही करद कृपाण ॥ ६ ॥
शस्त्र अस्त्र तुम्ही सिपर तुम्हो कवच निखंग ॥
कवचांतक तुम्ही बने तुम व्यापक सरवंग ॥ ७ ॥
श्री तु सब कारन तुही तु विद्या को सार ॥
तुम सबको उपराजही तुमही लेहु उबार ॥ ८ ॥
तुम्ही दिन रंजनी तुही तुम्ही जीउन उपाइ ॥
कउतक हेरन के नमित तिन ओ वाद बढाई ॥ ९ ॥
अस कृपाण खन्डो खड्ग से भै तेग तरवार ॥
रक्षा करो हमरी सदा कवचांतक करवार ॥१०॥
तुही कटारी दाड़ जग तु विछऊ अरु वान ॥
तोप तपद जे लीजिये रक्ष दास तुमुहि जानु ॥११॥
वांक वन विछऊ तुही तुही तवर तरवार ॥
तुही कटारी सेहथी करीये रक्ष हमार ॥१२॥
तुमी गुरज तुम्ही गदा तुम्हो तीर तुपंग ॥
दास जान मेरी सदा रक्ष करो सरवंग ॥१३॥
छुटी कलम रिप करद मीन खंजर वुगदा नाइ ॥
अरध रिजक सब जगत को मुहि तुम लेहु बचाइ ॥१४॥
प्रिथम चुपावहू जगत तुम तुम्ही पंथ बनाइ ॥
आप तुही झगरा करो तुम्हीं करो सहाइ ॥१५॥
मछ कछ बराह तुम तुम बावन अवतार ॥
नरसिंग बहुधा तुहीं तुहीं जगत को सार ॥१६॥
तुम्ही राम श्रीकृष्ण तुही विशन को रूप ॥
तुही प्रजा सब जगत की तुही आप ही भूप ॥१७॥
तुही विप्र छंतरी तुही तुही रंक अरु राऊ ॥
साम दास अरु डन्ड तु तुम्ही भेवेद उपाऊ ॥१८॥
सील तुही काया तुहीं ते प्राणी के प्राण ॥
ते विद्या जग वगतर हुई करे वेद बखान ॥१९॥

विसिख वान धनुखा गरभन सर के बरजि नाम ॥
तीर खरतऊ ततारचो सदा करो मन काम ॥२०॥

तै नीरा लै सत्र अरि मृग अंतक ससवान ॥
तुम रनि प्रथमे हनो बहुरो बजे कृपान ॥२१॥

तुम पाहस पाखी परख परम सिद्ध की खान ॥
तै जग के राजा भये दीप जिंह वरदान ॥२२॥

सीससतर अरि भार अरु खन्डी खड्ग कृपाण ॥
सक सुरेसर तुम कियौ भगत आपुनो जान ॥२३॥

जमदर दगदाड़ा बबर जेंदातक जिह नाइ ॥
लूट कूट तलीअत तिनै जे बिन बान्धे जाइ ॥२४॥

बांक बज्र बिछोऊ विसिखि बिरहवान सब रूप ॥
जिनको तुम कृपा करी भये जगत के भूप ॥२५॥

संसत्र सेर समरान करी सिपरारी समसेर ॥
मुकत जाल जम के भये जिने कह्यो एक बेर ॥२६॥

सौंफ सरोही सब अरि सारनगरि जिह नाम ॥
सदा हमारे चित बसो सदा करो मम काम ॥२७॥

इति श्री नाममाला पुराने श्री भगऊती ऊसतत प्रिथम अध्याय समाप्त मसतु ॥
सुभमसतु ॥

अथ तुपक के नाम

दोहा

वाहनि आदि उचारिए रिप पद ऐति उचारि ॥
नाम तुपक कै होत हैं लीजहु सु कवि सुधार ॥ ४६१ ॥

सिन्धवनी पद प्रिथम कहि रिपनी अन्त उचारि ॥
नास तुपक के होत हैं लीजहु सु कवि सुधार ॥ ४६२ ॥

तुरंगनि प्रथम उचारिकै रिप अरि अन्त उचारि ॥
नाम तुपक के होत हैं लीजहु सु कवि सुधार ॥ ४६३ ॥

हयनी आदि उचारि कै हा पद अन्त बखान ॥
नाम तुपक के होत हैं चीन्ह लेहु बुद्धिवान ॥ ४६४ ॥

अरवनि आदि बखानीए रिष अरि अन्ति उचार ॥
नाम तुपक के होत हैं लीजहु सु कवि सुधार ॥ ४६५ ॥
किंकानी प्रिथम उचारिकै रिष पद अन्त उचार ॥
नाम तुपक के होत हैं लीजहु सु कवि सुधार ॥ ४६६ ॥
असुनी आदि उचारिए अन्त सब्द अरि दीन ॥
नाम तुपक के होत हैं लीजहु समझ प्रवीन ॥ ४६७ ॥
सुआसनी आदि बखानिए रिप अरि पद के दीन ॥
नाम तुपक के होत हैं सुघर लीजीअहु चीन्ह ॥ ४६८ ॥
आपनि आदि उचारिकै रिप पद अन्त बखान ॥
नाम तुपक के होत हैं चीन लेहु मतिवान ॥ ४६९ ॥
प्रधनी आदि उचारिके रिप पद अन्त बखान ॥
नाम तुपक के होत हैं चीन्ह लेहु मतवान ॥ ४७० ॥
आदि भूषनी शब्द कहि रिप अरि अन्त उचार ॥
नाम तुपक के होत हैं लीजहु सु कवि सुधार ॥ ४७१ ॥
आदि ईसनी सब्द कहि रिप अरि पद के दीन ॥
नाम तुपक के होत हैं सुघर लीजीअहु चीन ॥ ४७२ ॥
आदि संऊडमी शब्द कहि रिष अरि बहुर उचार ॥
नाम तुपक के होत है लीजहु चतुर विचार ॥ ४७३ ॥
प्रिथम सत्रनीं उचारिए रिप अरि अन्त उचार ॥
नाम तुपक के होत हैं लीजहु चतुर विचार ॥ ४७४ ॥
सकल छत्र के नाम लै नीकहि रिपहि बखान ॥
नाम तुपक के होत हैं लीजहु समझ सुजान ॥ ४७५ ॥
प्रिथम छजनी शब्द उचरि रिपु अरि अन्त बखान ॥
नाम तुपक के होत हैं चीन्ह लेहु मतिवान ॥ ४७६ ॥
आत प्रथनी आदि कहि रिप अरि अन्त उचार ॥
नाम तुपक के होत हैं चीन्ह चतुर निरधारि ॥ ४७७ ॥
आदि पताकनि सब्द कहि रिप अरि पद के दीन ॥
नाम तुपक के होत हैं लीजहु समझ प्रवीन ॥ ४७८ ॥
छितपूताढि प्रिथमोचरिके रिप अरि अन्त उचारि ॥
नाम तुपक के होत हैं लीजहु सु कवि विचार ॥ ४७९ ॥

रोदन आदि उचारिए रिप अरि अन्त बखान ॥
नाम तुपक के होत हैं लीजहु चतुर पछान ॥४८०॥
शस्त्रनि आदि बखानि कै रिप अरि पद के दीन ॥
नाम तुपक के होत हैं सुघर लीजहु चीन्ह ॥४८१॥
शब्द सित्तरन उचरिकै रिप अरि पद के दीन ॥
नाम तुपक के होत हैं लीजहु समझ प्रबीन ॥४८२॥
आदि सुभटनी शब्द कहि रिप अरि अन्त बखान ॥
नाम तुपक के होत हैं लीजहु समझ सुजान ॥४८३॥
रथनी आदि उचार कै मथनी मथन बखान ॥
नाम तुपक के होत हैं लीजहु समुझ सुजान ॥४८४॥
सब्द सियन्दनी आदि कही रिप अरि बहुरि बखान ॥
नाम तुपक के होत हैं लीजहु समझ सुजान ॥४८५॥
आदि सकटनी शब्द कही रिप अरि अन्त बखान ॥
नाम तुपक के होत हैं समझ लेहु मतिवान ॥४८६॥
प्रिथम सत्रनी शब्द कहि रिप अरि अन्त उचार ॥
नाम तुपक के होत हैं लीजहु सु कवि सुधार ॥४८७॥
आदि दुसटनी शब्द कहि रिप अरि अन्त बखान ॥
नाम तुपक के होत हैं लीजहु चतुर पछान ॥४८८॥
असुक वचनी आदि कहि रिप अरि अन्त उचार ॥
नाम तुपक के होत हैं चीनहु बुधवान ॥४९०॥
तनु चाननी आदि कही रिप अरि अन्त बखान ॥
नाम तुपक के होत हैं लीजहु समझ सुजान ॥४९१॥
प्रिथम चरमणी शब्द कहि रिप अरि अन्त उचार ॥
नाम तुपक के होत हैं लीजहु सु कवि सुधार ॥४९२॥
प्रिथम सिपरनी शब्द कहि रिप अरि उचरहु अन्त ॥
नाम तुपक जू के सकल निकसत चलत अनन्त ॥४९३॥
शब्द सलनी आदि कहि रिप अरि पद के दीन ॥
नाम तुपक के होत हैं सुघर लीजीयहु चीन ॥४९४॥
प्रिथमे चक्रणी शब्द कही रिप अरि पद के दीन ॥
नाम तुपक के होत हैं लीजहुं समझ प्रबीन ॥४९५॥

आदि खड़गनी शब्द कहि रिप अरि अन्त उचार ॥
नाम तुपक के होत हैं लीजहु सु कवि सुधार ॥४९६॥
असनी आदि उचारकै रिप अरि अन्त बखान ॥
नाम तुपक के होत हैं लीजहु समझ सुजान ॥४९७॥
निसत्रिनी उचारि कै रिप अरि अन्त बखान ॥
नाम तुपक कै होत हैं निकसत चलत प्रमाण ॥४९८॥
खगनी आदि बखानकै रिप अरि पद कै दीन ॥
नाम तुपक के होत हैं लीजहु समत्य प्रवीन ॥४९९॥
सस्त्र सस्त्रनी आदि कहि रिप अरि पद के दीन ॥
नाम तुपक के होत हैं लीजहु समझ प्रवीन ॥५००॥
शस्त्र राजनी आदि कहि रिप अरि अन्त उचार ।
नाम तुपक के होत हैं लीजहु सु कवि विचार ॥५०१॥
शास्त्र राटनी आदि कहि रिप अरि अन्त बखान ॥
नाम तुपक के होत हैं लीजहु चतुर प्रमान ॥५०२॥
आदि सैफनी शब्द कहि रिप अरि अन्त बखान ॥
नाक तुपक के होत हैं लीजहु समझु सुजान ॥५०३॥
आदि तेगनी शब्द कहि रिप अरि पद कै दीन ॥
नाम तुपक के होत हैं लीजहु समझ प्रवीन ॥५०४॥
आदि कृपाननि शब्द कहि रिप अरि अन्त बखान ॥
नाम तुपक के होत हैं लीजहु चतुर प्रमाण ॥५०५॥
समसेरनी उचार के रिप अरि अन्त बखान ॥
नाम तुपक के होत हैं चतुर चित्त महि जान ॥५०६॥
आदि खन्डनी शब्द कही रिप अरि बहुर उचार ।
नाम तुपक के होत हैं लीजहु सु कवि सुधार ॥५०७॥
खल खन्डन पद आदि कहि रिप अरि पद के दीन ॥
नाम तुपक के होत हैं लीजहु समझ प्रवीन ॥५०८॥
कवचान्तकनी आदि कहि रिप अरि अन्त उचार ॥
नाम तुपक के होत हैं लीजहु सु कवि सुधार ॥५०९॥
धारा धरनी आदि कहि रिप अरि पद के दीन ॥
नाम तुपक के होत हैं लीजहु समझ प्रवीन ॥५१०॥

कवच खापनी आदि कहि रिप अरि पद के दीन ॥
नाम तुपक के होत हैं चतुर लीजीअहु चीन ॥५११॥

तनु त्राण अरि आदि कहि रिप अरि अन्त बखान ॥
नाम तुपक के होत है चतुर लीजीअहु जान ॥५१२॥

कवच घातिनी आदि कहि रिप अरि अन्त बखान ॥
नाम तुपक के होत हैं लीजहु चतुर प्रमाण ॥५१३॥

दुष्ट दाहनी आदि कहि रिप अरि शब्द बखान ॥
नाम तुपक के होत हैं लीजहु समझ सुजान ॥५१४॥

दुरजन दरवी आदि कहि रिप अरि अन्त उचार ॥
नाम तुपक के होत हैं जानु चतुर निरधार ॥५१५॥

दुर्जन दवकनी आदि कहि रिप अरि पद के दीन ॥
नाम तुपक के होत हैं लीजीअहु समझ प्रवीन ॥५१६॥

दुष्ट चरवनी आदि कहि रिप अरि अन्त बखान ॥
नाम तुपक के होत हैं लीजीहु चतुर पछान ॥५१७॥

बीर वरजनी आदि कहि रिप अरि पद कै दीन ॥
नाम तुपक कै होत हैं लीजहु समझ प्रवीन ॥५१८॥

बान बरजनी आदि कहि रिपनी अन्त बखान ॥
नाम तुपक के होत हैं लीजहु चतुर पछान ॥५१९॥

विसिख वरखनी आदि कहि रिप अरि पद के दीन ॥
नाम तुपक के होत हैं चतुर लीजीअहु चीन ॥५२०॥

वरदायनी आदि कहि रिप अरि पद के दीन ॥
नाम तुपक कै होत हैं लीजहु समझ प्रवीन ॥५२१॥

विसिख घिसटनी आदि कहि रिप अरि अन्त उचारि ॥
नाम तुपक के होत हैं लीजहु कवि सुधारि ॥५२२॥

पनज प्रहारन आदि कहि रिप अरि अन्त उचारि ।
नाम तुपक के होत हैं लीजहु सुकवि विचार ॥५२३॥

धननी आदि उचारिहै रिप अरि अन्त उचारि ।
नाम तुपक के होत हैं लीजीहु सुकवि विचारि ॥५२४॥

प्रिथम धनखनी सब्द कहि रिप अरि पद के दीन ।
नाम तुपक के होत हैं सुधर लीजीहु चीन ॥४२५॥

को अडनी आरि उचारीए रिप अरि पद के दीन ।
नाम तुपक के होत हैं लीजहु समझ प्रवीन ॥५२६॥
वाना प्रजनी आदि कहि रिप अरि पद को देहु ।
नाम तुपक के होत हैं चीन चतुर चित लेहु ॥५२७॥
वाण प्रहरनी आदि कहि रिप अरि पद के दीन ।
नाम तुपक के होत हैं सुधर लीजीअहु चीन ॥५२८॥
आदि उचर पद बाणनी रिप अरि अन्त उचार ।
नाम तुपक के होत हैं लीजहु सु कवि विचार ॥५२९॥
विसिख परननी आदि कहि रिपपद अन्त बखान ।
नाम तुपक के होत हैं लीजहु चतुर प्रमान ॥५३०॥
बिसिखन आदि बखानिकै रिप पद अन्त उचार ।
नाम तुपक के होत हैं चीन्हु चतुर अपार ॥५३१॥
सुभट वाहनी आदि कही रिप पद अन्त बखान ।
नाम तुपक के होत हैं लीजहु चतुर सुधार ॥५३२॥
सत्र सघरनी आदि कही रिप अरि अन्त उचार ।
नाम तुपक के होत हैं लीजहुँ सु कवि विचार ॥५३३॥
पनज प्रहरणी आदि कहि रिप अरि अन्त बखान ।
नाम तुवक के होत हैं लजिहु समझ सुजान ॥५३४॥
को अन्डज दाइनी उचरि रिप अरि बहुर बखान ।
नाम तुपक के होत हैं लीजहु समझ सुजान ॥५३५॥
आदि निखंगनी सबद कहि रिच अरि अन्त बखान ।
नाम तुपक के होत हैं सजिहु सुघर पछान ॥५३६॥
प्रिथम पत्रणी पद उचरि रिप अरि अन्त उचार ।
नाम तुपक के होत है लीजिहु कवि सुधारि ॥५३७॥
प्रिथम पच्छनी सबद कहि रिप अरि पद को देहु ।
नाम तुपक के होत हैं चीन चतुर चित लेहु ॥५३८॥
प्रिथम पत्रणी सबद कहि रिप अरि अन्त बखान ।
नाम तुपक के होत हैं लीजीअहु सुधर पछान ॥५३९॥
परिणी आदि उचारिकै रिप अरि बहुर बखान ॥
नाम तुपक के होत हैं चीनहुँ चतुर प्रमान ॥५४०॥
पंखिण आदि उचारिकै रिप अरि बहुर उचारि ॥
नाम तुपक के होत हैं लीजीअहु सु कवि सुधारि ॥५४१॥

पत्रणी आदि बखानिकै रिप अरि अन्त उचारि ॥
नाम तुपक के होत है लीजहु चतुर विचारि ॥५४२॥
नभचर आदि बखानि कै रिप अरि अन्त उचारि।
नाम तुपक के होत हैं लीजहु सुकवि सुधारि ॥५४३॥
रथनी आदि उचारिकै रिप अरि अन्त उचारि ॥
नाम तपक के होत हैं लीजहु चतुर विचारि ॥५४४॥
सकटन आदि उचारिकै रिप अरि पद के दीन ॥
नाम तुपक के होत हैं लोजहु समझ प्रवीन ॥५४५॥
रथनी आदि वखानि के रिप अरि अन्त उचारि ॥
नाम तुपक के होत हैं लीजहु सु कवि सुधार ॥५४६॥
आदि सबद कहि स्यन्दनी रिप अरि अन्त उचार ॥
नाम तुपक के होत हैं लीजहु सु कवि सुधार ॥५४७॥
पटनी आदि बखानि के रिप अरि अन्त उचार ॥
नाम तुपक के होत हैं लीजहु चतुर विचार ॥५४८॥
आदि शस्त्रणी सबद कहि रिप अरि अन्त बखान ॥
नाम तुपक के होत हैं चीन्ह लेहु मतवान ॥५४९॥
वियूहनि आदि बखानीए रिप अरि अन्त उचार ॥
नाम तुपक के होत हैं लीजहु चतुर विचार ॥५५०॥

---

१ ओंकार वाहि गुरुजी की फतेह ॥
श्री भगउती ए नमह ॥

अथ पाख्यान चरित्र लिख्यते । पातिसाही १०

॥ भुजंग छन्द । त्व प्रसादि ॥

तुही खड़गधारा तुही वढ़वारी ॥ तुही तीर तरवार काली कटारी ॥
हलव्वी जुनव्वी मगरबी तुही है । निहारो जहां आपु ठाढ़ी वही है ॥१॥
तुही जोगमाया तुही वाकवानी ॥ तुही आपु रूपा तुही श्री भवानी ॥
तुही विसनु तूं ब्रह्म तूं रुद्र राजै ॥ तुही विस्व माता सदा जै विराजै ॥२॥
तुही देव तूं दैत तै जछु उपाए ॥ तुही तुरक हिन्दू जगत में बनाए ॥
तुही पन्थ है अवतरी सृष्टि माहीं ॥ तुहीं वक्त्र ते ब्रह्म वेदौ वकाही ॥३॥

तुही विकृत रूपा तुही चारु नैना ॥ तुही रूप वाला तुही वक्र बैना ॥
तुही वक्त्र ते वेद चारो उचारे ॥ तुमी सुंभ निसुंभ दोनों संघारे ॥४॥
तुमी महिख्र दानो बड़े कोपि धायो । तूं धूम्राच्छ ज्वालाछकी सो जरायो ॥
तुमी कोच वक्र तापने ते उचार्‌यो ॥ विडालाच्छ औ चिछुराछस विडार्‌यो॥१०
तुमी डह डहकै डवर को बजायो ॥ तुही कह कहकै हसी जुद्ध पायो ॥
तुही अएर असटहाथ भै अस्त्र धारे । अजै जै किते केस हूं ते पछारे ॥११॥

दोहा

चढी चन्डिका चन्ड ह्वै तपत तांम्र से नैन ॥
मत्त भई मदरा भए बकत अटपटे बैन ॥ ३० ॥

सवैया

सभ शत्रुन को हनिहो छिन मैं सु कहियो वच कोप कीयो मन में ॥
तरवारि संभारि महा बलधारि धवाइकै सिघ धसी रन में ॥
जगमात कै आयुधु हाथन मैं चमकै ऐसे दैतन के गन मैं ॥
लपकै झपकै बड़वानल की दमकै मनौ वारिध के बन में ॥ ३१ ॥
कोप अखन्ड कै चन्डि प्रचन्ड म्यान ते काढ़ि कृपान गही ॥
दल देव औ' दैतन की प्रतिमा लखि तेग छटा छब रीझ रही ॥
सिर चिकुर कै इह भान्ति परी नहीं मो ते प्रभा तिह जात कही ॥
रिप मारकै फारि पहार से बैरी पतार लगे तरवारि बही ॥ ३२ ॥

दोहा

अनतरि या ज्यो सिन्धु को चहत तरन करि जाऊँ ॥
विन नौका कैसे तरे लए तिहारो नाऊँ ॥ ४२ ॥
मूक उचरै सास्त्र खट पिंग गिरिन चढि जाए ॥
अंध लखै बधरो सुनै जो तुम करो सहाइ ॥ ४३ ॥
अरध गरभ नृप त्रियन को भेद न पायो जाय ॥
तौ तिहारी कृपा ते कछु कछु कहो बनाय ॥ ४४ ॥
प्रथम मानि तुमको कहो जथा बुद्धि बल होइ ॥
छटि कविता लखिकै कवहि हमत न करियहु कोइ ॥ ४५ ॥
प्रथम ध्याय श्री भगवती वरनो त्रिया प्रसंग ।
मो घट मै तुम ह्वै नदी उपजहु वाक तरंग ॥४६॥

सवैया

मेर कियो तृन ते मुहि जाइ गरीबनिवाज न दूसर तौसो ॥
भूल छिनो हमरी प्रभु आपुन भूलन हार कहू कोऊ मोसो ॥

सेव करै तुमरी तिनके छिन मै धन लागत धाम भरोसो ॥
या कलि मै सभ कालि कृपान की भारी भुजान कौ भारी भरोसो॥४७॥
खन्डि अखन्डन खन्ड कै चन्डि सु मुन्ड रहे छितमन्डल माहीं ॥
दन्डि अदन्डन को भुजदन्डन भारी घमन्ड कियो बल बाहीं ॥
थापि अखन्डल कौ सुर मन्डल नाद सुन्यो ब्रह्मन्ड महाहीं ॥
क्रूर कुवन्डल कोरन मन्डल तो सम सूर कोऊ रहूं नाहीं ।४८॥

इति श्री चरित्र पाख्याने चन्डी चरित्रे
प्रथमध्यायसमापतमसतु सुभमस्तु ॥११॥

दोहा

विन्दावन वृखभान की सुता राधिका नाम ॥
हरि सौ किया चरित्र तिह दिन कह देखत वाम ॥ १ ॥
कृसन रूप लखि वसि भई निसदिन हेरत ताहिं ॥
व्यास परासर असुर सुर भेद न पावत जाहि ॥ २ ॥
लोक लाज जिह हित तजी और तज्यो धन धाम ॥
किह विधि प्यारे पाइयै पूरन होवै काम ॥ ३ ॥
मिलन हेत इक सहचरी पठी चतुरि जिय जान ॥
कवनै छल मोको सखी मीत मिलैये कान ॥ ४ ॥

अड़िल

ब्रह्म व्यास अरु वेद भेद नहीं जानही ॥
सिव सनकादिक सेसे नेत करि मानही ॥
जो सभ भान्तिन सदा जगत मे गाइये ॥
हो तवन पुरख सजनी मुहि आनि मिलाइये ॥ ५ ॥

कवित्त

चिन्ता जैसो चन्दन चिराग लागे चिता सम,
चेतक से चित्र चारू चौपखा कुसैल सी ॥
चिता जैसे चीर चपला सी चितवन लागे,
चीर बेसी चौपखा सुहात न रुचैल सी ॥
चंगुल सी चौप सर चाप जैसो चामी कर,
चोट सी चिनौत लागे श्री लागे सैल सी ॥
चटक चुपेट सी लगत विना चिन्तामणि,
चाबुक सो चोर लागै चान्दनी चुरैल सी॥ १७ ॥

दोहा

पढ़ पतिया ताकी तुरत रीझ गये वृजनाथ ॥
सखी एक पठवत भए मैन प्रभा के साथ ॥ १८ ॥
राधा सो मिलनो बद्‌यो जल जमुना मैं जाइ ॥
सखी पठी ताकों तबै तिह मुहि आनि मिलाइ ॥ १९ ॥
सखी तुरत तहको चली श्री जदुपति के हेत ॥
जैसे पवन प्रचन्ड को तन न दिखाई देत ॥ २० ॥
तड़िता कृत जाको सखी चतुर कहत त्रिय आइ ॥
सो हरि राधा प्रति पठी भेद सकल समझाई ॥ २१ ॥

चौपई

नावत जहां आप हरि ठाढ़े ॥ अधिक ह्रिदै मै आनन्द बाढ़ै ॥
बार गुपाल पार वृज नारी ॥ गावत गीत बजावत तारी ॥२७॥

सवैया

क्रीडत हैं जहाँ कान्ह कुमार बड़े रस साथ बड़े जल माहीं ॥
वार त्रिया उहि पार गुपाल विराजत ग्वारनि के दल माहीं ॥
लै डुबकी दोहू आपस मे रतिमान उठै छद् जाइ तहाँ ही ॥
यों रुचि मानि रमै रस सों मनो दूरि रहे कोऊ जानत नाहीं ॥२८॥
खेलती लाल सों बाल भली बिधि कहूं सो बात न भाखत जी की ॥
नेह जग्यो नव जोवन को उरि बीच रही गड़ि मूरति पी की ॥
बारि विहार मै नन्दकुमार सों क्रीडत है करि लाज सखी की ॥
जाइ उठै वल तौन हितै रति मान दोऊ मन मानत जी की ॥२९॥
इति श्री चरित्र पाख्याने त्रियाचरित्रे मन्त्री भूप सम्वादे द्वादसमों चरित्र समापतमसतु सुभमसतु ॥

तीर सत्तुद्रव के हुतो पुर आनन्द इक गाऊं ॥
नेत्र तुंग के ढिग वसत काहलूर के ठाऊं ॥३॥
तहां सिक्ख साखा बहुत आवत मोद बढ़ाइ ॥
मन वान्छत मुखि मांग वर जात ग्रहण सुख पाइ ॥४॥
एक त्रिया धनवन्त की तौन नगर मे आन ॥
हेरि राइ पीड़ित भई विधी विरह के बान ॥५॥
मगन दास ताको हुतो सो. तिन लियो बुलाइ ॥
कछुक दरव ताको दियो ऐसो कह्यौ बनाइ ॥६॥

नगर राइ तुमरो वसत ताहि मिलावहु मोहिं ॥
ताहि मिलै दैहों तुझे अमित दरव लै तोहिं ॥७॥
भगत लोभ धन के लगे आनि राव के पास ॥
पर पाइन कर जोरि कर इह बिधि किय अरदास ॥८॥
सिख्यो चहत जो मन्त्र तुम सो आयो मुर हाथ ॥
कहै तुमै सो कीजियहु जो कुछ तुहारे साथ ॥९॥

भुजंग छन्द

चल्यो धारि अतीत को भैस राइ ॥
मनापन विरवै श्री भगौती मनाइ ॥
चल्यो सौत ताके फिर्‌यो नाहि फेरे ॥
धस्यो जाइ कै वा त्रिया के सु डेरे ॥१०॥
लखि त्रिय ताहि सु भेख बनायो ॥
फूल पान अरू कैफ मंगायो ॥
आगे टरि ताको तिन लीना ॥
चित का सोक दूरि करि दीना ॥११॥

दोहा

वस्त्र पहरि बहु मोलके अतिथ भेस को डारि ॥
तवन सेज सोभित करी उत्तम भेख सुधारि ॥१२॥
तव तासों त्रिय यों कही भोग करहु मुहि साथ ॥
पसु पतार दुख दै घनो मै बेची तव हाथ ॥१३॥
राइ चित्त चिन्ता करि बैठे ताही ठौर ॥
मन्त्र लैन आयो हुतो भई और की और ॥१४॥

रायवाच

प्रथम क्षत्री के धाम दियो विधि जनम हमारो ॥
वहुरि जगत के बीच कियो कुल अधिक उजियारो ॥
बहुरि सभन मै बैठि आपको पूज कहाऊं ॥
हौंरु रमो तुहारे साथ नीच कुल जनमहिं पाऊं ॥३२॥
सुधि जबते हम भरी वचन गुरु दई हमारे ॥
पूत इहै प्रण तोहि प्राण जब लग घट थारे ॥
निज जारी के साथ नेह तुम नित्त बढ़ैयहु ॥
परनारी की सेज भूलि सुपने हूं न जैयहु ॥५१॥
पर नारी के भजे सहस्र वासव भग पाए ॥
पर नारी के भजे चन्द्र कलंक लगाए ॥

पर नारी के हेत सीस दससीस गवायो ॥
हो पर नारी के हेत कटक कबरन को धायो ॥५२॥
पर नारी सो नेह छुरी पैनी करि जानहु ॥
पर नारी के भजे काल वियापयौ तन मानहु ॥
अधिक हरीफी जानि भोग पर त्रिय जो करहीं ॥
हो अत स्वान की मृतु हाथ लेड़ी के मरहीं ॥५३॥
बाल हमारे पास देस देसन त्रिय आवहिं ॥
मन बाछत बर मांगि जानि गुरू सीस झुकावहिं ॥
सिक्ख पुत्र त्रिय सुता जानि अपने चित धरिये ॥
हौं कहो सुन्दरी तिह साथ गवन कैरे कर करिए ॥५४॥

चौपई

वचन सुनत कुधत त्रिय भई। जरि बरि आठ टूक ह्वै गई ॥
अब ही चोर चोर कहि उठिहों। तुहि कोप कर मारि ही सुटिहौं ॥५५

सुनत राव के वच श्रवण त्रिय मन अधिक रिसाइ ॥
चोर चोर कहिकै उठी सिक्खन दियो जगाइ ॥५६॥
सुनत चोर को वच श्रवण अधिक डर्‍यो नर नाहिं ॥
पनी पामरी तजि भज्यो सुधि न रही मन माहि ॥६०॥

चौपई

राय सभा मे बचन उचारे। पनी पामरी हने हमारे ॥
ताहिं सिक्ख जो हमे बतावे ॥ ताके काल निकल नही आवैं ॥

दोहा

सुनत राय के वचन को लोग परे अरराइ ॥
पनी पामरी त्रिय सहित लयावत भये बनाइ ॥६॥

अड़िल

कहु सुन्दरी किह काज वस्त्र तै हरे हमारे ॥
देख भटन की भीरि त्रास उपज्यो न तिहारे ॥
जो चोरी जन करै कहो ताको किया करियै ॥
हो नारि जानिकै टरौं त तर जिय ते तुहि मरियै ॥७॥

दोहा

पर पियरो मुख पर गई नैन रही निहुराइ ॥
धरक धरक छतिया करै वचन न भाख्यो जाइ ॥८॥

अड़िल

हम पूछहिंगे याहि न तुम कछु भाखियो ॥
याही के घर माहिं भली विधि राखियो ॥

निरनौ करिहैं एक इकांत बुलाइकै ॥
हो तब दैहैं इह जान ह्विदै सुख पाइकै ॥९॥

चौपई

प्रात भयो त्रिय बहुरि बुलाई ॥ सकल कथा कहि ताहि सुनाई ॥
तुम कुप हम पर चरित बनायो ॥ हमहू तुमहु चरित दिखायो ॥१०॥
ताको भ्रात वन्दि ते छोर्‍यो ॥ भान्ति भान्ति तिह त्रियहि निहोर्‍यो ॥
बहुरि ऐस जिय कबहूं न धरियहु ॥ मो अपराध छिमापन करियहु ॥११॥

दोहा

छिमा करहु अब त्रिय हमै बहुरि न करियहु राधिं ॥
बीस सहस टका लिसै दई छमाही बान्धि ॥१२॥

इति श्री चरित्रपाख्याने त्रियाचरित्रे मन्त्री भूप संवादे तेइसवों चरित्र समाप्तमस्तु ।

दोहा

चन्द्रभगा सरिता निकट राझ न नामा जाट ॥
जो अबला निरखै तिसै जात सदन परि खाट ॥१॥
मोहत तिह त्रिय नैन निहारे ॥ जनु सावक सायक के मारे ॥
चित मै अधिक रीझि के रहैं ॥ राझंन राझंन मुख ते कहैं ॥२॥
कर्मकाल तह ऐसो भयो ॥ तौने देस काल पर गयो ॥
जियत न को नर बच्यो नगर मै ॥ सौ उबर्‍यो जाके धनु घर मैं ॥३॥
चित्रदेव इक रानी नगर मै ॥ राझां एक पूत तिह घर मैं ॥
ताके और न बच्यो कोई ॥ माइ पूत वै वाचे दोई ॥४॥
रनियहि भूख अधिक जब लागी । ताको बेचि मेखला साजी ॥
निति पीसन पर द्वारे जावै ॥ जूठ चून चौका चुनि खावै ॥५॥
ऐसे ही भूखन मरि गई । पुनि विधि तहां वृष्टि अति दई ॥
सूके भये हरे जनु सारे । बहुरि जीत के बजे नगारे ॥६॥
तहां एक राझां ही उबर्‍यो । और लोग सभ तहको मर्‍यो ॥
राझे जाट हेत तिन पार्‍यो । पूत भाव ते ताहि जियार्‍यो ॥७॥
पूत जाट को सभ को जानै । तिन ते कोऊ न रह्यो पछाने ॥
राझां चारि महिखिअन आवै । ताको हेरि हार बलि जावै ॥
ताको अधिक नेह उपजायो । भान्ति भान्ति सो मोह बढ़ायो ॥१८॥

दोहा

खात पीत बैठत उठत सोवत जागत निति ॥
कबहूँ न बिसरै चित्त ते सुन्दर दरस नभिति ॥१९॥

चौपई

ऐसी प्रीत पिया की भई । सिगरी बिसरि ताहि सुधि गई ॥
राझा जु के रूप उरझानी । लोक लाज तजि भई दिवानी ॥२७॥
तब चूचक इह भान्ति विचारी । यह कन्या नहो जियत हमारी ॥
अबहो यह खेरा को दीजै । यामै तनिक ढोल नहिं कीजै ॥२८॥
हेरहि बोलि तुरत तिह दयो । राझां अतिथ होइ संग गयो ॥
मागत भीख घात जब पायो । लै ताको सुरलोक सिधायो ॥२९॥
राझा हीर मिलत जब भये । चित्तके सकल साक मिटि गये ॥
हिया की अवधि बीत जब गई । बाटि दुहूँ सुरपुर की लई ॥३०॥

दोहा

राझां भयो सुरेस तहां भई मैनका हीर ॥
या जग मै गावत सदा सभ कवि कुल जस धीर ॥३१॥

इति श्री चरित्र पाख्याने त्रियाचरित्रे मन्त्री भूप संवादे अठानवो चरित्र समाप्तमसतु सुभमसतु

दोहा

विद्रभ देस भीतर रहै भीमसेन नृप एक ॥
हैगै रथ हीरन जरे झूलहिं द्वार अनेक ॥१॥
दमयन्ती ताकी सुता जाको रूप अपार ॥
देव अदेवगिरे धरकि तिसकी प्रभा निहार ॥२॥
ताकी प्रभा जहान मैं प्रचुर भई चहुं देस ॥
सब व्याहन ताको चहैं सेसे सुरेस लुकेस ॥३॥
सुनि पच्छन के वक्त्र ते त्रिय की सुन्दर चाल ॥
मानसरोवर छोड़ि तिह आवत भये मराल ॥४॥

हँसवाच

सुनु रानी इक कथा प्रकासो ॥ तुमरे जिय को भरम विनासो ॥
नल राजा चच्छि न इक रहई । अ'त सुन्दर ताको जग कहई ॥

दोहा

दमयन्ती ए बचन सुनि हँस ह दियो उड़ाइ ॥
लिखि पतिया कर मैं दई कहियहु नल प्रति जाइ ॥१२॥

अड़िल

बोलि पिता कौ कालि सुयम्बर बनाइहो ॥
बड़े बड़े राजन को बोलि पठाइहो ॥
पतिया वे बाचत तुम ह्यां उठि आइयै ॥
हो निज नारी करि मोहि संग लै जाइहै ॥ १३ ।

सुनि राजा वच हँस के मन मै मोद बढ़ाई ॥
द्रिभ देस को उठ चलियो ढोल मृदंग बजाइ ॥ १६ ॥
धरि पुहकरि को रूप तहां कलिजुग गयो ॥
जब ताको नल व्याहि सदन ल्यावत भयो ॥
खेलि जूप बहुं भातिन ताहि हराइयो ।
हो राज पाट नल वनकौ जीति पठाइयो ॥ २२ ॥
राज पाट नल जब इह भान्ति हराइयो ॥
वन मैं अति दुख पाइ अयुध्या आइयो ॥
बिछरे पति के भीम सुता विरहनि भई ॥
हो जिह मार्ग गे नाथ तिसी मारग गई ॥ २३ ॥
भीससैन तिन हित जन बहु पठवत भए ॥
दमयन्ती कह खोजि बहुरि ग्रह लै गए ॥
वहै जु इह लै गयो दिज बहुरि पठाइयो ॥
हो खोजत-खोजत देस अजुध्या आइयो ॥ २५ ॥
हेरि हरि बहु लोग सु याही निहार्‍यो ॥
दमयन्ती को मुख ते नाम उचार्‍यो ॥
कुसल ताहि इह पुछियो नैनन नीर भरि ॥
हो तब दिज गयो पछानि इहै नल नृपति वर ॥ २६ ॥
जाइ तिनै सुधि दई नृपति नल पाइयो ॥
तब दमयन्ती बहुरि सुयंब बनाइयो ॥
सुनि राजा ए वैन सकल चलि तह गये ॥
हो रथ मै चढ़ि नल राज तहां आवत भये ॥ २७ ॥

दोहा

नृप नल को रथ पै चढ़े सभ जल गये पछानि ॥
दमयन्ती पुनि तिह वर्‍यो इह चरित्र कह ठानि ॥ २८ ॥

चौपई

लै ताको राजा घर आये ॥ खेलि जूप पुनि सत्र हराइ ॥
जीति राज अपनो पुनि लीनो । भाँति-भाँति दुहुअन सुख कीनो ॥२९॥

दोहा

दमयन्ती इह चरित सो पुनि पति वर्‍यो बनाइ ॥
सबते जग जूआ बुरो कोऊ न खेलहु राइ ॥ ३१ ॥

इति श्री चरित्र पाख्याने त्रियाचरित्रे मन्त्री भूप सवादे इकसोसतावनो चरित्र समाप्तमसतु सुभमसतु ॥ १५७ ॥

दोहा

धारा नगरी को इहै भर्तहरी सब सुजान ॥
दो द्वादस विद्यानिपुन सूरवीर बलवान ॥ १ ॥

चौपई

भावमती ताके वरनारी । पिंगुल देह प्राणन ते प्यारी ॥
अप्रमान भा रानी सोहै । देव अदेव सुता ठिढ कोहै ॥ २ ॥

देव द्विजीक दुर्गा की पूजा करी रिझायो ॥
ताके करते इक अमर फल पायो ॥
तिनि लैके भरथरी राजा जू को दियो ॥
हो जब लौ पृथी अकास नृपत तब लै जियो ॥२८॥
दुर्गदत्त फल अमर जबै नृप कर पर्‌यो ॥
भानमती को देऊ इहै चित्त मै कर्‌यो ॥
त्रिय किय मनहि विचार कि मित्रहि दीजियै ॥
हो सदा तरून सो रहे केले अति कीजियै ॥२९॥
मन भवता मीत ज दिन सखि पाइयै ॥
तन मन धन सब वारि बहुर वलि जाइयै ॥
मो मन लयो चुराइ प्रीतमहि आजु सब ॥
हो रहे तरुन चिरू जियै दियो फल ताहि लभ ॥३०॥

चौपई

नृप को चित रानी हर लयो ॥ अवला मनु ताके कर दयो ।
बहु अटकत बेस्वा पर भयो ॥ फल लैके ताके कर दयो ॥३१॥

अड़िल

रही तरुनी सो रीझि अंग नृप के निरखि ॥
तारु कीएचख रहैं सरूप अमोल लखि ॥
फल सोई लै हाथ रुचितु रुचि सो दियो ॥
हो जब लौ पृथी अकास नृपति तब लौ जियो ॥३२॥
लै बेस्वा फल दियो नृपति आनिकै ॥
रूप हेरि वसि भई प्रीति अति ठानिकै ॥
लै राजे तिहं हाथ चिन्त चित्त मै कियो ॥
हो यह सोई द्रम जाहि जु मै त्रिय को दियो ॥३३॥

अड़िल

भाँति भाँति तिह लीनो सोधु बनाइकै ॥
तिह बेस्वा को पूछ्यो निकटि बुलाइकै ॥

साच कहौ मुहि यह फल तैं कह तै लह्यो ॥
हो हाथ जोरि तिन वचन नृपति सो यों कह्यो ॥३४॥
तुम अपनो चित जिह रानी के कर दियो ॥
ताको एक चन्डार मोहि करि मनु लियो ॥
तवन नीच मुहि ऊपर रह्यो विकाइकै ॥
तव त्रिय तिह दिय तिन मुहि कियो बनाइकै ॥३५॥
मै लखि तुमरो रूप रही उपझाइकै ॥
हर अरि सरतन बधी सु गई बिकाइकै ॥
सदा तरनि ताको फलु हम नें लीजिये ॥
हो काम केल मुहि साथ हरख मो कीजिये ॥३६॥

भरतरी वाच-अडिल

धृग मुहिको मै जु फल त्रियहि दै डार्‍यो ॥
धृग तिह दयो चण्डार जो धर्म न विचार्‍यो ॥
धृग ताको तिन त्रिय रानी सी पाइकै ॥
हो दयो वेस्वहि परम प्रीति उपजाइकै ॥४४॥

सवैया

अधिक आपु भख्यो नृप लै फल अधिक रूपमती कह दीनो ॥
जारके टुक हजार करै गहि नारी भिटयार तिनै विध कीना ॥
भौन भन्डार बिसारि सभै कछु राम का नाम हृदै दृढ़ चीनो ॥
जाइ बस्यो तबही वन मै नृप भेस को त्याग जुगेस को लीनो ॥४५॥

दोहा

वन भीतर भेंट भई गोरख संग सुधार ।
राज त्याग अमृत लयो भरथरि राजकुमार ॥४६॥
बीतत बरख बहुत जब भये ॥ भरथरी देस अपने गये ॥
चीनत एक चंचला भई । निकट रानीय के चलि गई ॥६३॥

दोहा

सुनि रानीयन ऐसा वचन राजा लियो बुलाइ ॥
भांति भांति रोदन करत रही चरण लपटाइ ॥६४॥

सोरठा

भासा रह्यो न मास रक्त रञ्च तन न रह्यो ॥
स्वासन उड्यो उसास आस तिहारे मिलन की ॥६५॥

चौपई

जोग कियो पूरन भयो नृपवर ॥ अब तुम राज करो सु सौ घर ॥

जौं सब हिन हम प्रथम संघारो ॥ ता पाछे वन ओर सिधारो ॥६६॥

अड़िल

सुन रानीयन के वचन नृपहि करुणा भई ॥
तिनके भीतर बुद्धि कछुक अपनी दई ॥
सो कछु पिंगल कह्यो मान सोई लियो ॥
हो राज जोग घर बैठ दोऊ अपने कियो ॥७७॥

दोहा

मान रानीयन को वचन राज कर्‌यो सुख मानि ॥
बहुरि पिंगुला के मरे वन को कियो पयान ॥७८॥

इति श्री चरित्र पाख्याने त्रियाचरित्रे मन्त्री भूप संवादे दो सो नौ चरित्र समाप्तमसतु सुभमसतु ॥२०९॥

१ ओंकार श्री वाहि गुरूजी की फतह ॥

सवैया

जागत जोति जपै निस वासर, एक बिना मन नैक न आनै ॥
पूरन प्रेम प्रतीत सजै व्रत, गोर मढ़ी मठ भूल न मानै ॥
तीरथ दान दया तप संजम, एक बिना नहि एक पछानै ॥
पूरन जोति जगै जगै घट मै तब खालसा ताहि नखालस जानै ॥ १ ॥
सत्त सदैव सरूप सतव्रत आदि अनादि अगाध अजैहै ॥
दान दया दम संजम न नेम, जतव्रत सील सुव्रत अबै है ॥
आदि अनील अनादि अनाहद आपि अद्वेख अभेख अभै है ॥
रूप अरूप अरेख जनारदन दीनदयाल कृपाल भये है ॥ २ ॥
आदि अद्वेख अभेख महा प्रभु सत्त सरूप सु जोति प्रकासी ॥
पूरि रह्यो सभ ही घट कै पट, तत्त समाधि सु भाव प्रणासी ॥
आदि जुगादि जगादि तुही प्रभु, फैल रह्यो सभ अन्तरवासी ।
दीनदयाल कृपाल कृपाकर आदि अजोन अजै अविनासी ॥ ३ ॥
आदि अभेख अछेद सदा प्रभु वेद कतेवनि भेदु न पायो ॥
दीनदयाल कृपाल कृपानिधि सत्त सदैव सभै घट छायो ॥
सेस सुरेस गणेस महेसुर गाहि फिरैं श्रुति थाह न आयो ॥
रे मन मूढ़ि अगूढ इसो प्रभु तैं किहि काजि कहो विसरायो ॥ ४ ॥
अच्युत आदि अनील अनाहद सत्तरूप सदैव बखाने ॥
आदि अजोनि अजाइ जरा बिनु पर्म पुनीत परम्पर माने ॥

सिद्धि स्वयम्भू प्रसिद्ध सभै जग एक ही ठौर अनेक बखाने ॥
रे मन रंक कलंक बिना हरि तै किहि कारण ते न पछाने ॥ ५ ॥

अच्छर आदि अनील अनाहद सत्त सदैव तुही करतारा ॥
जीव जिते जल मैं थल मैं सभ कै सद पेट को पोखनहारा ॥
वेद पुरान कुरान दुहूं मिल भान्ति अनेक विचार विचारा ॥
और जहान निदान कछू नहि ए सुबहान तुही सरदारा ॥ ६ ॥
आदि अगाध अछेद अभेद अलेख अजेय अनाहद जाना ॥
भूत भविष्य भवान तुही सबहूं सभ ठौरन मो मनु माना ॥
देव अदेव महीधर नारद सारद सत्त सदैव पछाना ॥
दीनदयाल कृपानिधि को कछु भेदु पुरान कुरान न जाना ॥ ७ ॥

सत्त सदैव सरूप सदाव्रत वेद कतेब तुही उपजायो ॥
देव अदेवन देव महीधर भूत भवान वही ठहरायो ॥
आदि जुगादि अनील अनाहद लोक अलोक विलोकन पायो ॥
रे मन मूढ़ अगूढ़ इसो प्रभु तोहि कहो किहि आन सुनायो ॥ ८ ॥
देव अदेव महीधर नागन सिद्ध प्रसिद्ध बड़ो तपु कीनो ॥
वेद पुरान कुरान सभै गुन गाइ थके पर जाइ न चीनो ॥
भूमि अकास पतार दिसा विदिसा जिहि सो सभके चित चीनो ॥
पूर रही महि मो महिमा मन मै तिहि आन मुझे कहि दीनो ॥ ९ ॥
वेद कतेब न भेद लख्या तिहि सिद्ध समाधि सभै करि हारे ॥
सिमृति सास्त्र वेद सभै बहु भान्ति पुरान विचार विचारे ॥
आदि अनादि अगाध कथा ध्रुअ से प्रहलाद अजामिल तारे ॥
नाम उचार तरी गनिका सोई नाम अधार विचार हमारे ॥१०॥
आंखन मीच रहै बक की जिम लोगन एक प्रपञ्च दिखायो ॥
न्यात फिर्‍यो सिर बद्धिक ज्यों अस ध्यान विलोक विड़ाल लजायो ॥
लागि फिर्‍यो धन आस जितै तित लोक गयो परलोक गंवायो ॥

श्री भगवन्त भज्यो न अरे जड़ धाम के काम कहा उरझायो ॥११॥
फोकट कर्म दृढ़ात कहा इन लोगन को कोई काम न ऐहै ॥
भाजत का धन हेत अरे जम किंकर ते नहिं भाजन पैहै ॥
पुत्र कलत्र न मित्र सभै उहां सिक्ख सखा कोऊ साख न देहै ॥
चेत रे चेत अचेत महा पसु अन्त की बार अकेलोई जैहै ॥१२॥
तो तन त्यागत ही सुन रे जड़ प्रेत बखान त्रिया भजि जैहै ॥
पुत्र कलत्र सुमित्र सखा इह बेग निकारहु आइसु देहै ॥

भउन भन्डार धरा गढ जेतक छाड़त प्रान बिगान कहैहै ॥
चेत रे चेत अचेत महापसु अन्तकी बार अकेलोई जैहैं ॥३३॥

ज़फ़रनामा ॥
फतेह की चिट्ठी
श्री मुखवाक पातशाही
हिकायत—१

कमाले करामात कायम करीमा । रजा वख्श राजिकु राहको रहीमा ॥ १ ॥
अमावख्श वख्शिन्दहउ दस्तगीर । रजावख्श रोजी दिहो दिल पजीर ॥ २ ॥
शहनशाह खूबी दिहो रहनमूं । के वेगूनवे चुनु चूं वे नमूं ॥ ३ ॥
न साजो न वाजो न फौजो न फरशा । खुदावन्द वखशिन्द है ऐस अरशा ॥ ४ ॥
जहां पाक जवर अस्तू जाहिरि जहूर । अताभेदिहद हमचु हजर हजूर ॥ ५ ॥
अता वखशदो पाक परवरदिगार । रहीम असत रोजी दिहौ हरि दिआर ॥ ६ ॥
कि साहिब दियार अस्तु आजम अजीम । कि हुसनल जमाल असतु राजक रहीम ७
कि साहिब शऊर अस्तु आजिज निवाज । गरीबुल परसतो गनीमुल गुदाज ॥८॥
शरिअत परसतो फजीलतम आब । हकीकत शनास्तु वीऊल किताब ॥ ९ ॥
कि दानस पयोह अस्तु साहिब शऊरा । हकीकत शनाश अस्तु जाहिर जहूर ॥१०॥
सनासिद ऐ इलमिआलम खुदाइ । कुशाइन्द ऐकारि आलम खुशाइ ॥११॥
गुजारिन्द ऐ कारि आलम कबीर । सनासिन्द ऐ इलमी आलम अमीर ॥१२॥
मरौ ऐत वरई कसम ने सत । किए जद गवाह असतु यजदा यकेसत ॥१३॥
न कतराह मरा ऐतवारे वरोसत । कि वखसीव दीवान हमहकि जब गोशत ॥१४॥
कसे कउल कुरआं कुनद ऐतबार । हुमा रोज आखिर सवद मरद खुआर ॥१५॥
हुमारा कसे सायह आयद बजेर । बरो दसत दारद न जागे दिलेर ॥१६॥
कसे सुत अफतद पसे शेर नर । नगिरद बुओमेस आहू गुजर ॥१७॥
कसम मुसहफे खुफीयद गरी खुरमा । नफौजो अजीजे सुम अम्र कुनमी ॥१८॥
गुरु सनह चिकेर कुनद चिहल नर । कि दहलख वर आयद बरो बेखबर ॥१९॥
कि पैमा सिकन वेद रंग आम दंद । मिंया तेग तीरो तुफंग आम दंद ॥२०॥
बलाचारगी दरमिंया आमदम । वतदवीर तीरो तुफंग आम दंभ ॥२१॥
चुकार अज हमह हीलते दरगुजशत । हलालसत वुदनवा समसेर दसत ॥२२॥
चिकसमे करा मन कुनम,ऐतबार । वगर नह तु गोई मनई रहि चिकार ॥२३॥
न दानम किई मरद रोबहि पेच । वगर हरगिज इरह नियारद बहेच ॥२४॥
हराकंस कि कऊले करां आयदश । नजो वसतनो कुशतनो बायदश ॥२५॥
बरंगें मगस सियाह पोश आम दंद । बयकवारगी दर खरोश आम दन्द ॥२६॥
हराकंस जिदेवार आमद बरूं । बखुरदन यके,तीर सुदगर किरवूं ॥२७॥

कि बेरूं नियामद कसे जो दिवार । न खुरदंद तीरो नग शतंद खुआर ॥२८॥
चुदीदम कि नाहर बियामद वजंग । चसीदन यके तीरतन बे दरंग ॥२९॥
हम आखर गुरेजन्द बजाये,मुसाफ । बसे खानह खुर दंद बेरूं गजाफ ॥३०॥
कि अफगान दीगर बियागद वजंग । चुसैलै दवा हमचु तीरो तुफंग ॥३१॥
बसे हमलह कर दंदब मरदानगी । अम अज होशगी हमंजि दिवानगी ॥३२॥
बसे हमलह कर दह बसे जखम खुरद । दुकसरांबे जां कुसत जां हमस पुरद॥३३॥
किआं खुवाजा मरदूद सायह दिवार । बमैदां नियामद बमरदान वार ॥३४॥
दरेगा अगर रोइओ दीदमे । वचक तीर लचार वखशीदमे ॥३५॥
हम आखर बसे जखम तीरो तुफंग । दुसुए बसे कुसतह सुद बदरंग ॥३६॥
बसेवान वारीद तीरो तुफंग । जमि गशत हमचुं गुलेलालह रंग ॥३७॥
सरो पाइ अंबहु चन्दा शुदाह । कि मैन्दा पुर अज गोई चोगा सुदाह ॥३८॥
तरकार तीरो तरका कमां । वरा मदयके हाई हूं अजजहां ॥३९॥
शिगर शौरिसै कैबरै कीनह कोश । जमरदानह मरदां बरूंरफत होश ॥४०॥
हम आखर चिमादी कुनद कार जार । किवर चिहलतनआयदस बेशुमार ॥४१॥
चिरागे जहाने खुदह बुरकह पोश । सबे साहबर आमद हमह मजिल वह जोश ४२
हरांकसांक कऊले कुरां आयदस । कि यजदा बरऊ रहिनुमा आयदस ॥४३॥
न पेचीद मूए न रंजीदतन । किबैरूं खुद आवुरद दुसमन सिकंन ॥४४॥
न दानम किई मरद पैमा सिकंन । कि दौलत परसत असतइमां फिकंन ॥४५॥
न इमां परसतीन अऊजाय दीन । न साहिब सनासीन मुहमद यकीन ॥४६॥
हरां कस कि इमां परसती कुनद । न पैमां खुदस पेस फसती कुनद ॥४७॥
किई मरद राजरह ऐतबार नेसत । चिकसमे कुरान असतु यजदां,यकेसत ॥४८॥
चुकसमे कुरासंद कुनद इखतियार । मरा कतरह नियायद अजो ऐतबार ॥४९॥
आन्चे तुरा ऐतबार आमदे । कमर बसत है पेशवा आमदे ॥५०॥
किफर जसत बरसर तराई सुखन । कि कउले खुदा असत बकसम असन मन॥५१॥
अगर हजरते खुद सितादह शवद । बजानो दिले कार बाजह शवद ॥५२॥
शमारा जुफरज असत कारे कुनी । बमूजब नविसतह शुमारे कुनी ॥५३॥
नविसतह रसीदोबगुफतह जुबां । बु बायद कि कारह बराहत रसां ॥५४॥
शहमूं मरद बायद शवद सुखन वर । नाशिकमे दिगरदर दहाने दिगर ॥५५॥
कि काजी मरा गुफतह बेरूं नियम । अगर रासती खुद बियारी कदम ॥५६॥
तुरां गर बुबायद वकउले कुरां । वनिज दे सुमारा रशानमहुमां ॥५७॥
कित शरीफ दर कसबह कागंड़ कुनन्द । वजापस मुलाकात बाहम सवद ॥५८॥
न जरी दरह राहि खतरह तु रास्त । हमह कौम बैराड़ हुक्मे मरासत ॥५९॥
बियावांबमन खुद जवानी कुनेम । बरौए शुभा मेहिरवानी कुनेम ॥६०॥

यके असप शाहसतह ऐयक हज़ार । बिआता बगीरी समनह दीयार ॥६१॥
शहनशाईरा बन्दहै चाकरेम । अगर हुक्म आयद वजां हाजरेम ॥६२॥
अगरचे बियायदव फरमान मन । हजूरत वियायम हमह जानु तनु ॥६३॥
अगर तो बयज़दां परसती कुनी । बकारे मराईन सुसती कुनी ॥६४॥
बु बायद कियज़दां शनासी कुनी । न गुफतह कशांकश खरासी कुनी ॥६५॥
तुम शनद नमी सरवरे कायनात । कि अजब असतु इन्साफ इ हम सफात ॥६६॥
कि अजब असत इन्साफ दी परवरी । कि हेफ असतु सद हैफई सरवरी ॥६७॥
कि अजब असतु अजब असत फतवह सुमां । वजुज़ रासती सुखन गुफतनजियाँ ६८
मजन तेगबर खुन्न कसबे दरेग । तुरा निज खून असत वा चरख तेग ॥६९॥
तू गाफल मश उमरद यज़दां हिरास । क्यू वे नियाज़ असतुओ वे सुपास ॥७०॥
क्यू बेमुहा वसतु शाहानशाह । जमीनो जमां सच ऐ पातिसाह ॥७१॥
खुदावन्द एज़द जिमीनों जमान । कुनिंद असत हर कस मकीनो मकान ॥७२॥
हम अजि पीर मोरो हम ज फील तनु । कि आज़ीज निवाज़ असत ग़ाफिल शिकन ॥७३॥
क्यूराचुइसम असतु अज़ज निवाज़ । क्यू वे सुपास असतउ बे नियाज़ ॥७४॥
किऊ वेनिगुंन असत वउ वे चपंगु । किऊ रहितुमां असत ओ रहिनमु॥७५॥
किबर सर तुरा फरज कसमै कुरान । बगुफतह सुमाकार खूबी रसां ॥७६॥
बिवायद तु दानस परसती कुनी । बकारे सुमा चेरह दसती कुनी ॥७७॥
चिहा शुद किचूं बचगां कुशतह चार । कि बाकी बिमादं असत पेचिदे मार॥७८॥
चिमरदी कि अखगर खमोसा कुनी । कि अतिश दमारां बदउरा कुनी ॥७९॥
चिखुस गुफत फिर दौसीए खूब जुबा । शिनाफी बवदकार आहर मनां ॥८०॥
किमां वारगहि हजरत आयम शुमां । अज़ा रोज वाम्सरी वशाहद सूमां ॥८१॥
वगर नह तुई हम फरामोश कुनद । तुरा हम फरामोश यजुदा कुनद ॥८२॥
अगर कार इबर ई तू वसती कमर । खुदावन्द वाशद तुरा वहर वर ॥८३॥
किइ कार नेक असत दी परवरी । चू यजदा शनासी बजां वरमरी ॥८४॥
तुरा मनुनदानम कि यजदा शनाश । बरामद जितो कार हा पुरखराशा ॥८५॥
शनासद हमही तो न यजदा करीम । न खाहद हमी तो बदौलत अजीम ॥८६॥
अगर सदकुरां रा वखुरदी कसम । मरा ऐतबारो नई जरह दम ॥८७॥
हजूरे नियायम न ईराहि शवम । अगर शाह वखाहद मन अजरम हम ८८
खुशश शाहिशाहन औरंगजेब । कि चलाक दसत असत चाबक रकेब ॥८९॥
वचि हुसनल जमाल असतरौशन जमीर । खुदावन्द मुलक असत साहिब अमीर९०
बतरतीब दानशब. तदवीर तेग । खुदावन्द देगोखुदविन्द तेग ॥९१॥
कि रउशन जमीर असतु हुसनल जमाल । खुदावन्द वखशिन्द है मुलकमाल ९२

कि वखाशिश कवीर असतु दुर जंग कोह। मलायक सिफत चूँ सुरया शकोह ९३
शहनशाह औरंगजेब आलमोन। कि दारा ईदऊर असतुं दूर सुतुदीन ॥९४॥
मनम कुशतनम कोहिया वुतपरसत। किऊ वुत परसतन्द मन वुत शिकसत ९५
बुवी गरदशेवे वफाई जमां। पसे पुशत अफतद रसानन्द जियां॥ ९६॥
बुवी कुदरते नेक यजदान पाक। कि अजयक बदह लख रसानद हिलाक॥९७॥
चि दुसमन कुनद मिहरबान असत दोसत। कि बखशिन्दगीकार वखशिन्दह उसत९८
रहाई दिहो राहिन भाई दिहद। जुवा राव सिफत आसनाई दिहद॥९९॥
खसमरा चुकारऊ कुनद वकत कार। यतीमात वरूं बुरद बेजखम खार॥१००॥
हराक्स नजोरास वाजी कुनद। रहीमे बरो रहम साजी कुनद॥७०१॥
कसै खिजमत आयद वसै दिल बजा। खुदावन्द वखशीन्द वश्खै अभां॥१०२॥
चि दुसमन कजा ही लह साजी कुनद। अगर रहिनमां शरवै राजी सवद॥१०३॥
अगर वरयक आइन्द दहौ दहि हजार। निगाह बान उरा शवद किरदगार।१०४।
तुरागर नजरह सत लशकर वजर। किमारा निगाह असतु यजदा शुकर॥१०५॥
कि उरा गरूर असतवर मलकमाल। वमारापनाह असज यजदा अकाल॥१०६॥
तू गाफिल मशउई सिपजी सराई। कि आलम वगुजरद सरैजा बजाई॥१०७॥
बुबी गरदसे बेवफाई जमां। कि वगज सत बर हर मकीनो मकां॥१०८॥
तुगर जबर आजज खराशी मकुन। कसमरा बतेसह तरासी मकुन॥१०९॥
हके यार बादस चिदुशमन कुनद। अगर दुशमनी रावसद तद कुनद॥११०॥
खसम दुसमनी गर हजार आवुरद। नयक मुए उरा अजार आवरद॥१११॥
हिकायत अगंजो अभंजो अरूपो अरेख। अगाधो अबाधो अमर मो अलेख ११२
अरागो अरूपा अरेखो अरंग। अजनमो अवरनो अभूतो अभंग॥११३॥
अछेदो अभेदा अक्रमो अकाम। अखेदो अभेदो अभरमो अभाम॥११४॥
अरेखो अभेखो अलेखो अभंग॥ खुदावन्द वखशिन्द है रंग रंग॥११५॥

शुद्धि-पत्र

पृ.सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृ.सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	१३	उनके ग्रंथ साहिब	उनकीवाणी	१३८	२६	राक्षरों	राक्षसो
३	८	गोविन्दवाल	गोइनदवाल	१५७	१४	तड़ग	खड़ग
३	१८	हरिराय	हरिगोविन्द	१७६	२७	जीवद	जीवन
३	२०	अकबर	अकबर तथा	१८१	पाद०	Dasan	Dasam
			जहाँगीर	१९०	११	लालसा	खालसा
४	१२	समय	×	१९३	१६	पंपराए	परम्पराएँ
१४	९	उन्होने	×	१९५	२०	मुक्त	मुक्तक
१४	२२	सरस	सरम	१९७	१४	करतार	करवार
,,	२५	लेख	लिखाई	२०३	२७	सभी	सखी
,,	२६	नान	नानक	,,	,,	च्न्द्रमा	चन्द्रभगा
१५	पाद०	devine	divine	२०५	१	ग	लग
१९	२६	जाने	जानई	२११	४	सब	जब
२१	पाद०	Sprit	Spirit	,,	२६	गवाह	गवार
२१	१८२०	भंडि	भॉड	२१२	८	बेर	बैर
४१	१४	मवोवाल	मखोवाल	२१४	८	भय	भभ
४८	५	जोरावर सिंह	जुझार सिंह	,,	१०	बातन	तातन
४९	६	अरवी	फारसी	,,	,,	हार्यो	डार्यो
५१	पाद०	जाता	जावा	२२३	२५	राम	कम
५४	१	जुझारसिंह	जोरावरसिंह	२२५	७	एक	सब
६७	४	नादीन	नादौन	२२७	२९	अकाल	अकास
७६	पाद०	उसा	वैसा	२२९	६	पोख	पेख
८६	,,	uplif	uplift	२३५	१७,१८,१९	लोभ	लोन
९२	अंतिम	मिथ्यो	मिल्यो	२३९	२०	रक्षात्मक	रसात्मक
९४	२०	धन्यासिंह	धन्नासिह	२४४	५	पाहन	पाइन
९६	१७	कतेच्चन	कतेवन	,,	,,	निधायो	निवायो
१०६	अंतिम	उल्ले	उल्लेख	२४५	९	मित	नित
११३	१९	हक्का	छक्का	२५०	६	लूक	खूक
११५	२२	वृक्ष	वृत	२५२	१२	तोत्रो	स्तोत्रों
११६	२४	भादरव	भादव	२६५	१२	यारहे	यारड़े
१२७	३	पारब्रह्म परमात्मा	विष्णु	२७८	२२	चन्देहो	चन्देरी

पृ.सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२८१	२५	गहा	गज
२९०	२७	सेमं	सेभंग
२९१	१७	स्थिति	स्थित
३०३	१७	अन्त	अनन्त
३०६	२१,२३	तेज	तेग
३०९	२२	अंत	जंत
३१९	१९	असुभ	अऊभ
,,	२३	हान	न्हान
३२९	२१	ऐहैं	पैहै
३३२	९	उडोत	डंडौत
,,	२४	छुग्घू	घुग्घू
३४५	३	देता	दैता
३५२	२३	जक	जग
३५३	७	सनम	जनम
,,	,,	किताभा	त्रिताया
३५७	१९	मित्र	मित्र

परिशिष्ट

पृ.सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३८०	८	सखियो	लखियो
,,	९	बितान	बुतान
३८३	२७	×	की
३८४	२४	अवदय	अद्वै
३८५	१५	गंगगधार	गंगधार
३९२	६	तीन	तीर
,,	८	×	तेज
,,	१५	कोले	बोले
३९४	९	अकास	अबास
,,	११	कोय	कोप
,,	२६	जोन	जोत
३९५	१३	संक	संग
,,	,,	पत्र	सत्र
	१९	गिरक	गिरक्ष

पृ.सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३९५	२६	सिता	सिवा
३९८	१०	गिर	गज
३९८	१७	समरी	सगरी
,,	१९	महि	नहि
३९९	२०	घर	धन
,,	,,	घो	घोर
४००	६	बिवार	बिदार
,,	६	थरि	करि
,,	२२	इकत्र	रकत्र
,,	,,	वीच	कीच
४०१	२	सजि	ससि
,,	१०	गर	शर
,,	१३	कर	बर
४०३	२०	घिटहैं	घिएहैं
४०४	१३	हत्यो	हत्थो
,,	३०	उजियारे	रनियारे
४०७	१६	जो	जोत
४०९	३	किरयो	घिरयो
,,	४	इन	इम
४११	१८	अरे	मरे
४१६	४	विविध	विधि
४१७	२	भरकन्त	थरकन्त
,,	४	अध्ययाम	अघाई
,,	५	रूहे	ढुरे
,,	१८	घण्ण	धरण
,,	१८	ही	होम
४१८	१४	बिक्खी	बिथुरी
४२२	१५	भेज	भुज
,,	१९	सी	श्री
,,	,,	सुरारिन	असुरारिन
४२३	५	भेज	भेद
,,	१५	लै	लैके

पृ.सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४२४	९	हफतरत	हफतजत
,,	१२	याचीन	माचीन
४२६	१९	दुगा	दुर्गा
४२९	१२	समनहि	समहन
४३३	१६	गाई	जाइ
४३४	८	कंजिका	कनिका
४३५	१९	मारी	गारी
४३७	२९	इसै	रखै
४४०	८	क्रिएन	क्रिसन
,,	२२	दुखरन	दुष्टन
४४१	१०	चल	चढ़
४४१	२२	सख	सभ
,,	२६	साक	साथ
,,	२७	टरहै	डरैहै
४४२	२९	ह्राच्छी	आच्छो
४४३	४	प्रभागर	प्रभासर
,,	१८	मुहे	सुहै
,,	२७	हरि	हसि
४४५	२८	घुन	फुन
४४६	१	हम	इम
४४७	८	पाच	वाच
,,	२३	खि	पिख
,,	२६	सुख	मुख
,,	२९	फ्रल	फब
४४९	३	अमरो	हमरो
४४९	८	सुनीर	सुनीए
४५०	५	कहि	कटि
,,	१७	एकडो	एकत्र
,,	,,	जीय	त्रीय
,,	२६	बाल	बात
४५१	१४	को	थो
४५२	६	लाग	त्याग
४५२	७	इस	रस
४५३	१४	स्याय	स्याम
४५५	२०	निरेस	निसेस
४५७	२	लसो	हसो
,,	२०	छजनब	छत्रन
,,	२७	आगन	मागन
४५८	३	जो	जोर
,,	१३	शासन	शस्त्रन
४५९	१०	रक	इक
,,	१६	हनै	इन
४६०	१४	मासज	साज
४६१	२५	धनै	भन
,,	२८	सहनाथ	सहनाइ
४६२	७	स्वोरि	च्योरि
,,	१३	चिन्तन	चिन्तत
,,	,,	होह	होइ
,,	,,	कन्यो	बन्यो
,,	२७	नेकाई	निवाई
४६३	३	सुहायैगी	सुहोयेगी
,,	७	रहे	रटे
४६५	२	जात	नात
,,	१५	जो	जोर
,,	३०	कर्म	धर्म
४६७	६	अछै	अभै
४६८	६	चबुत	चक्रत
४६९	१४	अन	उन
,,	१८	मरिग	मरिगे
,,	२८	दहात	कहात
४७०	२३	जरा	जग
४७१	६	भथे	भये
४७१	१९	भज	मत्र
,,	१९,२१	भिन्न	मित्र

पृ.सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४७१	२२	भिजन	मित्रन
,,	२८	राह	राह'
४७२	८	बिवन	बिपन
,,	९	लीकें	लेकें
,,	२७	खण्डरा	खड्ग
,,	२७	तवए	तवर
,,	२८	सेहबी	सहथा
,,	२९	सेर्धी	सेर्थी
४७३	२	जीव	जात
,,	११	सेभे	सफ
,,	१२	रक्षा	रक्ष
,,	१५	वन	वज्र
,,	२४	चुपावहु	उपावहु
,,	२५	×	तुम
,,	२८	दास	दाम
,,	२९	सील	सीस
,,	३०	बगतर	बक्त्र
४७४	२	खरतऊ	खडग
,,	५	पाहस	पाटस
,,	६	दीप	दीच्च
,,	९	बबर	जबर
,,	१०	तलीअत	लीजत
,,	१३	स्मव	शास्त्र
,,	१५	सारनगरि	सारंगारि
४७५	११	प्रधनी	प्रमनी
,,	१३	भूपनी	इसनी
,,	२३	छजनी	छत्रनी
४७६	२०	चीनहु	चीनलेहु
,,	२१	चाननी	त्राननी
४७७	८	समत्य	समझ
४७७	११	राजनी	राटनी
४७८	१	खापनी	तापनी
४७८	९	दरबी	दरनी
,,	२३	विसटनी	बिसटनी
४७९	१	अरि	आदि
,,	१३	वाहनी	धाइनी
,,	२[illegible]	रिच्च	रिप
,,	२२	मजिहु	लीजिहु
४८०	२३	काली	काती
४८[illegible]	६	आग्र	अमट
,,	२६	छटि	घटि
,,	,,	हमत	हास
,,	३१	छिनो	छिमो
४८४	९	मनापन	मनामन
,,	२७	हौरू	हौ
,,	२८	भरी	धरी
४८५	१०	केव्हे	[illegible]से
,,	२०	निकल	निकट
४८६	१०	लिमै	तिसै
४८७	१९	घरकि	घरनि
४८८	१५	हरि	हेरि
४८९	२	इहै	रहै
,,	,,	सब	राब
,,	५	मावमती	मानमती
,,	६	ठिढ	ढिग
४९०	७	उपझाइके	उरझाइके
४९१	१५	सजे	भजे
४९२	२९	साख	साथ
,,	३०	अखेत	अचेत